

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DTATE	SIGNATURE

संस्कृत काव्यशास्त्र

में

काव्य-बिम्ब-विवेचन

TREATMENT OF POETIC IMAGERY IN
SANSKRIT POETICS

जम्मू विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिये
स्वीकृत शोध प्रबंध का संशोधित तथा परिर्वाहित रूप

डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री

साहित्याचार्य, एम०ए०, एम्०ओ०एल्, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०,
भूतपूर्व प्रवाचक विश्वेश्वरानन्द संस्कृत व भारत भारती अनुशीलन संस्थान,
पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर

राधा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली-२

प्रकाशक
राजा पब्लिकेशन्स
4378/4वी, असारि माग, दरियागज
नई दिल्ली-110002
फोन 3261839

© लेखक

प्रथम संस्करण 1993

मूल्य ₹१००/-

ISBN 81-85484-38-4



मुद्रक
अमर प्रिंटिंग प्रेस,
गाहदरा जिला-110032

विषय-सूची

भूमिका	(iii)
नामून विद्यमाने रिञ्चित	(vi)
सक्षेप निर्देशिका	(xv)
प्रथम परिच्छेद—विम्ब का स्वरूप, भारतीय एवं पाश्चात्य धारणा, प्रकार	१
द्वितीय परिच्छेद—प्राचीन संस्कृत काव्य में काव्य-विम्बों के आदर्श	५७
तृतीय परिच्छेद—चमत्कार, कल्पना एवं अनङ्कार	८५
चतुर्थ परिच्छेद—शब्दाद्य-बोध व काव्य-विम्ब	११६
पञ्चम परिच्छेद—ध्वनि एवं काव्य-विम्ब	१५८
छठा परिच्छेद—रस-भाव-ध्वनि एवं काव्य-विम्ब	१८७
सातवाँ परिच्छेद—औचित्य दाप, गुण, रीति, वृत्ति, शय्या, पाक और काव्य-विम्ब	२३१
आठवाँ परिच्छेद—शब्दानुष्कार एवं काव्य-विम्ब	२६६
नवम परिच्छेद—साम्य-भूत अलङ्कार व शब्दचित्र	३३१
दसवाँ परिच्छेद—काव्य-विम्ब एवं सादृश्येतर सम्बन्ध मूलक अलङ्कार	३८०
ग्यारहवाँ परिच्छेद—प्रतीकात्मक व साध्यवमान विम्ब तथा अतिशयोक्ति	४१५
बारहवाँ परिच्छेद—काव्यशास्त्रक वृत्त एवं स्वभावोक्ति आदि अलङ्कार	४४१
त्रयोदशवाँ परिच्छेद—छन्द और मञ्जीत का काव्य-विम्ब मंथाप	४६६
निष्पत्ति	४६८
सहायक ग्रन्थसूची	४६६

समर्पणम्

शब्दब्रह्मविलासमात्मसुहित सत्त्व-प्रकाशोजित
भावोपाधि-विलायमानविभव चाखण्डविश्रान्तिदम् ।
आनन्दैकघन स्वयम्प्रभगति प्रत्यस्तवेद्यान्तर
सार प्रातिभ-मात्रलक्ष्य-विषय सारस्वत धोमहि ॥

अव्यवत सत् प्रातिभन्यक्ति-गम्य
शब्दोपाधि मविदात्मेन्द्रियेष्टम् ।
नित्य शुद्ध वा चमत्कृत्युदार
विश्वोपाय प्रस्तुत काव्यबिम्बम् ॥

यंहवत सम्प्रयुक्तो वा येषा ग्रन्थेभ्य उद्धृत ।
तेषा करेषु विदुषा सन्दर्भोऽय निधोयते ॥

भूमिका

संस्कृत ज्ञान के सुप्रसिद्ध मनीषी कारयित्री और भावयित्री प्रतिभाओं के घनी, नाना मौलिक और शौर्य प्रयोगों के रचयिता डा० शिवप्रसाद भारद्वाज की नूतनतम कृति 'संस्कृत काव्य-शास्त्र में काव्य-बिम्ब-विवेचन' का परिचय विद्वत्समाज के समक्ष प्रस्तुत करत हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। कृति प्रकाशन में पूर्व जम्मू विश्वविद्यालय के द्वारा डी० लिट् की उपाधि के लिए स्वीकृत हुई थी। इसमें विद्वान् लेखक ने काव्य-बिम्बों का सिद्धान्त और व्यवहार इन दोना ही दृष्टियों में मार्मिक विवेचन किया है।

लेखक ने न केवल भारतीय काव्यशास्त्र ही बल्कि बिम्ब-विधान की दृष्टि से आलोचन किया है अपितु पश्चात्य काव्यशास्त्र का भी। इससे उनकी दृष्टि व्यापक यनी है जिसमें बिम्बों की समग्र प्रक्रिया उनके अवैक्षण का विषय बनी है।

अपने कथ्य विषय को मशकत ढंग में कह पाना ही बिम्ब-विधान का विशेष प्रयोजन है। इससे प्रस्तुति जितनी-सटीक तथा बोधगम्य होती है उतनी किसी अन्य उपाय में नहीं। प्रश्न है धाता या पाठक को अपनी बात समझाने का, सम्प्रेषणीयता का। उनमें यह विशेष सहायक है। एक चित्र मा, आकार सा, मानमपटल पर इसके द्वाप उभर आता है जिसकी कथ्य को हृदयङ्गम करान में विशेष भूमिका है। सीधे-भीधे कही हुई बात मन को उतना छू नहीं पाती जितना कि बिम्बों के माध्यम में कही हुई बात। अधिकांशत अर्थालङ्कारों की पृष्ठभूमि में यही तत्त्व है। इससे कथ्य में सुबोधिता के साथ-साथ सरसता भी आ जाती है जो कि एक चमत्कार विशेष की सृष्टि करती है।

संस्कृत वाङ्मय जैसे विशाल वाङ्मय में अनकामेक कवियों और लेखकों ने अपनी कृतियों में नाना बिम्बों का प्रयोग किया है। वैदिक युग से अर्वाचीन युग के विशाल काल खण्ड में रचित इस वाङ्मय का उन बिम्बों की दृष्टि से अध्ययन समुद्र को लाघने के प्रयास के समान है। विद्वान् लेखक ने उस प्रयास में पूण सफलता प्राप्त की है। शतशः संस्कृत कृतियों से उन्होंने बिम्बों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर उन्हें स्पष्ट किया है। फलतः उनका ग्रन्थ बिम्बों

की दृष्टि से एक सन्दभ ग्रन्थ बन गया है। मुझे पूरा विश्वास है उनके इस ग्रन्थ से विद्वत्समाज सुतरा लाभान्वित होगा।

डा० शिवप्रसाद भानुदाज की यह कृति सस्कृत अनुसन्धान के क्षेत्र में एक महनीय देन है।

---सत्यव्रत शास्त्री

आचार्य, सस्कृत विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय

पूर्व कुलपति, श्री जगन्नाथ सम्कृत

विश्वविद्यालय, पुरी, उड़ीसा

दिल्ली

दिनांक १ दिसम्बर, १९६१

नामूल लिख्यते किञ्चित्

ब्रह्म के व्यक्त और अव्यक्त रूपों की भाँति शब्दब्रह्म के भी व्यक्त और अव्यक्त दो रूप हैं। अव्यक्त में वाक् के परा, पश्यन्ती और मध्यमा ये तीन रूप हैं। व्यक्त में चौथा रूप वैखरी है जो सम्पूर्ण मानव जाति के वाग्व्यवहार में आता है। जैसा कि ऋग्वेद में कहा भी है—

अस्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मिणा ये मनोविण ।
त्रीणि गृहा निहिता देह्, श्यति तुरीया वाक् मनुष्या वर्दति ॥

इनमें परा सूक्ष्मगत अवस्था है जिसकी तुलना अव्याकृत प्रकृति में हो सकती है। जिसका चिदात्मक स्वरूप शुद्ध दीपशिखा की भाँति निरवग्रह है। उसका ज्ञान समाधि दृष्टि से ही सम्भव है।

यज्ञेन वाक् पदवीद्यमायन् ताम्, ववि, दन ऋषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यसधु पुरुषा ता सप्त रेभा अभि सनवन्ते ॥

य साक्षात्कार करने वाले ऋषि ही थे जिनका ज्ञान त्रिकालाबाधित एव अतीन्द्रिय होता था। उही को यास्वने साक्षात्कृतधर्मा कहा है। उनकी समाधि या भावना म वाक् का जो रूप प्रकाशित होता है, वह पश्यन्ती है। उससे अपेक्षाकृत स्थूल किन्तु नादात्मक होने से अव्यक्त रूप ही मध्यमा है जो कि आकाश में, जिसे आधुनिक विज्ञान ईथर कह कर पुकारता है रहती है। उसको प्रकृति प्रत्यय में विभक्त नहीं किया जाता। तदनन्तर जो उसका व्यक्त रूप होता है, वह नाम-आख्यात, उपसर्ग-निपात इन विभागों में विभक्त होता है। इसी का मानव बोलते हैं और वैखरी कहलाती है।

भट्ट तीर्थ ने स्पष्ट शब्दों में वक् को ही ऋषि कहा है और परा वाक् को प्रतिभा, शिव की इच्छा-ज्ञान-त्रियात्मिका शक्ति का अस्पन्द एव अव्याकृत रूप माना है। जब उस प्रतिभा शक्ति के द्वारा वह विश्व के विविध रहस्यों का अपने मस्तिष्क में साक्षात्कार करता है तो पश्यन्ती रूप है। इसके पश्चात् अन्तर्मन में रचना का जो प्राग्रूप बनाता है वह मध्यमा है और कृति वैखरी है। इस प्रकार शब्दों के माध्यम से रची गई कृति का वह प्रजापति है जो कि अपनी इच्छा के अनुसार इस विश्व की सृष्टि करता है। आनन्दवधन ने कहा भी है—

अपारे काव्य-सतारे कविरेक प्रजापति ।
 यथास्मि रोचने विश्व तयव परिवर्तते ॥
 शृङ्गारी चैत्कवि काव्ये जात रसमय जगत् ।
 स एव जीतरागशचेन्नीरस सवमेव तत् ॥

कवि की प्रतिभा शक्ति स काव्य-रूप जगत् का उन्मीलन होता है ।
 अधिनव ने इस मय का इस प्रकार स्मरण किया है—

यदुन्मीलन-शक्तिवै विश्वमुन्मीलति क्षणात् ।
 स्वात्माप्यतन विश्रान्ता ता यद्वै प्रतिभा शिवाम् ॥
 प्राप्य प्रोत्तासमात्र सद भेदेनामृष्यते यथा ।
 वदेऽभिनवगुणोऽह पश्यन्तीं तामिद जगत् ॥

प्रतिभा के व्यापन न होने के समय में कवि की अवस्था भागवत-प्रोक्त
 'सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् धानी' होती है । शक्ति के प्रबुद्ध होने पर पश्यन्ती वाली
 अवस्था आ जाती है । वैखरी का उदय आत्मा, बुद्धि मन और माहृत के
 संयोग में उच्चरित शब्द के रूप में होता है । जैसा पाणिनि ने कहा है—

आत्मा वृद्ध या समेत्यार्यान् मनो घुङ्क्षने विवक्षया ।
 मन कायाग्निमाहृति स प्रेरयति माहृतम् ॥

द्रमका तात्पर्य यह हुआ कि वैखर्यामक वायूप अभीष्ट अर्थ की विवक्षा में
 उच्चरित होता है । अन कवि जब शब्द का प्रयोग करता है तो सोद्देश्य ।
 उद्देश्य है विवक्षित अर्थ का बोधा के मन्त्रित्व म सन्नामण । यह मङ्गलमण
 तभी सम्भव है जब बोधा म ग्राहिका शक्ति हो । सूर्यकान्त मणि या आतसी
 शीशा ही जैम सूर्य की किरणों को ग्रहण कर सकती है, जब पाषाण आदि
 नहीं । इसी प्रकार महदय व्यक्ति ही कवि के आशय को ग्रहण कर सकता
 है ।

कवि के आशय म प्रमुख मनोवेग होने हैं । स्पून जगत् के पदार्थ आलम्बन
 या उद्दीपन विभाव क रूप म सम्बद्ध रहते हैं । मनोभाव चिन्, आनन्दघन और
 प्रवागरूप होत हैं । उनका बोध प्रकाशात्मक होगा । उससे सम्बद्ध पदार्थों का
 ज्ञान भी माकार हान पर पदाय होगा । पुन प्रतिपत्ता के मनोमुकुर में
 प्रतिपाद्य पदाय का प्रतिपन्न होना है । अथवाबोधय वस्तु का स्वरूप जो
 चस्तुत व्यवहार की वस्तु है मृत होता है, वह बोधा की अतद्दृष्टि
 के समक स्मृति रूप म घूम जाता है । जैसे घट कहने स बोधा की अतद्दृष्टि
 म कम्बुध्रीव और पुषुवृन्दोदर पदाय की आकृति घूम जाती है । तभी

सामने घट को देखकर "अय घट" यह प्रत्यय होता है और पट से उमे पृथक् कर सकता है। इस प्रकार कवि अपनी कृति में मूर्त या अमूर्त जिस विश्व का उन्मीलन करता है, वह सहृदय या सचेना के निर्मल मनोमुकुर में प्रतिबिम्बित होता है अथवा यो कहें कि उस पदार्थ की एक प्रतिमा प्रतिपत्ता के मानमें उतर आती है। काव्य शब्द व्यापार का परिणाम है। शब्द के श्रवण या पठन से यह कार्य सम्भव होता है। इसीलिए काव्य के श्रव्य और दृश्य ये दो प्रकार माने गये हैं। काव्य-वर्णित विषय पाठक या सामाजिक को जब प्रत्यक्षवत भावित हो जाय तभी कवि की इतिकर्तव्यता पूर्ण होती है।

सहृदय के हृदय में होने वाला काव्याध का बिम्बन—मूर्तीकरण ही अभिनव गुप्त का साक्षात्कार या प्रत्यक्षकल्प मखेदन है। काव्य की प्राणतत्त्व चमत्कार साक्षात्कारात्मिका मवित् ही है। दृश्यकाव्य में रङ्गमञ्च के वातावरण एवं अभिनेता द्वारा किय गये चतुर्विध अभिनय से, श्रव्य काव्य में दोष-हानि, माधुर्यादि गुण, अलङ्कार छन्द आदि के द्वारा सामाजिक के हृदय में उद्बुद्ध भावा का काव्य में प्रस्तुत भाव में साधारणीकरण होने पर रमानुभूति में इस काव्य-बिम्ब की निष्पत्ति होती है। भावों के चित और आनन्दघन एवं प्रकाशात्मक होने से उनका उदय होने पर अन्तस् की जडता, शान्ति एवं मङ्ग्लोच की अवस्थाओं का लोप हाकर एक अदभुत आनन्दात्मक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें लौकिक कटुता, घृणा, शोक आदि भाव सब प्रवाहित हो जाते हैं। पाश्चात्य समीक्षा-सम्मत कैथारसिस या विरेचनवाद का भी यही म्वरूप है।

काव्याध का मूर्तीकरण या साक्षात्करण आधुनिक समीक्षा-शास्त्र में काव्य-बिम्ब के नाम से प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में यूरोप में एक स्वच्छन्दतावाद का आन्दोलन (Romanticism की movement) चला था जिसके अन्तर्गत यह बिम्बवाद, काव्य की एक पृथक् प्रतीकात्मक (Symbolic) भाषा प्रचलित हुई। मनोविश्लेषण पर बल दिया जाने लगा। काव्य-बिम्बों, काव्य-प्रवृत्ति और अलङ्कार आदि की मूल-प्रवृत्ति के रूप में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक हो गया। आई० ए० रिचर्ड्स की "दि प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म और प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म" इन दोनों रचनाओं में भी मुख्य रूप में यही दृष्टि रही है। ह्यूम, एजा पाउण्ड, एमी वावेल इन सबने काव्य-बिम्ब को बहुत महत्त्व दिया है। सी० डे० लेविस ने अरस्तू और ड्राइडन के काव्य-बिम्ब के सम्बन्ध में विचार निम्नलिखित रूप में उद्धृत किए हैं—

The greatest thing by far is to have a command of metaphor. This alone cannot be imparted by another: it is the mark of genius.

—Aristotle

Imaging is in it self the very height and life of Poetry

—Dryden

लविम म्वय यह स्वीकार करता है कि स्वच्छ-दत्तावादी आन्दोलन से पूर्व किसी नवम वात को महत्त्व नहीं दिया था कि स्वयं कविता अपने आप में एक विम्ब है। वम काव्य विम्ब काव्य का अपरिहाय तत्त्व सिद्ध होता है। सस्कृत काव्यशास्त्र में चमत्कार का जो स्वरूप बताया गया है काव्य विम्ब का उससे पक्व नहा है। काव्य विम्ब भी काव्य में वर्णित पदार्थों की श्रोता या सामाजिक व मम्मिष्क में बनी एक मानस छवि है। यह चमत्कार के उपयुक्त लक्षण में भिन्न नहा है। काव्य विम्ब के लिए भी अनुभूति का स्पष्ट आवश्यक है और चमत्कार भी सविद्रूप ही है। चमत्कार को काव्य का अपरिहाय तत्त्व आरम्भ से ही माना जाता रहा है। इसलिए वस्तुतः भारत के लिए यह विम्ब सिद्धांत और प्रतीक प्रयोग कोई नई बात नहीं है।

पश्चिम के लिए वस्तुतः स्वच्छ-दत्तावादी आन्दोलन तात्कालिक परिस्थितियों के रूप में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। परंतु भारत में उसके सड़क क्रमण और प्रसार का हनु पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क होना है। अंग्रेजी और फ्रांसीसी साहित्य का आधुनिक भारतीय साहित्य पर बहुत प्रभाव पडा है। आज का हिंदी साहित्य तो यदि सब पूछा जाय तो इस प्रभाव की ही देन है। उपन्यास, लघुकथा, सस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध, समीक्षा, आत्मकथा तो अंग्रेजी साहित्य में आइ है। कविता में भी शैली, विषय, वस्तु और भाव सब पर अंग्रेजी साहित्य की छाप पडी है। फलतः हिंदी समीक्षा के लिए विम्बवाद और प्रतीकवाद नई वस्तु ही हैं।

मस्कृत साहित्य पर यह पश्चिमी प्रभाव अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में है। भले ही नए शैली में काव्य रचना, नाटक, उपन्यास, निबंध, लघुकथा आदि लिखी जा र्थी हैं। किंतु उसमें समीक्षा अभी भी प्राचीन पद्धति से ही चल रही है। फलस्वरूप काव्य विम्ब पर काव्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन नहीं कर बगवर हुआ है। बहुत वय पहले सुब्रह्मण्यम ऐयर ने बाल्मीकि रामायण में काव्य विम्ब को लेकर एक शोध-ग्रन्थ लिखा था परंतु उसकी पृष्ठ भूमि के रूप में काव्यशास्त्र में विम्ब सम्बन्धी विचार को उन्होंने छोडा तक नहीं। इस प्रकार कई शोधकों ने कालिदास के काव्यों में काव्य विम्बों की खोज की है पर काव्यशास्त्र में इस प्रकार के तत्त्व के या नहीं, इस पर उन्होंने विचार

ही नहीं किया। वास्तव में इस प्रकार की समीक्षा आधारशिला के बिना भवत-निर्माण से भिन्न नहीं है। कालिदास और भवभूति में आइ० ए० रिचर्ड्स और टी० एम० इलियट के विचारों में अबगत होने की आशा करना पीने की जीवन गाथा में दादा के विवाह के मस्मरण खोजने के समान है। जब वैदिक साहित्य ले लेटर आधुनिक संस्कृत काव्य तक काव्य-विम्ब पाये जाते हैं तो इसका कारण क्या है? यदि काव्य विम्ब-सम्प्रन्धि धारणा ही उस समय न थी तो कविया में यह प्रवृत्ति वहाँ से आ गई, इस बात पर विचार किए बिना लोगों ने यह विचार बना लिया कि संस्कृत-साहित्य में काव्य-विम्ब सम्बन्धी भावना ही नहीं थी। उन्होंने यह विचारने का कष्ट न किया कि मानव-मस्तिष्क समान है। जो विचार एक देश या युग के व्यक्तियों के मन में आते हैं, वे दूसरे देश युग के व्यक्तियों के मन में भी आ सकते हैं। पुनः यह भी आवश्यक नहीं है कि सब एक ही प्रकार या परिभाषा में बह सिके। अन्य शब्दों और सजा में भी उस पर विवेचन सम्भव है। वैसे अन्तर यहाँ तक है कि अधिकांश पाश्चात्य समीक्षकों ने विम्ब-विधान को कवि की अतिरिक्त उपलब्धि माना है जबकि भारतीय शास्त्र की दृष्टि से यह काव्य का अनिवार्य तत्त्व है।

इस बात में कोई विमते न होगा कि संस्कृत का अलङ्कार-शास्त्र विश्व की किसी भी भाषा के समीक्षा-शास्त्र में समृद्धतम है। काव्य-तत्त्वों और काव्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों का जितनी गहराई से विश्लेषण उसमें हुआ है, उतना कहीं नहीं है। अकेले अलङ्कारों को ही लेकर उसमें गम्भीर विवेचन हुआ है फिर वैदिक काव्य में लेकर आधुनिक काव्य तक पाई जाने वाली विम्ब-विधान की इस व्यापक प्रवृत्ति को उन आचार्यों ने सवथा अस्पृष्ट छोड़ दिया हो, यह कैसे सम्भव है?

सौभाग्य से इन पिछले कुछ वर्षों में मनीषियों का इधर कुछ ध्यान गया है। डा० सुधीशङ्कर भट्टाचार्य का शोध प्रबन्ध "इमेजरी इन महाभारत" में पृष्ठ-भूमि में संस्कृत काव्य-शास्त्र में इस प्रवृत्ति की खोजने का यत्न हुआ है। रस-सिद्धान्त का मान्य साधारणीकरण व्यापार उसमें काव्य-विम्ब के प्रमुख साधन के रूप में मान्य हुआ है। तदनन्तर डा० रमारञ्जन मुकर्जी की महत्त्वपूर्ण कृति "पायटिक इमेजरी, ऐन इण्डियन ऐप्रोच" काव्यविम्ब के सैद्धांतिक पक्ष को लेकर प्रकाशित हुई है जिसमें भारतीय दर्शन और काव्य शास्त्र के आधार पर इस विम्ब-वाद की प्रतिष्ठा करने का यत्न किया गया है। आनन्द-वधन के शब्दों की इस दृष्टि से व्याख्या की गयी है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

जब मैं पी एच० डी० के लिए वाल्मीकि रामायण पर शोध कर रहा था, उही दिनों श्री जखीरी ब्रजनन्दन प्रसाद की पुस्तक 'वाव्यात्मक विम्ब' देखने में आयी। उसमें उन्होंने लिखा था कि रस के प्रति आग्रह के कारण भारतीय साहित्याचार्यों ने काव्य-विम्ब के महत्त्व को समझने में असमर्थता दिखाई है। मुझे यह खटका और कुछ पृष्ठ इस विषय पर अपने शोध प्रबन्ध में भी लिखे। बाद में अपने अनेक मित्रों से इस विषय में फैली ध्रान्ति को दूर करने के लिए प्रेरणा मिली। यद्यपि हिन्दी क्षेत्र के समर्थ एक प्रख्यात आलोचक डा० नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक काव्य विम्ब में स्पष्ट स्वीकार किया है कि लक्षणा, व्यञ्जना, वसोक्ति ध्वनि एवं विम्ब-प्रतिविम्ब भाव की मायता स्पष्ट ही विम्ब सिद्धान्त के निकट है। तब भी यह उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार नहीं किया कि हमारा काव्यशास्त्र में एतन्मन्वन्धी विवेचन हुआ है। हा, प्रो० रामगोपाल शर्मा ने एक शोध-ग्रन्थ में बड़ी विद्वत्ता से संस्कृत काव्यशास्त्र में विम्ब-सम्बन्धी विवेचन की विद्यमानता सिद्ध की है। कुछ अन्य मनीषियों ने भी अलङ्कारों के प्रसङ्ग में इस विषय का स्पर्श किया है परन्तु किसी विद्वान ने काव्य-शास्त्र का इस दृष्टि से सर्वाङ्ग गीण अध्ययन किया है ऐसा मेरी दृष्टि में अभी कोई ग्रन्थ नहीं आया है।

साहित्य शास्त्र के अध्ययन के प्रसङ्ग में कई बार ये प्रश्न सामने आये थे कि आचार्यों ने रस और गुणा के लिए कुछ निश्चित ध्वनियों का ही प्रयोग क्या निश्चित किया? वक्ता, वाच्य आदि के अनुसार औचित्य देखकर विशेष बंध की रचना का क्या अर्थ है? पुनः स्वभावोक्ति, अव्यक्ति और भावित्य इन अलङ्कारों एवं गुणा से वस्तु के माक्षात्कार का क्या तात्पर्य है? व्यङ्ग्य अर्थ की प्रतीति किस रूप में होती है? स्फोट में ध्वनि का सम्बन्ध किस रूप में है? हनवृत्त आदि दोषों का वास्तविक रहस्य क्या है? वाल्मीकि-रामायण में उसके गान के प्रसङ्ग में जो उसका प्रभाव लिखा है "प्रत्यक्षमिव दर्शितम्" इसमें भी प्रश्न उठता है कि अतीत की घटना शब्द-श्रवण-मात्र में कैसे प्रत्यक्ष हो जाती है? इन सभी प्रश्नों पर हम ग्रन्थ में विचार करने का अवसर मिला है। इसके मूल में स्थित दार्शनिक सिद्धान्तों को भी उपयोगिता की दृष्टि से परखा है। चमत्कार शब्द का काव्य शास्त्री दीर्घ काल में प्रयोग करते चले आये हैं पर चाम्त्कार में वह होता क्या है और उसका स्वरूप क्या है? अलङ्कार के मूल में अलंकार का क्या तात्पर्य है? इन सभी प्रश्नों पर अपनी दृष्टि से विचार किया है। प्राचीन आकर ग्रन्थ और टीकाओं में इसके आधार भी मिले हैं, उन्हीं के

सहारे में आगे बढ़ा हूँ। मुझे इस रत्न में कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय सद्-सद्-व्यक्ति-हेतु और गुण-ग्राही विद्वान् ही करेंगे। यह मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि संस्कृत-क्षेत्र में अभी शोध-कार्य किसी रुद्धि से बधा हुआ है। कोई यदि नई बात कहता है तो लोग उसे सुनने को भी उद्यत नहीं होते। कुछ मात्मयवश अपनी अशक्ति छिपाने मात्र के लिए केवल दोष ही ढूँढते हैं। हिन्दी का क्षेत्र इस सम्बन्ध में उदार है। इस कारण वह साहित्य के सभी अङ्गों में नित्य समृद्ध हो रहा है। आज आवश्यकता है नये परिवेश में उस प्राचीन महासागर से नये रत्न खोजने की। देवासुर-कृत मथन से तो स्थूल रत्न ही निकले थे। यह ठीक है कि पश्चानुप्रश्न के द्वारा नई मान्यता को प्रामाणिकता देने से पूर्व ठोक बजाकर परख लिया जाय कि वह कितने सुदृढ़ आधार पर टिकी हुई है।

इस प्रसङ्ग में मैं यह निवेदन करना चाहूँगा कि इस शोध-प्रबन्ध में अनेक अलङ्कार ग्रन्थों की चर्चा नहीं हुई है, उसका कारण एक तो यह है कि अनेक ग्रन्थों में तो पिष्ट-पेषण के अतिरिक्त कोई मौलिकता नहीं मिलती। कुछ ग्रन्थ यत्न करने पर भी सुलभ न होने में अध्ययन के विषय नहीं बन सके। विशेषकर अलङ्कार-साहित्य के ग्रन्थ जिनकी प्रामाणिकता निर्विवाद है, प्रमुख रूप में इसके आधार रहे हैं। इसलिए यदि कुछ ग्रन्थों की चर्चा इसमें न आयी हो तो विस्मय की बात नहीं है। अंग्रेजी एवं हिन्दी के समीक्षकों की कृतियों को भी महासामग्री के स्रोत के रूप में अपनाया गया है। जैसे अपना दृष्टिकोण गीता के "यावानथ उदपाने" आदि श्लोक वाला रहा है। अपने विषय में जिसका सीधा सम्बन्ध रहा है, उसके भी सूक्ष्म अंश को ही अपनाया है। क्योंकि मूल प्रयोजन तो काव्य-सिद्धान्तों का काव्य-विम्बा के प्रसङ्ग में अध्ययन है। विषय का एकत्रीकरण नहीं। उदाहरणों में कहीं-कहीं आधुनिक कवियों एवं लेखकों की रचनाओं से भी उदाहरण दिए हैं। अवकाश की सीमा के कारण सबसे लेना सम्भव नहीं हो सका है।

इस कार्य में जिन विद्वानों के ग्रन्थ मेरे लिए प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं, भले ही कहीं उनकी आलोचना भी करनी पड़ गयी है, परन्तु सामग्री के स्रोत रहे हैं, उन सभी का मैं कृतज्ञ हूँ। इसी प्रसङ्ग में डा० सत्यव्रत शास्त्री, डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य, डा० कैलाशपति त्रिपाठी आदि अनेक विद्वानों से इस विषय में विचार-विमर्श हुआ है। स्व० डा० शोम प्रकाश शास्त्री, श्री द्विजेन्द्रनाथ निर्गुण आदि में भी नये सुझाव मिले हैं। इन सभी का मैं बड़ा आभारी हूँ। विशेषकर जम्मू विश्वविद्यालय की संस्कृत विभागाध्यक्षा डा० वेद कुमारी घई एवं वहाँ के

सत्कालीन डा० समार चंद्र, अध्यक्ष हिंदी विभाग का मैं उपर्युक्त हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबंध को अपने विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने के लिए मुझे अनुमति दिलाई।

इस शोध प्रबंध की भूमिका संस्कृत भाषा के सतत आराधक, देश विदेश में विद्यतकीर्ति डा० सत्यव्रत शास्त्री प्राफेसर एवं संस्कृत दिल्ली विश्वविद्यालय एवं भूतपूर्व उपकुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी ने अपनी व्यवस्तना के अमूल्य समय में रूपाकर लिखी है। डा० साहव न आरम्भ में ही इस शोध प्रबंध में गहरी रुचि ली है। अतः समझ में नहीं आता कि उनका आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ।

आज जब भारत में शोध प्रबंधों की प्रायः दुर्गति हो रही है। ८५% शोध प्रबंध अप्रकाशित रह जाते हैं। पाठकों के अभाव और लाभ की संभावना न होने में प्रकाशक उनका प्रकाशन में अंतराते हैं। इस स्थिति में हमारे मित्र श्री राजीव गंग अध्यक्ष राष्ट्रीय पब्लिकेशन न ट्रस्ट का प्रकाशन का भार लेकर बड़ा साहस किया है। अपनी आर स ट्रस्ट का प्रकाशन मुचाह रूप में करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया है। परंतु शोध प्रबंध का सम्बन्ध संस्कृत में होने में—इतना सब-बुझ करने पर भी मानव के ज्ञान शक्ति एवं साधना की सामितना के कारण कुछ त्रुटियाँ ग्रन्थ में अवश्य रह गयी होंगी। इसके लिए मैं मनीषिया में कर-बद्ध क्षमा याचना करता हूँ।

निवेदक

शिव प्रसाद भारद्वाज

सक्षेप-निदेशिका

अको०—अमरकोष
 अखौरी—अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद
 अपु०—अग्निपुराण
 अचि०—अलङ्कार चिन्तामणि
 अथ०—अथर्ववेद
 अप्य०दी०चिमी०—अप्यदीक्षित
 चित्र-मीमासा
 अ०पु०—अग्नि पुराण
 शाकु०—अभिज्ञान शाकुन्तल
 अमर०—अमरशतक
 अमहो०—अलङ्कार-महोदधि
 अर०—अलङ्कार-रत्नाकर
 अरामो०—अभिनवरागगोविन्द
 अल०मी०—अलङ्कार-मीमासा
 अलशे—अलङ्कार-शेखर
 अस०—अलङ्कार-सवस्व
 अस०विम०सहि०—अलङ्कार-सवस्व
 विमशिनीमहित
 उद्यो०—उद्योत
 उच०—उत्तररामचरित
 उच०प्रस्ता०—उत्तररामचरित
 प्रस्तावना
 ऋग्०—ऋग्वेद
 ऋक्प्रा०, उ०भा०—ऋक्-प्रातिशाख्य
 उत्तरभाग
 एका०—एकावली
 ऐ०उ०—ऐतरेय उपनिषद्
 औवि०—औचित्यविचारचर्चा

क० कण्ठा०—कविवृष्ठाभरण
 का०—कादम्बरी
 काकवृ०—काव्य-फलतावृत्ति
 का०द०—काव्यादर्श
 कानु०—काव्यानुशासन
 का०नु०वि०—काव्यानुशामन-विवेक
 काप्रका०—काव्यप्रकाश
 का०प्र०उ०—काव्यप्रकाश उद्योत
 का०प्र०का०उ०—काव्यप्रकाश
 उदाहरण
 का०प्रदी०—काव्य-प्रदीप
 का०वि०—काव्य-विम्ब
 कामा०—काव्यमाला
 का०मी०—काव्य-मीमासा
 कालसू०—काव्यालङ्कार-सूत्र
 कालि० श्रुति०—कानिदाम श्रुति गार
 तिलक
 काव्या०बिम्ब०—काव्यात्मक विम्ब
 काव्याल०स०कालस० कामाम०—
 काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रह
 कास०—काव्य समीक्षा
 का०सा०सू०—काव्यालङ्कारसार-
 सङ्ग्रहवृत्ति
 कासू०—काव्यालङ्कारसूत्राणि
 कासूवृ०—काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
 किरा०—किरातार्जुनीय
 कुम०—कुमारसम्भव
 कुवल०—कुवलयागन्द

कु०स०—कुमारसम्भव
 कौभ० वंभूमा०—कौण्ट भट्ट
 वैयाकरणभूषणसार
 गम०—गणपतिसम्भवम्
 गीगो०—गीतगोविन्द
 चन्द्रा०—चन्द्रालोक
 चाह०—चारुदत्त
 चौख० स०—चौखम्बा सस्करण
 चौप्र०—चौखम्बा-प्रकाशन
 छादो०—छादोग्य उपनिषद् छाया-
 वादोत्तरकाव्य में बिम्ब-
 विधान
 ज्वाप्र०—ज्वाला प्रसाद
 टि०—टिप्पणी
 तस०—तकसट् ग्रह
 तसदी—तकसट् ग्रहदीपिका
 तस०प्र०ख०—तकसट् ग्रह प्रत्यक्ष
 खण्ड
 तभा०—तकभाषा
 तु०—तुलनीय
 तैत्ति० आ०—तैत्तिरीय आरण्यक
 द०कु०च०—दशकुमारचरित
 दर्प०—दर्पण
 दह०—दशहरक
 द्र०अ०—द्रष्टव्य अध्याय (परिच्छेद)
 छत्रन्या०दिव्या०—छत्रयालोक दिव्या-
 उजना टिप्पणी
 नागा०—नागानन्द
 नाप्रम०—नागरी-प्रचारिणी सभा
 नाशा०—नाट्यशास्त्र
 नि०—निरुक्त
 नीश०—नीतिशातक

न्या०सू०भा०—न्यायसूत्र भाष्य
 पा०—पाणिनीय अष्टाध्यायी
 महा०—पातञ्जल महाभाष्य
 पाधा०—पाणिनीयघातुपाठ
 पाशि०—पाणिनीयशिक्षा
 पा०सू०—पातञ्जल योगसूत्र
 पू०पी०—पूर्वपीठिका
 पृ०—पृष्ठ
 प्रका०—प्रकाशन
 प्र०भाग०—प्रथम भाग
 प्ररा०प्रस्ता०—प्रसन्न-राघव प्रस्तावना
 प्रस्ता०—प्रस्तावना
 प्रहृ०—प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
 बलदे० उ०सामा० इ०—बलदेव
 उपाध्याय, साहित्य-शास्त्र का
 इतिहास
 बाच०—बासचरित
 बु०च०—बुद्धचरित
 बृह०—बृहदारण्यक
 बृह०स्तो०—बृहत्स्तोत्ररत्नाकर
 भश०—भल्लट शतक
 भा०—भाग
 भाका०—भामह काव्यालङ्कार
 भा०पु०, भाग०—भागवत पुराण
 भावि०—भामिनी-विलास
 भामाशको०—भारतीय साहित्य-
 शब्द-कोष
 भास०—भास-संदेश
 म० शनो०—मङ्गलश्लोक
 मवी०च०—महावीर-चरित
 मध्या०वि०शा०—मध्यान्त-विभाग-
 शास्त्र

मनु० — मनुस्मृति	लो० एव वाप्रि० — लाचन एव वाचन- प्रिया
म० भा० — महाभारत	वजी० — वज्रोविनजीविन
ममच० — मन्दार-भरन्द-चम्पू	वा० दत्ता० — वासवदत्ता
महा० — महाभाष्य, पातञ्जल महा- भाष्य	वाप० — वाक्यपदीय
माण्डूक्य — माण्डूक्य-वार्तरिका	विक्र०, विक्रमा० — विक्रमोवशीय
मामा० — मालती-मायव	विव्रम० — विवरण प्रमयसट्-ग्रह
मातवि० — मालविकाग्निमित्र	विम० — विमर्शिनी टीका
मुरा० — मुद्रा-राक्षस	विमामि० — विज्ञप्तिमात्रिका-सिद्धि
मृच्छ० — मृच्छकटिक	विश्व० स० विम० — विश्वसस्कृतम्
म० च० ल० दाम० — महर्षचन्द लक्ष्मण- दाम	त्रिम० नव० — विश्वमस्कृतम नवम्बर
मेद्० — मेघदूत	वृत्वा० — वृत्तिवातिक
मो० गा० प्रका० पद्मी० शु० — मानी दाल वनाग्नीदास द्वारा प्रकाशित	वप० — वदान परिभाषा
वशीनाथ-शुक्ल कृत	वम० — वेणी रत्नार
मो० विनि० — मानियर विलियम मस्कृत-इंग्लिश नाम	वनम० — वधावरण-लघु-मञ्जूषा
यजु० — यजुर्वेद	वैमिम० — वैयाकरण सिद्धा तमञ्जूषा
यानि० — याम् निरुक्त	व्यवि — व्यक्तिविवेक
याम्मू० — यानवल्क्यस्मृति	शत० ग्रा० — शतपथ-ब्राह्मण
यो मू० पा० — योगमूत्र पाठ	शब्दा० वि० — शब्द व्यापार-विचार
रम० — रमगट् गाधर	शाकु० — श्रीमज्जान-शाकुन्तल
रग० तिभ० — रमगट् गाधर नियम- सागर मस्करण	गिता० स्तो० — शिवताण्डवस्तान
रघु० — रघुपञ्च	शिरावि० — शिवरात्रिविजय
रद० — रत्नदपण	शिव० — शिशुपानवज
रा० च० — रामचरित	शृंग० भा — शृङ्गार प्रकाश भाग
रक्षमा० — रामचरितमानस	शृव० — शृङ्गारगणवचन्द्रिका
रीति० — रीतिशालीन वाक्य की भूमिका	थत० — थतशोध
रत्न० — रत्नद, काठमान्डूकार	श्वेता० उप० — श्वेताश्वतर उपनिषद्
रा० — लोचन	सू० — मस्करण
	मठ गानद० रगाध्या० — मठ गीत- दपण रगाध्याय
	मजी० — मजीवनी

मक० (७०) — मरुत्वनीकण्डाभरण उदाहरण	सांस्कृतिक अध्ययन
मरुम० — मरुदशतमऽट प्रह	Col — Column
मा०का० — मास्य-कारिका	Dec - December
सानि० — साहित्य-सिद्धान्त	HSL — History of Sanskrit Literature
मामुमि० — साहित्यमुधासिन्धु	Ima in Poetry — Imagery in Poetry
मानुमे०भू० — साहित्य-प्रमुद्रासिन्धु भूमिका	Im in Maha — Imagery in Mahabharata
मित्री० — सिद्धान्तकौमुदी	Im of Kal — Imagery of Kalidasa
मित्री०वाम० — सिद्धान्तकौमुदी-बाल- मनोरमा-मञ्जित	IP — Imagery in Poetry
मिमु० — सिद्धान्त-मुक्तावली	Pict Poetry — Pictorial Poetry
मुसा० — मुसापित्र रत्नभाण्डागार	Poe, Im — Poetic Image
मुवृत्त० — मुवृत्ततिलक	Prin Lit Cri — Principles of Literary Criticism
मौन० — मौन-प्रज्ञा	SCAS — Some Concepts of Alankar Shashtra
मन० — मन्त्र	The Poe Im — The Poetic Image
म्व०वि० — म्वगज-विजय	
ह०च० एक अध्ययन — हर्ष-चरित एक	
हनु०ना० — हनुमानाटक	
नच — हर्षचरित	
हि०प्रा० — हिंदी-व्याख्या	
VII — Vishveshvaranand Indological Journal, Hoshiarpur	
Vol — Volume	
West Aesth — Western Aesthetics	

प्रथम परिच्छेद

विम्ब का स्वरूप, भारतीय एवं पाश्चात्य धारणा, प्रकार

शब्द की महिमा—इस विराट् समार में समस्त मानव-समाज को परस्पर सम्पूक्त करने का महत्तम साधन गठित है। वह एक ओर भावा के पारम्परिक आदान प्रदान का माध्यम है, दूसरी ओर ज्ञान गति के प्रसार का असाधारण द्वार। इस शब्दात्मक प्रकाश के अभाव में यह त्रिनाकी निश्चित ही अज्ञान रूपी अन्धकार में मग्न हो गई होती।^१ हमारी परम्परा के अनुसार इस दृश्यादृश्य ब्रह्माण्ड के आरम्भ में सर्वप्रथम वाणी का ही आविर्भाव हुआ था। जिसके आधार पर स्रष्टा ने चराचरान्तिका सृष्टि का सृजन किया और समस्त पदार्थों का नाम प्रदान किया^२। आज भूमण्डल पर उपलब्ध ज्ञान गति में वेदों को प्राचीनतम माना जाता है, वह भी वाङ्मय का ही अङ्ग है। यहाँ तक कहा गया है कि वेदों में ही सामग्री लेकर सारी वैदिक और सामाजिक समस्याएँ प्रतिष्ठित की गई^३। वेद का मूल प्रतीक ओङ्कार जो ब्रह्म का वाचक माना जाता है, शब्द ही है^४। इस प्रकार वैयाकरण, वेदान्ती, संगीतज्ञ, भाषावैज्ञानिक और कवि सब अपने-अपने ढङ्ग में शब्द-ब्रह्म के ही उपासक हैं।

१ इदमधत्तमं कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम् । यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरगममार
न दीप्यते । काव्या० १,४

२ सर्वेषां तु म नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् । वेद शब्देभ्य एवादी पृथक्
सस्थाश्च निममे ॥ मनु० १,२१

३ तस्य ह्यामस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह । धायन्ते येस्त्रयोलाक्षा
गुणनामाध्वृतय ॥ भाषु०, १२, ६, ४२

४ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्म हृदयात्त्रयी ।

विद्या प्रादुरभूत्स्या अहमास त्रिवृन्मुख ॥ वही, ११ १६ ११

तथा—ततोऽभूत् त्रिवृदोङ्कारो यो व्यक्तप्रभव स्वराट् ।

यत्सल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मण परमात्मन ॥ भाषु० १२, ६, ३६

वाणी के चार रूप—शब्द ही वाणी क नाम स पुकारा जाना है । ध्व म वाणी क या उच्चारणाय शब्द क चार प्रकार गिनाय गय है^१ । परा पश्यती मय्यमा जोग वैखरा । उनम प्रथम तान ज्येष्ठम स्म ह । परा त्तम मूक्षमनम है । उच्चारण जोग श्रवण का विषय बनन वाणी वैखरा ही है । मात्र न इनके नाम स्पष्ट न्य है ।^२

उच्चारण का विषय शब्द व्यक्त और नाद तन ना स्म म व्यवहार म जाना है । तब शब्द क प्रत्येक वण स्वर आदि के स्पष्टीकरण म कुछ जान ना बहु व्यक्त कहनाता है । जम—राम बल्लरा पा जय्यापक जादि^३ । किन्तु अथवाय म रहित एव कवन श्रवणैद्रिय ग्राह्य रूप नाद क्तनाता ह । नाद शब्द का निरूपति भा अव्यक्त शब्द क वाच्य णद धातु म स्त है^४ । मार प्रणाला जादि म यद्यप नाद म भी जयवाय जाना है परन्तु के जागपित तान हैं और मात्र तत्र हान म सबवाध्य नरा हान । एम शब्दा को (Code word) हा कहत है । व सामान्य भाषा क अंग नहीं समझे जान ।

व्यक्त शब्द क भा दा रूप तान हैं—एक चक्षुग्राह्य दूसरा श्रोत्र ग्राह्य । चक्षुग्राह्य रूप निषि कहनाता है और श्रोत्रग्राह्य रूप ध्वनि । इस निषि जोग श्रवणमक शब्द क द्वारा हा समस्त तान विज्ञान गति मुगक्षित किया जाना ह ।^५ तान यद्यपि प्रकारात्मक है और बुद्धि तव हृदयग्राह्य है जा स्वत जतरामा म जाभासित हाता है तथापि उसका सचारण जोग प्रमाण

१ चचारि वाङ्मगिमिता पदानि तानि त्रिदुब्राह्मणा य मनीषिण ।

त्राणि गुण निरिता नर गयति नुगया वाच मनृप्या वदति ॥

—ऋक् ११ १६४ १

२ तु०—जनादि निधन व्रह्म शब्दतत्त्व यदक्षरम् ।

दिवतयभौवन प्रतिधा उगता यत ॥ वाप० १ १

कि पुनरनाहताम्य गत् व्रह्म उच्यत । शब्दब्रह्मणश्चतत्वाऽवस्था वैखरा मय्यमा पश्यता मू मति । तृप्र० भा० २ पृ० ३६७

३ तु — व्यक्तवाचा समुच्चारण । पा० १ ३ ४८

४ गद ज्येष्ठम स्म घापा० ५४

५ न मागस्त प्रथया तत्र य शब्दानुगमादस्त ।

अनुविद्धमिदं तान मन गदत भासत ॥

शब्दत्ववाक्षिता शक्तिविचम्याम्य तनवन्तनत ।

यनत् प्राप्तमाभा भदत्त पतायत ॥ डा० प० १ १२३ ११८

तु०—जास्य यथा तान ययस्य च द्रश्यत ।

तथैव सवशब्दानामन पृथगवस्थित ॥ वेदा १ ५५

सूक्ष्मानुभूति के द्वारा संभव नहीं है। पुन विस्मृति आदि द्वारा उसका लोप भी हो जाता है।^१ अतः सुरक्षा के लिए ग्रन्थ रूप में उसको लिपिबद्ध करना ही पड़ता है जो कि वाङ्मय की सजा धारण करता है।

वाणी भाव-प्रकाशन का साधन है—विधाता की इस नाम रूप क्रियात्मक विशाल मृष्टि में मानव को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। क्योंकि उसे समझने के लिए बुद्धि अनुभव के लिए हृदय एवं भाव-प्रकाशन के लिए वाणी दी है। इतना विशाल वाङ्मय जिसमें विज्ञान, दर्शन, व्याकरण, काव्य आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं, केवल मानव के लिए है। वही उसकी रचना करता है और वही उसका सदुपयोग भी। मृष्टि के अन्य प्राणी उसके उपकरण मात्र हैं। इसलिए उन मृष्टि का धुङ्गार कहते हैं। केवल इसलिए कि वह हृदय में मुख दुःख, हृष-शोक, प्रेम और घृणा आदि भावा का अनुभव करता है, शिव अशिव, पाप-पुण्य, हानि-लाभ, जय-पराजय, मित्र-शत्रु आदि द्वन्द्वी का विवचन करता है और अपने इन अनुभवों को वाणी में आवद्ध करता है उन माध्यम में समाज तक पहुँचाता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पशु पक्षी अपने उद्गारों का शब्द द्वारा प्रकट नहीं करते। वे भी करते हैं। वैशाखिन^२ दने जब मन्त्रों में आता है तो कान खटे करके अपना 'हूँ-हूँ' का गगन अलापता है गाय-भैंसे भूख प्यास लगने पर या अपनी सन्तति की स्मृति आने पर राग कर अपनी भावाभिव्यक्ति करती है। कुत्ता अपरिचित व्यक्ति को द्वार पर दखकर अपना रोप प्रदर्शन करता है या मार खान पर काव काव करके वेदना प्रकट करता है परन्तु इन सभी का यह भाव-प्रकाशन अव्यक्त वाणी में ही होता है। तावा मैना आदि पक्षी अभ्यन्त शब्दों का उच्चारण करने अवश्य हैं पर अवाधपूर्वक। उन्हें यह ज्ञान नहीं होता कि इसका अर्थ क्या है और उसे अवसर पर य शब्द नहीं चाहिये या नहीं। मनुष्य को भी इसी प्रकार बिना साचे समझे कुछ कहने पर पशु या पशुमाधारण कह दिया जाता है। इसलिए मानव की ही यह विशेषता है कि वह हृदय, बुद्धि के सहाय में ही किसी शब्द का उच्चारण करता है। अतः उसका उच्चारित शब्द भाविभाष्य होना चाहिए।^३

१ तु०—पुरुषविन्द्राऽनित्यत्वात् कमममन्ति मन्ना वेदे । नि० १,२

२ यत्र वाचो निमित्तानि चिह्नानीवाक्षरमृते ।

शब्दपूर्वेषु योगेन भासन्ते प्रतिविम्बवत् ॥ वाप० १,२०

३ तु०—आत्मा बुद्ध्या ममेतयार्थान् मनो युङ्क्त्वा विवक्षया ।

मन कायान्तिमाहन्ति स प्रेरयति भारतम् ॥ पा० शि० ५

भावावेशवशात् यदि उमके मुख सकोट् जसपटार्थक शब्द या ध्वनि निकल भी जाती है तो भी उसमें किसी भाव का अवबोधन किया ही जाता है। अतः मानव प्रयुक्त वाग्मय ही वाग्मय कहलाता है।

साथक शब्द ही प्रयोगार्ह—पहले कहा जा चुका है कि शब्द का प्रयोग भावा का जादान प्रदान एवं अन्त विचारा को दूसरे व्यक्ति तक सम्प्रेषण के लिए जाना है। अतः मानव जिस शब्द का प्रयोग करता है वह सोद्देश्य होता है। यदि शब्द उम उद्दिष्ट आगम का अवबोधन करता है तो हम उसको साथक कहें अन्यथा निरर्थक। इमलिए वाग्मय में विशेषण में साथक शब्द ही प्रयुक्त जाना है। कभी कभी कवि छन्द पूर्ति के लिए भी ऐम निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया करत है। किन्तु उमकी मन्वा अत्यन्त अन्य मात्रा में जानी है। इतना ही पर भी एम शब्दों के प्रयोगों के विषयों को अगमर्थ कवि ही समझा जाता है।

वाग्मय की रचना में बुद्धि एवं हृदय अथवा विचार और भावना का पूरा योग रहता है। किन्तु कभी बुद्धि अथवा मस्तिष्क की प्रधानता जानी है तो कभी भावना की। शास्त्र अथवा विज्ञानारम्भ ग्रन्था में विचार या बुद्धि-तत्त्व प्रबल रहता है। उममें किसी भी बात का तर्क की तुला पर तोल कर कहा जाता है। भावावेश वहाँ काम नहीं देता। मनाविज्ञान सम्बन्धी ग्रन्था में भावावेश की स्थिति आदि का विशेषणमान किया जाता है। अतः वे भी तर्क प्रधान जाना है।^१

काव्य भावप्रधान—भावना प्रधान वाग्मय ही काव्य या साहित्य की

- १ तु—अभ्यामानि प्रतिमाहृतु शब्द सर्वोपरं स्मृत ।
दानाना च तिरश्चा च यथायप्रतिपादन ॥ वाप०, २, ११७
- २ तु०—वैज्ञानिक अपन मिद्धात निरूपण के लिए और कवि स्वानुभूत अनुभूतियों में अनेक पाठकगण को उद्बलित करने के लिए जिन प्रकार की भाषाओं का प्रयोग करते हैं उनमें पर्याप्त अन्तर है। हम भाषा का व्यवहार दो प्रकार में करते हैं—सबप्रथम भाषा का व्यवहार उस कथन में भी होता है जिसका उद्देश्य केवल विचारा को सम्बन्धित करना है, भाषा का दूसरे प्रकार का व्यवहार हम इसलिए करते हैं कि उसमें भावना और दृष्टिकोण का जन्म हो। भाषा के पहले प्रयोग को आर्इ०ए० रिचर्ड्स ने वैज्ञानिक (Scientific) तथा दूसरे व्यवहार को भावपरक (Emotive) कहा है। काव्या० वि० पृ० २१

मज्ञा में व्यवहृत होता है। उसमें कवि का हार्दिकभाव अथवा लौकिक विषया के सम्पर्क में आने पर अथवा परिस्थिति विषय में उद्भूत संवेदन, सादर्य-असौंदर्य की अनुभूति, हर्ष जोर, राग द्वेष आदि मनावेग गवशों के माध्यम में गद्य या पद्य की भाषा में अभिव्यक्त किए जाते हैं।^१ मानसिक अनुभव क्योंकि सूक्ष्म होते हैं, उन्हें ज्या का ज्यो समाज के मक्षम प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। अतः साहित्यकार उन अनुभवा की पृष्ठभूमि के स्तर में काट घटना-चक्र प्रस्तुत करेगा, इस प्रसङ्ग में उस घटनास्थल, प्रस्तुत वातावरण, घटना में सम्बद्ध व्यक्ति विशेष, उनके स्वरूप, वेपभूपा, स्वभाव आदि का विवरण, घटनाओं का पौराणिक, व्यक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया, परिणामस्वरूप होने वाला प्रभाव आदि सभी का अनुक्रम में विवरण देना होता है। साथ ही उस इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि उसका पाठक या श्रोता उसकी कृति में रुचि ले रहा है या नहीं। इस उद्देश्य में वह प्रसङ्ग को गचक युक्ति-मट गत और हृदयस्पर्शीरूप देता है जो पाठक या श्रोता को आकृष्ट कर सके। बहुधा उसके प्रसङ्ग या वर्णन अवाकसामान्य हाग जिनमें वह विम्ब की सृष्टि करता है। इस उद्देश्य को सिद्धि के लिए साहित्यकार प्रभावशाली एवं अपेक्षित भाव प्रकाशन में समय शब्दा व ध्वनिया का प्रयोग करता है, जसनी कल्पनाशक्ति में अद्भुतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व पदार्थों की उद्भावना करता है।^२ फलस्वरूप साहित्यकार का अपेक्षित भाव पाठक श्रोता या द्रष्टा तक पहचाना है। जो संवेदन साहित्यकार को हुआ वही पाठक आदि अथवा सामाजिक को भी होने लगता है। सम्पूर्ण घटना चक्र उनके लिए प्रत्यक्षकल्प हो जाते हैं। इसी में साहित्यकार की इतिकतव्यता है।

साहित्यकार का वैशिष्ट्य—साहित्यकार एवं इतिहासकार या वैज्ञानिक में या दार्शनिक में यही अंतर है कि जहां इतिहासकार घटनामात्र का वर्णन करता है, वैज्ञानिक पदार्थों के कार्यकारणभाव का व उनकी प्रकृति व परिणाम का विश्लेषण करता है, लौकिक विषया के परस्पर सम्बन्ध एवं उनका मूल का

१ तु०—कवेरन्तगत भाव भावयन् भाव उच्यते । नाशा०, (निष्ठा) ७,२ तथा—नायक्स्य कवे श्रोतु समानाऽनुभवस्तत ॥ लो०(चौखम्बा)

२ तु०—Great literature is simply language charged with meanings to the utmost possible degree
EZRA POUND—How to read (1929) Poite Essays in Literary Criticism A short History pp 633

तात्त्विक पद्धति में उदाहरण द्वारा मात्र विवचन करता है वही साहित्यकार का सागर यत्न अपने वर्णना का अपन सामाजिक के समक्ष प्रत्यक्षायित करने में रहता है। इसी कारण जान-दबधन न कहा था कि कवन घटना जादि का निवाह करे दन म कवि का कवित्व निहित नहा है। घटना का वर्णननात्र तो एक इतिहासकार या प्रेस-पोटर अथवा सवाददाता भी कर सकता है। फिर कवि न सोन गा तार मार दिया? वस्तुतः उसकी भफनता इसी में है कि वह किसी वस्तु का वर्णनमात्र नहीं करता प्रयुक्त अपन सामाजिक का भी उन्हे दिखा देता है उसका देखकर जो हृष नय शोक राग आदि उसमें हृदय में उत्पन्न हान ह उनका अनुभव पाठक का भी कर देता है। शोक म अविद्यमान पदार्थ भी उसके कृति-मगार में विद्यमान रहत हैं और कोई उह गिथ्या या अवास्तविक नहा कर सकता। तब की भाषा में जो अमङ्गत गगता है, काव्य का भाषा में वह भी मङ्गत प्रतीत हो जाता है उदाहरण के लिए धाम्यताभाव का उदाहरण 'वहिनना सिञ्चति' दिया जाता है। क्याकि लक में अग्नि दाह का कारण माना जाता है मवन रूप म्महन का नहा^१। किन्तु काव्य में निदग्ना अत्र का अथवा 'त्राक्षणिके भाषा में वह भी मङ्गत हो जाता है।^२ दग्ना की भाषा में भले हा गंधवलाक या अवागम्युम की

१ न हि क्वचित्तिवत्तनिवहणेन किञ्चिच्च प्रयाजनम । इतिहासादव तत्सिद्धे ।

ध्व-या० पू० ३३६

तथा—विज्ञान और काव्य का अंतर इस बात में है कि एक वैज्ञानिक

के की अनुभूति अभी तक सीमित रह जाती है वह दूसरे तक उस प्रपित नहीं कर पाता। किन्तु एक कवि अथवा कलाकार का रसानुभूति उस तक भीमित न रह कर दूसरे तक भी प्रपित होती है।

काव्या० वि० पृ० २०

ख किन्तु एक कवि जो का मुद्रिचितता के लिए ही चिन्तित नहीं रहता, बल्कि उसका ध्यय यह भी होता है कि उसके शब्द एक निश्चित रूप का मृजन कर सकें। वही पृ० २०

२ वाप्राभावो वाग्यता । तत्रमग्रह ४ । तत्रा—धाम्यता पदार्थना परस्पर मन्व धे वाप्राभाव । पदात्रयस्यैतदभावेऽपि वाक्यत्रे 'वहिनना सिञ्चति' इत्यादावपि वाग्यत्व स्यात् । साद २

३ तु०—म खनु धमवुदया विपलता सिञ्चति, कुत्रयमानति निस्त्रिणमा मारिङ्गति कृष्णागुरुधूमललेति कृष्णमपनवगूहति रत्नमिति ज्वलन्त मड गारमभिस्पृणति । वा (निसा०) पृ० २८६

सत्ता न हो पर काव्य की भाषा में वह अभी कुछ सम्भव है। इसलिए साहित्यकार का मसारा निराशा है, उसका वह स्वयं स्रष्टा या प्रजापति है।^१ इन विशेषताओं को दृष्टिगत करते हुए ही मम्मट ने कवि वाणी को विघाता की मृष्टि में उल्टा घोंपित किया था।^२

उर्ध्वपक्ष विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि काव्यजगत् में वर्णित पदार्थ सामाजिक का प्रत्यक्ष चित्र दिखाने देने लगते हैं। काव्य भाषा के इस वैशिष्ट्य को अथवा कवि ने इस कौशल का पारचात्य मनीषियों ने भी मुक्तकण्ठ में स्वीकार किया है और इसका महत्त्व बतलाते हुए इसको काव्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में माना है। एज्रा पाउण्ड ने यहाँ तक कहा है कि यदि कवि अपने जीवनकाल में एक काव्य-बिम्ब का निर्माण करने में सफल हो जाता है तो अनेक काव्य-कृतियों के निर्माण की तुलना में यही उसकी सर्वोत्तम उपलब्धि है।^३

काव्य बिम्ब या इमेज—काव्य में वष्यवस्तु या भाव के प्रत्यक्षीकरण का पाश्चान्त्य समीक्षकों ने इमेज की सजा दी है जिसका अनुवाद हिन्दी में बिम्ब किया जाता है। बिम्ब से वस्तुतः आकृति अभिप्रेत है। अरस्तू ने लकर आधुनिकतम समीक्षका तब भी काव्य में बिम्ब-निर्माण को महत्त्व देने हैं। जिसके काव्य में अजतनी अधिक बिम्बग्राहिका शक्ति होगी वह उतना ही उत्कृष्ट कवि होगा।

अरस्तू ने बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया के प्रसङ्ग में कहा है किसी वस्तु को देखने के पश्चात् जो अनुभूति आगती है वह एक प्रभाव उत्पन्न करती है। उस वस्तु के हमारे समक्ष न रहने पर वह प्रभाव हमें उस वस्तु का बिम्ब

१ तु०—जन गगनात्खिन्दमाश्रय, म च नाऽन्येव । तम० २

गगनशनितावन्वेन अरविन्द नाम्नीति । खपुष्पस्यालीकत्वादिति भाव । किरणावली पृ० ११३ (चौखम्बा)

२ अपारे काव्य-ममारे कविरैक प्रजापति ।

यथाऽर्न्म तावने विश्व तथैव परिवर्तते । ध्रुवा० पृ० ६६८

३ नियतिकृतनियमरहितराह्लादैकमयीमनसपरतन्त्राम् ।

नवरमन्त्रिणा निर्मितमादधती भारती त्रवेजयति ॥ का० प्रा० का० १, १

4 It is better to present one image in a lifetime than to produce voluminous works

वनान म समथ वनाती है । काव्य विम्ब म एन्द्रिय प्रत्यक्ष और बौद्धिक ज्ञान दाना एकत्रित हा ज्ञान है ।

१ इमज की परिभाषा एव नत्सम्ब जी प्रारणा विभिन्न ग्रन्था म विभिन्न प्रकार म प्रस्तुत की गई है निम्का निष्कष समान हा है । एक इमज का अर्थ अनुकरण प्रतिनिधि, समानता प्रतिम चित्र छाया, धारणा, विचार सादृश्य, आभास दिखा दना आदि है । निष्कष रूप म किसी ब्राह्म वस्तु विशेषकर किमा व्यक्ति या व्यक्ति का प्रतिमा क कृत्रिम अनुकरण अथवा प्रतीक को इमज कहत हैं^१ ।

२ किमा दृश्य पदार्थ का बवल बौद्धिक प्रायश्चीकरण जो भाषा प्रयत्न न हाकर बवल स्मृति या कल्पना म हा मस्तिष्क म वस्तु का चित्र मा बन जाता वाइ विचार या धारणा^२ ।

३ रखन क्रिया क टांग मस्तिष्क म किसी वस्तु का प्रस्तुतकरण दृश्य का चित्रात्मक बणन उत्रमा रूप या वाइ अलंकार^३ ।

४ शब्दा या म लख म किसी वस्तु का चित्रात्मक रूप म वर्णित करना^४ ।

1 de Anim III 347 & 17 20, 428 a 5 16 III, 10 433 a (8)
Translated—Dr P S shastri, Kitab Mahal, Delhi, 1963,
p 18

2 (Image means) Imitation, copy, likeness, statue, picture, phantom, conception thought idea, similitude semblance, appearance shadow

3 An artificial imitation or representation of the external form of any object especially of a person or of the bust of a person A symbol emblem, representation

—The Oxford English Dictionary Vol 5 pp (5) 51,
ch 2

3 A mental representation of something (esp a visible object) Not by direct perception but by memory or imagination, a mental picture or impression, an idea, conception

4 A representation of some thing to the mind by speech or writing, or vivid or graphic description A simile Metaphor, or figure of speech —Ibid p 52, Col 1

5 To represent or set forth in speech or writing, to describe (esp vividly or graphically)
To represent by an emblem or metaphor, to symbolize, typify
—Ibid, p 52, Col 2

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में दिए गए इन अर्थों में तृतीय चतुर्थ प्रस्तुत प्रसङ्ग के अनुकूल बैठते हैं। क्योंकि काव्य में प्रस्तुत 'इमेज' शब्दों के माध्यम में लेखक रूप में होगी। अथवा कवि यदि अपनी रचना जनता के समक्ष मुना रहा है तो अपन शब्दा, स्वरो के आरोह-अवरोह, लहजे और अभिनय के द्वारा ही प्रकाश्य भाव का मूल कर पायेगा।

अन्यत्र इमेज का अर्थ किसी वस्तु की प्रतिच्छाया, किसी देखी या गुनी गई वस्तु की स्मृति अथवा कल्पना द्वारा किसी पूर्वानुभूत वस्तु को नये ढङ्ग में प्रस्तुत करना, अन्द्रिय प्रत्यक्ष को शब्दों में प्रस्तुत करना, रूपक उपमा जो कि किसी वस्तु की आकृति, वण या आभाम को प्रस्तुत करे या किसी वस्तु का प्रतीक प्रकार या मूल रूप किया है। इसी प्रकार इमेजरी का अर्थ वाणी पर लेख में आलंकारिक वणन दिया है।

वास्टर रूल के अनुसार शब्द के तीन गुणों नाद, अर्थ और चित्र के कारण काव्य में इमेज (चित्र) की सृष्टि होती है।^१ 'खाल्म बोडाइन', 'जाज हेबले',

- 1 To picture of counterpart of an object produced by reflection or refraction. If such an image can be actually thrown on a surface as in a Camera, it is a real image. 4 A representation in the mind of something not perceived at the moment through the senses a product of the reproductive imagination, or memory, of things seen, heard, touched etc including the accompanying emotion representation of a sense perception mental picture, hence an idea. 5 A metaphor or a simile that reproduces or suggests in words the form, colour, aspect or semblance of an object. 6 A symbol of any thing embodiment, type.

—Britanica World Language Dictionary Part I, p 630
Figurative description in speech or writing. Ibid

२ डा० उमा अष्टवश छायावादोत्तर काव्य में चित्र-विधान, पृ० १

- 3 The word 'Image' is sometimes used to denote any kind of evocation arising in the mind and resembling a perception of reality. Sometimes it is used to denote a symbol a poetical comparison.

—Charles Boudoin Psychoanalysis and aesthetics, p 24

- 4 It is concentrating upon this feature alone that we are led to postulate a figment called the 'Sense-datum', 'The image

जो 'गो एफ० ह्यूम' आदि न भी इसी प्रकार 'इमेज' के स्वरूप और प्रकृति का निरूपण किया है जो कि परस्पर समानता रखता है।

गो० हे० नबिस का कथन है कि शब्दों के माध्यम से निर्मित चित्र का नाम ही इमेज है। एक विशेषण शब्द या उद्गार एक इमेज या विम्ब का निर्माण कर सकते हैं। इसके अनुसार यह ज्ञात जाना है कि किसी वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही एक विम्ब का निर्माण करते हैं। वे शब्द विशेषण के रूप में ही सम्बन्धित अथवा शब्द एक उपमा जनक शब्द के रूप में।² तदनुसार हम शब्दों के आगे विशेष प्रकार के शब्द और अथ विम्ब का निर्माण करते हैं। प्रभावशाली शब्द और अथ ही सम्बन्धित हो सकते हैं। उनका प्रयोग न मागे ही कविता या कविता का अर्थ विम्ब ही जाना है। काव्य की प्रकृति ही जानी और बदलती रहती है। तदनुसार विषय आंतरिक तत्त्व-छटा के प्रकार आदि समय समय पर बदलते रहते हैं। उनका महत्त्व के सम्बन्ध में प्राणों पर परिवर्तित होता रहता है। किन्तु 'इमेज' काव्य की आत्मा या प्रमुख तत्त्व बना ही रहता है। उमकी स्थिति में शब्द परिवर्तित नहीं होता।

'वट गीह' के विचार में किमा कवि का महत्त्व 'नव काव्य विम्बों की शक्ति और मौलिकता में ही निर्णीत हो सकता है।³ इसी प्रकार लडिस

of the thing' seen in mind's eye, a mental construct which can be scrutinized and even recalled, bearing some structural relation (it is supposed) to the thing seen —George Whalley Poetic process, p 7

—उमा अष्ट वश द्वारा उद्धृत

- 1 A study of images endeavours to arrest you and make you continuously see a physical thing, to prevent gliding through an abstract process — T F Hulme Speculations, p 135
- डॉ० काव्य पृ० ।
- 2 If (image) is a picture made out of words An epithet, a metaphor, a simile may create an image, or an image may be presented to us in a phrase or passage on the face of it purely descriptive conveying to our imagination something more than the accurate reflection of an external reality
- 3 Mr Herbert Read 'We should always be prepared to judge a poet by the force and originality of his metaphors

महात्मा ड्राइडन का मत उद्धृत करते हुए यह है कि विश्व-निर्माण अपने आन में शक्ति का प्राण और न प्रण उद्भवित पक्ष है ।

उनमें हबट गीट आदि के अर्थ तो उमेज का महत्त्व-प्रकाशन करते हैं पर लेखिमी की अपनी परिभाषा विश्व का स्वरूप स्पष्ट बनती है ।

अखीरी ब्रजनन्दन प्रसाद शोण्डाकर का मत उद्धृत करते हैं कि वस्तु, गुण एवं परिस्थितियाँ का जो सम्बन्ध न किसी विशेष समय में उपस्थित नहीं है, भावात्मक बोध ही विश्व है ।^१

उनकी अपनी निष्कर्ष परिभाषा है कि मनुष्य मस्तिष्क में सवदनात्मक अनुभवा का बिना किसी बाह्य परिदृश्य उत्तेजन का पुनर्निर्माण ही विश्व है ।

आज चर्चा कर उनका रहना है कि—वाक्यात्मक विश्व आदर्श भावना-सम्पन्न एक गद्यविद्य है जिनमें ऐतिहासिक एवम् निहित है और जिसका प्रभाव-स्वरूप आनन्द की उत्पत्ति होती है ।

आधुनिक युग के हिन्दी के समग्र जागृत्तक डॉ. नगन्द्र का कथन है—

(विश्व का मूल विषय मूल जो अमृत दोनों प्रकार का हो सकता है । अर्थात् पदार्थ का भी विश्व हो सकता है और गुण का भी, किन्तु उमरता अपना रूप मूल ही थावा है अमृत विश्व नहीं जाता । जिन विश्वों का अमृत माना जाता है वे अचाक्षर्य होत हैं अगोचर नहीं होते ।)

काव्य विश्व हमारे कोटि के ही विश्व है जो उद्देश्यक पदार्थ की अनुपस्थिति में कल्पना के द्वारा उदयुक्त है जिनमें ऐतिहासिकत्व परीक्षक रूप में विद्यमान रहता है ।

सम्पूर्ण साहित्यशास्त्र की लक्ष्य और व्यञ्जना इसी कल्पनात्मक प्रयोग के माध्यम-उपकरण है । सामान्य विश्व में वाक्य-विश्व में यह भेद होता है कि (१) उमका निर्माण मस्तिष्क में सजदनात्मक रूपान्तरण होता है, और (२) इसका मूल में रंग की प्रेरणा अतिवाप रहती है ।

1 Dryden Imaging is, in itself the very bright and life of Poetry — C Day Lewis The Poetic Image pp 17 18

2 Images are feelings of Things qualities and conditions of all sorts as not present

—Elements of Psychology, Thorndike p 43

३ अखीरी ब्रजनन्दन प्रसाद काव्यात्मक विश्व बही, पृ० १६

एस प्रकार का द्विम्ब जडाव क मात्रम म काना द्वारा निर्मित एक एसा मनम श्रुति है जिमक मून म भाव ना प्रग्णा गृहता है ।

एम० एम० भट्टाचार्या न जा०० १०० गिचम क अनुमात्र काव्य विम्ब का भागत उदा म अग्रय । एन म व्याञ्जन अन्तःपुष्टिगत चित्र माना है २

एन परिभाषाजा क अनुमात्र दम्भ या काव्य विम्ब एम चित्र म ना कि क्रिमा तत्रिका म न वन कर या कंमर म न खिचकर कवि का उखना म तैयार किए जात म । काना म नम रग भर नात म एमका रखाजा का जाकार भावनाजा म वनता म^३ शत्र और जय एम चित्र क मुख्य पकण ह । मामात्र चित्र चित्रका वा भावनाजा का अभिवक्त करता हुआ कवन द्रष्टा क चक्षुर्गिन्द्रिय का तप्त या जानन्ति करता है किन्तु काव्य का उल्लिख नात्माग्रय म कर्णोन्द्रिय वा चणित गज का अनुभूति म प्राणन्द्रिय का ध्वनिया वा भ्रमणता म त्रिगिन्द्रिय वा आ काय का स्पर्कयना म चक्षु रिन्द्रिय का भा तप्त करता है

१ नगन्द्र का० विम्ब पृ० २६

- 2 Visual images which are called free images are pictures in the mind's eye indirectly suggested by the printed words and are the outcome of the law of association. When these words impress the visual organs and corresponding images are produced on the mind other images which have often been found connected with the latter naturally appear in the region of consciousness. —Pict Poetry p 16
- 3 ६०—The commonest type of image is a visual one and many more images which may seem unsensuous have still in fact some faint visual association adhering to them. But obviously an image may derive from and appeal to other senses than that of sight

—Lewis The Poetic Image
and

तू०—Images however beautiful—do not of themselves characterize the poet. They become proofs of original genius only as far as they are modified by a predominant passion or by associated thoughts or images awakened by that passion

—The Poetic Image

काररिज त्रिसि द्वारा उग्रत पृ० १०

इस तृप्ति का मूल है उस शब्दचित्र के जन्म में निहित कवि की गगन-वृत्ति उसका मवेदन या मनावेग जिसके स्पष्ट बँ विना वह चित्र मवया निर्जीव और निष्प्राण प्रतीत होगा। कवि की गगनवृत्ति के कारण ही भौतिक जगत् का गगण्य पदार्थ भी काव्य का विषय बन कर सामाजिक का प्रत्यक्ष प्रतीति के साथ-साथ मवनाद्धेति कर पाता है। मय भाव और धुँ का बना निर्जीव पदार्थ ममान कर म उर्वण्ड में जीने का, जमनी म शिखर का चीत में मोवाग का और मरुत म कानिदाम आ पन्ने का मारादिवन बना कर उनम अत्यन्त उन्कृष्ट कलिमा निग्या गया। उन सभी कवियों में म काई भी उनसे भौतिक रूप म जरग्वित न था किन्तु उनकी गगनवृत्ति न ही उनमें प्राण-पतिष्ठा कर थी। उनम दून और डाकिये का काम भी न किया गया। यह कोई विम्वय की बात नहीं। कवि की मवना म वह जादू है जा कि घृणित पदार्थ का भी मय्य कर देता है, निर्जीव का मजीव आर मजीव का निर्जीव बना डालता है। वस्तुतः भौतिक पदार्थों क साथ जय कवि का गगा-मक सम्बन्ध म्थापित हो जाता है प्रत्यक्षीकरण क साथ मवेदन भी मित हो जाता है, प्रस्तुत विषय और छन्द का एकीकरण हो जाता है तब एक काव्य-विम्ब प्रस्तुत होना है जिसक प्रभाव म पाठक वस्तु और प्रभाव का माशात्कार करता है।

यहाँ पर प्रश्न उठाया गया है गग और रम का सम्बन्ध क्या सम्बन्ध है? काव्य क रम का प्रधान तत्त्व या प्रधानत माना गया है? यदि हम काव्य-विम्ब का रम की अपेक्षा गौण मानेंगे तो क्या वह गुणीभूत व्यम्ब होगा?

यह प्रश्न इस प्रसङ्ग म मवया प्रसङ्गत है। क्योंकि रम काव्यशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। यदि उसको सामान्य अय में जानन्दमात्र के लिए प्रयुक्त किया जाय जैसा कि हमने आगे प्रस्तुत किया है,^१ तब भवे ही गग के साथ उसका अभेद स्वीकार कर लें। अन्यथा जा प्रक्रिया काव्य शास्त्रिया ने रम की निष्कलि क लिए स्वीकार की है, उसका अनुसार रम और गग मवया पृथक् तत्त्व है।

वाम्बव में गग का तात्पर्य है किमी वस्तु के प्रति क्लान्त, आकषण, उमम रचि लेना। प्रणय के प्रसङ्ग में भी आचार्यों ने नायक और नायिका के परस्पर प्रथम आकषण का गग की मजा दी है।^२ क्या हम वहाँ भी गग की रम में

१ भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतना यचतनवत ।

व्यवहार्यति यथेष्ट मुक्वि वाध्ये स्वतत्रतया ॥—दृत्रन्यालोक पृ० ४६५

२ पृ० ६७ टिप्पण ६५

३ आदौ वाच्य म्त्रिया राग पुस पश्चात्तदिट्, गतं ।—माद० ३, १६५

अभिन्न मानस ? वस्तु वणन या विम्ब निमाण म राग का प्रेरणा का तापय है वण्य वस्तु क प्रति कवि का विशेष आकर्षण निम हम दूसर शब्दा म रति ना कन्त है यहा रति पत्रावत और पुणित हा कर कावातर म विभिन्न रमा का रूप धारण करता है । भूतन जा कवि क रम का सम्पूर्ण भावा का वाज वनया है तका तापय वह मून रागवति हा है जो कवि क हृदय म मया सनिमित्त होता है तमा क कारण विश्व क सम्पूर्ण प्राणिया क माथ कवि का आभाय चतना तुन वाता = जानम्यन जाग विभाव का सामग्री जुन जान पर मवादा स्वर एकनिता वा वात = हृदय वा तत्रा एक ममरम राग आापना आरम्भ कर तना = सम्पूर्ण वातावरण जानम्य वन जाता है । एक चमकार मयी स्मिति तनन वा चतना = तनमन प्रणित विषय मभा जानाकित हा उठना है तमा का वासाकि क गन्य म प्रयश्मिव दर्शित ^३ कह गन्त है । यथा पात्रन्तिर स्थिति पारिभाषिक रम का स्थिति है ।

आग यत् स्पष्ट किया गया है कि विम्ब तथा व्यङ्ग्य हाता हुआ कहा व्यङ्ग्य ^३ यत् कवि का विवक्षा पर निभर = पुन जब व्यङ्ग्या का चतना चतना है ता तनम परम्पर गुण प्रदान भाव भा आना हा है । यहा पर वस्तुवणन वाच्यप्रमाण रागा और तमक माध्यम स अय भाव आदि व्यङ्ग्य हागा उमा क चमकार प्रधान रागा ता वस्तु-वणन-सम्बन्धा विम्ब गुणाभूत हागा आर रम भावादि प्रधान । यत् काव का तापय वाच्य रूप म वणित पदाओं तक वा समित्त है तव गुणाभूत व्यङ्ग्य का प्रश्न हा नहा ठता ।

आचार्य रामचन्द्र ध्वन क अनुसार कव्य रचना क विम्व दतना हा अपभित नता है कि प्रयुक्त शब्द म किमा अय वा जववाय हा आय । उमक निय आवश्यक है कि वर्णित या प्रतिप्रादित वस्तु का विम्ब-ग्रहण पाठक वा श्रवता का हा जाय । विम्ब-ग्रहण नभा समव है जव कवि अपन सूक्ष्म निराक्षण न वण्य वस्तुका क जग गन्य वण जाकृति नभा उमक आमयाम का परिस्थिति का परम्पर माशुष्ट विवर्ण प्रस्तुत कर ।^४

१ यथा वाजाद भवत् वक्षा वक्षान पण्य फुन तथा

तथा मून रमा मय तथा भावा व्यवास्थना । —नाशा० ६ ३८

चिरन्तिव तमप्यतन प्रयश्मिव दर्शितम् । —वा० १४ १८

३ प० १७२ १८५

४ चिन्तामणि १४५ १४७ ।

यद्यपि इमेज की परिभाषा देने समय समीक्षकों ने Graphic शब्द का प्रयोग किया है परन्तु उसमें तान्त्रिक बिम्ब का चित्रमय होना है स्वयं चित्र नहीं, चित्रकार जिस प्रकार अपने चित्र में किसी वस्तु का चित्रित करके रंग देकर उसे मूर्त करता है, काव्यकार भी उसी प्रकार अपनी रचना में अपने भाव का मूर्तीकरण करता है। पर दोनों के रूप में अन्तर है। जहाँ चित्र का फलक सीमित होता है, वहाँ काव्य का व्यापक होता है। चित्र में चित्रित वस्तु का सीमित प्रतिबिम्ब अर्पित किया जाता है पर काव्य में पूरा और सशिष्ट। प्रत्युत वह जितना अधिक सशिष्ट होगा उतना ही काव्यमय होगा।^१

बिम्ब के उपकरण—काव्य में ये बिम्ब किस प्रकार निमित्त होते हैं, यह प्रश्न भी उठता है। जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि काव्य की चरम परिणति उसमें अभिव्यक्त भावों, विचारों और संवेदना का मूर्त रूप देने में है तो यह भी स्वीकार करना होगा कि उस मूर्तीकरण का प्रधान उपकरण शब्द ही होगा। क्योंकि भाषा शब्दा में ही बनती है। काव्य या साहित्य भाषा का उत्कृष्टतम एवं परिष्कृत फल है। इस प्रयोजन के लिए भरे ही वाचक शब्दा का प्रयोग किया जाय अथवा छातकों का या साठ कृतिकों का परन्तु काय शब्दों में ही निरूपण होता है। यह अवश्य है कि यदि साठ कृतिक शब्द दुर्लभ होंगे तो उन में भाव-सम्प्रेषण का मुख्य प्रयोजन सिद्ध न हो पायगा। निखिल वस्तुमात्र लेखन के उन साठ कृतिकों का समझन में समय व्यक्तिके उपयोग की वस्तु रह जायगी। अतः शब्द कविके विवक्षित भाव को अभिव्यक्त करने एवं साक्षात्कृत तक पहुँचान में समर्थ होना चाहिये। यद्यपि कुछ काव्यकार इस बात पर बल देने लगे हैं कि जनसामान्य की भाषा ही काव्य की भाषा होती

१ तु०—Since a picture represents an image only a surface it is not for the picture to represent every aspect, or any motion at all, yet it is poetic to do so, because when these things are also represented, then more things are represented in the object than when they are not, and hence, the representing is extensively clearer. Therefore in poetic images more things tend toward unity than pictures. Hence, a poem is more perfect than a picture.

—Baumgarten-Reflection on Poetry, P 52

—उमा अष्टवश द्वारा छायावादोत्तर काव्य में बिम्ब विधान,
पृ० ५ पर उद्धृत।

है पर यह पक्ष सर्वसम्मत नहीं है। जब हम काव्य की भाषा को मवदनी की भाषा कहते हैं, उचितान, विज्ञान और गवनीति या अयशासन की षड्वाकरी म पृथक् स्वीकार करते हैं वह जन-सामान्य की भाषा कहा रही ? यदि हम पर यह तक दिया जाय कि शब्द ताव हा प्रयुक्त ज्ञान १ जिन का सभी नाम प्रयोग करने है ता यह नी युक्तिमद्गत नहीं। कारण यह है कि शब्द अर्थ क प्रकाश म ही अरता मस्त्व प्रकट करता है। जब वन-सामान्य का सुयोग न श्दकर अन्य अर्थ का वाऽ नरायणा ता मानता हागा कि तदर्थवाचक शब्द प्रकट हा है। भाषाशास्त्रा टना आऽार पर शब्द म प्रकृति ता निषय करने ३। उदाहरण क तित 'काम' शब्द का ३। सामान्य रूप म काम शब्द जब काम का वाचक हागा तो निश्चय ही वन-संक्षेप वाचक 'काम' शब्द मे प्रयुक्त हागा। मने ही दाना शब्द ध्वनि म समान ३। टमी आऽार पर भीमामका ने जय का मद् ज्ञान पर शब्द का भी मद् स्वीकार किया ता।^१ नभी कवीर क निर्मातागत पथ का साधकता हागा—

काम काम मव वाऽ इह काम न चाह्ले कोय।

तनी मन की कथना काम कहाव साय ॥

हम प्रकार तत्रसामान्य द्वारा व्यवहन भाषा और काव्य की भाषा मे परम्पर मद् मिद्ध ता जाता है। अथवा शब्दा क वाचक, लक्षण और व्यञ्जक म स्वीकार करने का क्या प्रयाजन ?

जब शब्दा क साध कवि या साहित्यकार क मवेदना का सम्बन्ध जुट जाता है भाषा गगान्मक बन जाती है, वह श्रवणे न्द्रय क साध हृदय का भी मर्जे

१ तु०—एक वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक की भाषा अन्तर (Abstract) हागा है और कवि की भाषा रूपपूर्ण (full of forms) अर्थात् एक दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक की भाषा म हमारे मस्तिष्क मे किसी रूप का मृजत नहीं टला, बकि रूपहीन विचारा का ही जागृति होती है तकिन एक कवि का भाषा म हमारे मस्तिष्क म केवल भावनाएँ ही नहीं उठती बकि उन भावनाया का पूण मधुरूप उभर जाता ३। इसी कारण काव्य की भाषा किमा प्रकार के सिद्धान निरूपण म व्यवहार म जान वाली भाषा म पृथक् हाती है।

—अवीर प्रजन दन प्रमाद—काव्यात्मक विम्ब पृ० २१

२ तु०—अर्थवेदन शब्दभेद का० प्र० पृ० ६२२

करती है। फलस्वरूप उसमें लेखक के संवेदनों का अनुभव कराने की सामर्थ्य भी भर जाती है। इसलिये अब कवि की भाषा चित्रभाषा कही जाती है। उसमें इतनी शक्ति होती है कि उसके शब्द ऐन्द्रिय संवेदनों का पाठक तक सम्प्रेषण करने हैं। पर इसके लिये आवश्यक यह होता है कि पाठक भी कवि की रागात्मक अनुभूति के साथ-साथ अपना तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करे। उससे अभाव में कवि की भाषा सामान्य व्यक्ति के लिये पहली बन जाएगी।

इस चित्र भाषा का प्रत्येक पद भव-गर्भित होता है। जिस प्रकार मुख में रखा पान धीरे-धीरे आस्वादन द्वारा विभिन्न रसा का अनुभव कराता है, इसी प्रकार पर्यायचित्र के द्वारा वाक्यगत चरित्रों की तर्हें उखडती जाती हैं और भिन्न-भिन्न अर्थों का समार पाठक की अन्तर्दृष्टि के समक्ष खुलता जाता है।^१

फलतः इन वाक्यबिम्बों का प्रधान उपकरण वह चित्र भाषा है जिसका निर्माण वाचक, नाशणिक और व्यञ्जन शब्दों से होता है। इंगण सूक्ष्म उपकरण है संवेदन। प्रयुक्त शब्दों के साथ यदि कवि की अनुभूति न जुड़ी होगी तो वे शब्द मात्रया निष्प्राण होंगे। वे अभिनयित प्रभाव जगाने में असमर्थ सिद्ध होंगे।

इसके अतिरिक्त उपमान और प्रतीक भी बिम्ब-निर्माण के साधन हैं। पाश्चात्य समीक्षकों ने तो औपम्यभावमूढक मंडाकर को इमेज का पर्यायवाचक ही मान लिया है^२। कारण यह है कि समान वस्तु के प्रकाश में वष्य वस्तु का

१ तु०—It is a great thing, indeed to make a proper use of these poetical forms as also of compounds and strange words. But the greatest thing by far is to be a master of Metaphor. It is the one thing that can not be leakout from others, and it is also a sign of genius, since a good Metaphor implies an intuitive perception of the similarity in dissimilars. Aristotle on the Art of Poetry —Ingram Bywater, p 78

२ तु०—वाक्यात्मक बिम्बों से साधारणतः हमें यह बोध होता है कि ये शब्दों द्वारा निर्मित चित्र होते हैं। किसी भी रूपक अथवा उपमा में हम ऐसे शब्दचित्र गढ़ सकते हैं। ऐसे शब्दों अथवा पंक्तियों के द्वारा भी शब्दों के ये चित्र निर्मित होने हैं जो बाह्य स्तर पर भाव-व्यंगनात्मक प्रतीत होने हैं। —अखौरी वाक्या, बिम्ब, पृ० ५५

रूप, रंग, आकार-प्रकार सत्र प्रकाश में था जाता है। उदाहरण के लिए किसी समय दिल्ली के चादनी चौक बाजार व मध्य बिकटोरिया की प्रतिमा से उप-हास के लिए किसी स्त्री की तुलना करने पर प्रतिमा की भाँति वह स्त्री भी रूप से कानी कलूटी, शरीर स भारी और बेडीन टौन एव अत्यन्त स्थूल होने से कुछ करन घनन म अममथ सूचित हुई। इसी प्रकार जब हम As black as coal कहते हैं तो उपमान coal के कालेपन के प्रकाश म वष्य पदार्थ के काले पन की गहराई खोता क सनक्ष उभर आती है। दोनों का यह सम्मिलित चित्र उभर आता है।

इसके अतिरिक्त प्रतीक या symbol भी इन विम्बों के साधक ह। यद्यपि प्रतीक और विम्ब दोनों शब्दों को साथ-साथ भी रखा जाता है यथापि पदार्थ का मूर्तीकरण प्रतीकों द्वारा भी होता है। ये प्रतीक साङ्केतिक शब्द ही होते हैं जो कि दीर्घ परम्परा से क्रिमी विशिष्ट अर्थ म रूढ़ हो गये हैं। उसके मूल म कही पर प्रयोजन तो कही सादृश्य निहित रहता है।

इसके अतिरिक्त ध्वनि (नाद सौ दय) ताल, नय, छन्द आदि भी विम्ब के निर्माण म सहायक होते हैं। अनुप्रास अनुकरणात्मक ध्वनिर्माँ सब मिलकर एक काव्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

डा० नगन्द्र का कहना है कि उपमान विम्ब रचना का मातृन है, सादृश्य-विधान उपमान की सहायता से होता है^१। उरमा और रूपक इमेज या विम्ब के रूप स्वीकार कर भेन पर उपमान स्वत ही विम्ब का साधन सिद्ध हो जाता है।

१ तु०—प्रतीक वास्तव म स्थिरता प्राप्त रूप ही होते हैं। परन्तु रूपा में एसी स्थिरता वा प्रकार म आ पाती है। कुछ एम रूपक हीन हैं जिनकी प्रारम्भिक साङ्केतिक विविधता समाप्त हो जाती है और जो अतलोगत्वा मात्र एक चित्र मर रह जाते हैं। दूसरी ओर कुछ रूपक की साङ्केतिकता और अर्थविविधता बची रहती है और क्रमिक प्रयोग व कारण उनमें और भी शक्तियाँ मर जाती हैं। पहले प्रकार के प्रतीकों म द्वाक सिम्बल (Block symbol) तथा दूसरे प्रकार के रूपकों म टेन्सिव सिम्बल (Tensive symbol) का निर्माण होता है।

—बही पृ० १००

बिम्ब या इमेज के निर्माण का एक प्रमुख साधन कल्पना या इमेजिनजन है। इसके द्वारा कवि एक ओर वर्ण्य वस्तु को छाया रूप देता है, दूसरी ओर उसकी सहायता से स्मृति एवं सस्कारा द्वारा नये रूपों की सृष्टि करता है। एच० काडवैल कल्पना शक्ति का सबसे प्रमुख कार्य चित्र-निर्माण मानते हैं। ये चित्र उन पदार्थों के होने हैं जिनको प्रत्यक्ष नहीं देखा जाता अथवा पृथ्वी पर जिनकी की सत्ता भी नहीं होती। मन्तुलित दृष्टिकोण में मोचने पर यह बात स्पष्ट होती है कि अपनी कल्पना शक्ति में जिस प्रभाव का कवि बोध करता है, वह दूसरे ही क्षण उसके अवचेतन में सगृहीत अनुभूतियों तथा भावनाओं में एकीकृत हो जाता है और तदुपरान्त जिन बिम्बों की वह सृष्टि करता है वे मूल रूप तथा भाव दोनों में सम्पृक्त रहते हैं। इस प्रकार कल्पना कवि-हृदय की महानुभूति-विस्तृति में उत्पन्न वह शक्ति है जो ऐन्द्रिय बौद्धों को कवि की अनुभूतियाँ एवं भावनाओं में एकीकृत कर वैसे काव्यात्मक बिम्बों की सृष्टि का कारण बनती है जिनमें स्वर-याजना के साथ-साथ भाव-योजना भी मलग्न रहती है।

वास्तव में वस्तु-वर्णन में जहाँ कवि का मूल स्वर-याजना में रहता है, उसके मूल में उसकी गंगात्मक वृत्ति अथवा दूसरे शब्दों में गति निहित रहती है। पाठक जब उस गति में अनुभव करता है तभी वह कवि के साथ तादात्म्य स्थापित करके बिम्ब का ग्रहण करने में समर्थ होता है। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि एक वस्तु गंगात्मक वृत्ति के स्पर्श के कारण ही सुन्दर अथवा भावों को आन्दोलित करने में समर्थ प्रतीत होती है अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिए एक मुकुमार कुसुम में कवि अथवा उसकी अनुभूति में तादात्म्य स्थापित करने वाले पाठक को किसी कामिनी के गुदगुदाने वाले कमनीय कनेवर की छाया दिखाई देती है पर उस वृत्ति के बिना एक वैज्ञानिक उस कुसुम के वर्ण एवं स्निग्धता का विश्लेषण करता हुआ परीक्षण के लिए उसे खण्टन करके मसल कर फेंक देगा। उसके लिए वह पुष्प एक जड़ पदार्थ ही है। इसी कारण रसानुभूति केवल सहृदय की होती है।*

- 1 The first and most familiar functions of imagination is the pictorial power, the power of creating images not actually visible or even existent

— Quoted in 'Topics and Opinions's, pp 196

- २ तु० — नैश्चाय प्रक्यप्राप्तौ सप्तार्चिर्चिश्चर्यैरिव प्रकाशमान श्रृगारिणाम्च स्वदत्त इति ।
— श्रृगार प्रकाण भाग २, पृ० ४३१

सांभणिक एव व्यञ्जनक पदावला भी इमज निमाण म अत्यन्त सहायक हाती हैं। वस्तु-ध्वनि तो व्यग्य पदाय का प्रत्यक्षीकरण कराती ही है, रसध्वनि म भी भाव का प्रत्यक्षीकरण हाता है। भाव का प्रत्यक्षीकरण वस्तु क रूप म न हाकर अनुभूति क रूप म हाता है।

व्यञ्ज अतिरिक्त वग्य पदाय का मानवाकरण भा इमम सहायक होता है। कवि प्राकृतिक पदार्थों म जन्मा अनुभूतिया का साक्षात्कार करता है, उह मानवा चष्टाएँ करता बनाता है। अमृत भावनाजा क प्रत्यक्षीकरण क निग मानवाकरण म परमम सहायता मिताती है।

मनीषिज्ञान से सम्बन्ध—गण्वात्य समीक्षक उमज का सम्बन्ध मनाविज्ञान म ज्ञान्त है। पश्चिम क प्रायः जग एडनर सदृश दार्शनिकान काव्य प्रक्रिया क मूर म मनाविज्ञान का निम्न स्वीकार क्रिया है और अरन-अरन दृष्टिकोण म उनकी पद्धति का विवेचन क्रिया है। मनाविज्ञान क अनुसार पदार्थों क विम्ब दो प्रकार क जान है—१ वस्तु रूप २ भावगत रूप। वस्तुगत रूप अद्रिय ब्राह्म्य ज्ञान है। वह प्रकारकाय तन्त्र द्वारा पदाय का दृष्टि पटन पर अक्ति दृष्टिविम्ब हाता है। अभिदन्त्र या प्रकाशकीय तन्त्र का सम्बन्ध मन्त्रिण म है। शौकक पदार्थों का दखन क पश्चान द्रष्टा का सवदन अनुभूतिम एव भावना म मन्त्रिण होकर एन्द्रिय विम्ब म परिवर्तित हो जाना है।

विम्ब का भावान रूप मानमविम्ब होता है। जद पढ़ने दखी गई वस्तु वतमान काल म उरम्भित न रत्न पर भा अरन या घटना क प्रभाव म मानम म प्रतिविम्बित मा हाता है उमा प्रतिविम्ब का भावगत विम्ब या इमज कहते हैं। यन्त्रि विम्ब लौकिक पदार्थों का हा मानम छवि हाता है तथापि उनमे सबधा भिन्न ज्ञान हैं। क्याकि पदार्थों का प्रत्यक्ष स्पष्ट होता है किन्तु विम्ब धूमिल हाता है। का चित्तन की गहराद के मान-माय उमका रूप स्पष्ट म स्पष्टनर होना जाना है।

किन्तु इम स्पष्टीकरण म विम्ब का विचार या धारणा म टकराव हाता प्रतान हाता है। क्याकि विम्ब भा मानम व्यापार का परिणाम है और विचार एव धारणा भा। परन्तु यथाय म दाना म तात्विक भद है। विम्ब मून हाता है जबकि विचार अमून हाता है। बौद्धिक चित्तन का काद विम्ब ननी बनता। काच क अनुसार विम्ब और धारणा आत्मा की दो प्रक्रियाएँ या दो प्रवृत्तियो

की मृष्टि है। बिम्ब का सम्बन्ध विती हवान् पदार्थ में हाता है जबकि धारणा का अरूप म हाता है ।

ये बिम्ब प्रत्यक्ष और परोक्ष अनुभवों में सम्बद्ध होने के कारण दो प्रकार के होने हैं। मनोविश्लेषण शास्त्र के अनुसार स्वप्न बिम्ब, सन्द्रा बिम्ब एवं मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्ब अवचेतन या अचेतन मनोविज्ञान में सम्बद्ध होते हैं ।

कुछ परम्परागत आद्यबिम्ब होने हैं जो कि युग के अनुसार अनुवर्जिक चेतना पर आश्रित सामूहिक अवचेतन के अंग होते हैं ।

प्लेटो ने दार्शनिक दृष्टि में विवेचन करते हुए समाज की सभी कृतियाँ को वास्तविक पदार्थों का प्रतिबिम्ब स्वीकार किया है। सत्य रूप मूल होता है तो कारीगर अनुकरण द्वारा उसकी प्रतिच्छावि तैयार करता है। कानामार उसका भी अनुकरण करता है जो वास्तविकता में बहुत दूर जा पड़ता है।^१

शैवादीयों में भी कहा गया है कि आत्मा एक रूपण है। चेतन उसमें समाज के पदार्थों को प्रतिच्छाया की भाँति प्रतीत करती है।^२

नगेन्द्र के अनुसार सामाजिक पदार्थों के प्रत्यक्ष अनुभव के जो मानस बिम्ब होने हैं वे ही काव्य बिम्ब के वस्तु हैं।^३

प्रक्रिया—एक पाठक जोर श्रोता के मस्तिष्क में इमेज कैसे बनती है, इसका विवरण आई० ए० रिचर्ड्स ने इस प्रकार दिया है—

There are first the visual sensations of the printed words. These are followed by images directly suggested by the sensations themselves. Free images, i.e. not directly connected with the words, come next. Then there are references to, or Thinkings of various things. Emotions are the outcome of all these. The visual sensations of words have 'Other companions so closely tied to them as to be only with difficulty dis-connected. The chief of these are the auditory images—the sound of the words in the mind's ear and the image of articulation—the feel

१ नगेन्द्र काव्य बिम्ब—पृ० २७-२८

२ वही, पृ० ३०

३ चेतनो हि स्वात्म-रूपणे भावान् पतिबिम्बवत् आभासयति ।

वही, पृ० ३१ पर उद्धृत ।

४ वही, पृ० ३४

in lips, mouth and throat, of what the words would be like to speak¹

इनके अनुसार बाह्य पदार्थों का वर्णन पढ़कर पाठक या श्रोता के मस्तिष्क में पढ़ने छप शब्दों का प्रत्यक्षानुभव होता है। उगम उत्पन्न भवदन के द्वारा सीधे विम्ब बन जाते हैं। इसके पश्चात् चिन्तन अथवा पर्यायचन में स्वतन्त्र विम्ब बनते हैं। ध्वनि या नाद के चित्र में महायक होता है।

यह तो ठीक है कि वण्य वस्तु का प्रत्यक्षीकरण पाठक या श्रोता को होता है। जहाँ उसके मस्तिष्क या मानस में बनने वाले विम्बों की यही प्रक्रिया है। नगन्द्र का कथन है कि काव्य-विम्बा के उपकरण प्रत्यक्ष विम्ब होते हैं²। यह रिचर्ड्स के कथन से दूर नहीं है। अमूर्त भावों की अनुभूति के मूर्तीकरण के लिए प्रत्यक्ष विम्बा का प्रयोग अपेक्षित होता है। परन्तु कवि इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये किस प्रक्रिया का आश्रय लेता है यह भी विचारणीय है। अस्तु के इस सम्बन्ध में विचार प्रक्रिया की अपेक्षा उपकरण पर अधिक प्रकाश डालते हैं। उसके अनुसार अनुकरणकर्ता आकृति एवं रस का प्रयोग करते हैं। इनकी सहायता से वह अनक आकृतियाँ बनाते हैं। कुछ इसके लिये वाणी का भी प्रयोग करते हैं। सब मित्राकर के लक्ष भाषा और परस्पर समन्वय का प्रयोग में लाते हैं।³

इसमें पहले चित्रकार या मूर्तिकार की जाय सञ्ज्ञेता है ता उत्तराध में कवि और सङ्गीतकार के लिए। भाषा लय और विचारा अथवा इनकी परिणति में समन्वय यह अवश्य काव्य विम्ब के निर्माण के लिए उपयोगी सञ्ज्ञेता⁴।

कृमार विमल नगद्र की आनाचना करते हुए इस प्रसङ्ग में लिखते हैं—
मेरी धारणा यह है कि विम्ब-विधान कला का क्रिया-यक्ष है जो

१ प्रिन्सिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ११८-१९ में पिक्टो, पोयट्री, पृ० १६ पर उद्धृत।

२ काव्य विम्ब पृ० ३४

३ Just as form and colour are used as means by some who (whether by art or constant practice) imitate and portray many things by their aid, and the voice is used by other, so also in the above mentioned group of arts, the means with them as a whole are rhythm, language and harmony used however either single or in certain combinations

—Arist on the Art of Poetry, p 23-24

सजनात्मक कल्पना में सम्बन्ध रखता है। कला-जगत् में कल्पना के विकासकी एक सरणि है। कल्पना में बिम्ब का जाविर्भाव होता है और बिम्बों में प्रतीकों का। जब कल्पना मूल रूप धारण करती है, तब बिम्बों की सृष्टि होती है और जब बिम्ब प्रतिमित या व्युत्पन्न अथवा प्रयोग के पौन पुन्य में किसी निश्चित जय में निर्धारित हो जाते हैं तब उनमें प्रतीकों का निर्माण होता है। अतः कला विवेचन की तात्त्विक दृष्टि में बिम्ब कल्पना और प्रतीक का मध्यस्थ है। दूसरी बात यह है कि बिम्ब विज्ञान में मूलतः सादृश्य और ऐंद्रिय बोध की अनिवाय उपस्थिति रहती है। जो बिम्ब जितना ही ऐंद्रिय रहता है उतना ही सतकत रहता है। कारण वस्तु विशेष के प्रति ऐंद्रिय आकर्षण ही कलाकार की कल्पना का अनुकूल बिम्ब-निर्माण की ओर प्रेरित करता है। यद्यपि बिम्ब-विज्ञान के समय कलाकार ने समक्ष केवल वस्तु बोध ही नहीं रहता बल्कि विभिन्न प्रकार के सादृश्यों सवेदनो अपेक्षा प्रभावों का भी सातत्य रहता है। इस तरह कला-जगत् के बिम्ब ऐंद्रिय-संतकप में आई हुई वस्तुमात्र का नहीं, वस्तु के विशेष और विविध भाव-सम्बन्धों को भी मूर्तिमान् करने है। फल-स्वरूप अकृष्ट बिम्ब कवि या कलाकार के घनीभूत सवेदनों में मशिलिष्ट रहता है।

इस विवेचन में कुछ बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में और कुछ बिम्बों के उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है। यह अवश्य स्वीकार किया है कि बिम्बों का अनुभव होने ही पाठक या श्रोता को होता है परन्तु उनकी निर्मित की प्रक्रिया कवि से ही आरम्भ होती है। क्योंकि जब तक वह अत-दृष्टि में उम वष्य का प्रत्यक्षीकरण नहीं करता, तब तक वाक्य में उमको प्रत्यक्षवत् जावद्ध कैसे करता? इसी लिये बिम्बों में कवि के अनुभवों और सवेदनो का मश्लेषण आवश्यक माना गया है। वस्तुतः शब्दों को प्राणवान् उमके सवेदन ही करत है। अन्यथा उमके द्वारा प्रयुक्त शब्द भी उन्ही ध्वनियों से बने हात हैं जिनमें इतिहासकार या रिपोटर के शब्द।

यद्यपि में अनुभूति सूक्ष्म और हृदय-सवेद्य होने के कारण शब्द में मीधे तौर पर प्रकट नहीं की जा सकती। इस प्रयोजन के लिए कल्पना का आश्रय लेना पडता है। इसमें उपयुक्त वातावरण की सृष्टि होती है। पुनः इसके लिए अभिव्यक्ति-समय शब्दों और ध्वनियों के चयन हेतु अभ्यास के सातत्य की अपेक्षा होती है। प्रतिभाशाली कवि की रचना में इस प्रकार के शब्द

रचनात्मक प्रतिभा के प्रभाव से स्वयं प्रस्फुटित होत हैं जो कि अमूर्त विचारों का प्रवाहित कर सकें या स्वरूप प्रदान कर सकें ।¹

जाइ०ए० रिचर्ड्स ने काव्य विम्व पर मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करत हुए बतलाया है कि काव्य विम्व का पूर्ण निष्पत्ति एकाएक न हाकर शृङ्खलात्मक रूप में होता है जिसमें परस्पर सम्बद्ध अनेक विम्व हात ह । इन सबको यथाक्रम ६ की मर्यादा में रखा गया है—

- (१) मुद्रित शब्दों का प्रत्यक्ष अनुभव ।
- (२) उन अनुभूतियों में अचानक सम्पन्न विम्व ।
- (३) अपभाकृत स्वतंत्र विम्व ।
- (४) सङ्घटित या विभिन्न वस्तुओं के सम्बन्ध में धन विचार ।
- (५) मनोभाष ।
- (६) प्रभावक दृष्टि या मङ्गलात्मिका प्रवृत्ति ।

यह प्रक्रिया शब्दों के चाक्षुष प्रत्यक्षकरण से आरम्भ होकर विभिन्न वस्तुओं के सम्पर्क में उद्भासित मनोभावों की प्रतिक्रियात्मक चेष्टाओं या मानसिक क्षमता तक निरन्तर चलता है ।

जब ज्ञापन में निष्पन्न चाक्षुष विम्व (visual images) शब्दों को सुनने में वन श्रावण विम्व इस परम्परा में वन स्वतंत्र स्मृति विम्व विभिन धारणाएँ उनमें प्रभासित मनोभावों एवं मनोवेगों की उद्भूति आरंभ उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप व्यापारकलाप का मङ्गल सब सम्मिलित ह ।²

1 Language is not a readymade thing but a continuous process it is the ever repeated labour of the human mind to utilize articulated sounds to express thoughts

—Cassier—An Essay on Man 168

and—Words brought together by creative intuition could explode in a dynamic image much more provocative in result than the impulsion of abstract thoughts grouping for words to give them countenance Editor Sydney Brown

—Dictionary of French Liberation pp 326 37

—छायावादोत्तर काव्य में विम्व में उद्धृत पृ० १३

२ प्रिन्सिपल आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म—(१९७६ संस्करण)

कि अनालाइसिस आव ए पायस पृ० ८६-१०२

विम्बों का महत्त्व—पाश्चात्य समीक्षक काव्य में विम्ब-रचना को बहुत महत्त्व देते हैं। पीछे एज़ा पाउण्ड का मत उद्धृत किया जा चुका है। उसने विम्बनिर्माण को कवि की सबसे बड़ी सफलता माना है। लेविम इमेज का प्रभाव बताता हुआ कहता है कि इमेज किसी अंश में एक शब्दों में बना ऐन्द्रिय एवं भावात्मक चित्र है, वह कुछ सीमा तक लाक्षणिक होता है, उसकी तरह में मानवी मनोभाव छिपा रहता है। वह पाठक में कवि के भावात्मक शब्दों को सम्प्रेषित या सट्टान्त करता है।¹ इस कथन में आरम्भिक अंश इमेज का स्वरूप बताता है तो अन्तिम अंश उसका प्रभाव। इसी में इमेज का महत्त्व अन्निहित है। काव्य कवि की भावनाओं को पाठक या श्रोता तक पहुँचाना है और इस कार्य में विम्ब उसका अमागम्य उपकरण बन जाता है। अन्यत्र वही एच० टब्ल्यू० गैराड का मत उद्धृत करता है जिसके अनुसार मानव आरम्भ में ही कवि था, उसके मुँह से पहले पहल जो वस्तुओं के नाम निकले वे उसके प्रत्यक्षान्मक अनुभव थे।² कीटन तो यहाँ तक आगे बढ़ गया कि वह सम्पूर्ण वाक्यात्मक मूर्ष्टि को एक इमेज स्वीकार करता है।³ शैले जब इमेजिनेशन को पारिस्त्रिक चित्र का सबसे बड़ा उपकरण स्वीकार करता है तो प्रवारान्तर में इमेज के ही गीत गाना है। मँगनीस जब केवल कवि को वाक्यात्मक मन्त्र का एकमात्र बक्ता घोषित करता है तो उसका अभिप्राय भी यही है कि कवि इमेजिनेशन या सर्जनान्मक प्रतिभा द्वारा पदार्थों का सत्य स्वरूप प्रत्यक्षायित नरके सत्य का उद्घाटन करता है।⁴

1 The poetic image is a more or less sensuous picture in words, to some degree metaphorical, with an undernote of some human emotion in its context but also charged with and releasing into the Reader a special poetic emotion or passion which—no it won't do, the thing has got out of hand
—The Poetic Image p 22

2 Once upon a time (says Mr H W Garrod) the word was fresh, to speak was to be a poet to name objects our inspiration and metaphor dropped from the inventive mouths of men like some natural exudation of the vivid senses

—वही, पृ० २५ पर उद्धृत

3 Keats has contrived to suggest the whole complex act of Poetic creation in a single image
—वही पृ० २७

4 Others can tell lies more efficiently, no one except the poet can give us Poetic truth
—Mac Neice

—वही, पृ० ३१ पर उद्धृत

एम० क० काफमैन तो उस कवि का कवि ही मानने को उद्यत नहीं जो अपन भावा का इमज क रन में परिणत न कर सक ।

टा० एफ० ह्यूम के अनुसार विम्बमय काव्य पाठक की चित्तवृत्ति को जाकृष्ट कर नेता है और कोरी प्रक्रिया में नहीं भटकन देता^१ । काव्य में विम्ब का महत्ता उस समय अतिवाद को पहुँच जाता है जबकि काव्य और विम्ब में अभेद की स्थापना होता है^२ ।

उपयुक्त विवेचन में यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चाय समीक्षक कविता में विम्ब यानता का बहाने महत्त्व देते हैं परन्तु उनकी दृष्टि में यह कवि का एक अनिरीक्षण कौशल से कविता का अभिन्न पक्ष नहीं ।

भारतीय काव्यशास्त्र और काव्यविम्ब—नामाय रन में आपुनिक भारतीय विचारक अत हा वे अग्रजी-साहित्य के अयता हा या सिन्दी के यह धारणा रखते हैं कि संस्कृत काव्यशास्त्रा इस विम्ब की धारणा में अग्रिचित थे । एक लेखक ने तो यथा तन निष्ठा है कि भारताय जाचार्यों का रन के प्रति अधिक आग्रह था । इमप्रिण दस जाग उनकी दृष्टि नहीं गई । जय समाधक ने यह ता स्वाकार किया है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में जहा तथा विम्ब-सम्बन्धी धारणा के सङ्गत मितत है । अतङ्कारा के प्रद्वग में विम्ब प्रतिविम्ब भाव की खचा होता है । यह उपमानात्मय भाव का वाचक है । किन्तु संस्कृत काव्य शास्त्र में अप्रमनुत विज्ञान में भी विम्ब भावना का स्पण है जबकि आपुनिक कवि प्रमनुत का भी विम्ब निर्माण करते हैं । तद्वगण और व्यञ्जना तथा ध्वनि

1 The poet is he with whom feelings develop into images and the images themselves into words which translate them while obeying the laws of rhythm

—S K Coffman—Imagism, p 66

—छायावादात्तर काव्य में विम्ब पृ० १६

2 A poetry of images endeavours to arrest you and to make you continuously see a physical thing to prevent you gliding through an abstract process

T F Hulme—Speculations p 135

—उमा अप्टवग द्वारा उद्धृत पृ० ५

3 Poetry is imagery and imagery is sensation

—R H Fogle—The imagery of Keats & Shelly p 5.

—छायावादात्तर काव्य में विम्ब पृ० ७

४ अखीरी काव्यविम्ब पृ० ४४

विद्वान्ना श्री विष्णु विज्ञान म गन्नायक तां १ । माध्यम्याता गोपा का उतराग
 श्री विष्णु-निर्माण म हाथा है । कृत्वात् प्राग विद्या गया वर्धाता-वि तां भा
 मृत्तम रूप म विष्णु-निर्माण म गताम ३ । वर्धाता क विधिना भदा म विष्णु
 विज्ञान श्री मुख्य विषय रहा ३ । वर्धाता-विष्णु-वर्धाता म श्रोत विष्णु का यात्रता
 ही प्रयाजन है । उदा प्रकाश कुनि जोर राधिका म शब्द-विष्णु का विज्ञान का
 मश्रुता ३ । अर्थवर्धाता मृग म शब्द यात्रता प्राग विधिना विष्णु का माध्य
 मृत्विता ३ । उदा वि गामश्रु तां पर भा मश्रुता यात्रता-विष्णु म उनहा विष्णु-
 विज्ञान का परिपक्व विज्ञान न । लिखाई विरा ३ ।

उम प्रकार ही 'शास्त्रा' मंत्र म उजात पर श्रम मुक्त है । मायाय जायायी
 ही दुष्टि रम क प्रीत प्राप्रभुण माता ताक मश्रुता का ध्यात उम प्राग त्री
 गया वि विता विष्णु ही मायाता क रम मो प्रभुता भा उदा मायाय मया
 ही है । विद्विज श्रीर शब्द मश्रुता तात्र पर म वर्धाता मश्रुता विष्णु म
 मयायक ३ । पर, पर मश्रुता विष्णु मायाता क प्रकम्पात म प्र मया /
 जोर विष्णु क उदा-विष्णु मिता ३ ता क मश्रुता यात्रता भा उदाय त्री ताया ।
 विष्णु प्रकार पर विष्णु-विज्ञान ही क वर्धा विष्णु मायाय म श्रिष्णुता मायाय क
 म श्रिष्णु है उम प्रकार मश्रुता म मया । वर्धा पर मुक्ता विष्णुमाय था । उदा
 उदाता है कि प्राप्रनिज मयाता मायाय विष्णु यात्रता ही ही म प्राप्रनिज
 उदा विष्णुमायाय मया ३ वर्धा मश्रुता मायाय मयाय उदा विष्णु यात्रता क विष्णु
 तात्र का तात्र क ही मया मायाता । मश्रुता पर मश्रुता मश्रुता है कि विष्णु-
 प्राप्रविष्णु माय मश्रुता तात्रा क मश्रुता पर श्री विष्णु माया का उदा विष्णु प्रयाग
 मया ताया मा ।

समस्तार म काश्य विष्णु - तात्रा म विष्णु का मुक्त तात्रा ममजा
 जाया है कि उदा मश्रुता का मश्रुता । उदा विष्णु मश्रुता-मायाय म प्राप्र-
 भायिक शब्द म मश्रुता । माया वर्धा-विष्णु-विज्ञान मश्रुता पर प्राप्रिष्णु है ।
 रम का भा प्रीतिज मया मश्रुता मुक्त माया ३ । विष्णु-प्राप्रविष्णु माय म ता
 विष्णु शब्द मायाय श्री ३ । मश्रुता प्राप्रमश्रुता माय श्री उदा मश्रुता न । ३ ।

१ नगच्छ - वाप्रविष्णु पु० ३० / /
 २ यात्रा-विष्णु-विष्णु-विष्णु माया ३ ३
 ३ पु०—मश्रुताय प्रमय मश्रुता म-मश्रुता विष्णुमायाय मश्रुता प्राप्रमश्रुता ।
 —वि०भी० पु० ६१

उत्तरायुक्त मार हा अन्तर्गत इस विम्व विधान क नाग्रन हैं । नगड न प्राचीन आचार्यों का विम्व भावना की तुलना आद्यनिक नमीयका म करत हुए प्राचीना का कृतिया म कवन अस्त्युत विज्ञान कथनाया अथकि ज्ञाधुनिष्ठा की विगपना बनाइ है कि व प्रस्तुत विज्ञान का यागना म ना विम्वनिमाण करत हैं । उन मन्त्र घ म उ हान विहारय अवि का एक टाडा प्रस्तुत किया है—

सोहत ओड पात पट स्याम सलोने गान ।

मनहुँ नीलमनि-सैल पर आतप परयो प्रभात ॥

नका कथन है कि न सह म उपमय और उमान दाना पक्षा क वणन न पूण विम्व की मष्टि हाना है । नकह जाधम्राय अ लक्षित हाना है कि प्राचीन आचार्यों का दृष्टि न पन पर नग ग था । किन्तु व यह ना जानत हा है कि यहा उपमा अन्तर्गत है । उपमा वहा हानी है नहा प्रस्तुत म अस्त्युत का सम्भावना नगार शर क पृथाव उपमय पन है उलय उपमान । आकृष्ण न इमान वय है उहान पानाम्बर जाग हुआ है । उमम एमा दृश्य बनता है नैना नातम क पवन पर प्रात कालान धप पन म वमता है । न प्रकार यह म्बन्गाप्रभा की उदाहरण है । न प्रक्षा म उपमय म उपमान का जन्ममान भय हाना है ना कि उपमान का अग्र करण—उमकी गौगता का प्रतिपादन कान न भा वा नाना है । उपक्षा म उपमय और उपमन का मात्श्य यथा जादि गाना म वाच्य नहा हाना । माना कहन म आपानत दाना म अमद का लीनि गाना है । न प्रकार उपमय और उपमान दाना हा नाय नाय नव नात है । नाना म नाग्रम्व म न विम्व का मष्टि सम्भव है । नक अभाद म न भा हा सम्भव नग हाना । उदाहरण क लिए अनाक—

विहाग क दा न मस्वृण न्य का नूनता—

ऊर कुरङ्गकदूःखञ्चल चैलाञ्चलो भाति ।

सपताक अकमयो विजयस्तम्भ स्मरस्येव ३ ।

यग किमा मुद्रा का मूलन गाग-भाग विन्ना उपमय है । उन पर म न्याग की किनाग न र न नवा म न रहा है । कवि उसम कामदेव क

१ काव्यविम्व पृ० ४१

२ विषयम्यानुपादानप्युपादानपि मूरय ।

जत्र करणमत्र ष निगानाव प्रचयन ॥

३ वही पृ० ३१६

विजयध्वज के सुवर्ण-स्तम्भ (Pole) की कल्पना करता है जिसके ऊपर झण्डा फहरा रहा हो। यहाँ गोरी रिडनी की जो सवथा गोल है, समानता विजय-स्तम्भ में की गई है आ सोने का बना होने के कारण रंग में एक रूप है। पवन में उड़ता साडी का तिनारा पताका के समकक्ष है। झण्डे का वस्त्र यदि हवा न चलने में नीचे लटका हुआ हो तो उसका खम्भा ऊपर के भाग में ढका रहता है। जब वह फहराने लगता है तो स्तम्भ का उतना जग दिखाई देने लगता है। मुन्दरी की पिट्टनिया भी साडी का अञ्चल हटने के कारण ही दिखाई दे रही है। अब यहाँ पूव उद्धृत दोहे में तुलना की जाय कि समर्थतर विम्ब कौन-सा है। विम्ब की एक बड़ी विशेषता यह बताई गई है कि उसमें क्रिया (Action) होना आवश्यक है।^१ प्रस्तुत पद्य में साडी की तिनारी का हिलना चञ्चल शब्द के द्वारा वाच्य है किन्तु पताका का हिलना नामधेय में व्यङ्ग्य है। इस प्रकार निष्पक्ष समीक्षक यह निस्सन्देह स्वीकार करेंगे कि विहारी के दोहे की अपेक्षा इस पद्य का विम्ब समर्थतर और पूर्णतर है। पद्य में केवल प्रतिफलनात्मक है जबकि हमारे में सक्रिय। अब इन आत्माचका में पूछन है कि हममें प्रस्तुत-विज्ञान है या नहीं और यह प्रस्तुत-विज्ञान की कल्पना भी क्या पश्चिम में ही आई है? इस उपेक्षा अलङ्कार की मद्भावना क्या आधुनिक समीक्षका ने की है? इसी प्रकार एक विम्ब-कल्पना का उदाहरण कानिदाम की लेखनी में उद्धृत किया जाता है—

भव हृदय साभिलाप, सम्प्रति सन्देह-निणयो जात ।

आगङ्गुले पदगिनि तद्विद स्वर्शक्षम रत्नम ॥^२

इसको समझने के लिए प्रसङ्ग पर दृष्टि डालना आवश्यक है। राजा दुष्यत कण्व के आश्रम में शकुन्तला को देखता है और उस पर मुग्ध हो जाता

- 1 Whatever the process and whatever the stages of this transformation may be, the pictorial image, in the real sense of the term does not emerge till its completion. And pictorial poetry must evoke in the reader a pictorial image as explained above, including picturespace and suggestion of planes and volume or three-dimensional space. It is thus different from reflective or even narrative poetry where the theme is either abstract idea, feeling or passion on the one hand or movement or action on the other.

—Pictorial Poetry, p. 17

है। विन्दु मर्यादा का अन्त कुल उम नियंत्रित रखता है। वषाधम-व्यवस्था व अनुनाद ध्वनि का ब्राह्मण-कन्या व माथ विवाह प्रतिनाम हान स प्रतिपिद्ध है।^१ जिस प्रकार हिन्दू-समाज में विवाह-सम्बन्ध निश्चित करने में पूर्व कन्या एवं वर व कुल जाति की ध्यानदीन करना आवश्यक समझा जाता है राधा उसी प्रकार शकुन्तला वष्य का औरम कन्या है या पालिता इसकी पूछताछ करता है। क्योंकि औरम हान पर उमम विवाह की सम्भावना नहीं हो सकती। सम्भवतः ब्राह्मण कन्या व माथ ध्वनि व विवाह का ययार्ति का निदर्शन उमक मन्त्रिण्य में नहीं था^२ प्रचुर दण्ड और अरजा का भयङ्कर काण्ड उमका स्मृति में था कि अरजा या गज का कन्या था न दण्ड न बलाकार किया फलस्वरूप उमक गण्य का नाश हो गया।^३ इसलिए उमका मानस हानि का सम्भावना में आनन्दित था। पर जब उम यह ज्ञान हो गया कि वह वस्तुतः ध्वनि विश्वात्मिक और अप्सरा मनका व समागम में उपन्न हुई है^४ तो पितृवश एवं मातृवश दाना आगे ही ब्राह्मणव की जाशङ्क का निराकरण हो गया। इनमें दुष्यन्त व हृदय का धान उर गया मनारथपूनि का आशा उभर आई। आनन्द का निर्वाण और आशा व उदय में उपन्न भाव-भेद का वा अपूर्व आनन्दामक अनुभव उम हुआ हाया माथे जादा में उमकी अभिव्यक्ति कैम सम्भव होगा? कवि विम्ब राजका में उम अभिव्यक्त करता है कि जिस वह आग समन रहा था वह तो छला जा सकन वाला रत्न निकला। इस विम्ब की सम्भावना और पुष्टि पृष्ठभूमि में जाता है। अग्नि दाहक हान में स्पष्ट व याग्य नहीं जाता है। उम छूत डर लगता है क्योंकि हानि का आनन्द सामन रहता है। रत्न कसक विपरीत पीनन ममृण और रमणाथ वस्तु हान में सुखद हाया है। शकुन्तला को पहल जन्मिस्तुन्य विवाह व अपाय्य समझा था जबकि वह रत्न व समान उत्तम निकली निमका पान की प्रयत्न व्यक्ति कामना कर सकता है।

यहां शकुन्तला की आकृति रग रज आदि विभी का अग्नि या रत्न व

१ त्रिखा वषाधुपूर्वेषु द्वे तथैका तथामिन ।

ब्राह्मणध्वनियविगा भाया म्वा शूद्रजमन ॥ —या० म्मृ० आचा० १५७

२ न ब्राह्मणा भ भविता इत्यग्राहा महोभुज ।

वचन्य ब्राह्मण्ययन्य तापाद् धमशप पुरा ॥ —भा०पु० ६ १८ २०

३ वा०रा० ६८ ६१

४ मानुषीषु कथं नु न्यादन्व न्यम्य सम्भव ।

न प्रभातरत्न ज्यातिरुदति वगुदाननात ॥

—शाकु० १२५

साय समानता नहीं है। यदि मौन्दय की चमक-दमक और रत्न का साम्य स्वीकार भी कर लें तो भी आतङ्क का भाव जो अग्नि की सभावना में उत्पन्न होता है, केवल प्रभाव-साम्य से उद्भूत है। यह विम्ब परिणति में शकुन्तला के रूप आदि का अनुभव कुछ नहीं कराता प्रत्युत दुष्यन्त की मानस अनुभूति का ही ज्ञान कराता है। इसलिये मूल में अमूर्त की अनुभूति ही इसका फल है। यद्यपि इसमें अप्रत्यक्षता का भाव है किन्तु वह रूप आदि का साम्य लेकर नहीं है। सर्वनाम पद, तद् और इदं नपुंसक लिङ्ग होने के कारण रत्न का ही संज्ञित करने हैं, शकुन्तला को नहीं। उमका ज्ञान का प्रसङ्ग के कारण मन्था बौद्धिक है।

इस प्रकार की समर्थ विम्ब-योजना का भाव यदि कानिदान्त के मन्त्रिक में न होता तो इसकी सृष्टि कभी भी न हाती।

आनन्द और चमत्कार—अस्तु। काव्य का मुख्य प्रयोजन भारतीय आचार्यों ने निरतिशयानन्द-प्राप्ति स्वीकार किया है। उम आनन्द का मूल चमत्कार है।^१ चमत्कार का आज का तद्भव शब्द चौकना अथवा चमक है। दोनों का अर्थ यद्यपि पृथक् है तथापि है मूलतः इसी शब्द से सम्बद्ध। मनुष्य किसी अप्रत्याशित बात को सुनकर चौकना है परन्तु यदि उसे सुनकर सुख की अनुभूति हो तो चेहरा चमक उठता है। हृदय का उल्लास मुख पर उतर आता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। काव्य में कविप्रतिभा-प्रसूत किसी बात को पढ़कर या सुनकर उमके अप्रत्याशित होने से पाठक या श्रोता विस्मय में चमत्कृत होता है और उन्मत्त का अनुभव करता है। आनन्द मत्त्व गुण की प्रधानता में होता है और सत्त्व गुण का स्वरूप प्रकाश या ज्ञानात्मक है।^२ काव्य कथोक्ति शब्द-निमित्त होता है, अतः सारा व्यापार उमके शब्दिक ही रहता है। वाक्यगत शब्द व्याकरणशास्त्र के अनुसार पद कहनाता है।^३ उमका अर्थ यस्तुन कोई विषय न होकर वह वस्तु है जिसके लिए उस पद का प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि साप्ताहिक भोज्य आदि वस्तुओं के लिए पदाथ शब्द का व्यवहार होता है। क्योंकि वक्ता का तात्पर्य तन्पदवद्विषय वस्तु से रहता है। उदाहरण के लिए कोई भोजनार्थी भोजन के लिए बैठा हो उमके लिए भोज्य पदाथ लाने को कहने पर कवल पद का भाव समझाने से उमका प्रयोजन सिद्ध

१ सत्त्वाप्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय ।

—माद० ३, २

२ सत्त्व भषु प्रकाशकम साका० १३

३ मुण्डितल पदम् ।

—पा० १, ४ १४

स्मृति-विम्व संभव नहीं है न वस्तु के स्वरूप का ही ज्ञान हो सकता है। जैसे न्यायदशम में घट का चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञान पर अनुव्यवसाय में घट के ज्ञान की प्रतीति मानी गई है।^१ उस समय 'कम्बुग्रीवादिमान् घट' यह ज्ञान होने पर ही कालान्तर में बौद्धा के मस्तिष्क में तादृश आकृतिमान् घट की स्मृति उभरती है। इसी प्रकार काव्यगत वणन मुनकर या पटकर शब्दाः प्रमाण में उनके वाच्य पदार्थ की आकृति सहसा समाजिक के समक्ष उपस्थित ही हो जाय ना वह चमत्कृत हो उठता है। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिए कि उन काव्याथ का वाच्य नहीं हुआ। न ही आनन्द भी उपलब्धि हुई। इसी कारण 'वगन्नाथ' न काव्य के शरीरभूत शब्द के लिए रमणीय अर्थ का प्रतिपादक होना आवश्यक घोषित किया।^२

यहां शब्दार्थ, रीति वृत्ति गुण जनक चमत्कार की उत्पत्ति के साधन ज्ञान में उनके मात्र तो चमत्कार का जन्म-जनक भाव सम्बन्ध होगा परन्तु उस की प्रज्ञानता का और चमत्कार का रम्य वा प्राण मानन पर रम्य ही मध्य ठहरगा और चमत्कार साधन।

यह चमत्कार वस्तु के यथाथ वणन में ही जाना है और कल्पना में नवाद्-भावित वणन में भी संभव है। यथाथ वणन के भी प्रतिभा प्रसूत ज्ञान पर प्रयत्नजनक भावित ज्ञान में चमत्कार होता है। इसके लिए वण्य का आकृति बंध भूषा चेष्टा पादि सब प्रयत्न ही ज्ञान आवश्यक हैं। इसका उद्धारण उपलब्धि के प्रसन्न में किया जा चुका है।^३ कल्पना प्रसूत पदार्थ जाना मन रम्य पर भी पाठक या श्रोता को वास्तविक ही प्रतीत जाना है। इसका प्रमाण वाण की कादम्बरी में गण्डव-नाथ के वर्णन प्रसन्न में कादम्बरी के मन्व का उत्तरजित वणन है। दार्शनिक नाग यद्यपि गण्डव नगर की मत्त। जवास्तविक मन्व है तथापि काव्य जातु में वह वास्तविक ही है। क्योंकि एक सिद्धान्त यह है कि वस्तु का मन्व में मदभाव न रहने पर भी यदि शब्द का प्रमाण कर दिया

अत्र हि 'स्मरतीति' या स्मृतिस्मरद्विगता सा न तार्किक-प्रसिद्धा पूर्वमतस्य प्रसम्य-अनुभूतत्वान्। अपि तु प्रतिभानात्तर रसाय-भाषाकार स्वभावात्प्रमिति। अग्निभा० भा०। पृ० २७६

^१ चमत्कार ज्ञानता प्रत्यक्षतया ज्ञानमनुमीयत। मुरारिमित्राणा मनज्जु व्यवसायन ज्ञान गुह्यत। सिद्धा० भु० (ज्वानाप्रसाद गौड टीका) भाग १, पृ १२६

^२ रमणीयाय प्रतिपादक शब्द काव्यम्। रग०।

^३ दर्जे, टि० ७३ पृ० २२

जाता है तो शब्द उसका ज्ञान कराता ही है।^१ यह आपातन परस्पर विरोधी वात लगती है। जब वस्तु है नहीं तो उसका ज्ञान कैसा होगा और यदि ज्ञान होता है तो उसकी अभिज्ञता कैसे हुई? क्योंकि जमत् की मत्ता सम्भव नहीं और जिमकी मत्ता है, उम जमत् कौन कहगा।^२ पर लोग म यह देखन को मितता है कि मप न रहने पर भी रम्भी को साप सम्पने वाता उमे देख कर भयभीत होता है, मरु-मरोचिका मे जल न रहने पर भी मृग, जल न लिए इधर-उधर भागता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि नाट्य मे हम मुख्य पात्र के न रहन पर भी जोर यह जान कर भी कि अभिज्ञता यहां अमुक पात्र की भूमिका मे है, रामादि का अभिज्ञत देखकर रमानुभव करत है। मन्दूत-साहित्य मे ही नहीं, जय भाषावा के साहित्य मे भी यह बात देखन का मिलती है। अरैती के कवि रोजरिन की काव्यकृति "कुबला था" सबथा वपना-प्रसून एव म्वल्लकृति मारिे जानी है। उन्माम और कथा ने पात्र एव घटनाम्बन मव ता कल्पित होमर भी वास्तविक प्रनीत होत है। तो क्या आश्चर्य है कि काव्य मे प्रयुक्त शब्द उदथ ना ज्ञान कराये। यह तो कवि क होयन पर निभर है कि वह पाठक का वस्तु का भाव करत म नया तय समय हाता । फलत काव्य-रचना करत समय कवि क गमक बो प्रमुख वाले रगनी है—अज्ञित उदाय ना सामान्य ज्ञान पर भी रम्भ तय प्रदान करन नामित करना नया भरती प्रतिभा के द्वारा एक नड सृष्टि यडी करना। आध्याय अभिज्ञत गुप्त कवि और महदय दाना को भाव-भूमि मे मामित ज्ञान वाले मारती क मार महिम। इन्ही का मया म व्यापित करत है।

दुःसाय मे आज पाचीन मनीषी जोर अभिज्ञत गुप्त क साहित्यगुरु महु तात का अम्य ग्रन्थालन काव्य-कौतुक मुलभ नहीं है। अदल दाहन्त क रणा की भाति उमक कुण पथ जहा-तहा जेती आभा जाचोकिन कर रहे है। वह मुनभ हाता ना मभव त, विम्ब ने विषय मे जापुनिक समीक्षकों को यह अिनि

१ असत्ताऽमत्यपि ज्ञानमर्थे शब्द कराति हि। कुमारिव द्वारा श्लोक धार्मिक म (श्लोक ६ पृ० ४६ चौख म०)

२ नाऽमता विद्या भवा नभायो विद्यते सत। शीता २, १६

३ अपूव यद वस्तु प्रथयति जिना राग्ण-कवा
पमद् श्राव-प्रथय निजग्मभागात् सारयति च।
जमात् प्रस्त्रोपाख्या प्रसरमुभय भासयति तत्
मन्वत्याम्नस्व श्वि-सहृदयाद्य द्विअयत ॥

न होती। तब न स्पष्ट शब्दा मे कवि को ऋषि घोषित किया है। 'क्योंकि ऋषि की भांति कवि भी त्रिकालदर्शी या क्रान्तद्रष्टा होता है। त्रिकालद्रष्टा त्रिकालावाधित ज्ञान रखने वाल व्यक्ति को कहते हैं। कवि यदि स्वयं पदार्थों का साक्षात्कार करेगा तभी उनका प्रयोजन वर्णन करने में समर्थ होगा।'

कवि शब्द की व्युत्पत्ति कुड् शब्द^१ या कवृ वर्णों वास्तु^२ म की जाती है। प्रथम के अनुसार शब्द-व्यापार करने वाला रवि कहलायागा। यद्यपि एक प्रेमकम्पोजिटर भी अन्तर का जाडकर शब्द व्यापार करता है और कवि भी। शब्द का जाडकर पुस्तकें बनाने के कारण दाना समान प्रतीत होत हैं तथापि दाना में निश्चित ही अन्तर मानना होगा। पटल का जय म कोड सम्बन्ध नहीं होता जबकि दूधरे का जय क बिना निवाह नहीं। दूसरी व्युत्पत्ति में वर्णन करने वाला कवि होता है। वर्णन का जय वर्ण-योजना करे तो अन्तर का जाडने वाला प्रेमकम्पोजिटर पुन कवि कहाने का अधिकारी हो जायेगा। अब वर्ण का जय रङ्ग (colour) भी बना हागा। तभी अङ्गराग क लिए वर्णक शब्द का प्रयोग होता है। कम्पोजिटर कवन अन्तरा में काम लता है, उसका जय म काट सम्बन्ध नहीं। जयथा वह इश्वर की रचना को 'छ मर चना न कर दता। इमर विररीत कवि यथाथ वस्त्र का भा अपनी प्रतिभा क प्रभाव म तथा रङ्ग देकर अपूर्व की भांति प्रस्तुत करता है। उसका किया वर्णन प्रेमकम्पोजिटर की भांति घटना का विवरण मात्र न हाकर 'त्रिकातर वर्णनामय' होता है। एम कवि की कृति श्री काव्य कन्दाती है। भट-नौन क रत्नार वासीकि क मुख मे जब तक यह 'वर्णना उद्भूत नहीं हो गई तब तक काल का उदय नया हागा। कवि हत यह वर्णना ही वर्णन वस्त्र

१ नानपि कविर्गित्पुत्रेण ऋषिष्वे किल दशनाम ।

विचित्र भाव वमाजनस्त्वप्रख्या च दशनम ॥

—कानु० पृ० ४३०

२ तु०—कवृ शब्द-व्युत्पत्ति मखिल भवनतद यप्रसादन कवय ।

पश्याति मन्ममलय सा ययति मरस्वती देवी ॥

सुवन्धु वा० दत्ता १ १

३ कुड् शब्द पागा १०४४ (मा० विनि० पृ २६४)

४ कवृ वर्णों (गा० ३२०) त्रि शब्दश्च कवृ वर्ण इत्यस्य धाता काव्यकर्मणो म् । कामा० प० २१

५ तामानखणनानपुणरति म ।

—काप्र० का०, १, २

६ म तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठित कवि । दशनाद वर्णनाच्चाय म्हालोफ कविश्रुत । तथा हि दशन म्बन्धु नित्यस्यादिकवेर्मुनि । नोदिता कविता तोर यावज्जाता न वर्णना ॥ (काव्यानु० पृ० ४३२) —काम० पृ० १६

का प्रत्यक्षीकरण करती है। यही प्रत्यक्षीकरण का भाव आधुनिक हिन्दी साहित्य में बिम्ब-विधान के नाम से और अंग्रेजी साहित्य में इमेजरी के रूप में प्रचलित है।

गोपाल भट्ट का मत—काव्याय की प्रत्यक्षकल्पना के प्राचीन आचार्यों का अभिमत होने का प्रमाण वामन कृत काव्यालङ्कार सूत्र पर कामधेनु टीका क रचयिता गणपन्ध्र त्रिपुर हर भूगल अथवा गोपेन्द्र लिप्य भूपाल कृत आत्मा शब्द की व्याख्या में उद्धृत गणपल भट्ट का वचन है। रेवाप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें काव्यप्रकाश पर साहित्यचूडामणि व्याख्या के लेखक से अभिन्न ठहराते हुए इनका समय गोपेन्द्र लिप्यहर भूपाल के समय १४२३-४६ ई० में एक शताब्दी पूर्व अनुमानित किया है^१। इस व्याख्या में गोपाल भट्ट ने—

करञ्जु-गात्र-कन्ध-कक-ग-क-वाक्य-वैतक्षण्य-प्रकटन-प्रगल्भ कश्चन स्फुरता-हनु-स्वभावोऽत्रात्मन्युच्यते ।

इस शब्दों में “स्फुरताहनु-स्वभाव” इस विशेषण में प्रतिपादित किया है कि आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकृत धर्म में काव्य स्फुरणशील हो जाता है। स्फुरण का जय चमकना या भासमान होना है। प्रत्यक्ष शोकर ही कर्त्तव्य चमक या भासित हो सकती है। वामन ने रीति को अथ चित्र का रेखा-रूप कहा है^२। वास्तव में रेखाओं की विशिष्ट योजना ही चित्र का प्राग्रूप होता है। रंग भंगन में वह स्पष्ट हो उठता है। काव्य क्या कि शब्दाथभुगल में बनता है उसकी यथास्थान योजना रीति कहलाती है। काव्याय का सजीव या वाचन चित्र की भांति प्रयत्न होना ही रीति का जात्मत्वेन कथन का प्रयोजन है।

काव्य बिम्ब वनाम काव्यदोष—इस प्रकार कवि का काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने का उद्देश्य अपनी काव्यवस्तु का प्रत्यक्षकल्प वनाना ही है। इस प्रयोजन में प्राचीन आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि में चमत्कार उत्पन्न करने वाले विभिन्न तत्त्वों का अपन ग्रन्थों में विवेचन किया है। उनमें उपयुक्त शब्द और अर्थ जो कि शब्द या कविता के शरीर अथवा स्वरूपघटक तत्त्व माने गए हैं^३ पहले आते हैं। विवक्षित जय को अभिन्यक्त करने में मक्षम शब्द ही काव्य में प्रयुक्त होना है। इस काव्य में अक्षम अथवा वाक्य या विपरीत एवं

१ बेचना या द्वारा अनूदित काव्यालङ्कार सूत्र व्याख्या कामधेनु की भूमिका ।

—पृ० ४३

२ तदा मुख्यास्विव चित्र काव्य प्रतिष्ठितम् ।

—कासू०, १, २, १३

३ काव्यम्य शब्दार्थी शरीरम् ।

—साद० १६ प०

जनभाष्ट ताव वा चान कगत वाव वणो व पादा म वद्ध चम शर मारा जात है । त्मरिण चम शर न वावक नत्वा वा हा काव्य शास्त्र म राध्य दाप न नाम म पुत्राग गया ३ । तिम प्रकार किमी स्वादिष्ट पदाय वा खान समय त्मम जर्जा-छत पदाय नाव जान म म्वाद मारा जाता है इमा प्रफार एमा हाड वाव्य दाप जा जान म काव्य न मुरप्र जय—रम या चमत्कार न जास्वादन म बाजा पत् जाता ३ । उदाहरण न त्रिण चानिदास - निम्न पद्य का न—

राम म मथनरेण ताडिता दु सहेन हृदये निशाचरी ।

गंधवद्धधिरक्ष नोक्षिता जीवितेन वसति जगाम सा ॥^१

यह पद्य ताडका वज्र के प्रसन्न ना है । कवि न ताडका रागमा क जैम मयद्वार का का वणन रिदा है उमर अनुसार उमका वध करना एन अप्रतिम साहसा मन्वावर का हा काय हो सकता २ । एम प्रसन्न म दाता पक्ष म हृदय म उग्रता राप जोर उम्माह ही अपेक्षा जाना है न कि स्नह जोर मरमता की अत शृगागीभाव का अभिव्यञ्जना यहाँ त्सी प्रकार जहचिक्कर प्रतीत शानी ३ जन चत्रन व वाच म कामन वस्न । इसीविण एम स्थान म अमनपरायता दाप स्वीकार किया गया ३^१ ।

रस और चमत्कार इस प्रसन्न म एक वात स्पष्ट कर दन योग्य है । यद्यपि वारिर्भाषित जय म रम तथादि न विभावादि म मथनित होने पर परिपाक का अनुभाम न विण प्रयुक्त होना है तथापि चमत्कार प्राण होने म उम भा व्यापक जोर सङ्ग नित दाता ज्यों म बना होगा । रस्यत इति रस^४ रम व्युत्पत्ति क अनुसार चमत्काराधिक तत्त्व मात्र को रम माना जा सकता है । इमा दृष्टिवाण म रम का काव्य का आत्मा मानना अधिक युक्ति मगत है ।

१ मुद्रपाथप्रतिर्लोपा रमश्च मरुपस्तदाश्रया द वाच्य ।

—का० प्र० का० ०१

उद्देश्य प्रतीति विघातलक्षणापत्रयो हति गद्यनाथ । उद्देश्या च प्रतीती रसवत्यविवृत्तितानपकृष्टरमविषया च नीरम त्वविवृत्तितान चमत्कारिणी चात्र विषया । तथा च तात्पर्य प्रतीति विघातकत्व सर्वेषामविवृत्तम् ।

का० प्रदी० पृ , २६५

२ र० व० ११ २०

३ अत्र प्रकृत रम विरुद्धस्य शृगावस्य व्यञ्जकत्वोपरि रोष्य ।

—का० प्र० का० पृ० ३२५

४ अभि भा० १ प० २६५

चमत्कारवादी आचार्य गुण, अलङ्कार, वक्रता आदि को काव्य में प्रधानता देते पर भी समान भाव से रस का महत्त्व इमीलिए स्वीकार करते हैं^१। दण्डी, भामह, उद्भट आदि आचार्य रस का अलङ्कार के मध्य इसी कारण गिनते हैं^२। फलतः इस व्यापक दृष्टि से सभी चमत्काराधारक तत्त्व रस की परिधि के अन्तर्गत हो सकते हैं और इससे विश्वनाथ का रस को काव्य की आत्मा^३ घोषित करना अधिक सगत हो जाता है। सम्भवतः भम्मट ने अपने काव्यलक्षण में रस की चर्चा इमीलिए न की हो। सङ्कचित्त जय में रस शब्द सम्प्रदायानुमत परिभाषिक अर्थ में ही ग्राह्य होगा।

इस सङ्कचित्त अर्थ में भी प्रत्यक्षीकरण वाला विम्ब का भाव निदान्ता-नुमत है। अट्टनौन का कहना है कि रसानुगुणिक अवसर पर वणना एक भोग तथा कर्त्तव्य का आधार पर यही पदार्थ प्रत्यक्षकल्प हो जाने हैं^४। प्रत्यक्षकल्प कल्प का तात्पर्य यही है कि उनका ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष न होकर भावात्मक प्रत्यक्ष या मानस प्रत्यक्ष ही होता है जिसे आधुनिक समीक्षक मानस-विम्ब कहते हैं^५।

चमत्कार के अपेक्षित तत्त्व—इत चमत्कार की प्रतीति एवं रसा के लिए शब्द-प्रयोग, रस-योजना, अलङ्कार, छन्द आदि न प्रयोग में औचित्य-रक्षा भी आवश्यक मानी गई है। औचित्य का विवेचन इसी दृष्टि में किया गया है कि इस चमत्कार की प्रतीति में जाया न हो। भरत आदि सभी आचार्य औचित्य के निर्वाह पर धन देते हैं।

१ काव्यस्यान्मति नङ्गिनि रसादिरूप न कस्यचिद विमति ॥

—व्यक्ति०, १, २६

२ रसवद् दग्धित-स्फुटशृङ्गारादि रस । भासा० ३, ६ “भद्रर रसवद्वाचि वस्तुन्यति रसन्विति” दण्डी० काद० १ ५१

३ नाद० १, ३

४ वणनात्कनिता भाग-प्रौढाक्या सम्यगपिता ।

उद्यानका ताच द्राचा भावा प्रत्यक्षवत् स्फुटा ॥

—अभिभा० १, पृ०, २४०-४१

५ अखौगी-काव्या

—वि० पृ०, ६८

६ कयाऽनुरूप कुशलस्तु द्वेषो वेपानुरूपश्च गतिप्रचार ।

गतिप्रचारानुगत च पाठ्य पाठयानुरूपोऽभिनयश्च काय ॥

—ना० शा० १३, ६४

क्षमेद्र न इमं चमत्कारं क्व दमप्रकारं विनाये है—आलोचनापरकता अस्वाचना निरपेक्षता शब्दगत अथगत जनद्वारगत रमगत या प्रव्यति वृत्तिगत^१। उसकी तुलना म विश्वेवर न मान चमत्काराधायक तत्त्व स्वाकार किय है। उनक अनुसार रस गुण रीति वृत्ति शब्दा पाक और जनद्वार इन माना की ठीक ठीक याजना होन स हा काव्य का पूरा स्वरूप उभरना है^२। दण्डी वामन भोज इनम ने एक एक या दो अथवा तीन तत्त्वा को ही प्रामाण्यता दत है। किन्तु इसम काव्य म एकार्णितता आती है अत इन साता तत्त्वा की ठीक ठीक योजना स काव्य एक साम्राज्य की भांति शोभित होता है^३।

यहा दण्डी की चर्चा इसलिए है कि वह काव्य क दो प्रकार मानता है—स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति^४ भोज न रमाक्ति नामक एक प्रकार और स्वाकार किया है^५ वस्तुतः जनद्वार प्रदान काव्य क निम्ने वक्रोक्ति पाठ का प्रयोग है। किन्तु वनता जिमम प्रत्यक्ष लिखान नहा दनी एस जनद्वार वग क निम्ने स्वभावाक्ति की सजा दी गत है। व्यंग्य मूनक सूक्ष्मादि अलंकार भा इस प्रकार म अर्तहित हो सकत हैं। यहा तक कि मन्थि मध्यज्ञ और नक्षण जादि सभा एम तत्त्व जा काव्य म चमत्कार का मूला कर्त है दण्डी का दृष्टि म जनद्वार का मीमा म आ जान है दण्डी क समय तक ध्वनि मिदधान का विक्रम नहीं हुआ था। जन इन जनार्थों न उसकी पृथक गणना नहीं का है

जाचाय वामन विम्ब मदन शब्दा का प्रयोग ता नहीं करत है परन्तु चमत्कार की धारणा उनक मस्तिष्क म अवश्य थी। चमत्कार क निय ही वे

१ कविकण्ठा० (का०भा०गु० ४) पृ० १२६

२ गुण रीति रस वृत्ति पाक शब्दामानन्दवृत्तिमः।

मर्षनानि चमत्कारकारणं ब्रूवन् बुधा । च च० पृ० १

३ गुणरत्नीनां काव्यशाभाकृती म प्रथयागतः ।

एकार्णितैव काव्यस्य कथिता कव्यकान्तिभिः ॥

गुण मवारमानस्य त्रीण्यङ्गायाह नाजगटः ।

मप्लाङ्ग मन्नेन काव्य साम्राज्यमिव भासते । वही पृ० १

४ भिन्न द्विधा स्वभावाक्तिश्च वक्राक्तिश्चैति वाच्यमयम् ॥ काद० २ ३६३

५ वक्राक्तिश्च रमोक्तिश्च स्वाभावाक्तिश्च वाच्यमयम् । सक० ५ ८

६ काद० २ ३६७

शोभा और सौन्दर्य शब्द का प्रयोग करते हैं^१। इसी लिए काव्य शब्द का अभिधेय वे परिनिष्ठित अर्थ में गुण और अलङ्कारों से सम्बन्धित शब्द और अर्थ स्वीकार करते हैं^२। अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति वे 'अलङ्कारणम्-अलङ्कार' भाव में घ प्रत्यय में तथा "अलङ्कृत्यन काव्यम् एभिर्" इस करणार्थक व्युत्पत्ति से उपमादिके अर्थ में करते हैं^३। पहले में सौन्दर्य एवम् अलङ्कार दोनों अभिन्न हैं, दूसरे में वे सौन्दर्य के साधन हैं। इस प्रकार अलङ्कार और विम्ब दोनों का अभेद भी सिद्ध हो जाता है।

इस सौन्दर्य की याज्ञता दोषों के निराकरण व गुणा तथा अलङ्कारों के ग्रहण में सम्भव होती है^४। गुणों का काव्यात्मस्थानीय रीति में गहरा सम्बन्ध है^५। 'आत्मा' शब्द में वामन का क्या अभिप्राय हो सकता है? आत्मा का अर्थ शरीर तो वामन को अभीष्ट नहीं है, यह उन्हीं के शब्दों में स्पष्ट हो जाना है। शरीर के प्रधान तत्त्व आत्मा की भाँति वे रीति का काव्य की आत्मा मानते हैं। पुनः काव्य शब्द में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का ग्रहण करना है। रीति की परिभाषा विशेष प्रकार की पदयोजना ही है। तब पद योजना और शब्दार्थ में भेद क्या रहा? दृष्टान्तवादी दशना को छोड़कर शेष माना जायता शरीरी आदि शब्दों में अभिहित होकर सर्वथा पृथक् तत्त्व सिद्ध होता है। जब कहा गया है कि जिसके द्वारा यह शरीर रम, गङ्गा, स्पृश आदि का ग्रहण करना है जो शरीर का अधिष्ठान है, वह आत्मा है^६। तभी मज्जम इपीका के पार्थिव का भाँति शरीर में आत्मा को पृथक्

१ काव्यशोभाया कतागुणा गुणा । — कामवृ०, २, १, १
सौन्दर्यमलङ्कार । — वही, १, १२

२ काव्यशब्दोऽथ गुणानङ्कारसम्बन्धयोः शब्दोद्योयोरित्ते ।
भक्त्या तु शब्दार्थमानवचनात् गृह्यते । — वही, १, ११ सूत्र की वृत्ति

३ जनङ्कृतिरङ्कार । करणव्युत्पत्त्या पुनरङ्कारशब्दोऽयमुपमादियुक्तते ।
— वही, १, १२

४ न दोषगुणानङ्कारानादानाभ्याम् । — वही, १, १३

५ रीतिरान्या काव्यरूप । वही १, २६, विनिष्ठपदवचना रीति ।
विशेषो गुणान्मा । — वही, १, २७-२८

६ मन रूप रस गन्ध शब्दान् स्पर्शाश्च मैथुनात् ।
एतेनैव विजानाति त्रिमत्र परिशिष्यते । एतद् वै तत् । — वही, ४, ३

करन की बात सङ्गत होती है। उसी सिद्धांत का दृष्टि म रखने हुए विश्वनाथ न आत्मा का प्राणाधारक तत्त्व कहा है^१। पर वामन क कथन म ता प्रतीत होता है कि पदा का मुनियोजित ढङ्ग म एक साथ रखन म जा एक अपूर्णता मा जा जाता है, वही काव्यत्व है। यह ता वीछ दशन म जा आत्मा का स्वभाव है, 'मकं तिकट वेंठना'। कर्णाक वीछ दशन आत्मा का रूप बदना मज्ञा मस्कार और विज्ञान का समुच्चय मात्र स्वीकार करता है ता ि अर्थमान सिद्ध होत है। स्पष्ट नी = ि = स एव ध्वनि सिद्धता का उदय न हान तब इन आचार्यों की काव्य-स्वरूप मन्त्र जी धारणा जस्पष्ट भी थी। सामान्य रूप म शब्द और अर्थ को काव्य का स्वरूप-घटक तत्त्व मानत हुए नी कुछ विशेष प्रकार क शब्दार्थ का ही व काव्य नी उपादय सामग्री स्वरूप करत थे। इसलिए गीति को काव्य की आत्मा मानन का मत शिथिल ही है।

अस्तु काव्य म सौंदर्य का आधान कैम होता है? भाषा और उमम अंगिक चटवीनापन पदावली म स्थित गुण आर अलङ्कार म ही आत है। गुण रीति क विशेष या लक्ष्य है। शब्दगत और अथगत हान म गुण रीति क उपादानभूत शब्द और अथ म वैशिष्ट्य जानत है। यह वैशिष्ट्य कुन्तक और आत-दवर्धन द्वारा प्रतिपादित नावप्य म अभिन ही प्रतीत होता है। क्याकि दोना न ही अनुमार बह नारी के अङ्गा के समुदित रूप म बनकन बाना एक आकषण है जो उत्पन्न ता शरीर म ही हाता है पर दीखता उमम पृथक् ही है।^२

इन सभी तन्वा का उपयोग विम्ब क निमाण म हाता है यह पृथक् कहन का आवश्यकता नहीं है। रीतिया म काव्य का स्थिति उमा प्रकार बतात गई

- १ अङ्गुष्ठमात्र पुरुषोऽतरा मा सदा जनाना हृदय मनिविष्ट ।
त स्वाच्छरारात प्रवृत्ते मुजादिवपीका धैर्येण । —कठा ६ १७
- २ रस एवात्मा जीवनाधारका यस्य तन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रति
पादितत्वात् । —साद० १
- ३ तु० दुःखमसारिण स्वधास्त च पच प्रकीर्तिना ।
विज्ञान वेदना सज्ञा मस्कारा रूपमेव च ॥ मदम०
- ४ तु० वणविन्यासविच्छित्तिपदम शानमस्पदा ।
स्वरूपया यन्धमौन्दर्य लावप्यनभिधीयत ॥ वगी० १ ३२
तथा—प्रतीयमान पुनरयदेव बम्बस्ति वाणीषु महाकवीनाम ।
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभानि नावप्यमिवाङ्गानामु ॥

है जैसे कि रघुनाथ म चित्र । इसका तात्पर्य यह हुआ कि चित्र म आचार
वेद्याध्या म प्रवृत्ता है, रग और पादिका उग चित्र म रानी आरुतिया का स्पष्टता
और उपयुक्त मी दर्श प्रदान करत है । इस प्रकार पद-पाठना म वाक्य का
निर्माण जाना है । परन्तु गुणा म विनिष्ठ पद हाव का वह साव्यरुपी चित्र और
स्पष्ट हो पायगा । आत्माग म उभय चमक और स्यावता प्रत्या है ।

चित्ररत्ना का उपाय रानी प्रकाश म जाना है जसकि चित्र का दशक यह
भूत ताय कि यह चित्र दशक रहा * । उभ चित्रगत पदाय मजीवि का वास्तविक
प्रदीप है । इसी लिए अन्य वाक्य की रूप क दशक साव्य का विशेष महत्त्व
दिया जाना * । रामन व नी कस म अभिप्रेत व चित्ररत्नी की भाति
वास्तविकता का भाव स्धारार किया है ।

चित्र चित्र प्रकार मुक्तमार और मयक्षुत्र जाता है प्रकार क पदाय का
हाना है मुक्तमार पदायों की आरुति का भाजन क लिए मन्त्र क चटकाव
रगा का प्रयोग किया जाता है परन्तु जगत मिर आदि मयक्षुत्र पीरा या
विभी राजम की आरुति उभाजन क लिए काय रामन क पीर रग का प्रयोग
ही उपयुक्त रहता है । इस प्रकार रामन भावा रापी रचना म मुक्तमार एवं
रहित पदय ही उरगापी रहता है उमकारगीत काय धणा शीय और
नय की अभिवक्ति क रूप म मयुक्त एवं परप पद रन्त्र प्रभावगापी रहता
है । इसी अपजा म वैदर्भी गौडी और गवापी उन तीन शीनिया का स्वीकार
किया गया है । इसम वैदर्भी मुक्तमारतम है प्रम ररण मदक रामन भाव क
निय यही उपयुक्त रानी है । उरम समाम का मववा जभाव या अन्य एवं लष
समाम ही स्वीकार किया है^१ । पर एक विगाय उमरी मायता म अज्ञा है ।
एक और ता मायुय क जद गुग हाव की स्थिति म उमका स्वरूप पुष्यरपत्त्व
हाना है,^२ आत्र का गान्धर्व्य या मगामयुक्त हाना है^३ । वैदर्भी म उरर दमा
गुणा की स्थिति स्वीकार की गइ है^४ । इसी स्थिति म उमभ मरथा समाम

१ एनामु निमृणु रीतिषु रघुनाथिन चित्र वाक्य प्रतिष्ठितमिति ।

—मा०मूल० १,२,१३

२ मायुष्यजर्षवर्षे रचना लवितात्मका ।

अमृतिरन्वमृतिरा वैदर्भी रीतिरिदम् ॥

—माद० ८ ३

३ पृथक्पदस्य मायुष्यम ।

—कामूवृ० ३,१,०१

४ गान्धर्व्यन्त्वमात्र ।

—वगी, ३ १,५

५ तामां पूर्वा शक्या गुणमावर्ष्यात् ।

वगी, १ २ १६

भाव कम सम्भव है समानाभाव आवश्यक मानते हैं ता जाह का अभाव स्वाभाविकता हागा और यदि आज रत्ना रत्ना ना सम दगा गुण कम हूंग ? हम फल म सुवन नि क र्तिग रामन न समानाभाव म ही शब्द वैकी का मत्ता स्वाभाव का है । हम स्थिति म समप्रगुणत्व का पूर्ति अथ गुणा का मत्ता म माना है ।

उत्तम समानाभाव का आरंभ मय अत्रप्रतिषेध का नश्य करव किया गया है । तत्र समाना म यत्र नश्य सिद्ध हा जाता है । तपतम समान भा न जान पाय गया रत्ना प्र प कम मितता है । पाशय रत्ना रिय विश्वनाथ न प्राथमिकता आरति का रत्न रिकय म आरति पर रत्ना^१ ।

जागत भावा न र्तिग माना आर मित्रिन र निय पांचात्ता रति माना है इयाकि हम मातृप्र एव जाह रत्ना का रत्ना मत्ता रत्ना^२ । रानिया क निदान क र्तिग स्त्राकृत गुण एव अत्रद्वार नात्नात्त्य विवचिन भाव क प्रकाशन म अत्र्य प्राप्ति आर प्राप्ति का सम रति मयता और मानय का सिद्धि प्रदान करत है यत्र नत्र न रत्ना म स्पष्ट है । समाधि गुण आगत अवगत क रूप म मयता अवशत क रूप म कथना का सिद्धि करता है ता अवशक्ति वण्य पन्थि क अरूप रत्ना प्रयथापित करता है^३ ।

१ मार्तण्ड समानाभाव तदत्रार्थो नभ्यामवगणमभ्यन्ताम्वाद्या ।

—वही १०००

रानिय कृपण टि० १३

२ समस्तमवपत्तामात्र क र्तिग सम रति मयता

मपुत्रा सुवमाग च पात्राया उवया त्रिद्व ।

—मव० २३०

रामन आर का अभाव मानता है—

जाह का अभावानु रणय विनया च । रामव० १२१३

नू पर म मय गात्र क वत् यान क्वापवना

अनर्था र्तिगता प्राय पात्रा श्रात्ररमायनम —उत्र ३१२५ पर

५ आगा अवरार्तिमन्त समाधिराम्यायत ।

—वत् ३११६

६ अवशक्ति समाधि अथा द्विविधा यानि रत्नायायानिवा ।

—वत् ३२०८

७ वन्दुत्वभावमपट उमवशक्ति

वहा ३२१८

मथा—वशक्ति रतिमान पुरस्तात्त्रि वस्तुन ।

यत्रावशक्तिरुत्तरान मा वदयति स्मता गण ।

वत् ३१२५ पर उवाक १०

जिम प्रकार गुण शब्दगत और अर्थगत ह उमो प्रकार अलङ्कार । ध्वनि-मिद्धान्त की प्रतिष्ठा न हाने पर भी उमक वाचक शब्दा का प्रयोग ता य आचार्य भी करत ही दे । इमत्रिये काव्य मे रम-भावादि अभिव्यक्ति की मान्यता उन्होने कान्तिगुण के नाम म दी ह ।'

साराग मे वामन का रीति-विवेचन और उमक प्रसङ्ग मे गुण व अलङ्कारो का निरूपण उम महान काव्य-चित्र की पूणता व त्रिग ह । विशेष अभिव्यक्ति की सामर्थ्य वाते शब्द और अर्थ उनम निरूपित गुण और अलङ्कार उम त्रिग के उदादान और जमाप्राप्ति निमित्त कारण ह । उनकी भवित्वि चित्र की निष्पत्ति के लिए निराल्प अनिवाय ह । यह निष्पत्ति त्रव पूर्णता को प्राप्त हो जाती है ता उम अकम्पा का प्राचाय वामन न पाक की सजा दी ह^१ । उसी पाक मे कवि की पूणता परिनिश्चिन ज्ञानी है । काव्य-विम्ब की दृष्टि म वामन-निर्दिष्ट पाक का विस्तृत विवरण जल्लाय ७ क अंश म किया गया ह ।

दस प्रकार चमत्कार-बोचना द्वारा प्राचीन गार्ह्य म वामन विम्ब-विज्ञान व सार प्राञ्च को खान बीच म समेटे हुए ह ।

गद्यशब्द और विम्ब - यहां एक श्रान्ति का निराकरण करना और आवश्यक ह । विम्ब व प्रसङ्ग म यह कहा गया ह कि विम्ब-प्राप्तता पद्य म ही हो सकती है, गद्य म नहीं । क्योंकि पद्य म जो मगीनात्मकता रहती है वह पद्य म समभव नहीं ह । परन्तु यह भी ठीक नहीं । जो श्लोक चित्र और वस्तु मे नाद और त्रय की सृष्टि मानता है^२ गद्य म भी उद-नाद की स्थिति स्वीकार करता ह,^३ वह गद्य म विम्ब का जन्म माने यह जाश्चय की बात है । वाण का गद्य काव्य उन विम्ब-रत्ना का भण्डार ह ।

१ दीप्तरम्ब कान्ति । वही ३ २, १५

२ गुणस्कृष्टम्ब-माकल्य काव्यपाक प्रचक्षत ।

चूतस्य परिणामेन म चायमुपसीयत ॥ उमी पर श्लोक

३ गद्य म जास्तरिक मगीत की प्रवाहपूर्ण गतिमयता नहीं होनी, इमका वास्तविक स्वरूप व्याख्यात्मक होता ह । एमी स्थिति म जैसी मरी प्रारणा ह, एक गद्य-रचना म विभिन्न विम्ब का वह परस्पर विलयन समभव नहीं जा एक कविता म है ।
-काव्या०वि० पृ० ६३

४ चित्रकता और वास्तुकता मे भी नाद और उद पूणन समाविष्ट ह ।

—वही, पृ० १५८

५ वही, पृ० १४८

- ६ मिश्रित विम्ब—इनमें जनक शब्दों के संगठन में किसी एक पूण विम्ब का अनुभव होता है। जैसे—जात जग्नि।
- ७ मशिनष्ट विम्ब—इनमें जनक शब्दों में एक साथ कई विम्ब बनते हैं। जैसे—अनिगुजित उपवन।
- ८ मिश्रित निष्काय विम्ब—शब्द बहूत में शब्दों का एक संगठन बन जिसमें एक ही निष्काय विम्ब बने। उसमें कोई पूणता न हो। जैसे न्यायपूण, दयानुता।
- ९ मशिनष्ट निष्काय विम्ब—शब्दों का एक संगठन जिसमें कई निष्काय विम्ब बने किन्तु कोई पूण न हो। जैसे सच्चा दान, पवित्र प्रेम।
- १० निष्काय मिश्रित एवं निष्काय मशिनष्ट विम्ब—एसा मशिनष्ट या मिश्रित विम्ब जिसमें जम्बू-विज्ञान विम्ब में अधिक महत्त्व का हो या जिसमें एक या जनक विम्ब जम्बू-विज्ञान की विशेषता निगमित करत हो। जैसे स्वर्णिम, मदीरता।

दस्तावेज में देखा जाय तो इस वर्गीकरण में दयापत्र जम्बू-विम्ब है। जैसे द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम में अन्तर स्पष्ट नहीं है। तीनों ही भावनात्मक हैं। इसी प्रकार ८ और ९ का अन्तर भी स्पष्ट नहीं है। इनकी विभाजन रखा स्पष्ट नहीं है। पुन सामान्य रूप में दयानुता आदि में क्या विम्ब बनता यह बोधगम्य नहीं है। इसमें भी अनुभूतिमान ही होगी। इस कारण यह वर्गीकरण पूर्णतः स मान्य नहीं है। ज्योंही ब्रजनन्द स्वयं ६ प्रकार के विम्ब स्वीकार करत हैं—१ जनक, २ मशिनष्ट, ३ मूल-विज्ञान ४ जम्बू-विज्ञान ५ आकृति विम्ब, ६ ध्वनि विम्ब^१। इनमें सबसे और उठे प्रकार को वे हीन कौटिक का मानत हैं। इसमें अतिरिक्त व निचार-प्रधान और भाव प्रधान ये दो श्रेणियाँ भी मानत हैं। परन्तु प्रयोग के प्रसङ्ग में उन्हीं साध्यवगान विम्ब की भी चर्चा की है^२। उगको जनक और रूपक में तो उल्ला नहीं जा सकता। एसी स्थिति में उमका अन्तर्भाव विम्ब में होगा, यह स्पष्ट नहीं है।

उन्हे अतिरिक्त वे एक अन्य वर्गीकरण भी प्रस्तुत करत हैं। उसके

१ काव्यान्वितः पृ० ७५-७६ पर *The Poetic Pattern* pp 90-91 में उद्धृत।

२ वही, पृ० १०६

३ का० विम्ब० पृ० १०२

अनुसार विम्व की तीन श्रेणिया पायी हैं—१ प्राथमिक २ माध्यमिक
३ त्रितय (सम्भवत तृतीय)

१ सामागिक पदार्थों म एन्द्रिय समर्प ज्ञान पर उसके प्रभाव म घटित
ज्ञान वाना विम्व ।

२ प्राथमिक विम्व म नवान विम्व की जा मुष्टि होनी है वह इम
श्रेणा म जाता है । इका सामागिक पदार्थों म समीकरण ता नहीं हाता किंतु
प्राथमिक विम्व का सहायता म समीक्षाएत हाता है ।

३ इम माध्यमिक विम्व म तृतीय विम्व वनत ह । इम ताम्बविक
समाग न निगूढ तत्त्वा म निहित मूर्त्य तत्त्वा का समावेश हाता है ।

म वर्गीकरण म भा खीचतात स्पष्ट दिवाइ शनी है ।

एक वर्गीकरण युग क अनुसार है । जाधुतिक युग न पनाविनामानी
समीक्षर प्रायः और एतएर क माय यग या जुग का भी नाम जाता ह ।
एक अनुसार काव्य विम्व तीन प्रकार क हात हैं । एका स्पष्ट विवेचन
म प्रकार किया गया है—

मनुष्य का समवत व्यक्तित्व मनापा (Psyche) क रूप म हाता ह । उम
क तीन स्तर हैं—

१ सर्वोच्छ्रित्त नियोगान मत्र चतन त्रिमम उमका जह (Ego)
निवास करता है ।

२ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कद्र व्यष्टिगत जचतन (Personal unconsciousness)
मम मानव की विम्वत प्रारम्भिक अनुभवा की समग्रता निमित्त
रहता है ।

३ विम्वतम एव मशितए व तटित मामूहिक जचतन (Collective
unconsciousness) । मम व्यक्ति न वयवितक गुणा का वाप हा जाता ह ।
पैतृक मस्तिष्क जित्व (Inherited brain structure) सम्पूर्ण मानवता म
समान रूप म जवत है ।

एन म त्राम स्तर म भौतिक पदाया क माय एन्द्रिय समर्प ज्ञान क
एत्रिय विम्व वनत है । द्वितीय स्तर म मस्तर और स्मृति क जागर पर
बौद्धिक स्तर क नवान विम्व वनत ह । तृतीय स्तर म आदि विम्व काय

१ काव्य विम्व पृ० १०६

२ वटा पृ० ११५-१२०

करते हैं। किसी समाज में दीर्घ परम्परा में चली आई पुराण कथाओं, धार्मिक-संस्कारों का स्थायी प्रभाव रहता है। उनमें प्रेरणा लेकर रूपक कथाएँ लिखी जाती हैं। जैसे भारतीय साहित्य में आत्मा का प्रतीक हंस और मत्स्य का प्रतीक मेमल का फूल है।

लेविस की दृष्टि से विम्ब भेद—लेविस महाशय ने अपने बहुमूल्य ग्रन्थ "दि पोयटिक इमेज" में इमेज के तीन ही प्रकार गिनाये हैं। उनमें पहला जीवित विम्ब (Living Image) है। इसका आधार समकालिक युग की दैनिक एवं प्रत्यक्ष होने वाली वस्तुओं के पर्यवेक्षण से मस्तिष्क पर पड़ने वाला प्रभाव एवं स्मृति है। यह इस सिद्धांत के अनुसार है कि कवि की उत्तम रचना में उसके व्यक्तित्व एवं समकालिक युग का प्रभाव हो। इसका तात्पर्य यह है कि समकालिक युग की विभिन्न परिस्थितियों का कवि के मानस पर जो प्रभाव पड़ता है, स्मृतियों और संस्कारों के आधार पर उसके मनोवेगों को प्रेरणा मिलती है। उनमें नित्य नवीन विम्बों की रचना होती है। उन्नतकाल के अध्येता उन विम्बों के सहित कवि की समकालिक परिस्थितियों का ज्ञान करते हैं।

द्वितीय खण्डित विम्ब (Broken Image) है। जब कवि अपने मनोवेग, अनुभूति और धारणा के प्रकाशन के लिये कुछ ऐसे प्रतीकों का प्रयोग करता है जिन्हें वही समझ सकता है, तब उन प्रतीकों में कोई पूर्ण विम्ब नहीं बनता है। यह समकालिक परिस्थितियों के कारण कवि के विशृङ्खल जीवन का परिणाम है। इसमें तार्किकता और उसके अनिर्णीत अन्त का प्रभाव छिपा होता है। फलस्वरूप जब कवि का अपना अंतम् ही विशृङ्खल एवं खण्डित हो, वह काव्य में एक पूर्ण एवं सुमगठित चित्र ब्रह्म प्रस्तुत कर सकता है।^१

तृतीय शाश्वत विम्ब—समकालीन घटनाओं एवं दृश्यों को देख कर कवि जो प्रभाव लेकर वर्णित करता है, उसकी तट में कुछ सार्वभौम और सदयुगीन सत्य भी छिपे रहते हैं जिनका कवि अभिव्यञ्जन करता है। इनका आधार

1 The poet of course cannot be picking his images with an eye on posterity. He should be happy enough if he can give pleasure to his own generation.

—The Poetic Image p 92

2 If A poem brilliant perhaps in the detail piercing deep perhaps with its momentary intuitions, but unsatisfying in the round, an incomplete Poem a heap of broken images — Ibid p 124

जाति की चिरन्तन परम्पराएँ रहती हैं जिनका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में हमारे मस्तिष्क पर बना रहता है।^१ उनके प्रतीक विम्ब बन कर काव्य में प्रस्तुत करना होता है।

लेखिन महाशय द्वारा निरूपित इन विम्बों में अन्तिम पिछले वर्गीकरण का जादिविम्ब में अभिन है। वस्तुतः इन विम्बों के साथ साथ परिभाषा भी बड़े विवेचन के साथ दे दी गई है। परन्तु इनके स्वरूप विवेचन के पश्चात् भी विम्ब के स्वरूप की कोई निश्चित धारणा बनानी कठिन है। मूल और अमूल विम्बों की चर्चा भी नहीं की गई है।

नगेन्द्र सम्मत विम्ब भेद—१० नगेन्द्र ने इन विम्बों का वर्गीकरण ५ भेदों में किया है।^२

१ एन्द्रिय विम्ब—दृश्य श्रव्य स्पर्श घ्रातव्य रस्य।

२ लक्षित एवं उपलक्षित—लक्षित (स्पष्ट या मूल) उपलक्षित (प्रोत्पन्न/वृत्त)

३ सरल एवं मशिनपट—मुक्तक रचनाओं में सरल अनेक विम्बों में मिश्रित एवं जटिल।

४ खण्डित और समाकथित—घटना या प्रवृत्तियों में। खण्डित अनुभूतियाँ पूर्ण विम्ब (तुल्य भाग निरग परम्परित)

५ वस्तु परक व स्वच्छन्द—इस श्रेणी में यथाथ परक सामान्य एवं प्रकल्पित विम्बों की गणना होती है।

इनके अतिरिक्त आद्य विम्ब एवं स्मृति विम्ब भी माने हैं जो कि जय विम्बों के उपादान हैं। कुछ न वैदिक विम्बों भी स्वीकार किया है और उनका स्वरूप धारणा अथवा प्रयायमान माना है। किन्तु धारणा विम्बों का विपरिनाथक शब्द है।^३ उनमें वर्गीकरण संभव नहीं। अब वैदिक विम्बों को

1 They are the reprints preserved in the great memory, of innumerable repetitions of certain modes of experience. Like those deep sunken prehistoric earth works which are invisible to a man stand not upon them yet whose configurations may be observed from an aircraft flying high above. They are apprehended only by the estatic distanced impersonal vision of art.

—Ibid p 142

२ काव्य विम्ब पृ० १७

३ वज्ञा पृ० १।

अमूर्त बिम्ब तो माना जा सकता है। कुछ लोग प्रज्ञात्मक बिम्ब एवं भाव-बिम्ब भी मानते हैं। इसी प्रकार कुछ ने गतिबिम्ब भी स्वीकार किया है। परन्तु नगद्वय उसमें रूप और शब्दों के तत्त्व की अधिकता होने में उसे स्वीकार नहीं करते।^१

इसी प्रसङ्ग में उन्होंने पन्त के एक बिम्ब नितम्बमयीवीणा का उदाहरण दिया है और उसे चाक्षुष बिम्ब पर आधारित माना है। इस बिम्ब का औचिन्य विचारणीय है। यदि मस्कृत काव्या की भांति इस बिम्ब में नितम्ब की गालाई का सूचन ही अभीष्ट है जैसा कि प्राचीन तुलना में "स्थ-चक्र" की गुलाई सासान्य^२ धम है, तब तो बिम्ब कोई मशकत नहीं कहा जा सकता। यदि नितम्ब के साथ ग्रीवा तक का भाग समानता का विषय है तो भी वीणा के साथ स्थ-नाम्य कुछ मशकत नहीं। वीणा के साथ तुलना का औचिन्य ध्वनि से बनता है जैसा वाण का बिम्ब "दन्त वीणा"^३ मर्दों के समय में कितना साधक है इसे आलोचक स्वयं विचार कर सकते हैं। यदि नितम्बमयी वीणा के बिम्ब में कवि को ध्वनि का भाव भी अभीष्ट है तो निश्चय ही जुगुप्सित भाव का प्रत्यायक होने में अश्लील दाप ही बनता है। चलने समय यदि हिनत नितम्बा पर कवि की दृष्टि है तो निश्चय वीणा के साथ उनका साम्य असमय है।

उमा अष्टवश का मन—उमा अष्टवश सभी बिम्बों का तीन भेदा में समाहार करती है—

रूपात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक

वस्तुतः वर्गीकरण करने समय दो बातें ध्यान में रखनी आवश्यक हैं—

१ बिम्बों का स्वरूपात्मक वैशिष्ट्य २ प्रक्रियात्मक वैशिष्ट्य जब तक उनके उपादान स्वरूप निर्माण-प्रक्रिया और मूल भावना का ज्ञान नहीं हो पायेगा, तब तक उनका परस्पर भेद स्पष्ट नहीं होगा।

संस्कृत काव्य शास्त्र के आधार पर स्थूल भेद—संस्कृत साहित्य शास्त्र के आधार पर बिम्ब के भेद स्थूल दृष्टि में निम्न प्रकार में बनते हैं—

१ काव्य-बिम्ब पृ० १६

२ पृथुवर्तुनतन्निगम्बकृत् मिहिरम्य-दनचन्द्रशिक्षया ।

विद्विग्गक-चक्रपाणिनिमु निमित्तमिति मामथ ग्यम् ॥ नैच २, ३८

३ दन्तवीणोपदेशाचार्या ह०च०, पृ० ७६५

४ छाया काव्य में बिम्ब-विधान, पृ० १६

मृत विम्ब अमृत विम्ब पूष विम्ब खण्ड विम्ब नाद विम्ब मशिलष्ट विम्ब अम्पष्ट अथवा गुमित विम्ब । ये शुद्ध स्वरूप के आधार पर वर्गीकृत हैं ।

प्रनिया ५ आधार पर विम्बा को हम तीन भेदों में बाँट सकते हैं—

प्रस्तुत विधान में वन अप्रस्तुत विधान से बने व विम्ब प्रतिविम्बभाव में वन विम्ब । प्रथम में प्रसङ्ग के अनुगार किसी वस्तु व्यक्ति स्थान दृश्य आदि का व्यंग्य में स्वभाविक व भाविक अलंकार के स्थल वाच्यार्थ व साथ एर्थात्प्रय प्रत्यक्ष से बनने वाले विम्ब हैं । द्वितीय व अन्तर्गत लक्ष्याथ और व्यंग्यार्थ से बनने वाले विम्ब माध्यवसान विम्ब प्रतीकात्मक विम्ब समासादि अप्रस्तुतप्रशंसा सूक्ष्मात्मक कारण में वन विम्ब एवं तत्सदृश अनन्त कारणों में वन विम्ब भी आते हैं ।

विम्ब प्रतिविम्ब भाव की श्रेणी में सादृश्य भाव को लेकर बने विम्ब आते हैं ।

उसमें उपमा रूपक उपेक्षा दृष्टांत तुल्ययोगिता प्रतिवस्तूपमा निदग्ना स्मरण मन्त्र साम्य मूलक अनन्त कारणों में बने विम्ब एवं नाद विम्ब या ध्वनिचित्र सबका अन्तर्भाव हो जाता है ।

आधुनिक समीक्षा व अनुसार अप्रस्तुत विधान साम्य मूलक अलंकारों में आता है । क्योंकि व प्रस्तुत की तुलना में अप्रस्तुत की योजना करने में विम्ब का निर्माता स्वीकार करता है । किंतु प्रस्तुत व चित्रण व बिना कवन अप्रस्तुत चित्रण अप्रस्तुत प्रशंसा अथवा अतिशयाक्ति के अतिरिक्त अन्तर्गत कहा होता है ? क्योंकि अप्रस्तुत का स्वरूप विम्बित होने पर उसकी प्रविच्छाया के रूप में प्रस्तुत का भी विम्बित होना है या या कहें कि मन्त्रिक में अप्रस्तुत के विम्ब व प्रशंसा में प्रस्तुत का स्वरूप भी स्पष्ट हो कर प्रतिविम्बित होता है । अतः उपमा ज्ञान में जल में जगमेय और उमान दोना का उपादान होता है । दोना का साधर्म्य जल में स्पष्ट होने पर ही उनका समानता समझ में आती है । उसमें दोना का ही विम्बित होना है । अतः प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोना ही व वाच्य होने व कारण साम्य मूलक अनन्त कारणों में प्रस्तुताप्रस्तुत दोना की ही योजना होना है केवल अप्रस्तुत का नहीं । जैसे पूर्वोदाहृत दोहे में प्रीताम्बर धारा कृष्ण और नीलमणि के पल्लव का साम्य स्पष्ट है ।

प्रत्येक अलंकार विम्ब—अनन्त कारणतत्त्व विम्ब योजना का असाधारण उपकरण है । यदि कहा जाय कि प्रत्येक अलंकार अपने आप में एक विम्ब है तो कोई अयुक्ति न होगी । आज तक संस्कृत साहित्य में अनन्त कारणों की

इयत्ता निर्धारित नहीं हो सकी है। भरत के समय में उनकी मध्या में वृद्धि होती रही। यह १२० तक पहुँची। किन्तु काव्य-ग्रन्थों में अभी भी अनेक ऐसी चमत्कार—“पूर्ण उक्तिया मिलती है जिनको अब तक स्वीकृत किसी अलङ्कार की परिधि में नहीं रखा जा सकता। अलङ्कार का सामान्य लक्षण चमत्कारजनकता^१ स्वीकृत होने के कारण कोई मनीषी यह दावा नहीं कर सकता कि ये नवीन अलङ्कार मान्य नहीं। क्योंकि अलङ्कार उक्ति-प्रकार-विशेष के अतिरिक्त कुछ नहीं है।^२ अतः अहा भी उक्ति-वैचित्र्य, नवीनतम या वनाकितकृत चमत्कार मिलेगा, वही अलङ्कारत्व स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा दूसरों द्वारा स्वीकृत अलङ्कारों को आप भी कह सकते हैं कि हमें ये मान्य नहीं। इस प्रकार नवीन अलङ्कारों की सम्भावनाएँ समाप्त नहीं हुई हैं। यह स्थिति तो अलङ्कारों की है। रस की दशा कोई भिन्न नहीं है। अकेले शृङ्गार रस के जनन्त भेदों की सम्भावना स्वीकृत है। फिर गुण, रीति, वृत्ति, पाक, शय्या इनका चमत्कार पूरक रह गया। इनके भेद-प्रभेद करने का ‘नौ शत पूत मवा लख जाती’ वाली स्थिति बन जाएगी। फिर अनेकों का तो यहाँ तक कहना है “प्रत्येक काव्य ही एव विम्ब है।”^३ इस दृष्टि में तो विम्बों की मध्या काव्य-प्रकारों के साथ-साथ बढ़ती जाएगी और उन का वर्गीकरण सम्भव ही न रहेगा। उस दशा में उनके स्वरूप का निर्धारण करना कठिन हो जाता है। अब एक सामान्य आधार परिगणन के लिए बनाना निम्न आवश्यक है। वह निम्न प्रकार में है—

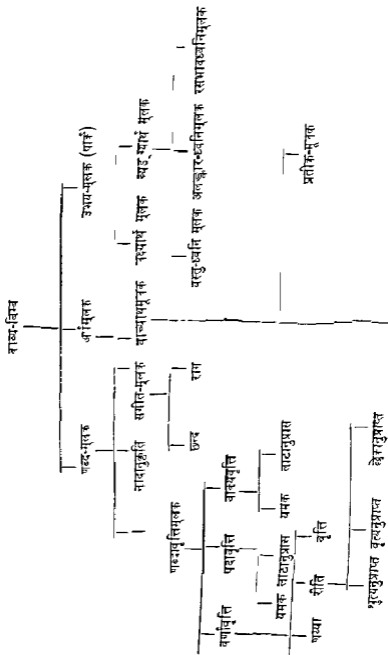
१ त्व राणा भव भरत स्वयं नराणां दन्यानामहमपि राजगणं मृगाणाम् ।
गच्छ त्वं पुरवग्मय सम्प्रहृष्ट महृष्टस्त्वहमपि दण्डकान् प्रवेश्ये ॥ छायां
ते दिनकर भा प्रवाप्रमान वपत्रं भग्नं करान् मूर्ध्नि जीताम् । एतेषा-
महपि काननद्रुमाणा छाया तामतिशयिन मुखी श्रियिष्ये ॥ शत्रुघ्न
कुशनमनिस्तु मे सहाय सौमित्रिमम विदित प्रधानमित्रम् । चत्वार-
मनययग पय नरेन्द्र सत्यस्थं भरत धराम मा विपीद ॥

—वाग २ ६६, १७-१६

२ रमादि भिन्न-व्यङ्ग्य भिन्नत्वे सति शब्दार्थान्यतरनिष्ठा या विपर्यिता-
सम्बन्ध प्रावच्छिन्ना चमत्कृतिजनकतावच्छेदकता तदवच्छेदकत्वम् (अलङ्-
कारत्वम्) । चि०मी०, पृ० ३४

३ अभिधानाप्रकारविशेषा एव चालकारा । स्य्यक जस०—पृ० ८

४ तु० As a matter of fact there can be no poetry without
poetical image —Sudhi Sankar Bhattacharya-Imagery
in Mahabharata p 31



एक वर्गीकरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य के जितने प्रकार हैं, उतने ही विम्ब हैं। चमत्कार की विधाया में अनेक अलङ्कारों की ही सीमा नहीं है। सभी कारणों में बल विम्बों की पूर्णतः गणना कठिन होगी। अतः इस प्रपञ्च को सुबोध बनाने के लिए विशेष यत्न की अपेक्षा है।

समाख्येय यहाँ संस्कृत साहित्यशास्त्र के अनुसार दिखाने लगे अधिकांश विम्ब लगे हैं जो कि आधुनिक समीक्षा-शास्त्र-ममत विम्बों में भी मेल पाते हैं। परन्तु इन प्रश्नों पर विचार करने पर पृष्ठा में दिये गये विवेचन में ज्ञान होना है कि आधुनिक समीक्षा में लक्ष्य नहीं है। तो भी वाक्य-नामान्य में पाये जाते हैं। वाक्य-विम्ब इनमें अन्तर्भूत हो जाते हैं। उदाहरण के लिए अमृत विम्ब में मानस विचारों का भाव या विचार सभी प्रकार के विम्बों में वर्तित है। मूल में अमृत मन्त्रों में इन विम्बों को जोड़ा है। नाद विम्ब ध्वनि चित्र (Sound picture) का ही दूसरा नाम है। मण्डित विम्ब (Complex image) में पृथक् नहीं है। अमृत विम्ब स्टैटन-ममत विचारों में समाप्त है। पूर्ण विम्ब मिश्रित विम्ब मन्त्र है। विभिन्न अलङ्कारों में प्रयोग में बने हुए विम्ब इन्हीं में आ जाते हैं। इनके स्वयं विवेचन और अभिव्यक्ति उदाहरण अनेक अध्यायों में विस्तार से दिते जा रहे हैं।

अप्ययन विवेचन में यह तर्क स्पष्ट हो जाता है कि विम्ब-विवेचन धारणा प्राचीन सम्पन्न साहित्य में पूर्णरूप में विद्यमान थी। कवि और आचार्य उन्हीं में बने हुए थे। किन्तु आधुनिक समीक्षा शास्त्र की भाँति यह पृथक् विवेचन ही संभव नहीं है। विश्वेश्वर प्रतिपादित चमत्कार के सात कारण अलङ्कार शास्त्र के विषय में हैं। कारणों में से भी स्पष्ट है ही। ध्वनि कर्माणि सुद्ध अलङ्कारादियाँ की दृष्टि में पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं। सम्भवतः विश्वेश्वर ने इमीति चमत्कार के कारणों में नहीं गिना। अतः ही दास प्रसाद में उक्त उदाहरणों के लिए उक्त साधना प्रदान की है।

द्वितीय परिच्छेद

प्राचीन संस्कृत काव्य में काव्य-विम्बों के आदर्श

शास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि लक्ष्य और लक्षण दोनों के सम्मिलन से शास्त्र का निर्माण होता है^१। किसी सिद्धान्त की चर्चा करते ही उसकी प्रामाणिकता और निदर्शन का प्रश्न उठता है। पाणिनि ने अपने समकालिक प्रयोगों को देखकर ही व्याकरण की रचना की थी। आनन्दवधन ने भी ध्वनि सिद्धान्त की पुष्टि के लिए रामायण और महाभारत सहस्र महाकाव्यों में उपनट उदाहरणों को ही प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किया था^२। अतः काव्य-विम्बों के शास्त्रीय विवेचन में पूर्व प्राचीन साहित्य में विद्यमान उसकी दीर्घपरम्परा के कुछ निदर्शन स्वामी-पुलाक-शाय में यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

संस्कृत काव्य का आधार वैदिक कविता है, इस विषय में सभी मनीषी एकमत हैं। इसलिए सर्वप्रथम एक दृष्टि वैदिक काव्य पर डालनी होगी। इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम ऋग्वेद में कुछ उदाहरण यहाँ रखते हैं—

सूर्यो देवीमुपस रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।

यथा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम्^३ ॥

यहां उस काल में अनन्तर सूर्योदय का वर्णन है। परन्तु शब्दावली में उदयमान सूर्य की समता किसी मुन्दरी के पीछे-पीछे जाने युवक से की गई है। सारी श्रुति का जब समझते ही सहृदय पाठक की अन्तर्दृष्टि के समक्ष ऐसा दृश्य घूम जाता है जिसमें कहीं लगे बड़े मेल में नाग खेल-तमाशे में मनोरञ्जन कर रहे हैं और उस अवसर पर कोई युवक किसी मुन्दरी का अनुगमन कर रहा हो।

१ लक्षणप्रमाणाभ्या हि वन्तु-सिद्धि । अज्ञानकृतं क

२ अब च रामायण-महाभारत-प्रभृतिनि लक्ष्ये सवत्र प्रसिद्धव्यवहार

अभ्युपगता सहृदयानामानन्दो मनसि लभता प्रतिष्ठामिति प्रकाशयत ।

—ध्वन्या, पृ०, ३८

इस प्रकार इस ऋचा में उपमा जलङ्कार की महायता में मुन्दर विम्ब की मृष्टि हुई है। उत्तरार्ध में वातावरण का प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार—

अवेयमश्वद युवति पुरस्ताद मुहुर्बले गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्रक्षेतुगृह गृहमुपतिष्ठते अग्नि ।

यहाँ अरुणादय का वर्णन है। जाकाश में चाग जार लान लान आभा छिटक रही है नाक में झुटपुटा समाप्त हो रहा है और प्रकाश-प्रसार व साथ-साथ धर-धर में यज्ञ-वेदिया में अग्नि प्रज्वलित किया जा रहा है।

उस गूढ प्राकृतिक वर्णन की पीढ़ व्यञ्जना में प्रभात केना में धर धर में चूल्ह जनन और किसी ग्राम-नरुणा व रक्त वर्ण की गोवा का चरन के लिए छाटन का विम्ब भासित होना है। इस विम्ब में तरुणी के जाकार आदि स्पष्ट नहीं हैं। पान में यह अपूर्ण या अस्पष्ट ही है।

जयवन्द का निम्न मन्त्र करतुत भेष गीत का प्रतीत हाता है जिसमें भेष का मानव की भाति सम्वाधित करके यजन कडकन, समुद्र का क्षुब्ध करन एवं दग्म कर भूमि को तर करन का कहा जा रहा है—

अभिजन्त स्तनपादंदपोर्दधि भूमिं पजय पयसा समङ्घि ।
त्वया मृष्ट बहुलमंतु वयमारोषो दृशगुरेवस्तम्^१ ॥

इसमें आधुनिक सामूहिक घाप (नारवाजी) की स्पष्ट अभिव्यञ्जना हो रहा है।

प्रतीकारत्मक विम्बा की ता वद में भग्मार ही है यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र इसका अच्छा निदर्शन है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यं धर्माय दृष्टये^२ ॥

यह ध्वनिमूढक विम्ब का अच्छा उदाहरण है। वाच्यार्थ के अनुसार मूय-मण्डल मुक्ताशय है जिसमें प्रज्ञा व प्रतीक मूय का वास्तविक स्वरूप आवृत है। उस विरुण-समूह रूप जावरण के स्तन पर ही वह सत्य रूप दृष्टिगाचर हो सकता है। यह जाग्रिभौतिक अर्थ है।

१ ऋग्वेद १ १२८, ११

२ जय०, ४ १५ ६

३ यजु०, ४० १६

जाधिवैदिक अर्थ के अनुसार मूयनारायण का वास्तविक रूप इस दुर्दर्श रश्मि-समूह में आवृत है। इस आवरण को हटाने ही उनका सत्य रूप दृष्टिगत हो सकता है।

सीमरा आध्यात्मिक जन्म जीर है कि वहल में अतिमुन्दर प्रतीत होने वाला यह शरीर स्वर्णपात्र है जिनके भीतर मलमूत्र आदि घृणित पदार्थ जो उस देह का यथार्थ रूप है, छिपा है। ज्ञान के द्वारा उस आवरण का भेदन करके देखो, तब यथार्थ का ज्ञान ज्ञाया कि निम्न शरीर के लिए हम इतना मरत है, वस्तुतः वह घृणित पदार्थों में भग है।

इसके अतिरिक्त एक सामान्य अर्थ का जीर भाग होता है कि यथा सत्य मदा स्वर्ण पात्र या ऊपरी आकर्षण—माया (चकती पात्रिण) में टका है। उस नकली मुलम्मे को उतारने के बाद ही हमका यथार्थरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, प्रतीत हो पाता है। तभी मानव की माहनित्रा टूटती है

इस प्रकार शिरष्मय पात्र (दृक्चक्र) की यथा प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

अथ और ताराद के समन्वित विम्व का जिनम मशामाथ बाजे गये के साथ जाती हुई स्व-भना का चित्र उभरता है, उनमें निदशन निम्नान्वित पत्रिनयो में है। इसमें वीर रम की व्यञ्जना, शत्रु और जर्म का पत्रिपाक क्षमाकरण रूप में हृदय का प्रकृष्ट करता है—

गोत्रभिद गोविद वज्रबाहु जयन्तमजम प्रभूणतमोजसा ।
 इमज्जे सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रजे सदायो अनु सरभक्ष्यम ॥
 अभि गोत्राणि महसा गाहमानीऽवधोऽश्वीर रतमपुत्रिन्द्र ।
 बुध्च्ययन पुतनापाडप्रुधोऽस्माक सेना अवतु प्रयत्सु ॥
 इन्द्र आसाप्तेना बहुस्पति वक्षिणा यज्ञ पुर एतु सोम ।
 देवसेनानामभिभञ्जनीनाञ्जयतीनाम्महती परवग्रम ॥
 इन्द्रस्य वृष्णो वृष्णस्य राज आशित्यानाम्महती दाड्ड उग्रम ।
 महामनसा भुवन्वयवाना घोषो देवानाञ्जयतामुदम्भ्यात् ॥

इसमें विजयिनी मनाजा का अदम्य उन्गाह, विजय का सिहनाद, अपन मनापति शत्रु के बहा और मात्म की प्रशंसा करके उसकी ओजा-वृद्धि करते हुए उसका भूतत्व में अदृष्ट विश्वास एक साथ सम्मिलित में रम चम है। यह

एगा मग्निप्ट विम्ब है जा कि विमा भी उद्वृष्ट काव्य विम्ब म टवर न
सकता है ।

मग्निणि त धम्मणाऽऽच्छादयामि सोमस्त्वा राजामतनानुषस्ताम ।

उरोऽवरीयो वरुणस्ते कृणोतु जय त त्वा नु देवा मदन्तु ॥

यत् मग्निणि धम्मणा तन अश म दम-अवच का मम घ्वनि वमधारण
का मृत घना रहा है

माध्यवमान और आद्य विम्ब का वैदिक काव्य म स्थान-स्थान पर मिनत
है । इसका तम निवर्तन अस्यवामास मून ३ । उमच प्रताका क जाधार पर
मगभागत आदि शैविक काव्या म भी कद विम्ब उपन प्र हान ह । उदाहरण
क लिए मव-मर चक्र का पश्चिम दन वाता एक प्र । ह मत्र यह ३—

सप्त पुञ्जति रयमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिणाभि चक्रभरमनव यजमा विश्वा भुवनाधितस्यु ॥

वप म म वाग् मनाता का चक्र (Circle) सम्बृत माग्नि म परम्परा
है इस मत्र म त्मा चक्र का घणन यास्क कृत व्याख्यान न पुष्ट न
जाता ॥

त्मा परम्परा क प्रताका मव विम्ब उपनिपत्ता म भा मिनत ह । प्रदा
रण्ड उपनिपत्ता का निम्नलिखित वाक्य याग दर्शन म प्रमिद मामरम क म
का धार मन्त वरना ॥

अर्वाग विलचमस उध्वबुध्नस्तस्मिन यगो निहित विश्वरूपम ।

तस्यामत ऋषव सप्ततीरे पाण्टमो ब्राह्मणा सविदानः ॥

य मत्र का म जाति विम्ब का जटा आदेश मान सकत ह । ब्रह्मध
म अगामुख विदु म सामरस टपकता है जिमना पात करन क लिए यागा
द्वारा सचरा मुद्रा का माग्ना करन हुए प्राण का उम तक पहचाना जाता ह ।
य मत्र का व्याख्या करन म उपनिपत्कार न जवान विद आदि पारिभाषिक
गला का अथ मूर्तित किया ह । याग भाग म परिधित व्यक्ति न सद्गता

१ यजुर्वेद १ ८६

२ ऋग्वेद १ १६४ २

३ पाण्डित्य ३ ३ प्राणि च शतानि मवत्सग्याहारगथा

—नि०, ६, २७

४ वृ० ५ २ ३

५ व० ।

मे भली प्रकार समझ सकते हैं। शङ्कर ने भी इसे गोलमोल ही करके समझाया है। पर इतना स्पष्ट है कि यह अर्वाग्भिल चमस मिर या खोपडी है। योग-शास्त्र के अनुसार उमके मध्य ब्रह्मरूप है। इसका मद्धुत भी तैत्तिरीय उपनिषद् में मिलता है^१। उममे मिर और कपान के मध्य स्तन के आकार का लटकता हुआ मांस खण्ड ही इन्दु-विन्दु-साम रस का स्रोत है। उममे टपकने वाली विन्दु को साधक गण घाटते हैं। इसी प्रकार उमके नीर पर स्थित मात ऋषि आष, नाक, कान आदि इन्द्रिया ही हैं^२।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अश्वि-सूषन में वही उच्च बुध्न चमस उच्च-बुध्न अवत (कूप) के नाम से पुकारा गया है। यहा उसमे धारित होने वाले सोम रस को "प्राप" कहकर सूचित किया है^३। इसी प्रकार इस शरीर के लिए पुर शब्द का प्रयोग पाया जाता है^४। अथर्ववेद में ता उमे अयोध्या ही कहा है^५। ऋग्वेद में चंचित गङ्गा, यमुना आदि नदियों का योग-परक व्याख्या में इडा, गिङ्गना, मुपुष्णा आदि नाडियों का प्रतीक स्वीकार किया गया है^६। अश्वत्थ वृक्ष पीपल को कहते हैं परन्तु परम्परा में वह ससार व ब्रह्म के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। शिक्षाप्रद आख्यानों में हम सदृश प्रतीक वेदों में पुराणों तक फँसे हुए हैं।^७

१ म य एषोऽन्तर्हृदय आकाश । तस्मिन्नय पृथुपो मनोमय । अमृतो हिरण्मय । अतरण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बने, सेन्द्रयोनि । यत्रासौ केशातो निवतत । व्यपोह्य शीर्षकपाले । —तैत्ति०उप० १,५

२ बृह० २२४

३ परावत नासत्या तुदेशामुच्चाबुध्न चत्रथुर्जिह्मवारम् । सरन्नापो नयनाथ राये महृषजस्तृप्यतो गोनमस्य ॥ —ऋक् १,११६,६

४ नवद्वारे पुरे देही नैव कृवन्त कारयन् । गीता ५.३

५ अष्टाचक्रा नवद्वारा दवाना पूरयोध्या ।

तस्या हिरण्मय काश स्वर्गो ज्योतिर्गाऽऽवृत् ॥ जथ० १०,२,३१

६ ऋग् १०,६५,५

७ इडा भगवती गगा पिमला यमुना नदी । ह्योप्र० ३,११०

८ द्र० ११ अ० टि० २४, २६ तथा

एक पाद नोन्निवदति मलिलाद्धस उच्चरन् ।

पदस स तमुत्खिदेन् नैवाद्य न श्व स्यान्न रात्री ॥

नाह स्यान्न व्युच्छेत् वदाचन ॥ अथ० ११,४, (६)

प्रायः काव्य में विम्व विधान का प्रवृत्ति का श्रेय आधुनिक रामाण्टिक वाद का दिया जाता है । वल्लभ का आधुनिक है । अथ प्रजा महिष म उमका अनुकरण किंवा माण्डिय म हुआ है । रामाना प्रवृत्ति व उल्लय व मून म यूगाय म जा भा परिस्थिति क्या है । वल्लभ अनिर्वाणिक वस्तु है । किन्तु उमक कताय न का वृत्त मा वात भाग्याय माण्डिय म पूव या विद्यमान था वम नध्य का श्रम्वाकार ध्रानि म रचना है । उल्लयगत उमम मानवा भावनाओं व प्रवृत्ति म रान या आराय धानिर प्रवृत्ति व रिय प्रम दार्शनिक वरता प्राकृतिक उपानाना का मानवाकरण य वान प्रमुख है । उम प्रवृत्ति म मानवा भावन व वान एव मानवाकरण वल्लभ माण्डिय म पद्यात्मा भाषा म मिदत है । पित्र वृष्टा म उप वकन म उधन क्रचा मका निरक्षण है । कामाकि रामायण मत्तभागत भागवत पुराण जात तत्पनर वानि म आदि क्रिया व काव्या म एम अतक उल्लय उल्लयण भित्त है । इनम कामाकि रामायण का मध्या वणन म उल्लय निम्न पद्य अनिचम कारा उल्लयण है ।

चञ्चच्चन्द्रहरस्पर्शर्षो भावततारका ।

अथै रागवता संध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥^२

उप पद्य म संध्या का जहातिमा म रञ्जित एव चन्द्राय का शिक्तता व ना का माना वणन वरन एम संध्या एव चन्द्रमा म नायिका जात नायक भाव का गभावना कर मध्या का कामाकिरा एव प्रिय-सम्पन्न म भाववत्त नायिका क रूप म प्रस्तुत किया है । चञ्चल वक्ष्य एव उमानि न अम्बर राग य एव चम रारा है । कर राग तारका एव अम्बर म इत्य एम भावामिव्यक्ति व निग विणय उपकारा है । उम प्रकार य एव उय एव भावा मव विम्व का नम उल्लयण है । य एव जात न माहिय म उपन व विमा भा उल्लय मी वल्ल विम्व का तुवना म रखा जा सकता है

ता शिणक वरता म वन का य विम्व का उल्लयण भा उमा आदि काव्य म उपन है—

रश्मिहृत्त मोभाग्यस्तुपारावत मण्डन ।

निश्चामाध दृष्टात्तच्च द्रमान प्रकागत^३ ॥

उम उधन क्रम म भावाय म छु व क व्य एत हा जान म भित्त कानि चन्द्रमा का उणन है । एम का नाय पत्न म भित्त उणन म तुवना चत व

१ निशाराम निशार—माण्डिय शास्त्र जात वा ३ भाषा पृ० ११० ११०

२ वा०ग० ८ ८

३ व० २ १६ १३

मलिन विम्व का प्रतिविम्व है। दर्पण के लिये "अन्ध" शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है जो उसके मवथा श्रान्तिहीन दीर्घायु जादि अनेक धर्मों को ध्वनित करता है। इसकी तह में शीतलधिक्य के कारण चन्द्रमा के प्रकाश का सुखद न लगना सौभाग्य शब्द से व्यञ्जित है। इसके कारण एक और स्थूल चन्द्र-मण्डल की मलिनता और शंभय की सिहरन के मध्य सुय की धूप के सुखद स्पश की अनुभूति होती है, दूसरी और दशा परिवतन के कारण मलिन मुख और उदाम किसी व्यक्ति की आवृत्ति वा विम्व भी बनता है। "रविमङ्गलान्त-सौभाग्य" यह विशेषण तुलनात्मक विम्व भी प्रस्तुत करता है जिसमें अपने प्रतिद्वन्दी की उन्नति एवं लोकप्रियता व प्रकाश में अपनी दशा को देखकर गहरे अत्रसाद और असूया की तीव्र अनुभूति का भाव-विम्व उसे मखिनष्ट करता है। लोचन के शब्द किसी मात्रा में दशका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं^१।

भाव-विम्व का एक उन्वृष्ट उदाहरण अयोध्या काण्ड में मिलता है। अयोध्या लौट कर सुगन्ध दशरथ का गग मक्ष्मण और मीता न सन्देश गुना रहे ह। राम और मक्ष्मण व वाचिक सन्देश व वाद वह मीता की म्क विपादमयी अवस्था का चित्र ही खीच दता है—

जातको तु महाराज निश्वसती तपस्विनी।
भूतोपहतचित्रैव विष्टिता विस्मिता स्थिता॥
अदृष्ट पूतध्यसना राजपुत्रो यशस्विनी।
तेन दुष्टेन रदती नैव मां किञ्चिदन्नवीत्^२॥

उसका पगसा णम०वी० जायङ्गार ने मुक्त कण्ठ में की है^३। गहा उस

१ अत्र इति चारहतदण्डि । जान्यन्प्रम्यापि गर्भे दृष्टुपघानान् ।

अत्राय पुरोऽपि न पश्यताम्यत्रनिम्काराऽन्धाय न त्वन्यतम । इह न आदशम्यान्त्वभारोप्यमाणमपि न साद्यम । अवशदोऽत्र पदायम्फुटी-
करणाऽऽवन्त्व नष्टदृष्टिगत निमित्तीहृत्पादश लक्षणया प्रतिपादयति ।
असाधारण विच्छायावानुपयोगित्वादिऽनजानमसम्य प्रयाचन व्यनक्ति ।

—लो०पृ० १७२

२ वा०रा० २, ५०, ३४-३५

3 Who sat out for woods with her husband and had first time an experience of woes facing her Memories of the happy past were still in mind She was standing at the bank of Ganga and gazing towards Ayodhya with eyes full of tears She is presented as a symbol of life destined

विपण्य मुद्रा म स्थित सीता का सा चामप दिम्व है किंतु उमक पश्चात उमक हृदय मे स्थित दशा परिवर्तन के कारण हुए धार अवसाद का अनुभूति का भाव विम्व बनता है जो कही अधिक मार्मिक है । यह अमून विम्व अयन प्रभाव शाली है ।

मूत की तुलना अमून पदाथ क साथ करक जा दिम्व बनता है उसर उदाहरणा का भी कमा नही है । हनुमान वानरा क ममन साता का दयनाय अवस्था का वणन करत हुए उमका तुलना प्रतिपदा तिथि क दिन स्वाध्याय करन वाल व्यक्ति की विद्या म करन है—

सा प्रकृत्यैव तवङ्गो तद्विद्योगाच्च कजिता ।

प्रतिपत्पाठनीलस्य विद्य क तनुतापता^१ ॥

यह शास्त्रीय उमा है । प्रमशास्त्रा म प्रनिगदित है कि प्रतिपदा क दिन जो व्यक्ति स्वाध्याय करता है उमकी विद्या विस्मृत हा जानी है^२ । यद्यपि कुछ सस्कार उमक मन्दिष्क म बन रहत है परंतु जसा शास्त्र उपस्थित रत्ना चाहिये वैसा नही रहता अत ज्ञान-स्वरूप हान म विद्या अमून है जवकि सीता मूत है । इय तलना म साता का क्षणावस्था विद्य रू म विम्वित हो जाती है

रामायण की भाति महाभारत म भा काव्य विम्व की 'यूनता नहा है भन ही उसम वैपयिक मभारता हो । रात्रि-युद्ध क प्रसङ्ग म चन्द्रादयवणन का एक आकपक चित्र है—

तत कमुद-नायन कामिनोगण्डपाण्डुना ।

नेत्रानन्दन चन्द्रण माहन्दी दिगलङ्कृता ॥

ततो मुहूर्ताद भगवान पुरस्ताच्छगलक्षण ।

अक्षय दशधामासं वसञ्ज्योति प्रभ प्रभु ॥

to suffering Here is silence more eloquent than speech
The whole of the back ground is brighter than colour or
painting This is description which has passed the stage
of painting It is statuary in words solid as marble

— M V Iyengar The Poetry of Valmiki (Mysore) p 207

१ वा०रा० ५ ५६ ३५

२ अहोरात्रयो सद्यो पवसु च नात्रायत ।

उभयोरपि पत्रणोर्भित्तिस्तिविद्वय चतुर्णो प्रतिपच्चति । अथाऽष्टमाद्रय
चतुर्दशी-द्रय प्रतिपदद्वय च गृहान भवति । यौथा० ध०सू० १ ११ ३५

अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम् ।

रश्मिजाल महच्चन्द्रो मन्द मन्दमवासृजत्^१ ॥

इम उदाहरण में रामायण क—

ततोऽण-परिस्पन्दमन्वीकृतवपु शशी ।

वध्रे कामपरिक्षामकामिनी गण्डपाण्डुताम्^२ ॥

इस चन्द्रादयवणन का सा रोमानीपन ता नहीं है। उसके विपरीत ताटस्थ्यभाव में प्राकृतिक व्यापार का निरीक्षण है। चन्द्रोदय से पूर्व क्षितिज में लालिमा छाती है, तदनंतर चन्द्र-विम्ब दिखाई देता है। उसका प्रकाश धीरे-धीरे फैलता है। इस प्राकृतिक दृष्टा का वणन तो ठीक है पर यह वर्णन काँट नखिलिष्ट विम्ब प्रस्तुत नहीं करता। इसकी अपेक्षा पाण्डवों की मृत्यु के समाचार से मन में प्रसन्न किन्तु बाट्टर में विषण्ण धृतराष्ट्र की आत्मिक अवस्था का विम्बन निम्न पद्य में उपमा में माध्यम में अच्छा हुआ है—

अन्तहृष्टमनाश्चासौ बहिर्दुःखसमन्वित ।

अत शीतो बहिर्द्वेषोऽप्यो ग्रीष्मेऽगाध ह्रस्वो यथा^३ ॥

ममार क सभी प्राणियों का कानचक्र के पाश में बँधा होने एवं दिनरात जन्मन और मरन रहने की स्थिति का निम्न पद्य में रूपक जनशुद्धार के द्वारा गफलता में वर्णन हुआ है—

अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रि दिनेऽघनेन ।

मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि काल पचतीति वात^४ ॥

प्राधान्यक वनता द्वारा विम्ब-योजना भी इस आप काव्य में मिलती है। जैसे—

धृति क्षमा दम शौच कारण्य वागनिष्ठदुरः ।

मित्राणा वाऽनभिद्रोह सप्तता समिध धिय^५ ॥

यहां धृति यदि जमुतं भावा को लक्ष्मी का सवधक न कह कर समिधा कहा है। धृत्यादि अमृत भावा में लक्ष्मी की वृद्धि सहज-बोध्य नहीं है परन्तु

१ मभा० ७, ५६, ४२

२ वा०ग० ।

३ मभा० १, १४८८, १ (प्रक्षेप)

४ वही ३, ३२, ६६

५ वही (वडीदा) ५, ३८, ३४

समिधा डगन म अग्नि का मदान्त ता प्रयत्न व्यापार ह । उमक चाम्पुप विम्ब म थावृद्धि का अपूर्ण भाव भी मूर्त हो उठा ८ । यह निष्काय विम्ब का अच्छा उदाहरण है ।

वष्य बम्बु का यथाथ और साङ्ग वणन उमका अचित्र प्रस्तुत करने क लिए किया जाता ह । काव्यामर म उमक लिए अद्य-प्रकित गुण^१ जयवा स्वभावाक्ति^२ अत्रङ्कार का विधान है । उमक द्वारा वष्य का माथात्कल्प स्वल्प चित्रण मभव हाता है । जैम—

कुमारी वापि पाञ्चाली वेदिमध्यात समुत्थिता ।

सुभगा वदनीयाङ्गी स्वसितायतलोचना ॥

श्यामा पद्मपलाशाशी नीलकुञ्चित मूषजा ।

ताम्र-नुडगनखी मुभ्रूश्चारुवृत्तपयोधरा ॥^३

उम म यज्ञपि वष्य द्रापडी का पूरा अश्विन व ननी उमर पाया ह तथापि अपूर्ण चित्र अवश्य बन सका है । उमका वण नत्रा का नीदिमा विशादता वान घुघरात वण लान एव नुकात नख धनुषाकार भवें, गाल जीर कठिन उगद य रक्षण सामुद्रिक व अनुसार वर्णित हैं । इनम द्रापदा व उम जीर शारीरिक मगठन का कुछ भाग अवश्य मभव है ।

प्रताकामक जादि विम्बा का भी उमम अभाव नहा है । उमका एक निदर्शन—

द्वयदिनो द्वादशाङ्गस्य चतुर्विंशति-पर्यण ।

कस्त्रिपष्टि शतारस्य मासोनस्याऽक्षमी भवेत् ॥^४

यह पद्य ह । उम म वष का मद्धत ह । जस्य वामाय मुक्त (ऋक १ १६८) म अक्षित मवमर चक्र का हा उमम भा मकेत ह । पर चक्र का नाम नत्रा जाया है । उम प्रकार क प्रताकामक पद्य कूट शनाका क नाम म इस मन्त्रकाय म विखर पत्त हैं । यह ठीक है कि महाभारत क चित्र उमन रगीत जीर स्पष्ट नहा है जितन कि रामायण क^५ किन्तु उमका कारण महाभारत

१ अथ-प्रकितवम्बुस्वभावस्फुटवम । माद० पृ० २६८

२ स्वभावाक्तिस्तु विम्बादे स्वक्रियान्पवणनम । का० प्र० का० १० १११
म० भा० १ १६६ ४४-५५

४ वनी ४ २१ ४३

5 On this point Vyasa differs from Valmiki: unlike the latter he simply presents a faithful description of the actions and passions of the outer world without projecting in his own self on them or without intermingling them with the passions of his characters—the creatures of his muse—Sudha Sankar Bhattacharya, *Im in Maha* p 89

की शान्तरम-प्रधानता है। जहाँ कवि उम गम्भीरता का त्याग देता है वहाँ उसके विम्बों में भी गीनी आ जाती है। जैसे—

अथ स रशनोत्कर्षो पोन स्तन-विमर्दन ।

नाम्पूह-जघन स्पर्शी नीवी-विन्न सन कर ।^१

यह श्लोक शृंगार-गिञ्जित कल्प की अनुभूति कराना है। यहाँ मेखला की खींचना कुचमदन नामि आदि गुप्त स्थानों का छूना एवं नीवी-गिञ्जित-मोचन मद्दश अतीतों के काम क्रीडा मग्वधी व्यापार मूनविम्ब प्रस्तुत करत है जो पम्गुत अब स्मृति-विम्ब है। किंतु पति की मृत्यु के कारण मात्री जीवन के लिये उपहासमान रह गय है व अब मदा चुन काटे की भाँति टींग उत्पन्न करने वाले ही हाग। इस प्रकार शृङ्गार व्यापार अतीतों के सुखमय क्षणा की तुलना में भविष्य की महाविभीषिता का भावगम्य करा रह है। यह एक मशकत भाव-विम्ब है जो कि स्मृति-विम्ब से मशिल्लट है।

प्राचीन समृद्ध-साहित्य में रामायण और महाभारत के अनन्तर पुराणा की गणना होती है। उनमें भी काव्य-गुणों के लिये वीमद भागवत की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। वह एक में बढ़कर एक काव्य-विम्बों में पूर्ण है। जहाँ आदर्श का रूप में कुछ यहाँ पर प्रस्तुत है उसमें सबसे प्रथम भीष्म-कृत श्रीकृष्ण स्तुति में जल्यत उत्कृष्ट काव्य-विम्ब जैत है—

इति मतिरपकल्पिता धितष्णा भगवति सात्त्वत पुङ्गवै विभूम्नि ।

स्वतुल्यमुपगते बवच्चिद्विहितु प्रकृतिमुपेयुवि यव भव-प्रवाह ॥

त्रिभुवनकमन तमालवर्णं रविकर गौर-वराप्सर रधानै ।

वपुरलककुलायताननाब्ज विजयसत्से रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥

पुधि तुरग रजो विधुञ्जविष्वकश्चतुलितभ्रमधादलङ्कृतास्ये ।

भम विशिखञ्जतेविभिद्यमानत्वञ्चि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण सात्मा ॥

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोवलयो रय निवेद्य ।

स्थितवति परसेनिकायुरक्षणा हृतवति पार्थ सखे रतिर्भमास्तु ॥^२

इन पद्यों में भी भीष्म के दो में श्रीकृष्ण के स्वल्प वेप, घुँघराले बाला-जिन पर रण भूमि में छाड़ों के दौड़ने में धूल पटी है, हाथ में चाबुक, मुख पर स्वेदाबिन्दु इन सब का स्पष्ट शब्दचित्र है। तृतीय पद्य में भीष्म के वाणा में विद्यत कृष्ण के शरीर पर रका रण भी दीख रह है।

१ महाभारत ११, २६, १७

२ भाषु० १, ६, ३३-३६

इन ताना पद्या म प्रस्तुत शब्द चित्र स्थिर हैं । चतुर्थ म गयात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है । उमम गाता क प्रथम अध्याय म वर्णित रणभूमि का दृश्य जाखा क सम न प्रयत्न हा जाना है । अजन क वचन मुन क रथ को दाता क दाता मनाजा क मध्य म खती करना । तद्-अना पर अपनी दृष्टि दातना य नियाएँ शत्रु एक भावना क रग म रग क मून हा उठा हैं ।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकतुमवस्तुनो रयस्थ ।

धृत रथचरणो भया च्चलदगु हरिरिच हृत्तुमिभ गतोत्तरीय ॥

शित विशिखहतो विशीणदस क्षतज परिप्लुग आहततायिनो मे ।

प्रसभमभिससार मद वषार्थ स भवतु मे भगवान गतिर्मकुद ॥^१

उन पद्या म एक क वारद दूसरा दृश्य बदलता जाता है । महाभारत क भागमपव का कथा मन्मा चित्रबद्ध हा गद है । भक्त का भक्ति भावना न उम म गहरा रग भर दिया है । यद्यपि यहा पदावदा अधिक सुकुमार नहीं है, प्र न प्त् न्य ह ण मदृश मनुक्त ककन ध्वनिय भ आ गत = परन्तु पुष्पिताग्रा छन्द की तथ क प्रवाह म भाग कर उन का ककशता ममण ना गद है । यह लय मन् गीत शब्द भाव और रूप मवका मशिनष्ट पूण काव्य त्रिम्ब है । एम व्यापक सवाण गाण और मजकन विम्ब बहुत कम देखन म जान है ।

गायवपाराग वातरु क्राण का एक रन् गीत चित्र स्वभावकित जकट्कार क रूप म दगनाय है—

विभ्रद धेण जठर पटयो शृङ्गवेत्रे च कक्षे

वामे पाणी मसूणकवल तत्फलान्यन् गुनीषु ।

तिष्ठन् मध्ये स्व परिसुहृदो हासयन् नमभि स्वं

स्वर्ग्ये लोके । नपति बुभुजे यज्ञभुग बालकेली ॥^२

एमा प्रकार एक चित्र विष्णु क माहिनान्वरूप का है जा शरकर का दिखान क निग प्रारण किया था । रग शब्द चित्र में न वचन माहिनी क जसाप्रारण रूप का मूद बनाया गया है अपितु उनकी गतिविधि हावभाव और चेष्टा भी शब्द क माध्यम म मून दनाय गय है ।

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रिय विचित्र-पुरपाहणफलवद्गमे ।

विक्रीडती कन्दुकलीलया लसद् बुकूल पर्यस्तनितम्नमेखलाम् ॥

१ भागवत पुराण १ ६ ३७ ३८

२ वहा, १० १३ ११

आवर्तनोद्बर्तन कम्पितस्तन-प्रकृष्ट-हारोदभरं पदे पदे ।
 प्रभञ्जयमानामिव मध्यतश्चलस्पदप्रवाल नयतीं ततस्तत ॥
 दिक्ष भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भूश प्रोद्विम्बतारायतनोल्लोचनाम् ।
 स्वकर्ण विभ्राजित-कुण्डलोल्लसत-कपोल-नीलालकमण्डिताननाम् ।
 श्लथदङ्गुल कबरीं च विष्णुता सन्तह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
 विनिघ्नतीमग्नकरेण कन्दुक विमोहयतीं जगदात्ममागध्या ॥^१

इस काव्य-विम्ब की विशेषता यह है कि मोहिनी का आकषक व्यक्तित्व ही नहीं अपितु कन्दुक-नीला का अभिनय, एक हाथ में अपने केशवज्र (जूटे) को पकड़न आदि की चेष्टाएँ भी साथ-साथ विम्बित हैं । यह अत्यन्त उन्मिद्य, हृदय में प्रयत्न म भावनाओं को उभारने वाला शब्द-चित्र है । शृंगार के जालम्बत विभाव का वर्णन होने में मुकुमार गदाबली की याचना उगमै और भी हयता का आधान कर रही है ।

दूसी पुराण का एक अन्य सशक्त चित्र श्रीकृष्ण के रामविहार के प्रसङ्ग से है । प्रियह विफल गोपिया सहसा अतर्हित श्रीकृष्ण को खोजती हुई यमुना-तीर-स्थित वन में ऊपर-ऊपर भटकती हुई एक मृगी म प्रग्न करती है—

अप्येण-परशुपगत प्रिययेह गात्रैस्
 तन्वन् दृशा सखि सुनिवृ तिमच्युतो व ।
 कान्ताङ्गमङ्गकुच-कुङ्कुमरञ्जिताया
 कुन्द-स्रज कुलपतेरिह वाति गथ ॥^२

यह भाव और ध्वनिया का मशिलष्ट चित्र है । पद्य का भावाय गोपिकाओं की प्रिय-द्वन्द्व के लिये जाकुनता को अभिव्यक्त कर रहा है । साथ में "कुन्द-स्रज" जो "कुनपते" उनराज में जाय इन पदा में क्रमशः स्त्रीत्व और पुलिय के कारण नायक-नायिका-व्यवहार की प्रतीति हो रही है । कान्ताङ्ग-सङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जिताया" पद में कुन्दस्रज रूप नायिका के श्रीकृष्ण के अगमन या गाठ आनिगन न होने वाले मदन की ध्वनि की अभिव्यक्ति पञ्चम एव प्रथम अथवा ततीय वष के गथाय ग उत्पन्न कागत ध्वनि म जाती है । क्योंकि कुन्द की माना ज्वलत कामन और सरस शोभी है, उसमें ममर की ध्वनि न होकर क्षीण भ्रमभ्रमाहट का ही शब्द सम्भव है । उसका अनुकरण इन मधुक्त ध्वनियो म किया गया है । अतः उनसे समासोक्ति एव सूक्ष्म

१ भागवतपुराण, ८, १२, १८-२१

२ वही, १०, ३०, ११

अनकार म जानिगत एव एक सुख का भाव चित्र जीर साथ म कुन्द कुसुम का मस्तुन ग २ का प्राण विन्ध्य प्रस्तुत जाता है ।

अतःकारीन मस्तुन मानिय म भा एक प्रकार क काव्यविन्ध्या का चूनाता नता २ । वृत्ति कान्तिनाम क काव्य एक प्रकार क काव्यविन्ध्या क मन्तर ग २ । तम कुमारमन्त्र का निम्नशतक ध्वनि-मूत्रक काव्य विन्ध्य का मन्दर उदाहरण २—

स्वित्ता क्षण पञ्चगु ताञ्जिताभरा पयोधरोत्सेधनिपात दूर्णिता ।
वलीप तस्या स्खलिता प्रपेदिरे तमेण नाभि प्रथमोद विन्दव ॥^१

य पद्य पावता का तपस्या क प्रथम म उद्बोधन २ पयाय जलकार क द्वारा पत्ता चाथप विन्ध्य वर्षा का वटा का वनता है जो कि पावता का पदका जराग मजा एव अन्तरवर्तिया म हाकर गुजरता हु नाभि म ता गिरता २ वषण अना यथाय है कि अतश्च म वष्टि क जनकण कुछ क्षणा क निय पतका पर टिक दिखाने दत ह २ तदनन्तर उनका अधरा पर दवरता वलित होता २ तपश्चान म्तर उराजा पर गिर कर व मोग वृत्त प्राण जाता निखाने दता २ तत्र वे क्षण जनघाग म वन्ता नाखता २ जो कि उन्तरवर्तिया म मिमन्ता २ नाभिकुण्ड तक पञ्चता २ । यत् ता स्थूत्र चित्र है जा वाच्याय म वता २ उमकी तत् म जय चित्र उभाता है समाधिन्ध्य पावता की समाधि म्ता का । दग शास्त्रीय नियम क अनुसार समाधि अवस्था म पावता क नयन नाभिका क अग्रभाग पर टिक हान म जखन है ऊ नम शिवाय क पञ्चर मन्त्र का पात्र तप करन म मह कुछ खया है जन जनकण म्तर क गठ पर हा पडत ह । पावता साया तन कर बैठा दुर ह एम कारण माना जाग का म्भरा हुआ २ पन्तरस्वरूप उमक नाचे उदरवर्तिया वलित ग र्ता २ नाभि मुद्रा उमम भा नाने २ पन्मामन वाप्रकर बैठा होत म गगर का वना ग भाग लक्ष्य है यत् द्वितीय चित्र है जा कि ध्वनित २ ।

मका तत् म अब एक जीर मुदरतम चित्र वष्टि गावर हाना ह जिसम पावता क शरार क ज्यन्तिम मान्य का अभिव्यक्ति हाना २ मम वाच्याय म्नायक २ उनक द्वारा म लेखन २ पावती का घनी जीर मूत्र पतका का

१ विषय २० Sh v Prasad Bhardwaj—Poetic Imagery in Bhagavata Purana VIJ XIII (1975) Vishvabandhu Vol pp

कोमल ऊपरी हाडो को, उभरे हुए बठार उराजा को निम्न उबरबनिया को व गहरी नाभि तथा कृञ्ज मध्यदण का' ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में भगत हुए मृग का वणन मृत विम्ब का उत्तम निदर्शन है । इसमें मृग का मुट-२ कर पीछा करत रथ की आर देखना, पिछले भाग में निमट कर अगले भाग का लम्बा करना हाफने के कारण धुंके मुख में दाभ के जग्राये टुकडो का भाग में बिखरत जाना लम्बी कुलाचे भरने में भूमि पर पैर धरुा कम रखना आदि क्रिया सवथा स्वाभाविक है और प्रयोजकत्व दिख्दाइ द रती है^१ ।

यत्र गन्दचित्र इतनी सुन्दर कि एक चित्र के पीछे जैसे दृग्ग साकता हो । उदाहरण के लिए मृग के पिछले भाग का अगले भाग में सिमटना एक ऐसा सुधम चित्र प्रस्तुत करता है, माना कोई व्यक्ति डर कर अपने जाये स्थित दूसरे व्यक्ति के पीछे दुर्यक रहा हो । मृग के भागों की क्रिया के विम्ब की तरह में उमक भय की भावानुभूति है जो कि गयोसि रग के रूप में भाव-विम्ब प्रस्तुत कर रहा है । कालिदास की दीपशिखा की उपाधि दिनाने वाला एक उपमा जलङ्कार के प्रयोग के द्वारा उपमा कीति स्तम्भ पद्य भी मृत और जमृत दोनों का सम्मिलित चित्र है । उमम पहना मृत विम्ब स्वयंवर मण्डप के दृश्य का है । छठे मय के आरम्भ में कवि ने जो वातावरण बनाया है, उसको पृष्ठ-भूमि में रखत हुए दीपशिखा के गमान जगभगानी राजकुमारी इन्दुमती का परिचारिका मुनन्दा के साथ मज्जा कर पहि इतवद्ध नरगा के पास एक एक कर धूमने का व्यापक दृश्य बनता है । उसका मध्य बिन्दु है राजकुमारी का किसी एक राता के पास जा कर कुछ क्षणा के लिए रुडा रहना और पुन उस छाडकर जाग बड जाना । इन्दुमती के पास पहुँचने पर स्वयंवरार्थी राजा के मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है अथवा उसके सान्निध्य में उस प्रत्याशी पर क्या प्रभाव पडा, इसका कवि ने व्यञ्जना-प्रिय होन में काई सङ्गत नहीं दिया । उसकी व्यञ्जना दूसरी उपमा के द्वारा होती है । जैसे जालकल का

१ तु० चिमी- १० २५

२ श्रीवाभट्ट-गाभिराम मुहुरनुपतति ग्यदन बड्ढदष्टि पशवाद्भ्यै प्रविष्ट शरपतेन मयाद भूयसा पूर्वकायम् । दर्भैरर्धाविलीहै श्रमविवनमुखभ्र शिभि दीर्णवर्मा पशयोदग्रप्लुतत्वाद् विद्यति बहुतर स्तोक्मुर्व्या प्रयाति ॥

छायाकार पहल उल्टा चित्र (Negative) बनाता है और तब उम सीधा करता है, कवि भी प्रस्तुत पद्य म पहल विपरीत चित्र रख रहा है जो कि विपरीत पतिक्रिया को स्पष्ट करता है। उमक प्रकाश म ही ऊपर मट्केनित प्रभाव की व्यञ्जना हाती है।

ह तो पहले स्पून चित्र म पतिवरा इन्दुमती जो स्वय विज्ञाना का विज्ञानानिश्चय थी और स्वयवर के अवसर पर प्रसाधना म चलती फिरती दीप गिखा सी प्रतीत हा रही थी, उसके साग्निध्य म प्रत्याशी राजा कितना चमक उठा होगा, दमकी कल्पना किसी चमकीने वस्तु पर प्रकाश की किरण फेंक कर उम वस्तु क चमकन रूप म ही हा सकती है। द्वितीय उपमा म उपमान रूप राज-भागस्थ प्रसाध जो पहल अन्धकार मे डूबा हुआ या मञ्चारिणी दापगिखा क निकट जान पर आलोकित हा उठा। यह पक्ष व्यग्र ह वाच्य नहीं। वस्तुतः कवि द्वारा प्रस्तुत यह शब्दचित्र विद्युत-प्रभा म रात नर जागे कित नगरा म स्पष्ट समय म नहीं आ सकता। दमक लिए उम समय की कल्पना करनी हागी जबकि विद्युत न थी मन्ध्याकाल क पश्चान् नगर अन्धकार म निमग्न हो जात थे। यामिक गण हाथ मे काचदीप नरकारे गनी-गना घूमत थे। उनकी तानटन का प्रकाश कछ क्षणा क लिए मागस्थ भवन पर पडता और वह छातित हा उठता था। पर यामिक के आग दमन पर दीप का प्रकाश भवन म दूर हो जाता और वह पहल त भी अधिक अन्धकार म निमग्न हा जाता।

यह म्ब विम्ब है और टा० राम प्रताप के अनुसार^१ म्ब उमय की म्ब उपमान म तुलना का निदर्शन ह। कवि न यामिक क जान पर दीपगिखा क प्रकाश म भवन क आलोकित हा जान की बात नहीं कही। पर जो कुछ कहा ह, उमम ही इसका व्यञ्जना हाती है। लौकिक अनुभव है कि अन्धकार तब तक घना प्रतीत नहीं होता जब तक पहल प्रकाश का न दखे। प्रकाश से सहसा अन्धकार म जान पर कुछ समय क लिए वहा पहल म ना अधिक अन्धकार का अनुभव हाता है। तथ्यवदी कवि न इसी लिए प्रकाश

१ मञ्चारिणी दीपगिखर रात्री य य व्यनीयाय पतिवरा सा।

नरदमःगर्ष्ट इव प्रपदे विवणभाव म सु भमिपाल ॥

२ महाकवि कालिदासस्य काव्येषु काव्यविम्बम् सूनिवसिटी रिब्यू जम्मू का कालिदास विशेषाट्क (१९७३) पृ० २३

पडने के समय भवन के आलोकित होने की चर्चा नहीं की। अत इन्दुमती का सान्निध्य वा कर प्रत्यागी राजा की बाह्य शोभा जैसी हुई होगी, वह कल्पना में ही ज्ञेय है। इस प्रकार आभा होती है, इसका प्रमाण कालिदास का ही वचन है। जैसे—

देवी—(चन्द्रमालोक्य) एष रोहिणीयोगेन अधिक शोभते भगवन् मृगलाञ्छन ।

चेटी—नून सम्पत्स्यते भद्रिदनीसहितस्य भतु विशेषरमणीयता । जैसा काव्य-विम्ब कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है, वही उसे उपयुक्त स्थल में भी अभीष्ट है पर उस व्यङ्ग्य ही रहन दिया है।

इस स्थूल विम्ब में आक्षेप इसका अमृत या नाव-विम्ब है। इन्दुमती के निकट जाने में पूर्व जो प्रत्यागी आशा-निराशा की लहरों में धूल रहा था, पास जान ही एक बार आशा में चमक उठा। मन की स्थिति आकृति पर चलक उठती है। उस समय उस राजा की दशा राज-मागस्य प्रासाद की सीढ़ी या यामिक के काव्य दीप का प्रकाश पडने में हुई थी। पर अपने ही क्षण राजकुमारी के आग पट जान के उसके मन में घोर अवसाद भर गया। निराश्रय और अवसाद की मलिन छाया उसकी आकृति पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी। पर उसका यथात्र अनुभव यामिक की लालटन का प्रकाश पून पट जान में पूर्व में भी अधिक प्रतीत होने वाले घोर अपकार में होता है जिसमें वह शानदार भवन सबका डूब ही गया। यह उपमा तो मृत में मृत की है पर इसकी तरह में मृत में अमृत की उपमा छिपी है। क्योंकि घोर निराश्रय और अवसाद उपमेय है और अमृत है तबकि अवकार दृश्य होने में मृत है।^१

शब्द रूप में अमृत भावना की तुलना सूक्ष्म व्यापार में करके प्रस्तुत किया मानस विम्ब का निदधान मात्रविकाग्निगिन में मिलता है। नृत्य समाप्त होने में पञ्चान् नायिका के चले जान पर छाया उदासी को राजा आश्री की तकदीर

१ विक्रमा० ३ पृ० १२५

२ तु० मञ्चारिणी दीपशिवेव The standard of Comparison (उपमान) befitting Indumati is an image of refulgence and stately movement नरेन्द्रमार्गट्ट is an image of a tall, majestic figure deserving of a king

फिर हृदय की प्रगनताओं व भार ज्वरम समाप्त होत एवं धैर्य व भार द्वारा बन्द होत का अवस्था में उपमित करता है।

उसकी विशेषता यह है कि मानविका का अदशन आपातत स्थूल प्रनात शाना = क्लिप्त प्रती = समय = अदशन की अवस्था है जो नग्न व हृदय का विवचन का व्यञ्जक है। उमर गहर प्रभाति का मान होत तब मभावनाओं में बगदा गया है = तब अन्त कर व द्वारा भाग्य व अस्मन्त व कारण होत वाता अवस्था में उमका अभद बनाया है। उमा प्रकार भविष्य में प्रगनता व भार ज्वरम समाप्त होत जो धैर्य व द्वारा बन्द होत जान व व्यापार व माध्यम में उमक परिणामस्वरूप होत वाता दुखद परिस्थिति का मान होता है। यह वर्णांक मानसिक अवस्था का चित्रण है जो कि सूक्ष्म = अत एव वस्नत अनुभूति या अमृत विम्ब का उदाहरण है।

काव्या में वष्य पात्रा व अङ्ग प्रयत्न या वर्णन का जाहृति विम्ब प्रस्तुत किए जाते हैं। कभी स्वभावाक्ति जनद्वारा व द्वारा ता कभी साम्यमूत्रक जनद्वारा व द्वारा यह काव्य सम्पन्न किया जाना है। साम्य मूत्रक जनद्वारा में भा विम्ब प्रतिविम्बभाव मूत्रक टगम अधिक उपपाता टग्नत हैं। जैन वषण में मुख का छाया देखकर उमकी स्थिति का जान पाता है इस प्रकार उपमान व स्वरूप में उपमय वा यथायस्वरूप स्पष्ट होता है। कानिदाम व रघवश में एसा सुन्दर जाहृतिविम्ब निम्न श्लोक क रूप में उपनय्य होता है—

पाण्डवोऽयमसापित-लम्बहार कलमाङ्गरागो हरिवन्दनेन ।
आभाति वानातप रक्त सानु सनिभरोदगार इवाद्विराज ॥

इस पद्य में ददुमता व स्वयंवर में उपस्थित श्यामवर्ण किन्तु रक्तचदन का अङ्गराग रगाय और गत्र में रट दटा वा मानिया का हार पहन पाण्डव वरश व जाकार का यथाय स्वरूप प्रभातकानिक मूय का विरण्या में रक्त शिखर वात एवं प्रवातिन धरना में श्वेत परिस्तर वात शिमाचन व साथ विम्ब प्रतिविम्ब-भाव में चित्रित किया गया है।

अन्तर्गत व अनुसार यह कानिदाम की वचना की उपाय का अच्छा

- १ भाष्यात्मपर्यायिका आहृदयस्य महात्मवावसानमिव ।
द्वारपिधानमिव धनमपि तस्यास्तिरम्बकरणम् ॥

—मातृवि० २११

उदाहरण है।^१ यहाँ उपमेय और उपमान दोनों के मूल होने में यह विश्व पूर्णतः चाक्षुष विश्व पर आधारित है।

चाक्षुष और नाद दोनों का सम्मिलित विश्व निम्नलिखित पद्य में देखने का मिलता है --

वीचिक्षोभरतनितविहगश्रेणि काञ्चीगुणाय
ससपत्या स्वलितसुभग दर्शितावतनाभे ।
निर्विन्द्याया पथि भव रसाभ्यन्तर सनिपत्य
श्रोणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु १^२

यहाँ निर्विन्द्या नदी का एक कामाकता रमणीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह मावानी धारा में टूटता कर चल रही है या भावावेग में अपनी नाभिमुद्रा का प्रदर्शन कर रही है। यहाँ चाक्षुष विश्व के द्वारा इस प्रकार की रमणीयता का समानान्तर मूल विश्व बनता है। साथ में प्रथम चरण में 'विहगश्रेणि काञ्चीगुणाय' इतना जगत् में देखना की शक्ति की कल्पना का अनुकरण करके नाद-विश्व भी है। "रसाभ्यन्तर" में श्लेष जनक द्वितीय विश्व की पुष्टि करता है। इस प्रकार चाक्षुष और नाद दोनों विश्व साथ-साथ चलते हैं। यह भी टी० नैविम द्वारा उदाहृत निम्न समन्वित विश्व में सबका मूल खाना है—

Cranking their jarring melancholy Cries
Through the long journey of the cheerless sky 3

यहाँ भास का वचन चाक्षुष विश्व बनाता है किन्तु साथ में उनकी ध्वनि का अनुकरण कर्णद्वयसाह्य है।

भारवि —भारवि के वाक्य में भी कई सुन्दर वाक्य-विशेष देखने का मिलता है। उनमें एक कल्पना पर आधारित तसा शब्द चित्र है जिसमें उद्धे "जातपत्र-भारवि" के नाम में प्रख्यात कर दिया। उसमें भूकर्मवती के पगल के चारों

१ पाण्डवायम—This is imagination soaring high to the very summit of the Himalayas. In portraying the king of Pandya Country Kalidasa in his inspired mood of mind, rises to sublimity as he does in depicting Himalayas in Kum 11

—Im of Kal p 26

२ मेडू० १,२८

३ Poe Im p 18

आर पवन में उड़न में उन्द्रकील पवत पर स्वर्णिम छत्र छा जाने की कल्पना विलक्षण है जो इस प्रकार का अद्भुत चित्र प्रस्तुत करती है^१ ।

परिणाम-सुखे गरीयसि ह्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम ।

लतिदीर्घक्रीच नेषजे बहुरल्पोयसि दृश्यते गुण ॥^२

यह बौद्धिक विश्व का निदर्शन है, वर्णों की जावृत्ति की जगझा उमके प्रभाव का विश्वन करगता है । यह जम्घट या धूमित विश्व का जच्छ उदाहरण है । श्रेय जतद्धार न विश्व को विशेष रग दिया है ।

भाव और नाद न मामञ्जस्य म क्षत विश्व का उदाहरण निम्न विधित पद्य है—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया

वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्या ।

गाण्टीवी कतक-गिलानिभ भुजान्या—

माजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्ष ॥^३

किगत-श्लेषप्रागी शिब के साथ नियुद्ध करन जर्जन का यह मूल चित्र प्रस्तुत किया गया है । उमम पूर्वोप में मगर क पानी की प्राग में वग में रूप की जाग जाने का नादानुकरण है ता चतयचरण में तोर में शङ्कर के वक्ष न्यत्र पर करघान की ध्वनि “जातन” निरा म प्रतिध्वनित होती है ।

यहा यद्यपि व्याकरण की दृष्टि में “जाजघान” हाना चाहिये और व्याकरण ने कुछ समाधान भी प्रस्तुत किए हैं तथापि काव्यानुगुणता का देखते हुए यहाँ प्रयोग अनुकूल है । उमम तनप्रहार क धमाके का सफ़द अनुकरण होता है ।

१ उन्मज्जन्मकर-वतिनीवलादमुग्मादुदभूत सर्जिन-मभव परग ।

वाप्राभिवियति विचलित समन्तादाग्ने कनकमयातपत्र तन्मीम् ॥

—द्विग० ५, २६

२ वही २५

३ वही १०, ६३

४ तु०—वय नदि जाजघन विषमविलोचनस्य वक्ष ' इति भार्गव । “जाह्व मा ग्घूनमय” इति भट्टिष्ण । प्रमाद एवाप्रमिति नागवृत्ति । प्राप्यन्ध-ध्याहागे वा । ल्प्ल्याप पञ्चमीति तु त्यदन्न तदर्थोक्तिर्नैववगनियत्र तद्विषयम् । भेन्मिन्व्यादि त्मुन्तन्नाध्याहागे वाऽन्तु । समीपमेत्यति वा ।

—निकी० आ०म० भाग १, पृ० ४०८

भालाशङ्कर व्यास ने भागवत की कविता में तावानुवृत्ति का इसको विरल निदर्शन स्वीकार किया है^१ ।

माघ—माघ को घटाभास की उपाधि दिलाने वाला निम्नलिखित पद्य भी एक अच्छा सश्लिष्ट विम्ब प्रस्तुत करता है—

उदयति विततोर्ध्वरश्मि रज्ज्वावहिमहचौ हिम-धाम्नि याति चाऽस्तम् ।

बहति गिरिरथ बिलम्बि घण्टा द्वयपरिवारित वारणेन्द्र लीलाम^२ ॥

इसमें एक चित्र रश्मिक पवन का है जिसमें एक आर उदित हाथा मूय दिखाई दे रहा है उसकी पंखी हुई किरणें रश्मिया भी तानी हैं, दूसरी ओर अस्त हाता चन्द्र-मण्डल दिखाई दे रहा है । दूसरा चित्र हाथी का है जिसके बानों आर घण्ट नटक रह है । यहा विशातकाय गजेन्द्र जैसे पवन जाकार के अनुपात में परम्पर समान है । उदयकालिक मूयमण्डल एव जन्तकालिक चन्द्र-मण्डल अनुपात की दृष्टि से घण्टा के बराबर तगत है । इस प्रकार यहाँ दोना या विम्ब-प्रति-विम्बभाव है ।

माघ का एक गशक्त मन्विम्ब उदयमान मूय का है जिसे स्पष्ट जवङ्कार के द्वारा शिशु के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

उदयशिवरि-शुङ्ग-शङ्गपेक्षेव रिङ्गम्

सकमलमुखहास वीक्षित पदिमनीभि ।

वितत मदुकराप्र शब्दयत्यर वधोभि

परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूय^३ ॥

माघ शब्द आर अध दोना के समन्वित प्रयोग का पक्षपानी थे^४ । इसका अनुसरण अपनी विम्ब-यानना में मन्त्री प्रकार किया है । ऊँच शिशुपाल की उग्रता की अभिव्यक्ति के लिये वे उसी प्रकार के शब्द एव छन्द का प्रयोग करत हैं जिसमें विम्ब संशक्त हो जाता है—

कृत मनिधानमिव तल्प पुनरपि तृतीयचक्षुषा ।

कूरमत्रनि कुटिलभृगुभृकुटी कजोरितललाटमाननम्^५ ।

१ कविदर्शन पृ० १२६-१२६

२ शिव० ४, २०

३ वही १५, ४७

४ शब्दाधौ सन्कविन्वि द्वय विद्वानपक्षने । वही २, ८६

५ वही १८, ५

साध का एक सुन्दर काव्य विम्ब द्वारा-वर्णन के प्रसङ्ग म है । भवना की कपातपाली म वन नकरी कबूतरा का वास्तविक समझकर उन्हे पकन्द के लिय लम्ब चुपचाप लेट विन्ने का भी नाग नकरी ही समझत है । यह मूर्ति जोर वास्त कता का उद्घृष्ट रूप ध्वनित करता है । यहा "जायत-निष्कवाङ्ग" यह विजयण बिल्व की मुद्रा का मृत कर रहा है । 'चित्र मया" पद महमा पत्रिया पर अपटन की मभात्रना का विम्बित करता है ।

श्रीहृष -वह्नयी क कविया म चूटागणि धीरप चमत्कारवादी कवि होने के कारण काव्य विम्बा क निर्माण म सिद्धहस्त थे । उनके महाकाव्य नैपथीप-चरित म हम एसा विम्ब नी मिलता है जिसम पाचा ज्ञानन्द्रिया के सनिकर्ष का अनुभव होता है ।

सतावलालास्य कला गुहस्तह प्रमूत-गन्धोत्कर पश्यतोहुर ।

असेवतामु मधुग घवारिणि प्रणीतलीला-प्लवतौ वनानिल २ ॥

यहा जता क नय म चाक्षय 'प्रमन-ग ५' म प्राण सम्बन्धी मधुग-घवारिणि म रम, प्रणीत-नीलाप्लवत म शीतल स्पश पवन क जातीय करन म एत नीलाप्लवना वनानिल ' टन ध्वनिया म पाचा एन्द्रिय विम्बा का प्रत्यक्ष होता है । इसक अनिश्चित रूपक अतद्भार म जा कि परम्परित है, नृत्यदर्शन का दृश्य एक पणीत-नीलाप्लवत टम जज म जल म छत्राग लगाकर नीटा करन जादि सा विम्ब भी बनता है जिनका परम्पर कई सम्बन्ध नहीं है । अत य खण्ड विम्ब है । टनी प्रकार—

नृपाय तस्मै हिमित वनानिलं सुधीकृत पुष्परसैरहमह ।

विनिमित्त केतक रेणुभि सित विद्योगिने-दत्त न कीमुदी मुद ३ ॥

टम पद्य म हिमित म शीतल स्पश का पुण्य-स्मै सुधीकृत" म सुगन्ध व मप्रर रम का, केतक रेणुभि मित म रूप का एन्द्रिय विम्ब बनता है । सत्रका मित क चान्दना क मिश्रित विम्ब बनता है ।

पयोधिलक्ष्मीमपि केलि-पत्यले रिरसु हसीकलनाद-सावरम ।

स तत्र चित्र विचरतमतिक हिरण्मय हसमवीधि नैपथ ४ ॥

१ चित्र मया कृत्रिम पत्रि पर का कपोल-पारीषु निरुतनानाम ।

मानारमप्यायत निष्कवाङ्ग यस्या तत कृत्रिममव मेने ॥—वही ३, ५१

२ नै०ब० १ १०६

३ वही १, ६६

४ वही १, ११७

इसमें स्वर्णिम ह्रस्व के चाक्षुष विम्ब के अतिरिक्त हिरण्मय पुरुष आत्मा का आदि विम्ब भी बनता है। इसका आधार उपनिषदा व वेदान्त ग्रन्थों में वर्णित हिरण्मय पुरुष जिसे ह्रस्व भी कहा गया है, की परम्परागत चर्चा है^१।

इसी काव्य में स्वभाविकी जनद्वार के द्वारा माने हुए ह्रस्व का शब्द चित्र प्रस्तुत किया गया है। जैसे—

अथाबलम्य क्षणमेकपादिका तदा निदद्वावुपपत्स्वत खग
स तियगावर्जितकन्धर क्षिर पिधाय पक्षेण रतिकालस^२ ॥

पक्षी सोना हुआ इसी मुद्रा में दीखता है। अतः यह बड़ा स्वाभाविक विम्ब है।

श्रीहृष नादानुकृति में बनने वाले और सञ्चिष्ट एव मिश्र विम्बा के निर्माण में सिद्ध-हस्ता है। ह्रस्व क नन द्वारा पकड़ लिए जाने पर तानाब के नीचे पर बैठे अथ सभी पक्षी आकाश में उड़ गये और चू चू क स्वर में चह-चहाने लगे। पक्षियों के उड़ जाने में उस सर की शोभा जानी नहीं। कवि उस शाभा का कल्पना में मानवीकरण करता हुआ ह्रस्व का लक्ष्मी या शोभा के चरणा की पायल बनलाना है। काव्या में परम्परा में ह्रस्व और नूपुरा क स्वर की समानता प्रसिद्ध है।

पत्रिणा तद रुचिरेण सञ्चित श्रिय प्रयात्त्या, प्रविहाय पत्स्वतम् ।
चलत्पदाभोरह नूपुरोपमा चुकूज कूले कलहस मण्डली^३ ॥

इसमें एक दृश्यता जोहड़ के ऊपर गगन में जोर जोर में चहचहाते हंसों की कतार का विम्ब बनाता है। 'चुकूज कूले कलहस मण्डली' इतने अर्थ में अर्द्ध ध्वनियाँ हंसों के शब्द की नादानुकृति द्वारा उसका विम्ब बनाती हैं। इस प्रकार श्रव्य जोर चाक्षुष दानो विम्बा का मिश्रण है।

ह्रस्व के विलाप में कर्ण और वतमन दोनों रसों में सम्मिलित अनुभूति-विम्ब है जो कि बहूत मामिक है^४।

१ योज्यमादिय हिरण्मय पुरुष हिरण्यवेश हिरण्यश्मश्रुगप्रणात् स्व एव गुवण ।
—छान्दो० १, ६६

२ नैच० १, १२१

३ वही १, १२७

४ मदेकपुत्रा जननी जगत्पुत्रा नवप्रभूतिवर्टा तपस्विनी ।
गतिस्तपोरेप जनस्तमदयन्नहा विधे त्वा करणा र्णाद्धिनो ॥
मूहलमान भवनिन्दया दयासखा मध्याय स्वदशबो मम ।
निवनिमेप्यन्ति पर सुदुस्तरस्त्वयैव मान मुत्तशोवसागर ॥

ये शब्दचित्रता यथाथ पर आधारित हैं किन्तु सवथा करणा द्वारा निर्मित चित्रा का भी यूनता नहा है। कुण्डिन पुरा क प्रासाद शिखर मघ-मण्डल की कथ्या म भा जौच ह और उनकी चन्द्रजाता म उतर कर स्त्रिया वादन पर बठ कर जाकाश म विहार करती हूँ विमान म विचरण करता अप्सराजा मा प्रतात जाता ह ।

जमून उपमान म तुनता ह द्वारा सूक्ष्म अनुभूति का अनूठा उदाहरण किमा जपान कवि का कृति म मित्रता है^१ ।—इसम कणा का जौच का न दुतहित क काप क समान मुखद बनाया है। तथा ज्ञातवान का उर्फीडा पवन का समता रुपटा मनुष्य क जानिङ्गन क समान निष्ठा या ताण्य कहा ह । इसा प्रकार मर्दी म धूर का तीक्ष्णता मण्ड पण जान म उमका तुनता नष्टिष्वय मनुष्य क जादा म का है जर्वाह चतय चरण म चन्द्रमा का साम्य किमा विद्यागिना क पील पण मुख क मात्र स्थापित किया है। इन उपमाना की भापकता पयादाचन म न ममम म जाता है। कणा का जाच म वाण्य ज्वाता या चित्रगार्ग्या नहा होता। घात क कारण जारम्भ म मिस मिस जदश्य हाला है पर बाद म वह भी शान्त हा जाता है। किन्तु जाच उमका दर तब बना रहता है। अन्तिम मर्दी क दिना म मकन म बण जपन मुखद हाता ह । उद दुतहित निमका वाणी वाक्यान जार मङ्काल क कारण जभा खता नहा है गुस्म म आता ह तो कुछ तीक्ष्ण पण यदि नया वाकता न जपना राप प्रयत्न करती है जारम्भ म विवचना क कारण कुछ मुवत्रिया मा अवश्य नती है पर कुछ समय बाद क भी बद हा जाती है। वर चपचाप काम करता रहता है पर उमक व्यवहार म पता लग जाता है कि वह रण्ट है। फलत उमका पति उम रोप म डरना या चिन्ता नया प्रयुते दख देखकर मन हा-मन म मना यता है। अब उम मज म गाह की जाच क मक का तलना करें कि वह उनता

१ स्वप्राणश्वर-नम हस्य कटकार्तिथ्य ग्रहायासुक्
पायाद निन-कनिसीप्रशिखरादाहस्य म कामिनी ।

साधादप्सरा विमानकवित्व्यामान ण्वाऽभवत्

यान प्राप निमपमग्रतरस्ता याता रमादवति ॥ नैच० २ १०४

२ अभिनव-बधूराप-स्वाङ्कु करापतनूनपा

दमरल जनाश्लेष अरन्तुपारगमाग्य ।

गलित विभवस्यानवाद्युतिममृणारव—

विरहवनिता-वकश्रीम्य विभन्ति निशाकर ॥ शृ०प्र० २ पृ० ३१५

सुखद होता है या नहीं। इसी प्रकार हेमन्त मे जब ठण्डी हवा के शोक चरते हैं तो छुरी की भाँति काटत मे प्रसंग होने है। क्योंकि वास्तविक मर्दी की बसायना उन्ही से होती है जो नि ओदने के बस्त्रो को भी शीतल कर देनी है। उसके तीमेपन की तुलना कुटिल व्यक्ति के दिखावे से भरे आलिङ्गन म की है। इसकी सशक्तता और यथायता भी अनुभव-वेद्य है। जिस व्यक्ति के सम्बन्ध मे यह ज्ञात हो जाता है कि वह परोक्ष म हमारी जड काटता है और सामने बनावटी प्रेम और आदर दिखाता है तो उसमे घृणा और चिड हो जाती है, उसकी निर्दोष बात मे भी दोष दिखाई देता है और उसमे बात कर्न या उसके पाम बैठन को भी मन नहीं चाहता। वही यदि आदर बाहरी प्रेम दिखाता हुआ आलिङ्गन करता है ता वह आलिङ्गन घृणा और चिड को जोर भडकाता है। इस अनुभव को दृष्टि म रखकर विचार करे तो शीतकाल का तीखापन महज ही बोधगम्य हो जाता है। तृतीय चरण मे मर्दी क दिनों के सूर्य का तेज क्षीण-वित्त मनुष्य के आदेश के तुल्य बताया है। यहा कवि का आशय धूप की अप्रभावकता (in effectiveness) से है। धन की गर्मी रहने तक मनुष्य के वचन मे बडक भी होती है और लोग उसका हरनि लाभ पहुँचाने मे समर्थ जानते हैं, अन चुपचाप उसके आदेश का पालन करत है। किन्तु धनहीन व्यक्ति किसी का न कुछ बना सकता है न थिगाड सकता है। इसलिए उसकी बात की सब उपेक्षा कर देने है। इस प्रकार उस व्यक्ति की आज्ञा के समान मर्दी की धूप प्रभावहीन प्रताई है। शीतकाल मे चन्द्रमा कान्तिहीन और फीका फीका-सा रहता है पुन शीतलता के कारण सुहाता भी नहीं है। विरहिणी का मुख भी चिन्ता और दुख के कारण सूखा-सूखा निष्प्रभ हो जाता है। वह भी उतना आनन्ददायक नहीं होता।

यहाँ आपातत उपमेय चारा मूर्त है किन्तु उपमान अमूर्त है। पर पर्यालोचन मे उपमेय भी अमूर्त ही है। क्योंकि कण्टे की आँच का ताप या मेक वस्तुत उपमेय है जो बधू के रोम मे समानता रखता है। इस प्रकार यह उमा प्रभाव-नाम्य को लेकर वास्तवीपम्य क जन्तगत आती है। इसके विम्ब बौद्धिक या अनुभूति रूप बनते है। उपमेय पक्ष मे प्रथम द्वितीय स्पर्श-विम्ब प्रस्तुत करते है किन्तु उपमान पक्ष मे अनुभूति विम्ब, तृतीय मे प्रस्तुत पक्ष मे दृश्य या चाक्षुष विम्ब का बोध होता है, पर्यालोचन मे अनुभूति का विम्ब बनता है, अप्रस्तुत पक्ष मे भी आपातत श्रव्य विम्ब बनेगा किन्तु परिणति अनुभूति मे ही होगी। चतुर्थ चरण मे भी आपातत दोना पक्षो मे चाक्षुष विम्ब बनता है परन्तु परिणाम मे आनन्दभाव का अनुभूति विम्ब ही बनता है। सब मित्त-कर शीतकाल की तीक्ष्णता का जो सामूहिक अनुभव होता है वह अमूर्त

मणिलुप्त विम्ब है। कवि ने यहा छन्द भी हरिणी चुना है जिमम जारम्भ मे मकोच और दाद मे मृगी की कुत्राच की सी गति तीव्र हानी है। उपमय और उपमाना का भी अभ्यासिक रूप मन्द हाता है किन्तु तीव्र हाता है। अत सय का भी विम्ब वनता है जा कि शायद विम्बा को अधिक प्रभावी बना दना है।

ध्वनिविम्ब प्रस्तुत करन म मस्कृत कविया म सर्वाधिक मफनता भवभूति को मिली है। व भावानुरूप शब्द-योजना म प्रत्याशित प्रभाव उत्पन्न करन म बहुत समय मिट्ट हुए है। मानतीमाधव मे वर्णित प्रेत का रूप अनुसूप ध्वनिया और छन्द के द्वारा अपने स्वरूप का विम्ब ता स्पष्ट करता ही है सात्र म अभीष्ट कीर्तन रम की अभिव्यक्ति म भी ममथ है।

इसकी विशेषता यह है कि इसम शब्द चाक्षुष गद्य रस और शब्द पाचा एन्द्रिय विम्ब वनत हैं। सग्वरा छन्द क द्वारा मरभुक्के प्रेय का कठिनाई मे मिले आहार क शीघ्र समाप्त करने का आवग भी विम्बित हाता है। वकश ध्वनिया मे चमडी उधेडन म या हडडी तोडन म होत वाली ध्वनि का अनुकरण भी हाता है। इस प्रकार यहा भी प्रथमत्र एन्द्रियविम्ब वनत हैं और पश्चात अनुभूयामक भाव वनता है।

इसी प्रकार चन्द्रकतु क सै प्र क प्रति नत्र क श्लोक की अभिव्यक्ति एव रौद्र क परिपाक क लिए उग्रता प्रकाशन-समय वर्णों का प्रयोग है।

इस पद्य की ध्वनिया भी एक साथ कद विम्ब प्रस्तुत करती हैं। अपन धनुष की तुलना लव सैनिका को खान म मगत कात के मुख मे करता है। धनुष की नपलपाती डोरी उमकी जीभ बनाइ गई है धनुष की दोना अटनिया बडी-बडी दाटें है डारी म निकला शब्द गुरान की प्रतिध्वनि प्रस्तुत करता है। तृतीय चरण म ग्राम प्रभक्त-मद' हमदूज ध्वनिया दवादद खाने म होत वाली ममला-

१ उत्तमान्कृत्य वृत्ति प्रथममत्र पृथू सैधभूयामि मासा—

यसस्फिक पृष्ठपिण्डायवयवसुलभा युग्रपूतीनि जगत्वा ।

जात्र पद्यस्त-नत्र प्रकटितदगन प्रैतरङ्गकरङ्गा—

दङ्कम्यादस्थिमस्थ स्थपुटगतमपि न्यमव्यग्रमति ।—मा०भा० ५ १६

२ ज्या जिह्वया बलमितोन्वदकोटिदृष्ट—

मुदभत घोर घन घघर घाणमेतत ।

ग्राम प्रभक्त हमदन्तक वक्त्रयन्त्र—

जृम्भा विटम्बि विकटोदरमस्तु क्षापम् ॥

हट की श्रुति देती ह। इसमे भयकर आकृति वाले एक विशाल राक्षस के मुख का विम्ब बन जाता है।

पद्यकाव्य मे ही नहीं, गद्यकाव्य मे भी इसी प्रकार के एक से एक सुन्दर काव्य विम्ब उपलब्ध होत है। वाण के काव्य तो ऐसे विम्बों के भण्डार ह। उनमे प्रसाग के अनुसार मानवी भावनाओं के सबेदन की रगोनी भरी ह। जैसे पुण्डरीक के साथ प्रणय वृत्तान्त के वणन के मदर्भ मे सन्ध्या का वणन कादम्बरी की मानसिक अवस्था के अनुरूप ही ह। इसमे सूय क डलने मे लेकर उसने छिपने तक का यथाथ वणन साध का पूण सश्लिष्ट विम्ब प्रस्तुत करता है। वाण का एक अन्य काव्य विम्ब—

“मन्नाशुव-यटाल-तनुता-प्रलेखात्-गच्छित-लावण्य-कुञ्जिका-वजित-राजन-
राजहसस्य मभुदगीर्णेन पयसा ॥”

डा० बामुदेव शरण अग्रवान के अनुसार एक जटाक कृति ह। इसमे तत्कालीन वास्तुकला की अद्भुत चाकी दिखाई गइ है। छम्भे पर बनी हुई एक अष्टवर्षीया दानी की प्रतिमा के हाथ म चादी का रजहस के नदृश मुख वाला भृङ्गार पकड़ाया हुआ है। उमके बदन पर चिपकी बोली की ताल किनारी मे उसका मीन्दय और निखर आया है। उस भृङ्गार म पानी की धार निक्ल रही है। यठ एक स्पष्ट विम्ब है। यद्यपि श्लेष अनकार के द्वारा इसने गाच अथ निकाले गये हे तथापि उन सभी मे पृथक् पृथक् वस्तु-चित्र बनते हे। इस प्रकार क विम्ब दिरदे ही होग।^१

१ अथ मदीषेनव हृदयन कुरारागमविभागे लोहितायति भगनतनात्रलम्बिनि
रवि-विम्बे, स्रगमदिवस-रुदशानानुरक्ताया कृत-कमलशयनाथामनङ्गा-
तुगयामिव पाण्डुना ब्रजन्व्यामानपलम्ब्याम्, गैरिक-गिरिमलिनप्रपात-
पाटलेषु वमनवनेभ्य उत्थाय वन गज-यूथेग्विव पुञ्जीभवत्सु भास्कर-
किरणेषु, गगनावतारविश्रामलालयान्ता रविरथत्राजिता ह्यहृपा-रवप्रति-
शब्देन सह विशति मेरुगिरि-गह्वर वासरे, मुकुलितरत्नपङ्कज पुट-
प्रविष्ट-मधुकर्यावनीषु विरह-मूर्च्छान्धकारि-हृदयास्वित्त प्रारब्धानिमोतनासु
पद्मिनीषु, शशीकृत-भामान्य मृणाललता-विदग्धमन्त्रामिनीनीव परम्परहृदया-
न्यादाय त्रिषटमानसु गथाङ्गनाम्ना युगनेषु ।

—स०पृ० २२२

२ ह०पृ० ५३३-३४

३ ह०च० एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृ० ६६-१०२

ये विभिन्न प्रकार के विम्बा के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि संस्कृत के कवि विम्ब-सम्बन्धी धारणा में परिचित ही नहीं थे बल्कि उनके निर्माण में अत्यन्त दक्ष थे। वे काव्य के लिये उनकी सत्ता अनिवार्य मानते थे। क्या प्रकृति और क्या लोक-जीवन यहाँ तक कि भावनाशा के सूक्ष्म क्षेत्र में भी उन की कविता काव्यविम्बों में सजीव है। गद्य और पद्य दोनों प्रकार के काव्य इन विम्बा में प्राणवान् हैं। इस लिये संस्कृत के कवियों और आचार्यों को काव्य-विम्ब की भावना में अपरिचित समझना या उनमें महत्त्व को समझने में असमर्थ मानना भ्रान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

तृतीय परिच्छेद

चमत्कार, कल्पना एव अलङ्कार

चमत्कार का तारतम्य—पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि वेद में लेकर श्रीहृष तक सभी कवियों की काव्य-रचनाएँ विम्ब के उदाहरणों में भरी पड़ी हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि काव्यशास्त्र में भी उसके लक्षण, भेद-प्रभेद अवश्य विवेचित हुए होंगे। अब काव्यशास्त्र में उपनयन सामग्री के आधार पर काव्य-विम्ब के भेद-प्रभेद एवं उसके लिए आवश्यक तत्वों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

प्रथम अध्याय में हम स्थापना कर चुके हैं कि आज जिसे काव्य-विम्ब के नाम से पुकारा जाता है, काव्यशास्त्र में उसे चमत्कार नाम से व्यवहृत किया जाता है। जिसमें चमत्कार की मात्रा अधिक होती है, उसे काव्य का उत्तम, जिसमें उसमें कुछ कम होती है, उसे मध्यम, जिसमें और कम होती है वह अधम घोषित किया गया है। परन्तु काव्यत्व उन सभी में है। जिसमें चमत्कार का सबया अभाव है उसे काव्य ही स्वीकार नहीं किया गया है।^१

आचार्यों ने व्यंग्य-प्रधान कृति को उत्तम काव्य घोषित किया है,^२ गुणीभूत व्यंग्य वाली कविता को मध्यम^३ एवं व्यंग्य के चमत्कार की उत्पन्न दुर्वोपता अथवा सबदोष्यता ने युक्त रचना को अधम या घटिया माना है।^४ जयन्ताय को इसमें सतोप नहीं हुआ और उन्होंने चार भेद मानते हुए प्राचीनों द्वारा

१ तु० — चारन्वोत्कप-निवन्वना हि बान्य-व्यंग्ययो प्राधान्यविवक्षा ।

—ध्वन्या० पृ० ११४

२ बान्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तन्काव्यगुणगम् ।

—साद० ५, १

३ अपरन्तु गुणीभूत-व्यङ्ग्य वाच्यादनुत्तमं व्यंग्ये । तत्र स्यादितराय वाक्वा-
क्षिप्य च भाव्यसिद्धयुग्म् ॥ सन्दिग्धप्राधान्य तुल्य-प्राधान्यम-
कूटम् । वही ४, १३-१४

४ शब्दविषय वाच्य-चित्रमव्यङ्ग्य त्वचर स्मृतम् ॥

—काप्रका० १, ५

अधम मान गए काव्य प्रकार का मध्यम और अधम दा श्रणिया म विभवत कर दिया

चित्रशब्द—श्वनिवाच्या न स्फटव्यग्य-स्पर्शरहित काव्य का चित्र काव्य कहा = १^२ क भी चित्र और जय चित्र इन दो नदा म विभवत है ।^{१३} चित्र चित्र न स्त्रीकार किया = निमम कवि का मारा प्रथम गद का योजना पर न कर्त्तव्य गता = जय क रहने पर भा या ता सम सौन्दर्य न हा हा भी ता गुण खजान म रव रन की जाभा का भाति मुखवाच्य न हा ।^{१४}

व्यस विपरीत जय चित्र म कवि का यन क्या कहता है क म्यात पर कम कना = पर जिक कर्त्तव्य हाना = । मका हम दूसर शब्द म वह सकत = एव सौन्दर्य निमगजात है जा कि उचित आभरण वस्त्र भूपणादि म और लिखर जाता = वह उत्तम ममता जाता है दूसरा मडनाय वस्त्र भूपणा का जिकता एव पात्र मुग्मा जादि आवश्यकता म जिक नथड कर चित्र दिया जाता = वह क वाग भाग और जहचिक्कर भा बन जाता = जत्र य दूसर प्रकार का यत्र सौन्दर्य काव्य म उपन किया जाता = तत्र जयचित्र का मलि गता = ।

काव्य भेदी का भीचित्य जब यग विचारणाय प्रश्न यह है कि जब काव्य का मूलतत्त्व चमकार है और ताना या चाग प्रकारा म चमकार का मत्ता = ता उत्तम और अधम गता श्रणिया जनात म क्या औन्नत्य है । आचापर न आनप्रस्ता काव्य का मय धम माता है या निरतिशयानद प्राप्ति का एव मर म काव्य का प्रयाजन स्वाकार किया है । चमकार आन का खान है जवा जानद म जमिन है ता म इत प्रत्यक काव्य म

१ कविभिमानपि चतुरा भदानगणयत न्तम मध्यमाग्रमभावेन त्रिभिधमव कायमाचक्षत तनाथचित्रयागविशेषणाग्रमन्त्रमयुक्ता वक्तुम् । तारतम्यस्य स्फुटमुपनन्द । —रग० १

२ प्रज्ञानगुणभावाभ्या व्यस्यप्रस्यत्र व्यवस्थित । उभे-काव्य ततोऽन्यद पतनच्छिनमभिप्रायत । —ध्वया ३ ४१

३ अगुडम अस्फटम । उग्र गिष्पण ६

४ चत्राभिधय शान्तिरिष्टा वाचामन् कृति । —भाका० १ ३६

५ चमकारस्तु त्रिदुपामाद-भरिवाहकृत । घच पू० १ तथा च तथाहि लाक सकन विघ्न विनिमक्ता मवित्तिरव चमकार निवेग रमास्वादन भोग सभापत्ति-नय विद्या-यादि शब्दरभिप्रीयत । —तनालीकिक चमत्का

रामा रमास्वाद स्मृत्यनुभाव-लौकिक-मनवनविनक्षण एव ।

—अभि० भा भा० १ पू० २४०

से उनकी सिद्धि होती ही है। पुन उक्तम, मध्यम और अधम यह श्रेणी या वग-भेद क्या ?

प्रश्न बड़ा तक-सगत सगता है और इस युग में जबकि वग-हीन समाज की स्थापना का नाश लगाया जा रहा हो, जीवन और व्यवहार में विषमता की विभाजक दीवारें ढाकर बलपूर्वक समानता लाने का यत्न किया जा रहा है किन्तु स्वयं और भी अधिक वैषम्य उत्पन्न किया जा रहा हो। जब लौकिक जीवन में यह समानता संभव नहीं तो काव्य में ही बँसे होगी। भोज्य पदार्थ एक से एक अच्छे हो पर सबको समान रूप में रुचि, ग्रह तो संभव नहीं। चटपटा खान वाले को मीठा अथवा सतुलित नमक मिच वाला पदार्थ भी रुचि-कर नहीं लगता इसी प्रकार एक आमिषभाजी स्वादिष्ट में स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन का छोड़कर सामिष भोजन में ही स्वाद का अनुभव करता है। यहाँ तक कि गन्ध के रस सवन, खजूर या ताड़ के फल के रस में बने गुट में मासुय एक सा नहीं रहता। पुन चीनी मिथी, बतारण, शहद और दाख की मिष्ठान में भी कमीबेशी पायी जाती है तब गुच्छ रूप में भावना में सम्बन्ध रखने वाले काव्य के चमत्कार में सार्वभौमिकता न होगी और यदि चमत्कार में सार्वभौमिकता हासिल तो स्वयं ही उत्कृष्ट और निकृष्ट का भेद आ जायगा।

काव्य भावलोक की वस्तु— इसके अतिरिक्त यह सर्वसम्मत सिद्धांत है कि काव्य का सम्बन्ध मनोविज्ञान एवं संवेदन के माध्यम है। वह अतर्कगत की व्याख्या है न कि तार्किक विवेचन में न होकर अनुभूति के द्वारा सम्पादित की जाती है। अनुभूति हृदय की वस्तु है और सहृदय-संवेदन शक्ति है। यह सहृदयता कोई बाजारू वस्तु न होकर भावनाश्रित एवं केवल भावुक व्यक्तियों तक सीमित रहती है। तब में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि काव्य और संगीत में बहुत से लोग रुचि रखते हैं ना अनेक इसी समय का अपव्यय मात्र मरते हैं। कवि स्वयं भावुक होता है और भावना के उद्वेगित होने पर काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है। आनन्दबद्धन ने रस-भावादि-स्पर्शरहित काव्य का अनास्त-विक काव्य कहा है। रमारञ्जन मुखर्जी भी जो कि प्रत्येक कविता को एक

१ व्यङ्ग्यस्यावस्य प्राधान्ये ध्वनि-सज्जित-काव्य-प्रकार गुणभावे तु गुणीभूत-व्यङ्ग्यता, ततोऽन्यद् रसभावादित्पयरहित व्यङ्ग्यत्व-विशेषप्रवाशन-शक्तिभूय च काव्य कवचवाच्यवाचकवचित्र्यभावाश्चर्येणोपनिबद्धमालेख्य-प्रत्येक यदाभासते तच्चित्रम्।

विम्ब स्वाकार करत हैं रसभावादि के अभाव म खण्णित विम्ब मानत है ।^१ इस लिए ही समीक्षक काव्य मे भाव-सत्त्व की सुद्धितत्व मे अधिकता स्वीकार करत है । यद्यपि एक पक्ष बुद्धिवाद म भी मौदय एव आनन्द की सत्ता स्वीकार करता है और इसक प्रमाणस्वरूप टी०एस० इलियट जैम आधुनिक कविया की कविता का निदर्शन प्रस्तुत करता है तथापि इसम भावना की गौणता मिद्ध नहीं हा जाती । मस्कृत साहित्य म भा एम बौद्धिकता प्रधान कविया की यूनता नहीं रही है । जब काइ कवि किसी धम या ज्ञान का प्रचार करने क लिए काव्य रचना करता ह ता उसक काव्य म बौद्धिकता ही प्रधान हागा । भावुकता या या कहिए कविव का पक्ष गौण होगा । उदाहरण क लिए बौद्ध कवि अश्वघोष म काव्य प्रतिभा रहन पर भी उम कार्त्तिकदास आदि का मा यज्ञ क्या नहा मिना ? कारण यही है कि उमका बद्धचरित जाय म अ एक दागनिक्ता म लदा हुआ है । मौ दरनन्द मे भी बह स्पष्ट रूप म और ईमानदारी मे यह स्वीकार करता ह कि उन काव्य की रचना मनुष्यो को ज्ञान प्रदान करने के लिए की है ।^२ पाणिनय क भार म उद काव्या की रचना करन वाल भारवि भाष और श्रीहृष का कविकुल गुरु की उपाधि क्या नहा मिनी ? क्या जयदेव न उनको प्रगम्ति म स्थान नहीं दिया ।^३ क्या इतम कविव प्रतिभा नहा थी ? थी अवश्य परन्तु उनका कविव पाण्डित्य क भार

- 1 Employment of this device in this manner apprehended by the exponent of the Doctrine of Dhvani leads to a broken image which though presenting graceful thought fails to provide for a common meeting ground between the experencer and his related spirits

—Ima in Poetry p 164

⇒ इयपा व्युपशान्तये न रतये माधायगभा कृति
श्रानण ग्रहणाथमयमनसा काव्यापचारत कृता
यमाशान्तकृतमयदत्र हि मया तत काव्यधर्मात् कृतम
पातु तिक्तमिचौपद्य मश्रुत हृद्य कथ स्यादिति ॥

—सी०न० १८६३

३ यस्याश्चरश्चिह्नुरनिकर कणपूरा मयूरा
भामा तस कविकुलगुरु कार्त्तिकदासा विनाम ।
हर्षो हर्षो हृत्यवसति पञ्चवाणश्च वाण
कपा नपा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ॥

—प्रज्ञ०प्रस्ता० २२

से दब गया था। पाठक शास्त्रीय प्रपञ्च की झाड़ी में उलझे अपने आनल को छुड़ाने में रह जाता है और रम की धारा बह जाती है। हाँ, जो लोग उसी प्रचार के काव्य को पसन्द करते हैं, उनके लिए बृहत्कवीकार और सुबधु सदृश श्लेष-प्रधान कवि ही उत्तम हैं। क्योंकि वे उनकी मस्तिष्क-कण्डू के कषण में समर्थ होते हैं- कालिदास-मदूज कवियों की कविता उन्हें वच्चो की सी लगती है। इस रचि और रीति के भेद के कारण ही राजशेखर ने कवियों का वर्ग विभाजन करते हुए ऐसे कवियों को शास्त्रकवि कहा है।¹

इसका तात्पर्य यह नहीं कि कालिदास आदि के काव्य में पाण्डित्य का सबथा अभाव है। वे भी समाज की नीति एवं सत्य की शिक्षा देते हैं। किन्तु उनके काव्य में यह शिक्षा का रूप सुखर नहीं होता है। यह किसी से छिपा नहीं है कि सत्य के दहन हल्के आवरण में जितने भले लगते हैं, उतने निरावृत रूप में नहीं। वेद में भी इसका सङ्केत स्पष्ट है कि सत्य चमत्क्षु में देखने की वस्तु नहीं है, उसके लिए सूक्ष्म दृष्टि चाहिए²। कमनीय में कमनीय नारी-कलेवर विवस्त्र अवस्था में एक मात्र खूबार भाँटिये या वासना में अग्ने पशुवृत्ति मनुष्य को ही आकर्षक लग सकता है। अन्य के लिए वह विरूप एवं घृणाजनक ही होगा। परन्तु वही वस्त्राभरणादि में मनमोहक बन जाता है। उसके जिस अंग को किसी कवि ने मेढक के फट पट के तुल्य बताया था और उराने प्रति आकषण रखने वाले मनुष्य को वृमि में अधिक स्वीकार नहीं किया³ उसी को दूसरा कवि अमृत-सरोवर कहता है⁴। पहला घृणा और निर्वेद उत्पन्न करता है तो दूसरा रागवृत्ति जगता है। वाग्मीकि भी रावण के अन्त पुर में सोई हुई उमंगी

- 1 यच्छास्त्रकवि काव्ये रसमम्पद् विच्छिनन्ति । यत्काव्यकवि शास्त्र
तर्क-कव्यशमप्यथ-मुक्ति-वैचित्र्येण शनथयति । —कामी० पृ० ५५
- 2 हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुषम् ।
तत्त्व पूषन्पावृणु सत्यवर्मायि दृष्टये ॥ —यजु० ४०, १६
- 3 उत्तानोच्छून-मण्डूक-पाटितादरसन्निभे ।
क्लैदिनि स्त्रीत्रणे मक्ति कृमे कस्य न जायते । —का०प्रवा०उ० ३०७
- 4 अमुष्मिन्नावप्यामृतमरिसि नूनं मृगदश
स्मर गर्वप्लुष्ट पृथुजपन-भागे निपतित ।
तदङ्गाद्गाराणां प्रथमपिशुना नाभिकुहरे
शिक्षा वूमस्मैय परिणमति रोमावलि-वपु ॥ —वही, उ० ४३२

पाठक या श्राता के हृदय का अभिभूत नहीं करती। उगी की तुलना म यदि उगी बवि का हृग रिताण रखा जाय^१ ता वह अत्यन्त मणकत है और पाठक एव श्राता क हृदय म बरुण रग का जगता है। उगतिण पहवा जहाँ केवत वाद्य जाकरण उत्पन्न करता है दूसरा भाव मग्नेपण भी। उगका मवेदन ध्यापन और सावभौम है। उगतिण रग भाव ध्वनि को ही वाच्य की आत्मा स्वीकार किया गया है। उगम की बरुण रग जा कि हृदय का पीडा का प्रवट करना है अधिक मामिक है। वह ऐसा शापयत और मारैभौम भाव है कि रव-रव देव मुनि मनुष्य पज और पथी सभी का किमी न किमी रूप मे अरुष्य आन्तानित करता है। यही वाग्ण है भारतीय अन्तार्यों न यदि वाच्य की उत्पत्ति का मून उगा क रथाया शाक का स्वीकार रिता^१ है ता महानवि शैली न दद भर गीता का सर्वोत्तम घोपित निर्या^१। छाक जावात्रवा न दु पान नाटक या त्रागदी का अधिक महत्ता दी^३ ता भवभूति न करण को ही एक माद रग माना^१। भाज न शृगार का एकमात्र रग मानने हण भी^१ विप्रलम्भ शृगार के

१ मदकपुत्रा जनान जगतग नव प्रमृतिवदटा तपस्विनी ।

गनित्तयाग्य जागन्तमदय नहा विधं त्वा बरुणा रुणद्धि ना ॥ वही १, १३५

मदवग दशमूणानन-प्रिय विपल-दूर दति त्रयादित ।

विदातय-या ददनाश्च पराण प्रिय ग कीदृमविना तव क्षण ॥

—वही १, ११७

गुता यमादृय रिताय अकृतेविधाय कम्प्राणि मुखानि कम्प्रति ।

बधामु शिष्यभ्रमिति प्रमीय म स्तुतम्य गवाद वुबुधे नृपा-पुण ॥

—वही, १, १८२

२ वाच्यस्यात्मा म एवावगन्था चादिरव पुरा ।

वाञ्छ-द्वन्द्ववियागाथ जात ग्नामन्वमागत ॥ ध्व या० १, ५

3 We look before and after

And pine for what is not

Our sincerest laughter

With some pain is fraught

Our Sweetest songs are those

That tell of sadde t thought

—P B Shelly The Skylark

४ गार्गि० पृ० ३० पक्ति २-३

५ एवा रग बरुण एव निमित्तभदाद

मित्त पृथक् पृथगिवा श्यत विवर्तान् ।

जायत बुद्बुदनरुणमयान् विराग—

नम्भा यथा मर्दितमज द्वि नममस्तम ॥

—उ०ग० ३ ५७

६ शृगारहास्यवरुणात्मकवाग्दीर्घाभरुणवगतभषावागनातनाम्न

आम्नासिपुदगरगान मुषियो वय तु शृगारमेव रगनाद् रगमामनाम ॥

—शृ०प्र० भाग १, ७

भेद को करुण मञ्जा दी^१। यहा तक कह दिया गया कि जब तक वियोग शृंगार का चित्रण न हो तब तक गद्योग शृंगार की पुष्टि नहीं होती^२। भरत मुनि न लोक में महर्षि समझी जाने वाली परकीया रति का अधिक तीव्र बताया^३। इसका कारण यही है कि इस भाव का प्रभाव अधिक गहरा और ममस्पर्शी होता है। विश्व भर में अमर वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तर-रामचरित और मेघदूत इस वेदना की अभिव्यजना और मार्मिकता के कारण ही विख्यात है। संभव है, कुछ पाठकों को महाभारत में वेदना की बात या शाकुन्तल में करुण की मार्मिकता^४ की बात अटपटी लगे परन्तु म इस बात को पुन दृष्टता से कहता हूँ। गते ही महाभारत में वीरघोष की गम्भीर ध्वनि सुनाई देती है, किन्तु उसका अन्त किस प्रकार है, यह देखने की आवश्यकता है। वह पाठक के हृदय पर नियति की प्रबलता और ममत्ता की अनित्यता की छाप छोड़ जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तल की महत्ता तृतीय अंक तक के भाग में नहीं है। शाकुन्तला भी सुन्दरिया तो विश्व साहित्य में हैं, किन्तु अपेक्षा और जूलियट के रूप में मँकटो मिल जायेगी और उनके काम व्यापार आज के सस्ते अश्लील साहित्य में और अधिक नरन रूप में वर्णित मिलेगा। वस्तुतः चतुर्थ अंक में उसकी मार्मिकता प्रारम्भ होती है और श्रावण अंक में पुनर्गिनन में उमका पर्यवसान होता है।

मसार में युद्ध और कलह किस जाति और ममान में नहीं हान ? दतना व्यापक हान पर भी वीररस-प्रधान साहित्य शृंगार-प्रधान साहित्य की तुलना में न्यून है। यहा तक कि विरक्ति-प्रधान जैन धर्म के अनुयायी आचार्यों ने युद्धवीर का हिंसाप्रधान हाने में मान्यता नहीं दी^५। पर शृंगार रस का त्याग नहीं किया। यहा तक कि उनके पुराणों में एक पानीव्रत के लिए प्रसिद्ध राम और लक्ष्मण की भी महत्त्वो पन्निया गिनाई गई है। शृंगार की विजय-दुन्दुभि बजने

१ लोचान्तर्गते यूनि बलभे बलभा यदा।

भूषं दुःखायनं दीना करुण स तदोच्यते ॥ —म०क०, ५, ५०

२ न विना विप्रनम्भेन सम्भोग पुष्टिमश्नुते। —वही, ५, ५२

३ यद् दामाभिनिवेणित्व यतश्चैव निवायते।

दुर्लभं च यत्रार्या सा कामस्य रति परा। —नाशा०(निशा) २२, १६६

४ तु०—शाकुन्तले चतुर्थेऽङ्के कालिदासो विधिष्यते। अज्ञात

५ अनुयोगद्वारमूत्र V Raghawan Number of Rasas p 180

6 A critical study of Paumacaryam—Dr K R Chande

मे इसमें अधिक प्रमाण क्या चाहिए? उसका हेतु क्या है? यही कि उसका मूल प्रेम ऐसा भाव है जो कि देव, दानव, ऋषि-मुनि, मनुष्य, तियक् ममी को प्रभावित करता है। यह मन्व्य इस वात का सिद्ध करना है कि भावानुभूतियाँ ही हृदय का आन्दोलित करती हैं और उनके मजबूत एवं सफ़्त चित्रण में काव्य में चमत्कार की उत्पत्ति अधिक होती है। ऐसा काव्य जीवन के अधिक ममीप जाता है। इसीलिए आचार्यों ने रम को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठा दी। किन्तु विचारोत्तेजन के द्वारा बौद्धिक तृप्ति देने वाले साहित्य की उपक्षा न करते हुए वस्तुध्वनि की भी महत्त्व दिया, भले ही यह किसी को नहीं भी मुहाया^१। विचार की अपक्षा उसके प्रकाशन का प्रकार कुछ गौण होता है, इसलिए रीति, वृत्ति और जलवार आदि का ध्वनि की तुलना में नीचे स्थान दिया है।

इस गौण-प्रधान-भाव का मूल चमत्कार का तात्पर्य है। यह चमत्कार चित्रणना, वैचित्र्य और नवीनता पर आधारित है। इसलिए गुण, वनोक्ति, जनवार और कलना उसके प्रमाण उपकरण कह जा सकते हैं।

इसलिए काव्य का मूल आधार चमत्कार है जिसके उत्पादन के लिए कवि की प्रतिभा का प्रयोग होता है। चमत्कार का सामान्य लक्षण मन्वेत रूप में पहले परिच्छेद में प्रस्तुत किया जा चुका है।^२ अन्य जलवारशास्त्री भी मीधे शब्दों में या प्रकारान्तर में उस चमत्कार का प्रमाणता देने हैं। भारत जब काव्य के हृदयावजन की बात करते हैं^३ तो उस चमत्कार की आग ही मन्वेत करते हैं। क्योंकि वही हृदय का जावजित करने में समर्थ होता है। उन्होंने स्पष्ट रूप में चमत्कार शब्द का प्रयोग नहीं किया है। परन्तु "विभान्ति"^४

१ तु०—यन् ध्वनिकारणाकृतम्—“काव्यस्यात्मा ध्वनि” इति, तत् कि वस्त्व-लकारस्यादिन-वृणस्त्रिभूयो ध्वनि काव्यस्यात्मा उन रमादिरूपमाना वा नाद्य प्रहेतिकदावतिव्याप्त अन्यथा “देवदत्तो ग्राम याति” इति वाक्ये तद्-भन्व्यस्य तदनुमरणस्यव्यग्यावगतरपि काव्यत्व स्यात् । जम्ब्वन्ति चेत न । रमबल एव काव्यत्वाद्-गीकारात् ।

—माद, पृ० १७

२ दशैं ज० १, टिप्प०

३ जम्बूनपूर्वो योऽप्यय मादृश्यात परिकल्पित ।

नाकस्य हृदयप्राप्ती मार्जभप्राय इति स्मृत ॥

—शा०ना० १६, १७

४ न भूपिना बट्ट विभान्ति हि काव्यवन्धा । वही १६, १२२

“भान्ति”^१ “हृदयग्राही”^२ “शोभा जनयन्ति”^३ “शोभन्ते”^४ “रञ्जयेन्मन”^५ आदि पदों के द्वारा उमका अवबाध कराया है। वस्तुतः आचार्य कुन्तक में पूर्व स्पष्ट शब्दा में चमत्कार शब्द का प्रयोग किसी भी काव्य शास्त्री ने नहीं किया है। प्रत्युत इग अर्थ में शोभा, अलङ्कार^६, “अलङ्कृति”^७ चारुत्व^८ सद्गुण शब्दों को प्रयुक्त करते हैं। कुन्तक ने शोभा का अर्थ मौन्य^९ करते हुए उसमें युक्त होने को सहृदयहृदयाह्लादकत्व कहा है जो कि निष्कप में चमत्कारकता ही सिद्ध होती है।^{१०} आचार्य भामह जहां तहां अलङ्कार^१, चारु^{१२} आदि शब्दों में उमका संकेत करते हैं। कहीं कहीं अतिशय^{१३} शब्दों के द्वारा भी इसका संकेत किया है। वक्रोक्ति को उसका प्रमुख उपकरण स्वीकार किया है।^{१४} इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य बात है कि भामह ने उभया के प्रत्युदाहरण के रूप में जो श्लोक उद्धृत किया है^{१५} उनके दोषग्रस्त होने का कारण यही है कि उसमें श्रीकृष्ण की तुलना मेघ से करके कवि ने विम्व बनाने का यत्न किया है। श्रीकृष्ण ने पीत वस्त्र धारण किया है जो कि पवन से आन्दोलित है, हाथ में

१ युक्ता न भान्ति लज्जिता भरत-प्रयागा । वही १२, १२३

२ इ० टिप्पण० ३६

३ न शोभा जनयन्ति हि ।

—नाशा० १५, १४७

४ वेश्या इव न शोभन्ते वमण्डनुधरैर्द्विजैः ।

—वही १६, १३२

५ उदात्तमपि यत् काव्य स्यादङ्गैः परिवर्जितम् ।

हीनत्वात् प्रयोगस्य न सता रञ्जयेन्मन ॥

—वही १६, ५२-५३

६ देखें टिप्पणी ४६

७ इति वाचामलकारा दक्षिणा पूर्वमूरिभिः ।

—का०द० २, ७१

८ वक्राभिधेय-शब्दोक्तिरिष्य वाचामलङ्कृति ।

—भाका० १, ३६

९ उत्तमन्तरेणाशक्य यत्तच्चारुत्व प्रकाशयन् ।

—ध्वन्या० १, १५

१० शोभा रौन्वयमुच्यते । तथा शालते श्लाघते य म शोभाशाली, तस्य भाव शोभाशालिता । मैव च सहृदयाह्लादकारिता । वजी० २४ प०

११ उपमादिरलङ्कारस्तस्यान्यैव हृद्योदिन ।

—भाका० १, १३

१२ न नितान्तादिमात्रेण जायत चारुता गिराम् ।

—वही १, ३६

१३ यस्यातिशयवानघ कथं मोऽप्रमभवो मत ।

—वही २, ५१

१४ मैपा मवत्र वक्रोक्तिरनपार्थो विभाव्यते ।

यत्नोऽप्या कविता काथ कोऽलङ्कारोऽनया विता ॥

—वही २, ८५

१५ स मारुताकम्पितपीत-वासा विभ्रसनील शशिभाममञ्जम् ।

यदुप्रवीर प्रगृहीतशाङ्ग सेन्द्रायुधो मेघ द्वावभासे ॥

—वही २, ४३

शख लिय हैं दूसरे हाथ म धनुष है । इम प्रकार उपमेय पक्ष का चित्र ता पूरा है पर उपमानपक्ष का नहै । क्याकि मध म पीनवस्त्र और शख का समानान्तर काइ पदार्थ नही है । विद्युत् और बलाका का निर्देश और किया जाना ता चित्र पूण बन जाता । इम 'यूनता का मकत भामह न यह कहकर किया है कि इम पद्य म इद्र प्रनुष का ग्रहण करन म धनुष ता दिखा दिया किन्तु वस्त्र और शख का ग्रहण न करन म औपम्यहान है ।^१ वस्तुन उपमय पक्ष म वस्त्र और शख का स्पष्ट निर्देश हान म भामह का स्पष्टीकरण असंगत लगना है । जत वाम शब्द खानुपादानात् का अर्थ यत् करना हागा कि वस्त्र और शख क समानान्तर अर्थ वस्तुजा का शब्द म कथन न करन क कारण । अथवा हान कैस हाना ? यथाय म समाक्षा गद्य म जिस प्रकार मरुता और स्पष्टता म सम्भव है तम् प्रकार पद्य म तिम प्रकार मरुता और स्पष्टता म सम्भव है उम प्रकार पद्य म नहै । भामह न आनाचना क लिए पद्य का प्रयाग किया तो विवक्षित आशय तन्ना स्पष्ट नहै हो सका ।

इसा शत्रुत्व म दर्शितम पद भी ध्यान दन योग्य है । जब उपमय पक्ष म स्पष्ट रूप म प्रगहीनता म तम् पक्ष म धनुषग्रहण का चचा कर ही दी ता शत्रुत्वाप क ग्रहण म उमका लक्षण कैस हुआ ? जत जयधनुषपत्ति म कवि का विवक्षित यहा है कि इद्रधनुष क ग्रहण म उपमय-वस्तु क धनुष का ता प्रत्यभा-करण हो गया है । क्याकि उपमानपक्ष का चित्र पाठक क मस्तिष्क म उभर जान पर उमके प्रकाश म उपमय पक्ष का चित्र स्पष्ट हाता है । यथा उपमा दन का प्रयोजन हो काइ नया । यह स्पष्ट रूप म खण्णत विम्ब का दिग्गान है । भामह का आनाचना भा तम् भावना का आर सकत करती है ।

इसा असम्भव विम्ब का उदाहरण एक और है । किमा यादवा क गानाकार धनुष म पानी बाणा की बपा की तुलना कृष्ण म धिर भूय विम्ब म गिरता हुइ जनता जन का धाराजा म का शब्द है ।^२ भामह इसकी आलोचना करत हुए कहत हैं कि भना भूय मण्डन म जनता हुइ जलधाराका का पतन कैस सम्भव है । क्याकि पाना किनना ही क्या न खोल रहा हा वह आग का भक्ति कभा नहा जन सकता । हा यदि उमम गैमाय त्व्य जत्रवा पटान नप्या जादि काइ

१ शत्रुत्वापद्रहादत्र दर्शित किल कामुकम् ।

वाम शब्द खानुपादानाद् धानमि यभिधायन ॥

—वही ० ४४

२ निष्पुनुरान्धात्वि तस्य दाप्ता शरा धनुमण्डनमध्यभाज ।

जाज्वल्यमाना इव वारिधारा लितायमान परिवेपिणोऽजात ॥

—वही २ ४८

आग्नेय तैल मिला हुआ हो तो बात दूरगामी है। किन्तु भले ही आधुनिक विज्ञान सूर्य में जलने वाली गैसों का अस्तित्व मानता हो पर उससे ज्वालामुखी जल-धारणा का निर्गमन बह भी स्वीकार नहीं करता। यह भी कल्पना करना कठिन है कि उक्त कवि महाशय के मस्तिष्क में यह बात रही होगी कि सूर्य आग का गोला है या उसमें जलने वाली गैसों भरी है। इस प्रकार जब सूर्य-मण्डल में जलती अग्निधारा का पतन संभव नहीं तो धनुषमण्डल में निकलने चमत्कृत वाणों का स्वरूप कैसा स्पष्ट होगा? इस प्रकार विषय न बताने में उपमा अलङ्कार यहाँ संभव नहीं है।^१

“अतिशय” शब्द यद्यपि आश्रय का वाचक है परन्तु प्रकृत में उसका प्रयोग चमत्कार के लिए ही प्रतीत होता है। भामह का कहना है कि जिसका अर्थ वस्तुतः चमत्कारवान् होगा वह असंभव कैसा कहा जा सकता है। उपमा और उत्प्रेक्षा में इस चमत्कारकता की अपेक्षा रहती है।^२ इस प्रसंग में पुनः ऐसा उदाहरण देना है जिसमें उपमा पक्ष में एक अंग की न्यूनता में विषय अपूर्ण रह गया है। किन्तु कवि ने पीताम्बरधारी और हाथ में धनुष लिए श्रीकृष्ण के सुन्दर एवं भीषण शरीर की तुलना में मेघ में की है जिसके मध्य में विद्युत् चमक रही है, इन्द्रधनुष भी विद्यमान है। चन्द्रमा का भी उसमें सम्पत् हो रहा है। यहाँ विद्युत् में पीताम्बर का, इन्द्रधनुष में शङ्ख वा साम्य है पर मेघ में श्याम वण वाले श्रीकृष्ण के हाथ में शङ्ख की स्थिति बतानी चाहिए जिसे कवि भूल गया है। इसलिए विषय खण्डित रह गया है।^३

इसी चमत्कार के कारण लोकोत्तर विषय के वाचक वचन में अतिशयाक्ति अलङ्कार स्वीकार किया है। उसमें वाचकत्व के अस्तित्व के कारण वचोक्ति

१ कथं पाताम्बुजाराणां ज्वलन्तीनां विवम्बत ।

जमभवाद्यथ युक्त्या तनाऽमभव उच्यते ॥

—वही २, ४६

२ यस्यातिशयवानथ कथं सोऽमभवो मत ।

इष्टं चातिशयत्वमुपमोऽप्रेक्षयेद्यथा ॥

—वही २, ५१

३ स पीतवामा प्रहृष्टीन-शङ्खो मनोव-भीम वपुराप कृष्ण ।

शतहृद्देन्द्रायुःशान् निशाया ममृज्यमान शशिनैव मेघ ॥

—वही २, ५८

४ तु०—शशिनो प्रहृष्टदेतदाश्रित्य निल न ह्ययम् ।

निदिष्ट उपमेयेऽर्थो वाच्यो वा अलजोऽन तु ॥

—वही २, ५६

की सत्ता स्वीकार की है और प्रत्येक अक्षर में वक्रोक्ति का होना अनिवार्य माना गया है ।

दण्ड भा चमकार शब्द में परिवर्तित नहीं हैं । इसके लिए शोभा शब्द का प्रयोग करना है । शोभा शब्द दीर्घव्ययक शुभ धातु में बनता है ।^१ दाप्ति का अर्थ भा दमकना या चमकना होता है । चमक शब्द भी चमत्कार में ही विक्रान्त है । चमक प्रकाश रूप होता है और शब्द प्रतिपाद्य भाव प्रकाशित होना— अतश्चक्षुः क प्रत्यक्ष होना यहाँ शोभा का तात्पर्य सिद्ध होता है । तभी काव्य में शोभाकारक धर्मों को अलंकार घोषित किया है ।^२

इस प्रसंग में यह भी विचारणीय प्रश्न है कि इन अलंकारवादी आचार्यों की दृष्टि में रस का क्या स्वरूप था । रसवद् आदि अलंकार स्वीकार करने में यह भी निश्चिन्त है कि उनका समय में आनन्दवधनादि का अभिमत रस का स्वरूप निश्चिन्त नहीं हो पाया था । वे रस्यत इति रस यह व्युत्पत्ति उनका भाव अभीष्ट था ही । इसके आस्वाद रूप हान में जोर चमत्कार एवं आह्लाद में अमद हान में रस चमत्कार या वाचक सिद्ध होता है ।^३ इस कारण दण्ड द्वारा प्रतिपादित मधुर न दग्धन में रसवदवचन का अर्थ चमत्कारपूर्ण वाक्य ही लाना उचित है ।^४ इसलिए अनुप्राणयुक्त रचना को रसावह कहना

१ निमित्तना वचो यत्तु ताकानिजातवाचरम ।

मन्यन्तानिवाक्त्रि तामनङ्कारतया यथा ॥

—२ ८१

मैषा मवत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यत ।

यनाऽभ्या क्विना वाय काऽनकारोज्जया विना ॥

—२, ८५

२ शुभ दीप्ती —शाशा० ७५०

३ काव्यशास्त्रकारान् धर्मानन्तं कारान् प्रचक्षत ।

—काद० २ ६

४ नृ०—The word Rasa possesses an ambiguity of denota-

tion a particular rasa is said to lie in a given literary work as a sweet taste or a bitter taste may lie in a given food or drink The Connoisseur of poetry is also said to have a rasa (a taste) for the poetry he enjoys much as a wine taster has a taste for wine

—Prof Daniel H H Ingalls

क० इच्छामूर्ति द्वारा ज्ञान वक्रोक्तिरविन्द मस्करण की भूमिका पृ० ३८ पर उदघृत ।

५ मधुर रसवदवाचि वस्तुयपि रसस्थिति ।

यन माद्यन्ति धीमन्ता मधुनव मधुव्रता ॥

—काद० १ २१

संगत हो जाता है। अन्यथा कवल अनुप्रास की मानना में शृंगारादि रसा की अभिव्यक्ति कैसे सम्भव होगी ? वाणी का अनङ्कार कहने से इन आचार्यों की अलङ्कारों के सम्बन्ध में चमत्कार एवं विम्ब सम्बन्धी धारणा की पुष्टि हो जाती है। इसीलिए स्थान स्थान पर लोकान्तरता का वाचक शब्दों का प्रयोग उनके लिए किया गया है।^१ यहाँ तक कि सृष्टि सन्त्यग, लक्षण आदि सभी काव्यांगों का चमत्कार का आधापक होने में अनङ्कार स्वीकार कर दिया है।^२

उद्भट, वामन और ब्रट ये तीनों आचार्य भी चमत्कार शब्द का प्रयोग नहीं करते। उद्भट ने भी 'वैश्वाम' जनकांग कहकर जोभाषायक रसों का अलङ्कार स्वीकार किया है।^३ उनके व्याख्यानकार प्रतिहारदुर्गाज अलङ्कारों की काव्य का शोभावह वम वनात है।^४ रस और भाव को वे अतिशय मात्रा में काव्य का शोभाप्रायक रस मानते हैं। उनमें सबव पाभा शब्द का प्रयोग चमत्कार का अब में ही मानना चाहिए। भाविक जनकांग का प्रयोग में स्पष्ट ही चमत्कार शब्द का प्रयोग करने हैं। इसका कारण भी अतीतकाल में गरीर के भूषण धारण में हुए शोभातिशय का प्रयत्नप्राय होता है।^५

- १ यथा कथापि श्रुत्या यत ममानमनुभूयते ।
तद्रूपा हि पदामति मानुप्रामा रभावहा ॥ —वही १ १२
- २ लोवातीत श्वाण्यथमध्याशप्य विवक्षित ।
योऽप्रस्नेनातिनुरग्यन्ति विदग्धा नतर जना ॥ —वही १ ८६
तथा—विवक्षा या विशेषस्य लोकमीमातिवतिनी ।
असावतिज्याक्ति श्यादनपारोत्तमा यथा ॥ वही २ २१४
- ३ यत्तत्र माध्यन्तवत्यङ्गलक्षणाजगमान्नेरे ।
व्यावर्णितमिद चेष्टमनङ्कारान्दव न ॥ —वही २ ३६७
- ४ इत्यत एवानङ्कारा वाचा वैश्विचदुदाहृता । काव्यादरम १, २
- ५ तस्याश्चानङ्काराङ्काराच्चैतोहारित्व लक्ष्यमेव काव्यशोभावज्ञाना
वर्माणा गुणव्यतिरिक्तत्वे सादृष्ट कारत्वात् । —साव्यादशवृत्ति १० २८२
- ६ रमाना भावाना च काव्यशोभातिशय-दृष्टुत्वात् कि काव्यादकारत्वभुत
काव्य जोदितत्वमिति न विचायत श्रयगीरवभयात् । —वही १० ३१७
- ७ काव्य-जीवितत्वमिति न विचार्यत श्रयगीरवभयात् । —वही १० ३५७
नेनाऽत्र साम्प्रतिकप्रवृत्त्याभावापलक्षितत्वादभूषणसम्बन्धा व्यतीतोऽपत्यद-
भुतो योऽमी वषु प्रकर्षेस्तद्वशेन प्रत्यक्ष एव कविनोपनिबद्ध । तथैव चामी
महृदयाना चमत्कारभावइति । —पृ० ४ ६

वामन गुणा का काव्य की शाभा बनाने वाला धर्म मानते हैं तथा जन्म-
काग का उम म वृद्धि करन वाला ।^१ हट्ट न चमत्कार क लिए मवन चाह
या चारुत्व का प्रयाग किया है ।^२ कवि क वचना का जलन तथा चमचमान
निर्देश जन् प्रयागा म युक्त होना आवश्यक माना है ।^३

जानदवघन ना मवन चमकार क अथ म चारुत्व^४ जीर चारुवाक्प-
निव जन् चमकार-मुरकता क लिए प्रयुक्त करन । कहा-कथा विच्छिन्नि
शब्द ना इमा जागय म व्यवहन किया है । कहा-की इमा जागय म छाया
शब्द ना जपनाया गया है ।^५ अन्विए गानवगमहाय हीर का यन् करन कि
मवप्रम चमकार शब्द का प्रयाग जानदवघन न किया है अन्वय सिद्ध हा
जाता है । अन्वय ना विद्या है कि चमत्कार मप्रशय क प्रवतक चमकार
चन्द्रिकाकार विश्वश्वर थ १० परन्तु यह ना मान्य नहा हा सक्ता । क्वाकि
चमकार का भायना भन क समय न ना चना ला रहा था । अन्व इतना
हा कि भरत भामन कामन जादि जाचाय जन्कार जादि कुछ धर्मों का
ही चमकार का साप्रायक मानन रहे । रसदादा आचार्यों न रम या छ्वनि
को न चारुत्वन् क्वा किन् विश्वश्वर न रम गुण आदि साना त्त्वा का
चमकार का न्नु क्वा है । रम लिए अहान माना त्त्वा म समन्वित काव्य

१ नाप्रस्य ताभाप्राना इमा गुणास्तदतिशयहृवस्ववन् कारा ।

—कामूद० ३११२

२ तन्व्यामारनितामनि माग्रहणाच्च चारुण करण ।

—र का० ११४

३ रचना चारुत्व छन्द जन्गुण मनिवा चारुत्वम ।

—वहा १८

ज्वनदुज्ज्वन-वाक् प्रम मन्व क्वन महाकवि काव्यम । —वहा १४

तमि माप्र ज्वदत ददाप्यमानाजन् कारयागान उज्ज्वना निमना दापा
भावात् । —वही पृ० ५

४ चाकृवाक्पनिव जन्ना कि वाच्यत्वा मया प्राप्राय विवभा ।

—वहा पृ० ११४

५ विच्छिन्नि ताभिनैरन भपगनव कामिना ।

—वहा पृ० ३००

६ तजन्त काग परा तासा यानि श्वचन् गतागना ।

—वहा २४८

७ भा मा ज का प० ५०८

८ वहा

१० गुण रीति रम वनि पाक शय्याभानव कृतिम ।

मपैतानि चमकार-कारण ब्रुवत बुधा ॥ चच० पृ० ०

को साम्राज्य के तुल्य बतनाया।^१ पर इन का अर्थ यह तो नहीं कि उन के पूर्व चमत्कार की धारणा ही न थी या किसी ने चमत्कार का महत्त्व ही नहीं दिया था। जद्य कि पूर्वोक्त प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि चमत्कार की मान्यता शब्दान्तर ने प्राचीन समय से ही घली आ रही थी।

अन्य प्रमाण यह है कि काव्य के प्रयोजन के रूप में जानन्द या प्रीति को सभी ने स्वीकार किया है। चमत्कार जानन्द या उसका उत्पादक साधन माना गया है। शांभा, अलङ्कार जतिशय आर चाहत्व उम जानन्द या प्रीति के साधन है। इस प्रकार म प्रम चमत्कार के वाचक स्वतः सिद्ध हो जात है। कुन्तक तो स्पष्टरूप में अपने ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन चमत्कार के साधन वैचित्र्य की निष्पत्ति ही प्रदाने के। ग्रन्थ को भी काव्य का अलङ्कार-चमत्कार हेतु घोषित किया है।^२

अभिनव गुप्त ने रमानुभूति आदि के प्रसङ्ग में चमत्कार का अत्यन्त महत्त्व दिया है। वे रमास्वाद का लाकोनिक चमत्कार में अभेद स्वीकार करते हैं।^३ चमत्कार का मनोवैज्ञानिक स्वरूप क्या है, इसका बतलाने वाले अभिनव गुप्त ही हैं। अन्वी स्थिति में विश्वेश्वर को चमत्कार-सम्प्रदाय का प्रवक्तव्य मानना युक्ति-मग्न प्रतीत नहीं होता।

अस्तु, चमत्कार अथवा उसके समानार्थक शब्दा का प्रयोजन एव ही है आह्लाद का उत्पादन। सत्त्वोद्रेक-जन्य आह्लाद के प्रकाश स्वरूप होने से पद मुनकर अवबुद्ध पदार्थ साक्षात् भासमान हो उठता है।

चमत्कार के कारण पीछे गिनाये जा चके हैं। कुन्तक ने इन सभी का समाहार बनाकर म कर दिया है। कारण यह है कि अनाकसामाय कथन में

१ गुणादीना वाक्यशोभाकृतौ साधम्ययोगतः ।

एकाङ्गानव काव्यस्य कथिता कुञ्जकादिभिः ।

गुणभूषारत्नानस्य शीघ्रपङ्गावाह भोजराट् ।

सप्ताङ्ग-सङ्गत काव्य साम्राज्यमिव भासत ॥

—वही पृ० २, १

२ लोकात्तरवमत्कारवार्गिवैचित्र्य-सिद्धये ।

काव्यस्थायमलङ्कार कोऽप्यपूर्वो विधीयते ॥

—वही १, २

३ द्र० अ० १, टि० ६४

४ मत्त्व लघु प्रकाशकगिण्टमुपप्लभक चतु य रज ।

—साका १३

हा वैदग्ध्य या वनाक्ति जयवा वैचित्रय क दशन हान है । किन्तु जिस प्रकार पक्षवान कहते म विभिन्न स्वादिष्ट पदार्थों की समष्टि का बाध भन ही हा जाय पर र्वादिष्ट म प्रत्येक का गान मभव नही तानि रचिभद म भावना अपन विभिरुचित पलाथ का नभाव नर सक र्मा प्रकार कवन वनाक्ति छद म चमत्कार क मव साधना का समष्टिगत वाय ही मभव है व्यष्टिगत नही । अत विश्वेश्वर द्वारा गिनाय गय मभी चमत्कार साधना का पृथक्-पृथक् निर्माण एव विवेचन अपक्षित है ।

विश्वेश्वर न ध्वनि का चमत्कार क कारण म नहा गिनाया नन ही दाप प्रमत्त ग म म्मक कुछ भदा का चचा का है । परन्तु पाछे उदाहृत स्थिता क्षण जादि नात्रिदासाय पद्य म हम विम्ब निर्माण म ध्वनि का उरादयता स्पष्ट रूप म ल्य चन है छत्रयथ व विना वणै द्वितीय और तताय विम्ब की प्रगति मभव ना नहा हाता रम और भाव क जमून विम्ब भी ध्वनि म ही वनत है अनक जनक कारा म चमत्कार गुणाभूत व्यन्ग्य म ही जाता है । शब्द चमत्कार ता ध्वन्यात्मक होता हा है । अत विम्ब निर्माण म ध्वनि क उपयोग पर भा स्वतन्त्र अध्याय म विवेचन ही उपयुक्त रहेगा ।

चित्र काव्य

काव्य क जय चमत्कारमय रूपा पर विचार नरन क पश्चात पुन चित्र काव्य पर ज्ञान है सामान्य रूप म ध्वनिवादा आचार्यों न अलंकार प्रधान काव्य का जिस म व्यन्ग्याथ की प्रधानता नही रहता चित्र काव्य क नाम म पुकारा है । सामान्य रूप म चित्र र्मा कलाकृति का कहा जाता है जिसम वर्ण रखा आदि क माध्यम म कान् आकृति उभारा जाती है जा द्रष्टा क मानस म विस्मय आदि भावा क उद्वेगन म समथ हो । विस्मय का आधान करने न आह्लाद की भा मभावना हागा और उसम चमत्कार की । कभी कभा विरह

१ तनाजयद रमभापादि-तात्पर्य रन्ति व्यन्ग्याथ विशेष प्रकाशन शक्ति शून्य च काव्यमव नवाच्यवाचक-वैचित्र्यमात्रा प्रयणोपनिबद्धमादर्यप्ररय यदाभामन तच्चित्रम न तन्मुख्य काव्यम् काव्यानुकारो ह यमौ । तत्र किञ्चिच्छ द्वाचित्र यथा दुष्करयमकादि । वाच्यचित्त तन शब्द चित्रादयद व्यन्ग्याथ-सस्पशरहित प्राघाथन वाक्याथनया स्थित रसादितात्पर्यहितमुत्प्र क्षादि ॥

—ध्वया० ४६५

२ हिंदा पल सागर भाग ३

—पृ० १५३३ स्तम्भ १

की प्रतीति होने से भी किसी वस्तु को विचित्र कह देते हैं क्योंकि वह स्वाभाविकेतर होती है।

चित्र में एक बात और होती है—विचित्र पदार्थ की निर्जीवता। वह गति, चेष्टा आदि में शून्य होता है। अतः उसका अवाम्बविक एवं दृशनमात्रगम्य समझा जाता है। आधुनिक युग में चित्रचित्र और नाटक में यह अन्तर स्पष्ट अनुभव किया जाता है। यद्यपि चित्रचित्र में अनेक ऐसे दृश्य जो प्रत्यक्ष नाटक में दिखाने सम्भव नहीं भी दिखाने जाते हैं जिनके कारण वह वास्तविकता के अतिरिक्त आ जाता है तथापि प्रत्यक्ष रट गमञ्च की अपेक्षा उस अवाम्बविक ही अनुभव किया जाता है।

अतः इस बातों के कारण में चित्रराज्य पर विचार करें तो यह बातें स्पष्ट हो जाती हैं। जहाँ कवि का तात्पर्य केवल अनट्कार योचना तक सीमित रहता है, जहाँ और जहाँ की मुनिप्रति प्रीतिना के द्वारा वह बाह्य उक्ति वचित्र्य में युक्त काट वान कहता है। जैसे रम-भावादि की अनुभूति का स्पष्ट न हान में अतस्तत्त्व की गहराई का छूने वाली काई पान नहीं रहती। राज्य में सब मनावेगों के विक्षेपण और पाठक में उनको उभारने की शक्त कही जाती है तो वाच्यालट्कार के चमत्कार में युक्त राज्य में इस विक्षेपता का अभाव रहने में वह वास्तविक रूप में काव्य कह जान का अधिकारी नहीं रहेगा। इस कारण विश्वनाथ न रम-भावादि में गहित किन्तु गुणाधिव्यञ्जक शब्दों, गीति वृत्ति आर शब्दाथलट्कारा में युक्त रचना में काव्यत्व-व्यवहार-गौण रूप में ही स्वीकार किया है। पर काव्यत्व का मवधा जभाव उसमें नहीं प्रताया है। कारण यह कि चमत्कार की उत्पादकता ना उसमें भी है ही। जान-दवधन भी उगना भावैरव-प्रत्ये अर्थान् चित्रतुल्य काव्य कहते हैं। उनका तात्पर्य यही है कि जैसे चित्रचित्रित मनुष्य प्राकारिमात्र में मनुष्य होता है, प्राणधनिता न होने के कारण उसमें वस्तु मनुष्यत्व का व्यवहार नहीं होता, इसी प्रकार चित्र-काव्य वास्तविक काव्य नहीं समझा जाता। यह कारण रम शब्द की मकुचित सीमा का कारण है। यदि ही हमें बाह्य चमत्कार-प्रधान काव्य के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जिसका चमत्कार केवल ऊपरी बाह्यवाही उत्पन्न करने वाला है, अन्तस्मल की स्पष्ट नहीं करता। पर जहाँ वाच्यालट्कारमात्र

१ मत्तु नीरमेवपि गुणाधिव्यञ्जक-वर्णसद्भावाद दोगाभावादलकार मदभा-
वाच्च काव्यत्व-व्यवहार रसादिमत्काव्यवन्त्र-भावाद् गौण एव।

का चमत्कार रहने पर भी महदय को कुछ मोचने को हो, ऐसी कृति को काव्य मानना दुराग्रहमात्र हागा । जैम—

स्वयं पञ्चमुखं पुत्रो घटाननं गजाननौ
दिगम्बरं कथं जीवेदन्नपूर्णां न चेद् गृहे ॥^१

इस पद्य में किसी कवि ने त्रास्य के लिए शङ्करजी के परिवार का लक्ष्य बनाया है । सामान्य पाठक इस उपहास की उक्तिमात्र कह कर हँस दगा । परन्तु यह त्रय पारिवारिक समस्या का प्रस्तुत करना प्रतीत होता है ता नाचने के लिए पाठक का विवेक कर देता है । यहाँ अनङ्क मुखों का कथन पारिवारिक समस्या के बहुत खान वाला हान की ओर संकेत करता है तथा दिगम्बरत्व निघनता का सूचक है । घर में अन्नपूर्णा का होना सुगृहिणीत्व का निर्देश करता है । इस प्रकार परिष्कृत अथ निकलता है कि गृहपति शङ्कर स्वयं पांच मुख वाले है (पाचो मुखो का खान को चाहिए) कार्तिभय के भी छ मूँह हैं (उम और अधिक खाना चाहिए) दूसरे पुत्र (गणेश) का मूँह हाथी का है (हाथी की भाँति खाते है) और गृहपति इतना निघन है कि निघ्न है (पहनन-नञ्जा निवारण के लिए वस्त्र भी नहीं है खाने की वान तो अलग रही) ऐसी स्थिति में वह कैसे जी सकता है जो घर में अन्नपूर्णा (घर का सुव्यवस्था से भरा खान वाली पत्नी) न है । यहाँ परिहास तो आपातमात्र में है । पयवमान में तो गम्भीरता ही है । इसमें चमत्कार का अभाव कौन कह सकता है ? इस प्रकार वाच्यालङ्कार चित्रकाव्य में गिन गए हैं । चित्र शब्द की एक व्याख्या है—जो विवक्षित अथ वा चित्रित (Graphic) बना दे । प्राचीनकाल में जब चित्रनिधि प्रचलित थी विवक्षित भाव चित्र द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता था । यह सामर्थ्य अलङ्कारों में ही है कि वे वष्य विषय का चित्रित या मृत कर दें । इसलिए शृङ्गार जादि रस प्रधान प्रसङ्ग का अलङ्कारों का प्रयोग वर्जित नहीं है । जबल उनकी प्रमत्त-साध्यता (पुण्य निवर्त्यता) की वर्जित किया है ।^२ क्योंकि कवि का यत्न यदि अलङ्कारयोजना पर केन्द्रित हो जाएगा तो मुख्य विन्दु जीवन की समस्या या रस-भावादि की उपेक्षा हो जाएगी । जैम प्रहलिका आदि में देखा जाता है ।^३

१ विनमादित्य राय

—काव्य-समीक्षा पृ० ७०

२ रसाक्षिततया यस्य वन्द्यं शक्यत्रियो भवेत् ।

अपृथग्यत्नं निवत्यं साञ्जडकारो ह्यवनी मत्त ॥ —ध्व-या० २, १६

३ रस-नामवप्राननं विभावादि-घटनामेव ध्रुवस्तन्नातरीयकृतया यमाभादयति न एवात्रालङ्कारा रसमार्गे नान्य । तत्र वीराद्भूतरसव्यपि यमकादि-

ये चित्र भी दो प्रकार का माना गया है—

१ शब्द-चित्र

२ अर्थ-चित्र

शब्दचित्र में अनुप्रास, यमक, खड्गादिवन्ध मद्भ्रज की गणना है। शृङ्गार आदि ध्वनि-प्रधान वाक्या में इस प्रकार के शब्द-चित्रों की योजना वर्जित की है। उनका कारण यही है कि वे दुष्कर होते हैं। प्रयत्न-भाष्य होने के कारण कवि का सारा ध्यान उनकी योजना पर केन्द्रित हो जाता है। रसादि की अपेक्षा हो जाती है। दूसरी बात यह है कि पाठक या श्रोता उन अलङ्कारों की गाठ ही खोजता रह जाएगा, रस भाव की गहराई तक वह पहुँच ही न पायेगा।^१ परन्तु जिनको इस प्रकार की रचना में ही आनन्दानुभूति होती है, उनके लिए कबना कबसी ? क्योंकि लोक में सब प्रकार की रचि वाले व्यक्ति हैं। रहा भी है।

अनेक निन्दति कोमलेच्छु प्रमेलक वण्टकलम्पटस्तम ।^२

यही कारण है कि वीर आदि रसा में उनका बजन नहीं किया गया है। भारवि, माघ जैसे कवियों ने युद्धक प्रसङ्ग में ही उन खड्गवन्धादि चित्रों की योजना की है। पर हमारी दृष्टि में वहाँ भी दुष्कर बंधों की योजना रसानुभूति में विरम्ब ही करेगी^३ चरना करारा चाहिए, इसका अर्थ यह तो नहीं कि उसमें कट्कर पत्थर मिला दिया जाये।

वस्तु, शान्त, करुण आदि में भी जहाँ अर्थबोध में बाधा न हानि हो, सहज में अर्थ यमक या श्लेष भी दोष नहीं होते। यदि वण योजना के द्वारा विवक्षित भाव मूल होता हो तो अनुप्रास एवं यमक जैसे अलङ्कार रस की

कवे प्रतिपत्सुश्च रमविघ्नकार्यैव सचन । गड्ढरिकाप्रवाहोपहनमहृदय-
धुराधरोहणविहीनलोकावर्जनाभिप्रायण तु मया शृङ्गारे विप्ररम्भे च
विशेषत इत्युक्तमिति भाव

— लो०, पृ० २२०

१ तु०—शब्द-चित्रस्य प्रायो नीरमत्पान्नात्यन्त तदाद्रियन्ते कवयः । तत्र
विचारणीयमनोबोधपक्षयत्ने इति शब्दचित्राज्ञमपहायायचित्रमीमासा प्रसन्न-
विस्तीर्णा प्रस्तूयते ।

—चिमी० पृ० ३०

२ नै०च०, ६, १०४

३ तु०टि०, ६३

एव उद्वर्षी कानिदाम की कल्पना म विप्राता की अद्भुत सृष्टि बन गई।
 हमरा तत्त्व विचार है। हमक बिना काव्य खोखला हागा। भावना अनुभूति
 की वस्तु है। हमर भावना का कार्य है—पयात्राचन। हमी के द्वारा काव्य क
 भावा व अर्थों की परत खुलती ह। हमक परधान् शैली जाती है। हमके
 अतगत दखा जाला है कि विवक्षित विषय का किस तर मे प्रस्तुत करना है।
 हमम गकविधता सम्भव नहीं है और जत म जाना है तोष या जानन्द।
 हमी म कवि का मारा प्रयत्न निहित हाता है। यदि पाठक का या श्रोता की
 हमक पठन या सुनन म काव्य क मुख्य प्रयोजन आनन्द की अनुभूति हो गई तो
 चित्रकाव्य म कमा कय रही? किन्तु मिथ जी अत्रट्कार का शैली म गिन
 कर हमका क्षेत्र सन्कुचित कर देन ह। अत्रट्कार जब चित्र काव्य क रूप
 म लक्षणाय ह तब हमम पाचा तत्त्वा क निहित ज्ञान पर ही उसकी पूणता
 होगा। हम यदि एक उपकरण क रूप म गिन लिया गया ता वह लक्ष्य कैम
 रह्या। वस्तुतः अत्रट्कार की महत्ता तथा ह जब कि हमम पाचो तत्त्व हा।
 यह भी नहीं कहा जा सकता कि य तत्त्व हमन नहीं हात। अन्यथा इसम वह
 चमत्कार का सामर्थ्य जाग्रा ही नहा जा हमका मुख्य प्रयोजन है।

वस्तुतः चित्रकाव्य म चमत्कार का जाग्रत करता हुआ काव्य-विम्ब क
 निमाण म सहायक हात म उपक्षणीय नहीं ह। काव्य विम्ब तभी बनता है जब
 कि अत्रट्कार का प्रयोग क साथ भावना या अनुभूति का भी स्पश हा। वही
 सहृदया क हृदय म भाव का संप्रेषण कर पाता ह और कविकम का उद्देश्य भी
 तभी पूरा हाता ह। ध्वनिवादिया न एम ही चित्रकाव्य का अक्षम बनाया है
 जिसक निमाण न कवि हम भावादिक प्रति उदात्तमान हाकर प्रवृत्त हाता है।

कल्पना

काव्य विम्ब क निमाण न नियत भावना एव अत्रट्कार आदि क साम-
 न्यतः कल्पना की अपना हाता ह। कल्पना तब कृप् धातु मे बनता ह। एक
 कृप् धातु का अर्थ सामर्थ्य ह ता हमी अबकल्कन अर्थ म प्रयुक्त होती ह।
 अबकल्कन ना एक अर्थ चिंतन भी है। कल्पना का सम्बन्ध इन दोनों जानुजा
 म ही ह अथवा या कह कि यह अर्थ इन दोनों ही अर्थों का जात्मसात किय
 हुए हैं।

१ कृप् सामर्थ्ये पात्रा० ३६०

२ भुवाजकल्कन । पात्रा० १७४८ । अबकल्कन मिथीकरणमित्यम् । चिंतन-
 मित्यम् । कृप्श्च । पात्रा० १७४९

सामान्य रूप में लोक में कल्पना का अर्थ दिया जाता है—लोक में अमिद्ध वस्तु के होने की बात करना। जैसे कपोल-कल्पना शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार कल्पना शब्द साधारणतः मिथ्या का वाचक समझा जाता है। किन्तु यह तो मानना ही होगा, उसमें यह सामर्थ्य है कि सचचा नोर में जिवद्यमान समझी जाने वाली वस्तु का अस्तित्व में ले आये। उसके प्रभाव में ही शक्ति का अर्थ अर्थात् अर्थ का सिद्ध करने है। कवि नये कथानक एवं दृश्य आदि का निर्माण करता है। इसी कारण कल्पनाशक्ति भी कहलाती है।

कल्पना के नियम चिन्ता आवश्यक है। उसके बिना मनुष्य काट जाना नहीं कर सकता। आनाय मम्मट आदि ने इसी नियम का शक्तिशाली जीवन की कवि के नियम अपेक्षा स्वीकार की है। फलतः कल्पना चिन्तन और निर्माण दोनों प्रकार की शक्तियों का समन्वित रूप है। तभी उसके साहित्य में तब-तब विचार उद्बुद्ध होना है और नर समार का साधारण होता है। इसी कल्पना शक्ति के कारण वह अपने साधन-समार का प्रचारित रहता है।

कल्पना का अर्थ मण्डन का अर्थ करण भी है। उसके द्वारा शब्द का जनट्कृत या चमत्कारपूर्ण बनाया जाता है। वामन दण्डी आदि कवियों द्वारा प्रयुक्त गोभा शब्द की सांख्यिक सङ्गति यही होती है। काव्यशास्त्र में जीवन का सङ्कत अनायास रूपण के रूप में किया, अथवा उद्बुधती का "विधाता का विधानातिशय रहा" यह कल्पना का ही चमत्कार है। इसी के द्वारा पूर्ववर्णित अर्थ का नवीनता देकर प्रस्तुत किया जाता है अथवा उसके आधार पर सचचा लानातिशय वस्तु की सृष्टि की जाती है। इसी कारण प्राचीन आचार्य कल्पना के नियम नभावन, उद्भावना, उत्प्रेक्षण उन्नादन प्रौढोक्ति सद्गुण शब्दों का भी प्रयोग करना है।^१

इसका तात्पर्य यह नहीं कि कल्पना शब्द का प्रयोग उन्हाते नहीं किया है। उसका या उसमें सीधे मम्मट शब्द का जहाँ नहीं प्रयोग देखने का मिलता

१ का०प्र०का० १, २

२ असम्भूत मण्डनमङ्गलशब्दोत्पत्तिसंवाच्य करण मदस्य ।

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्तु चान्दोत्पत्तिसंवाच्य तथा प्रपेद ॥ कुस० १, ३१

३ तस्मिन् विधानातिशये विधातु कल्पामये नवगतैकलक्ष्ये । ख ६, ११

४ प्रत्यक्ष कल्पनापोढ मनोऽर्थादिति केचन ।

कल्पना नाम जल्पनादियोजना प्रतिज्ञानतः ॥

—भाषा० २, ६

है। भामह आनन्दबध्न रद्रट^३ उनका व्याख्याकार नमिनाद्यु जहा तहाँ उलूना कल्पितापमा^३ कल्पित^३ कल्पनम्^३, परिकल्प्य^३ सदृश प्रयोग करत हैं। इना प्रकार सम्भावना क दा रूप बताय गय ह—१ सम्भव की सम्भावना २ असम्भव की सम्भावना।

मुखमणीद्वा भाति पूणचन्द्र इवापर ।^३

म लोक म सम्भव मुख की द्वितीय चन्द्र क रूप म सम्भावना की गई है। उनके चित्रगत शिखर क पुष्प म वनस्त क सयाग म उत्पन्न वनस्थलिया क स्तनो पर हा नग्नक्षता की सम्भावना इम प्रकार की है।^३ सारा ही काव्य उन प्रकार उत्तगत करतजा म भग पडा है। बादम्भगी म त्मसूट पवत पर स्थित शिवनगरा और बादम्भगी क प्रानाद म वणित मौन्दर्य व जनुत समृद्धि इम सम्भावना या कल्पना शक्ति का हा परिणाम ह कवि की निय नवनवान्मप-वानी बुद्धि हा प्रतिभा माना गद है। उम शक्ति म अनुप्राणित चीता जागता शन करत म त्रिपुण शक्ति हा कवि कहा जता ह। नागश मट्ट क जनुमार उसम नवनवाथानुम्भान का सामर्थ्य रता ह। अन्तर्दृष्टि क नय-नय रहस्य का उद्घाटन हा प्रतिभात कहा जाना है। राजशखर न इमालिय प्रतिभा का कवि क हृदय म नवान्तम जद तब अर जद कार वचन या प्रकार आदि

- १ तमस्तनया । ध्वन्या० पृ० ४०/ व्यापारान्तरकल्पनया । वही पृ० ४१५
- २ मा कल्पितापमाया वैरमेय विगणणेत्कनम । वही ४, १३
नमि माध—वै मादणै यत्तद्व्यैश्च विगणण युक्तमुत्तमय तादृग्भिरव
तन्मद्वैश्चापमानमपि युक्त यस्या गा कल्पितापमाद्या । पृ० २५१
- ३ अकृतविगणणमक यत्स्यादुभावास्तदन्यवैपम्यम ।
सर्वानि कल्पितापमागणया च नान्यत्र । वही ११ २६
- ४ यत्र शृणाना मास्य मत्तुपमानापमयधार्गमत्त ।
अविकल्पितमामया नन्वत इति रूपक प्रथितम । वही ४, ३४
- ५ यद्यप्राक्तो च कल्पनम काप्रका० १० १००
- ६ न तदिति इति परिकल्प्यैवमुक्तम । ध्वन्या० पृ० ३२
- ७ माद० १ पृ ३१
- ८ बादन्दु-वक्राप्यशिकामभावाद वभु पनाशान्वतिलाहितानि ।
मद्यावमन्तन ममागिताना नखभतानीत्र वनस्त्रीनाम् ॥ —कुम० ३, २६
- ९ प्रतिभा च नवनवापमप्राप्तिरी बुद्धि । तदुक्तम— प्रजा नवनवोभप
प्राप्तिनी प्रतिभा मता । इति नवनवापमा जमान्तरियतदीयजनस्त्व-
ज्ञानन्यगस्कारादजाय । —वैमि० पृ० १३३

वाक्यतरंगों का उद्भासन करने वाली बनाया है।^१ आनन्दवर्धन इसे कवियों की नई दृष्टि कहते हैं।^२ तः व्यक्तिविवेककार भगवान् शङ्कर के गृतीय नेत्र के नाम से अभिहित करते हैं। इस दृष्टि में ही कवि ब्रह्माण्ड भर के पदार्थों का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। रस प्रतीति के अनुकूल शब्द और अर्थ के चिन्तन में कवि का अन्तमन के समाधिस्थ होने पर धैर्य के स्वरूप में अवबुद्ध प्रकृष्ट ज्ञानात्मिका बुद्धि ही प्रतिभा कही जाती है।^३

राजशेखर ने प्रतिभा को कारयित्री और भावयित्री इन दो भेदों में विभक्त किया है। कारयित्री प्रतिभा कवि को कवित्व की सामर्थ्य प्रदान करती है। किन्तु भावयित्री आनोचक की विभूति है। बिना इस भावयित्री प्रतिभा के आनोचक कवि की भाव-सम्पदा को नहीं समझ सकता।

कारयित्री प्रतिभा भी तीन प्रकार की पितार्ई गई है—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी। इनमें सहजा जन्मजात होती है। आहार्या इसी जन्म में विद्याभ्यासादि के द्वारा और पूर्व जन्म के मन्त्राणां के भेद में उत्पन्न होती है। दोना में अन्तर यही है कि सहजा का उद्वाहन के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं होती। कण्ठपुर जादि जन्माश्रय होने पर भी उत्कृष्ट वाक्य शक्ति में सम्पन्न है। यही स्थिति कुमारव्यास की बनाई गई है। वे भी अज्ञेय होने पर भी उत्कृष्ट कवि हुए हैं। आहार्या में विद्या आदि एवं अभ्यास के द्वारा पूर्वजन्म के मन्त्राणां को जगाना पड़ता है। मन्त्रतन्त्रादि की दीक्षा लेकर उनकी साधना में प्राप्त होने वाली प्रतिभा को राजशेखर औपदेशिकी कहते हैं। बस्तुतः देखा जाय तो दो ही प्रकार की प्रतिभा माननी चाहिए—सहजा

१ या शब्दप्रामथम्यमाथमलङ्कारान्त्रमुक्तिमागमयदपि तथाविधप्रार्थहृदय प्रतिभासयति सा प्रतिभा । —कामी० ४ पृ० ३५

२ या व्यापारवती रमान् रमयितुं कश्चिन् कवीनां नवा दृष्टिर्वा परिनिष्ठितार्थ-विषयाभेदा च वैपश्चित्ती ।

— ध्यया० पृ० ५०८-५ ६

३ रसानुगुण-शब्दाथचिन्तास्मिन्मिन्-चेतन ।

क्षणं भवन्त्यभ्यर्शो या प्रज्ञैव प्रतिभा कवे ॥

सा हि चक्षुभगवत्तस्मृतीयमिति गोपते ।

येन साक्षात्करोत्यप्य भावमन्त्रैल्लोक्यवर्तिन ॥ —व्यवि० २, ११७-११८

४ सा च द्विधा कारयित्री भावयित्री च । कवरूपकुर्वाणा कारयित्री । साऽपि त्रिविधा सहजाऽऽहायीपदेशिकी च । जन्मान्तरमन्त्राङ्गप्रतिष्ठा सहजा । जन्ममन्त्रारपोतिराहार्या । मन्त्रतन्त्राङ्गपदेश-प्रभवा औपदेशिकी ।

—कामी०, १४

और आश्रया । क्यानि म्वाभाविक मे भिन्न आहाय ही हृद् भन ही वह मन्त्र-
तन्त्र आदि म उपादिन हा या विद्याभ्यास म । यह अत्रण्य है कि मन्त्र-
चमकारी उपाया म उदभूत प्रतिभा उत्कृष्ट हागी । जैम किमा महापुरुष क
शक्तिपात म या साग्न्वत कवच क माग्रन म थान् शिभा हान पर भी कवि-
शक्ति जागत हा जाती ह । परन्तु व्युत्पत्ति और अन्वय आदि क द्वारा अजित
काव्य शक्ति पाणित्र म नदी हागा । समृद्ध अग्निपुराण म निम्न पद्य म
इमीलिए वैदुष्य और कवि-व को पृथक्-पृथक् गिनाया गया —

नरत्वं दुलभ ताक विद्या तत्र सुदुलभा
कवित्त्वं दुलभ तत्र शक्तिस्तत्र सुदुलभा ॥

पुराणा म शब्द क तनीय नत्र का अग्निपुराण कहा ह । प्रकाश अग्नि क
निहकड म प्रकाश और दाह दा नय बनाय गर है । नान या विवक ह
निमम काम या उच्छ्रुतना का दाह ना जाता ।

यही प्रतिभा शक्ति करना है । जो काय क रना-शक्ति क बन न गया
व ही प्रतिभा न ह । वाचस्पतीय म करना का अविद्या शक्ति म अजित माना
ह जो कि मष्टि क समग्र प्रपञ्च का जतना । वेदान्त म अवस्था ना नाम
रूप कर्माभिरु मृष्टि क लिए उतरदाया मानी गर ।^१ ब्रह्मवैवर्तपुराण म भी
अविद्या का कल्पना शक्ति क नाम म पुकारा ।^२

पाञ्चाय समाश्रक कन्यना क विरा मजिनान और फौन्मा लन ना पादा
का प्रयाग करन हैं । फौमा हा मन्त्र फौन्मी शब्द म पादा जता । पादा
रिज न इर्मजिनशन और फौमी दाना म अतर माना । मजिनशन क मन्त
दो भद मान है— प्राग्मगा या आग्मिक २ मन्त्र १ प्रा उतरजान कनना ।

- १ अग्निपुराण (रामनाल वर्मा द्वारा सम्पादित काव्य शास्त्राय भाग) ५ ०
- २ कनना चादिद्या शक्ति मा नवायवाभ्यामनिर्वाया । मूर्तिविद्या
विवनातविद्या शक्ति प्रवृत्तिमात्रम नी विद्यामनि नवायवाभ्यामगा
छ्ययी । एतद्धि अविद्याया अविद्यावम । वा० पृ० ४११
- ३ यत्राप्यभावविद्या चिन्मात्र-सम्बन्धिना नावद्रहणा विभ्रजत तथापि ब्रह्म-
स्वरूपमुपगम्य जीवभाग एव पक्षरातिना समार जनयन् यथा मुखमात्रसम्बन्धि
दपणादिक विम्बप्रतिविम्बी विभ्रज्य प्रतिविम्ब भाग एवातिग्रममादप्रात
तदवत । विप्रम० पृ० ४८
- ४ स्मृतिशक्तिमानशक्ति बुद्धिशक्तिस्वरूपिणा ।
प्रतिभा कनना शक्तिर्यच्चित्तम्यै नमो नम ॥ ब्रह्म० ख० १ १६, १७

इनमें प्रथम लौकिक प्रत्यभानुभवों का साधन होकर सृष्टि की शाश्वत पुनरावृत्ति के रूप में चमत्कार दिखाती है। दूसरी प्रथम की प्रतिध्वनि होकर नवनिर्माण में अधिक समय होती है। प्रथम के निकट होने पर भी कायप्रणाली एवं स्तर में पृथक् होती है। फौमी स्मृति पर आधारित और यांत्रिक होती है।^१

आद० ए० रिचर्ड्स ने इमेजिनेशन व छ अर्थ दिये हैं। उनमें काव्य-चिन्मियों का निर्माण, रूपक, उपमा आदि अलङ्कारों का प्रयोग, सूत्रों की विचारशक्ति का अपने शब्दों में प्रस्तुत करना नवीन उद्भासना व सामान्य रूप से विख्यात सामग्री को साध-साध सजोना, मनोवेगा और भावनाओं का परस्पर सम्बन्ध आने हैं। इनमें सामान्यरूप से कल्पना में आने वाले सभी काय आ गये हैं।^२

विचार करने में स्पष्ट हो जाता है कि इमेजिनेशन के जो भी अर्थ बताये हैं, सभी प्रतिभा पर घटित होते हैं। उनके द्वारा नोक-सन्धियों के साक्षात्कार की क्षमता आती है तथा नवीन रूप में उन्हें पुनः प्रस्तुत करना, नव निर्माण भी संभव होता है। जब कल्पना का शक्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है।^३ तो पूर्व प्रतिपादित सामर्थ्य एवं चिन्तन दोनों का उसमें समाहार हो जाता है। इसी लिए आचार्यों ने प्रतिभा को शक्ति के नाम से पुकारा है। उसे महत्ता और जोषाधिकी दो भेदों में बाटा है। योषी जिस प्रकार समाग्री में सत्य का साक्षात्कार करते हैं, कवि प्रतिभा के द्वारा उसी प्रकार उसका अवलोकन करता है। सहजा इसीलिए विशेष महत्त्व रखती है।^४

इसके प्रभाव में कवि की दृष्टि में विश्व का कोई भी रहस्य छिपा नहीं रहता।^५ शैवाम में भी उसे विश्व का समीक्षण करने वाली शक्ति कहा गया है। साक्षात्कार में उसका विमर्श होता है। विमर्श तत्त्वव्याप्ति के लिए पारिभाषिक शब्द है।^६

१ वि० प्र० रा० - वास० पृ० १३ १४ पर उद्धृत।

2 Prin Lit Cri L G 188 189

३ शक्तिर्निपुणता लोक शास्त्र-वाक्याद्यवेक्षणान्। —काप्रसो० १,३

४ प्रतिभा महज्जोषाधिकी चेति द्विजा, सावरणक्षययोगशममात्रान् महत्ता सवि-
तुरिव प्रकाशरवभावम्यात्तत्रनाऽऽपटल ज्ञानावरणीयाशावरणम् तस्यादितस्य
क्षयऽनुदितस्योपशमं च य प्रकाशाविभक्तिं भा सहजा प्रतिभा।

—कानु० पृ० ५६

५ यदुमीलनशक्यं विश्वमुन्मीकति क्षणात्।

स्वात्मपतनविश्रान्ता वा वन्द प्रतिभा शिवाम् ॥

६ विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन विश्वसहकरणेन च अक्षेत्रमाऽहमिति स्फुरणम्। (बल० दे० उ० साशा उ० भाग, १, पृ० ३३१) काम० पृ० ६

एव प्रचार प्रतिभा क नाम म एव स्वय कपना शब्द म काव्यशास्त्र म इम परिमाण म कपना शक्ति वा मन्त्रवगान हान पर भी कपितद्व पाण्य न न मानूम किम आचार पर यत् निख दिया कि प्राचान भारतीय विचारणा न काव्य निपाद्यत्र तत्रा म कपना कप का प्रयोग नपा क्रिया १ । मम मया नयता है माना कपना का श्राव उतवा ध्यान आइए नगी हुआ था अखीग मात्र न भा म्म कथन वा मय कप २ । उनका ध्यान वाण भट्ट क न न कपना का वार नपा मया जिनम नवान उतभावना कपन वाद कविया की मस्या अनि यून वता २ २

जातक्यप्रन न मय मम्भत्र म यही तव ३ ३ कि कवि अपन आतनजय दाप न एव प्रतिभा शक्ति म शिषा यता ह पर तु प्रतिभा क उभाव म कपन टाप नी टिपा कपना नद हा कृष्ट आचार्यों न इम प्रतिभा वा शास्त्राम्याम न कपना म मया ४ पर क कपनिका मया ५ प्रतिभा नपा कपनाशक्ति क मयज म । पुराण वस्तु भी नवान वन जाता ६ प्राचान आचार्यों न समाधि गुण मयाविग म्याकार क्रिया ७ विश्वेश्वर न ८ कृष्ट कान्यकृति उगा वा माना ९ ज्ञा मयज न सामानि का प्रयश्चरत मानित न ज्ञाय १० यत् शक्ति काप म कपना म न मम्भत्र ११ वता कारधित्रा प्रतिभा ह ।

काप म कपना प्रतिभाशक्ति कवि न या मयता है भद न मकी प्रतिभा राजशब्द का अर्थममन गहज न या म्म रत्तिजन १२ न मन्त्रा प्रतिभा

- १ कपना० वि० पृ० ६४
- २ मति श्रान इवासमया जनि माजा म म १ ।
कपना न कप कवय शम्भा २ — ०३० प्रस्ता०
- ३ अव्य रत्तिजता टाप कपया मप्रियन कव
यम्भशक्ति-जन्यस्य जगियवावभासत — ध्वया० पृ० २१०
- ४ नम्याश्च हन कश्चिद् वना मन्त्रपुष्टय प्रमाणात् जयमष्टम । — २२०
- ५ समाहित्य याययचायायानि रूपद्विविधाथदुष्टिम्प । — सा० पृ० २६६
- ६ म्यावत्रयथलनकवता मममयप्रणा गुणावादिना
कनारजक रीतिवनिदिता पाक दया विभ्रता ।
नानात्र रणजकवता रसवता मत्र निर्वोपनाम
कव्याममति कामिनाय कविना कम्पानि पुण्यामन ॥ — चव० पृ० ३
- ७ शक्तिवत क हि प्र नभाव्युत्तिमणा शकनस्य प्रतिभाति शकनस्य कपयने
— वामा० १ ४

मे उद्भूत चमत्कार और व्युत्पत्ति-वृत चमत्कार में अंतर अवश्य होगा। पहले में बुद्धिम्यता, अनुत्पत्तता और स्वाभाविकता का अनुभव होगा। दूसरा किमष्ट-कल्पना और छीचतान में उत्पन्न होने के कारण स्वाभाविकता से रहित होगा। यह पण्डितों को आवर्जित कर सकता है सहृदयों को नहीं। नैपथीय चरित के चतुर्थ मग में दमयन्ती का विरह-वर्णन इस का उदाहरण है। कवि दमयन्ती की विरहावस्था का वर्णन कर रहा है। वह महाकाव्य की नायिका है कवि की उसके प्रति समवेदना होगी तभी उसके साथ साधारणीकरण में पाठक या श्रोता की उसके प्रति समवेदना जागृत हो सकती है। पर यदि मध्य कवि कल्पनालोक में विचरण करने लगे और नायिका को उपहाम की पत्नी बना दे ता पाठक या श्रोता की क्या ता समवेदना उद्भूत होगी और क्या साधारणीकरण होगा? साधारणीकरण भी हाहा तो वह भी नायिका का उपहाम ही करेगा। उदाहरण के लिए—

निविगत यदि शूकशिक्षा पदे सृजति सा क्रियतीमिव न व्ययाम् ।
मदुतनोपितनोत् कथ न तानवनिभूत्तु निविश्य हृदि स्थित ॥

यहा कवि कहना चाहता है कि पाव म कोई छीन यदि घुस जाती है ता भी बहुत कष्ट होता है। उस नाशुक के दिल म तो पहाड घुस गया था, उस बेचारी को कष्ट क्यों न होना।

यहा विचार करने योग्य बात यह है कि तीले त्तरे वाली वस्तु म तो अन्दर घुसने की योग्यता हाती है चौडी में नहीं। पवत विशाल और फैलाव में चौटा होता है। इसलिए उसमें हृदय के अन्दर घुसने की योग्यता कहा में आ गई। उसके भार म वह अवश्य दब सकती है। इस प्रकार कवि का तीर ही निजाने पर नहीं बैठा तो उसमें प्रभाव क्या उत्पन्न करना था? भ्रोना या पाठक का ता हँसी आ गई क्या उस मृदुतनु की उस "पहाड" के घुसने म हड्डी-पसली भी बची होगी?

यहा "अवनिभूत्" शब्द म निहित श्लेष के मोह न कवि की उदात्त को मक्का प्राम्थान्द बना दिया है। इसमें भी चमत्कृत होने वाले "रमिक महालय" को भना अय कवि की कविता कैसे मोह सकती है। इसकी तुलना में माघ के निम्न पद्य को लें जिसमें श्लेष के चमत्कार में ही ईर्ष्या भाव की स्पष्ट अनुभूति हाती है—

मुहु रूपहमितामिवालिनादेवितरसि न कलिका किमर्थमेनाम् ।

वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्या शठ । कलिरेप महास्त्वयाद्य दत्त ॥^१

यहाँ 'कवि' शब्द में विद्यमान शेष एव कविता में विद्यमान 'व' प्रत्यय दाना अभिधया में निहित वैपम्य का अनुभूति गम्य तथा मूर्त धरता हुआ खिन्ना नायिका के हृदय गत क्षाम की अभिव्यजना में विनना सक्षम हुआ है यह महदयता ही जान सकती है ।

दूसी प्रकार—

दूर मुक्तालतया विस सितया विप्रलोम्यमानो मे ।

हस इव दक्षिणशो मानसजन्मा त्वया नीत ॥^२

जाण के इस पद्य में व्यापक रूप में विद्यमान ज्ञाना हुआ भी शब्द अर्द्धकार उपमा का उपकरण प्रनकर अपने समकार में पुष्परीक के तान्न काममन्ताप का अनुभव कराने में समर्थ हुआ है । यहाँ कवि का ध्यान दूर की कौडी मान में न तान्न पाश्वनायक का भावाभिव्यक्ति पर कन्द्रित है । कवल व्युत्पत्ति व अभ्यास में जितनी प्रतिभा और सज्जा में या अनुर ज्ञाना है वह इनमें स्पष्ट हो जाता है ।

प्रतिभाशाला कवि के लिए राजशखर न बद्धि का आवश्यक बताया है । बद्धि के ना तान भेद विनाय में—स्मृति मति और प्रज्ञा । धान हुए विषय का स्मरण करने वाली बद्धि स्मृति कहलाता है वर्तमान विषय का मनन करने वाली बद्धि मति ज्ञाना है और भावी विषय का जान लेने वाली बद्धि प्रज्ञा ज्ञाना है । कवि का तीनों ही प्रकार का बद्धि उपकार करती है । क्योंकि उनके प्रभाव में कवि गुरु में गाम्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त करने को उन्मुक्त रहता है अव्यय मितन पर पदाय का लक्ष्मीन हाकर मुनता है समयता है और चिन्तन करके मन में जमाता है उभके आधार पर तक वितर्क के द्वारा पर्याय-वाचन में और अधिक तन्वनाम का प्राप्त करता है उनमें ग्राह्य के ग्रहण और अप्राह्य के त्याग के द्वारा भाग मात्र में एव निष्ठ ज्ञाना है ।^३ यहाँ तीनों प्रकार

१ शिव० ७४२

२ काद० महाश्वता वृत्तान्त

३ त्रिज्ञा च सा स्मृति मति प्रचेति । जनित्रान्तस्यार्थं स्मरती स्मृति । वर्तमानस्य मन्त्री मति । अनागतस्य प्रज्ञात्री प्रजति । सा त्रिप्रकारागमि कवीनामुपवर्ती । तथा बद्धिमान शून्येन शशाति गृह्णीत, धारयति विनानात्पूह्यतआहति तत्त्व चाभिनिविशत ।

की बुद्धियों के कार्य गिनाये हैं, वस्तुतः ये कवि के विम्ब-निर्माण-नामव्य की ओर सरेते करते हैं। त्रान्तदर्शी कवि के लिए त्रिकालवर्ती पदार्थों का साक्षात्करण आवश्यक है। अथ शब्द के वस्तुतः विभिन्न विषय के भानम बोध को सूचित करता है। वह मानस बोध बोध्य वस्तु की आकृति के माय ही होता है। तभी व्यक्ति-विवेककार का कथन भी मङ्गत हाता है कि प्रतिभा कवी तृतीय नेत्र के प्रभाव से ही कवि त्रैलोक्यवर्ती भावों का प्रत्यक्षीकरण करता है। यह प्रत्यक्षा-करण अन्तर्दृष्टि में ही होगा जो कि अभिनव की मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतिपत्ति के अनिरिकत और कुछ नहीं है।

सामान्य व्यक्ति स्थूलदर्शी हान में प्रत्यक्षवत् वस्तु को भी नहीं देख सकता, सूक्ष्मदर्शी कवि सम्राष्टिस्य योगी की भांति पदार्थों की तह में पहुँच कर उसमें परोक्षतत्त्व को भी साक्षात्कृत करता है। इसीलिए स्वभावान्वित अनङ्कार का लक्षण में प्रयुक्त "दुस्तरार्थ" शब्द के स्पष्टीकरण में "कविमात्रवेद्यया" कहा गया है।^१ इसी तात्पर्य से "मनिदपणे" कवीना विश्व प्रतिफलति ' विश्वा रूपाणि प्रतिमुच्यते कवि ' मदन वचन अमृतत्व में आये है। यह अन्तर्दशन और अपनी असाधारणवृत्ति का द्वारा उस साक्षात्कृत विश्व का दर्शन महुदय को कराना कवि की कार्यान्वित प्रतिभा का कार्य है तथा अपनी रचना में अनपभ्रित वस्तु का न आने देना भाववित्री प्रतिभा का। दोनों का सात्तुनित प्रयोग साहित्य में मणि काञ्चन मयोग ला देता है जो कि घटा कदा ही पाया जाता है।

साराण में यह कहा जा सकता है कि कवि की प्रतिभा-शक्ति ही वस्तुतः कल्पना-शक्ति है। उसकी महायता में कवि अपने काव्य में नई नई उद्भवनाएँ करता है।^२ परम्परा में चले आये विचारों एवं आख्याना को मवधा नये रूप में ढाल कर मसार का मगल मौनिक रूप में प्रस्तुत कर देता है, उसी के चल पर वह

१ प्र०टि० १२२

२ इत्यादि धारयेभ्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तेरन्तर मानसी साक्षात्कारात्मिका-अहसितननद्वाक्यापात्तकालादिविभागा तावत् प्रतीतिरूपजायते।

—अभिभा०, १, पृ० २७६

३ स्वभायोक्तिदुरुहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।

—साद०, १०

४ दुस्तरार्थो कविमात्रवेद्ययोरस्य हिम्भादे स्वयोस्तदेवा श्रयपाश्चेष्टाम्बुरूप-यो

—वही वृत्ति पृ० ३६५

५ आरोपस्य अविद्यमान-पदार्थस्य अव्यवस्थितस्य अपत्र प्रतिभासत्त्व मानम-नापार प्रतिभा।

—वाचस्पत्यम् पृ० १८२०

प्राणियों के अतमन के रहस्य खोलता है और वाणी का विषय बनाकर मसारा के लिए सुबोध करता है, दुदश पदार्थों को भी काव्यशक्ति के द्वारा मूल रूप देकर सबके लिए प्रत्यक्ष कर देता है, अलट्कार आदि के सन्तुलित प्रयोग में एक अद्भुत मसारा खड़ा कर सकता है। कवि की वाणी को इस अद्भुत शक्ति को विभिन्न शब्दों में सराहा गया है—

अतर्हि वितर्हिदृष्टे स्व हिअअम्मि जा निवेसेइ ।

अथ बिसेसे सा जअइ विकड-कइ-मोभरा वाणी ॥

अनथास्थितानपि तथा मस्थितानिव हृदये [या निवेशयति । अर्थविशेषान् सा जयति विकट-कवि-शाचरा वाणी ।'

चतुर्थ परिच्छेद शब्दार्थ-बोध व काव्य-विश्व

उद्देश और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध — व्यावहारिक जगत् और ज्ञेय कर वाट मय में सभी प्रकार के ज्ञान शब्द में हात है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव का तो कार्य शब्द के बिना चलता ही नहीं पशु भी आवश्यकता पड़ने पर या भावावश में शब्द का प्रयोग कर ही है। वस्तुओं का दिखाकर या चित्र चित्र द्वारा ही यह कार्य सम्भव नहीं। क्योंकि लौकिक पदार्थों की अनन्तता है जो मानव की शक्ति सीमित है। इसी कारण शास्त्र में वस्तु का स्वरूप-निर्माण किया जाता है जिसमें एक परिभाषा के द्वारा तदाकारक समस्त पदार्थों का वाज्य हो जाता है।^१

भाव प्रकाशन के लिये यद्यपि साङ्केतिक भाषाएँ भी बनीं हैं परन्तु सङ्केत का जानने वाले ही उनका अर्थ समझ सकते हैं। छव यात्मक शब्द में आशय का वाज्य सम्भव हान के कारण दुर्भाष, तार, रेखियों आदि के द्वारा आज दूरस्थ व्यक्ति के साथ भी सम्पर्क स्थापित करना सम्भव हो गया है। राष्ट्रों के गुप्तचर घने जंगल व दुग्ध पर्वतशिखर पर बैठे अपने राष्ट्र से शब्द के द्वारा सम्पर्क स्थापित करते हैं।

पर यह कार्य सभी सम्भव है जब कि प्रयुक्त शब्द किसी आशय या ज्ञान कराये। अन्यथा प्रमत्त-भणित व विद्वान् पुण्य द्वारा उच्चारित शब्द में कोई अन्तर न होगा। इसीलिए जो शब्द किसी प्रकार का बोध नहीं कराता, उसे निरर्थक कहते हैं। शब्द में जो आशय जाना जाता है, वह उसका अर्थ कहलाता है। भने ही शब्द छवि रूप में हो या लिपि रूप में पर जब वह अपने ग्रहण से किसी प्रकार का बोध कराये तो वह मार्थक कहा जाता है और उसने जो ज्ञान हुआ, वह उसका अर्थ माना जाता है। जैसे मानव कहने में दो हाथ, दो पाँव बिना सोंग और पूछ जाने चौक का बोध होता है।

१ न साङ्गिनि प्रयया लोक य शब्दानुगमाद् ऋणे ।

अनुपलब्धिं जाम सव जवद्वत भाम्ने ॥

—वाप० १, १२८

२ तु०—ऋडयोऽपि पदार्थानां नान्तं याति पृथक्त्वञ्च ।

वक्षणेन तु निद्वानामन्तं धारितं विपरिच्यत ॥

—निदुर्गं भा० पृ० १०

शब्द और अर्थ का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? एक शब्द का उच्चारण करने से वही अर्थ क्या लिया जाता है अन्य क्यों नहीं ? पुनः क्या दोना का यह सम्बन्ध नियम है या अनित्य, ये कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिन पर चिरकाल न विचार होता रहा है और आज भी भाषाशास्त्री इस पर विचार करते हैं।

उस प्रश्न में प्रथम विद्यार्थ शब्दों की निश्चलता और अनित्यता को लेकर हैं। शब्द क्योंकि गकारादिध्वनिया का समुच्चय है उनके उच्चारण एवं अर्थबोध में पूर्व-पश्चात् भावना निश्चित है। एक वर्ण का उच्चारण करने पर उसमें पूर्ववर्ती ध्वनि का प्रध्वमाभाव होने से अर्थबोध क अवसर तक प्रायः सभी ध्वनिया का अवगमन हो जाने में अर्थबोध किमका होगा ? यह शब्दानियता वादियों का कथन है, जिसकी प्रतिध्वनि याम्क द्वारा उठाय गयी औदुम्बरायण के पूर्वपक्ष में मिलती है।^१ वीर्य दशन इस प्रकार इस मत का मानने वाला है। क्योंकि उसका अनुसार प्रत्येक वस्तु द्वितीय क्षण में नष्ट हो जाती है।^२ इसके विपरीत श्रुति में दिश्वाम रखने वाला व्याकरण दर्शन एवं शैव दर्शन दोनों शब्द को नियम मानते हैं। उनके अनुसार केवल ध्रुवमाण गकारादि ध्वनिया अनित्य होती है। अन्यथा संस्कारवश उनका नित्य रूप जो अर्थवाचाय जाता है आकाश में एवं मस्तिष्क में सुरक्षित रहना है। इस कारण जहाँ व्याकरण दर्शन शब्द को ब्रह्म मानता हुआ उसका अर्थ मानय सम्बन्ध स्वीकार करता है।^३ शैव दर्शन शब्द का पावती और अर्थ को शिव रूप मान कर दाना को तात्त्विक दृष्टि में अभिन्न मानता है। इच्छा, ज्ञान क्रियात्मिक शक्ति का मन्दन भौतिक मूर्ति की भाँति वास्तव में उचित के लिए उत्तरदायी है।^४ कानिदास

१ इन्द्रियनियम वचनमौहुम्बरायण । तत्र चतुष्टय नोपपद्यते । — नि० १२

२ असदर्थी हयनित्यार्थ । त्रिविधाहयनित्यार्थ । असदर्थ उत्पादव्याप्य, समलामलताधश्च । —मध्या०वि०शा०आ०मन्त्रेय कारिका पृ० ८८

३ सिद्ध शब्दाय सम्बन्धे । —महा० १

तथा—जनादि निधन ब्रह्म शब्दनत्व तदक्षरम् ।

विवर्ततस्थभावेन प्रक्रिया जगता यत ॥ —वाप० १, १

४ या चैषा प्रतिभा तत्तत्पदायक्रमरूपिता ।

जत्रमानतच्चिद्रूपप्रभातासमहेश्वर ॥ —ग्रह० पृ० १११

तथा—शब्दस्वरूपमखिलघटते शर्वस्य बल्लभा ।

अधस्वरूपमखिलघटते बालेन्दुशखर ॥

—शिपु० जगदीशचन्द्रकृत चि०मी० भूमिका

के शब्दों में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।^१ गोस्वामी तुलसीदास ने शब्द-अथ वा परम्पर सम्बन्ध जल और तरङ्ग का सा बताया है।^२ इस प्रकार इनके अनुसार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध निश्चित है और शब्द का उच्चारण होने पर वह किसी निश्चित अर्थ का बोध कराता है। बोध-पञ्चदशिका में शक्ति और शक्तिमान् का अग्नि और उसके दाहक धूम के समान अभेद सम्बन्ध माना गया है।^३ विम्व की चर्चा पहले आ चुकी है। परा नामक सूक्ष्म वाग्रूप अर्थ-वाग्जात्मक ही है जो कि मदा मूधम रहता है।^४ न्यायदर्शन सूक्ष्म शब्द का नित्य मानने पर भी ध्वन्यात्मक की उगत्तिलयात्मक होने में अनित्य ही मानता है। पर सूक्ष्म शब्द के पूर्वोक्त भाग में नित्य अर्थानुबद्ध रहने में निरर्थकता प्रमाणित नहीं होती। वेदान्तदर्शन ब्रह्म को ही नित्य मानने के कारण शाब्दिक प्रपञ्च का अनित्य मानने वाला है परन्तु सत्य ज्ञानमवलम्ब्य 'आदि श्रुति-वाक्या को प्रमाण मानने के कारण उनका शब्दानित्यत्ववाद अमारमिद्ध हो जाता है। १० अन्यथा अखण्ड वाक्य स्फोट मानन का क्या अर्थ ?

शब्दानित्यत्ववादी इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार शब्दों को साङ्केतिक अर्थ लोग न दिये ह। इसलिए न वे पारमार्थिक ह और न नित्य। 'आमह के शब्दों में गह मत स्पष्ट हुआ है।' इस मत का मानने पर पदविभाग की बल्यता एव मात स्वरो में अवन सङ्गीत की भांति ६३ या ६४ वर्णों में विशाल वाट्मय के प्रसार की बात भी मङ्गल नहीं होती।^६ इसी प्रकार

१ वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगर्थप्रतिपत्तये ।

जगत पितरो वदे पावती-परमेश्वरो ॥

—र व० १, १

२ गिरा अरथ जलद्रीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न । —रघुमा० १, १८

३ शक्तिरथ शक्तिमदल्पाद् व्यतिष्क न वाञ्छति ।

साक्षात्स्यमतगोनित्य वहि नदाहक्यारिव ।

—बोप० २ रामचन्द्र द्विविद कृत अलम्बी० पृ० ६१ उद्धृत

४ यय विम्व-रूपैव परमाथ-वमत्कृति ।

सैव सार पदार्थाना परा वागभिधीयत ॥

—विम्विनी ५० २

५ विप्रम० ४, १

६ भावा० ६, ६-७, ६, १४

७ चत्वगि पदजालानि नामाख्यातोसगतिपाताशन । नि० १

८ त्रिपिष्टिचतुष्पिष्टिर्वा वर्णा शम्भु-मते मता । पाशि० ५

९ वर्ण कतिपरैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।

अनन्ता वाट्मयस्याहा गेयस्येव विचिगता ॥ शिव० २, ७४

शब्दा को वाचक छातक और निरर्थक तीन श्रेणियां म विभक्त करन का क्या प्रयोजन है? इतना गोन पर भी कुछ दर्शन शब्द प्रमाणक है ता कुछ अर्थ-प्रमाणक । जसे वैयकरण शब्द का प्रमाण मानकर चलत है तो नैयायिक अर्थ को । यास्क ने निवचन क प्रसङ्ग म अधिनिय हान का निर्देश दिया है^१ । लक्षणा की परिभाषा म अपिता शब्द का प्रयाग परम्परा म भी शब्दा का अर्थ निर्धारित होन की सूचना देता^२ है ।

इम विवाद का दखन हुए निष्पत्त निकलता है कि शब्द को नित्य या अनित्य मानन पर भा उसस अर्थवाद ता स्वाकार करना ही पडता ह । अर्थबोध की दृष्टि म हा शब्द का योगिक रुढ और यागवृद्धि वाचक छातक एक निरर्थक इन श्रेणियों म बाटा है । नैयायिक लाग उपमर्गों का छातक जबकि च जादि निपाता का वाचक मानत है^३ । किंतु वैयकरण निपाता का छातक ही मानत ह । यास्क इसक विपरीत उह वाचक और निरर्थक इन दा श्रेणियां म विभक्त करत है^४ ।

इसका आधार यह ह कि उनक प्रयाग म किरौ-न किरौ अर्थ का बोध तो हाता ही ह । उपमर्ग भी घातु के साथ जुडकर उसका अर्थ बदलत है । वह

१ त्रिधावाचकमाग्व्यातमुपसर्गो विशेषकृत ।

सत्त्वाभिप्रायक नाम निपात पद-पूरण ॥ विदु भा० पृ० ५०

२ अथानवित्श्रैः प्रादेगिके विकारेऽथनित्य परीक्षेत क्वचिद वृत्तिमामान्यन ।
—नि० २१

३ साद० २५

४ तु प्रादयो द्योतकाश्चादयो वाचका इति नैयायिकमतमयुक्त वंपम्ये वीजाभावादिति द्बन्धयनिगतानां द्योतकत्व समथयत—

द्योतका प्रादयो यन निपाताश्चादयन्तथा ।

उपास्यत हरिहरो लकारो दश्यत यथा ॥ कौभ० वंभूसा० १

तथा—उपसर्गस्नात्नयशाहक इयस्तु । तथा तात्पर्यशाहकत्वमेव द्यात्त्वम् इति । एतच्चादिय तुल्यम ।
—वही पृ० ३७०

५ अथ निपाता । उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति (क) अप्युपमार्थे

(ख) अपि कर्मोपमड ग्रहार्थे (ग) जाप पदपूरणा । —नि० १४

६ उच्चावचा पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः । तदय एषु पदाध प्राहुरिम त नामाख्यातयोर्ध्विकरणम् ।
—नि० १३

उन्हीं का अर्थ है। वैद्याकरण भी उपसर्ग में जानु के अर्थ का परिक्लृप्त मानत है^१।

यहाँ यह आपत्ति उठती है कि यदि निरात वाचक है तो एक ही निपात क कई अर्थ क्या होते हैं। जैसे निरु शब्द का स्थानानुसार य पुष्टि प्रश्न, चितक आदि अर्थ भेद होता है^२। खनु के निपे जाय प्रणाय एव पदपूरण तीना प्रकार आदि है, यह क्यों? पर हमरा आचार अर्थभेद में शब्द-भेद की मान्यता का सिद्धान्त है^३।

इस प्रकार शब्द और अर्थ का वाच्यवाचक भाव या शाय-दानक भाव सम्बन्ध बनता है। मम्मट ने स्पष्ट कहा है कि शब्द अर्थ का प्रकाशन करता है, उसका कारण नहीं है^४। कारण स्पष्ट है। कारण यह होता है जो प्रायनियत वृत्ति प्रागभाव को दूर करता है। उनमें विपरीत अर्थ शब्द म पहले भ विद्यमान है। तभी शब्द में ग्राह्यत्व और ग्राहकत्व दोनों की स्थिति बनाई है। श्रवणोद्भिद्य के साथ ध्वनि का मतिक्रम होने में शब्द का ग्रहण होता है, यह उसका ध्वन्मात्मक स्वर है। निपिमा स्वर का ग्रहण चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा होगा। पर इन्होंने शब्द का प्रयोजन सिद्ध नहीं हो जाना। वह दीप की भाँति घट-पटादि का बोध करगता है। अतः वह ग्राहक है। रेवाप्रभाव द्विवेदी शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध गरीर और वस्त्र का मानत है^५।

अर्थ क्या है

शब्द का अर्थ क्या है? अर्थ की व्युत्पत्ति अभिनव गुप्त ने मन में अध्येत

- १ उपसर्गो धान्वर्धो बलाद यत्र नीयत ।
प्रहाराहार-महार-विहार परिहारवत् ॥ —मिकी० भा० २, पृ० ३४
- २ तु० किलेति विद्या-प्रकर्षे । एव किलेति । अथापि 'न ननु' इत्याभाष्या
मम्प्रमुच्यतेऽनुपुष्ट । नि० १, १
- ३ यत्स्विनि च । खलु कृत्वा । खलु कृतम् । अथापि पदपूरण । एव खनु तद्
वभूवेति । वही १, ५
- ४ अर्थभेदेन शब्द-भेद । का० प्र० का० ४२२
- ५ शब्दस्य प्रकाशकत्वात्तन् कारणवत् । ता० प्र० का० पृ० २१०
- ६ ग्राह्यत्व ग्राहकत्व च द्वे शक्तौ तेजसा यथा ।
तथैव सर्व-शब्दाना पृथगेते व्यवस्थिते ॥ वाप० १, ४५
- ७ सामुक्ति० प्र० पृ० १४-१५

इत्यत इत्यर्थ 'होती है। तागग भट्ट न अर्थ की परिभाषा शब्द म जिम वस्तु का साक्षात्कार होता है वह की है^१। महाभाष्यकार ने भी कहा है कि जिगत्ता उच्चारण करन म साम्ना तामूलादि म युक्त शरीरगामी का जान जाता है, वही शब्द है^२। इस कथन में तान्त्रिक निवृत्तता है कि गो शब्द है। परन्तु गा शब्द स्वयं तो जानिवाचक है। जन श्रवण मात्र में तो गो व जाति का ग्रहण होगा। वक्ता का तापय जाति में तो नहीं हो सकता। इसलिए पुद्-श्रानपुद्-न्याय में प्रश्न के मध्य में उठता है कि शब्द का अर्थ क्या है अथवा शब्द का उच्चारण करन से श्रान का किसकी उपस्थिति होती है क्योंकि शब्द या तो जाति का वाचक होगा जैसे गा-वादि, या तद्गत धर्म का वाचक होगा। जैसे शुक्लत्व चतुर्त्वादि, या द्रव्य का होगा या उसकी मजा या वैयक्तिक विशेष है। अब 'गा दागि पय' म जानिवाचक गा शब्द में सामूहिक जाति का सामान्य प्रयानलि में वाग्र हान के कारण वक्ता का अर्थात् जय तो नहीं निवृत्तता, क्योंकि दाघा की सामर्थ्य म धाहर है कि यावमात्र गा-वपद-वाध्य जाति का दुष्ट मक। गो-गत शुक्लत्वादि गुण और चतुर्त्वादि क्रिया भी दाहन क्रिया का विषय सम्भव नहीं। इस समस्या के कारण सभी दशना न इस प्रश्न पर जगनी-अपनी दृष्टि में विचार किया है। पतञ्जलि न शब्दों की प्रवृत्ति जाति गुण क्रिया द्रव्यात्मक चतुर्विध मानी है।

शक्तिग्रह—शब्द म ज्ञान वान अथवाश की शास्त्राय परिभाषा म मन्वत प्रह या शक्तिग्रह कहा गया है। इसी प्रकार शक्तिग्रह की अवधारण म कारणता मानी गई है।^३ पूर्वोक्त प्रकार म शक्तिग्रह जाति या व्यक्ति किसम जाता है इस पर दार्शनिका म मतभेद है। जैसे प्रीयामक जाति में शक्ति मानत है परन्तु दाहन आदि क्रिया का विषय जाति न हो सकन न व्यक्ति का आक्षेप किया है।^४ नैयायिक त्राग जाति विगिष्ट व्यक्ति म शक्ति-ग्रह स्वीकार करत है। साहित्य दशन जाति गुण, क्रिया और द्रव्य इन उपाधिया म शक्तिग्रह मानता है।

१ अभिभा० पृ० ३४३ भा० १

२ अथत्व शब्दजन्यमाक्षात्कार-विषयत्वम्। का० प्र० ३० पृ० २४४

३ महा० १,१

४ चतुष्टयी शब्दाना प्रवृत्ति इति महाभाष्यकार।

—ना० प्रवा० २, पृ० ३४

५ अथम्पु यनुकूल-गदाथ-सम्बन्ध शक्ति। —तसदी० पृ० १०३

६ गदादिशब्दाना जाभावव शक्ति। विशेषणतया जान प्रथममुपस्थितत्वान्।

व्यक्तिलाभस्त्वाक्षेपादिति केचित्।

—तसदी० १०४ २५

बौद्धदशन आद्वैत्यावृत्ति-रूप अपोह मे शक्तिग्रह पर वन देता है । मा०वाचाय ने मध्ये मे इस सम्बन्ध मे विभिन्न गता पर प्रकाण डाला है । उसक अनुसार वैदिक जाति को, मा०यानुशायी व्यक्ति का, वैयाकरण दोना का, जैन अटग-प्रत्यङ्ग-रचना रूप आहुति का और नैयायिक तीनों का ही शब्दाय मानत ह ।^१ रामानुज-वेदान्त मे जाति मे ही शक्तिग्रह माना जाता है, व्यक्ति मे तो स्वरूप मे रहती ही ह ।^२ व्यक्ति-शक्तिवाद का खण्डन अनन्य और व्यभिचार दाप के आ पडने के कारण पर किया जाता ह । क्योंकि भूत और भविष्यत् की जस्त व्यक्तिता म एक साथ शक्तिग्रह मभव नहीं ह । क्योंकि अनन्त बार शक्तिग्रह करने मे गौरव हाया, यदि वह कि एक बार एक व्यक्ति म शक्ति-ग्रह ही जाय, वाद म अथ व्यक्तिता का ग्रहण स्वत हो जायगा तो शक्तिग्रह क अथदोष की कारणता क नियम मे व्यभिचार हा जायगा । "गौ शुक्लरश्मला टिन्त्र" कहने मे व्यक्ति हा ही जो० हान पर चांग पयायवाची शब्द हो जायेग और जगतिगुण-त्रिशा-द्रव्यामर विपरिभाग सनक न हागा ।^३

पदो का परस्पर अन्वयबोध—शक्तिग्रह हान क पश्चात् एक वाक्य मे आत काले जनेक पदा का परस्पर सम्बन्ध कैम हागा यह प्रश्न उठता ह । इस सम्बन्ध म मीमांसा दशन म अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद दा सिद्धांत सामने आते ह । अभिहितान्वयवाद ना अभिधा म जपयन्त्या असभव मानकर श्मके तिर तापय नामक वक्ति स्वीकार करता है । पर अन्विताभिधानवाद परस्पर अन्वित पदा म ही शक्तिग्रह का मायता देता ह । इस विषय पर भी दशन मे मतैक्य नहीं ह । माहिर-दशन पहले या स्वीकार करता ह पर व्यञ्जना के प्रश्न पर दातो मे मत-भेद ह । वेदान्त दशन 'तत्त्वमसि' सदृशवाक्या मे भागलक्षणा द्वारा अत्रण्टायवाध मानता ह पर रामानुज दशन पदोच्चारण मे सबप्रथम अक्ले पदाय के हा दा० का प्रयोगीकार करता ह ।^४ विचार करने पर न्याय-दशन भी अन्वित मे ही शक्तिग्रह मानता ह ।

१ तन्न, सामान्यरह्यादौ बहुव्यवहारेण गवजानप्रनादेव्यक्तावेव सम्भवेन जातिविशिष्ट-व्यक्तानेव शक्ति-रूपनात् । —तमदी०, १२५

२ यदवा गवादिपदाना व्यक्ती शक्ति स्वरूप-सती न तु ताता हेतू ।

अनप्य चायमनेऽप्यन्वय शक्ति स्वरूप-मतीति सिद्धांत ।

—धर्मराजधरी० वदातपरिभाषा पृ० १६३

३ का०प्र०का०, पृ० ३८-३९

४ विप्रम०, ४, १

५ मेघनादभूरिनयधुमणि, पृ० १०७

६ द्र० टि० ३३

अथज्ञान साकार या निराकार—एम् प्रत्यङ्ग म महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि शब्द म हान वाता तान साकार ताता न या निराकार या अन्व । यदि कह कि अन्व हाना न ता वाता वा वस्तु क स्वल्प का प्रतिपत्ति कम हागी जैम खण्ण शब्द म अवन शक्य का वाङ्ग तान पर बोद्धा का मूत्र माठा तना न सकता अथवा घट शब्द का जत्र घट है यह जान कर भा प्रत् का आकार न जानन वात व्याकन का सामन घटा दखकर भा यत् घटा ह यत् वाङ्ग न योगा तथा प्र जौग पट म भद तान मभव न हागा । एम् कारण वत् घट न पत् जौग पट को घट समस म ता न । एम् प्रकार यह जयथाय तान हागा जत शब्द का तान साकार हाता है एमा विभिन्न दशन म्वाकार धरत न एका पुष्टि गमानुदशन क पूर्वोन्धन वचन म हा जाना है । वन्तान परिभाषाकार न भा स्पष्ट कता न कि घट शब्द म तक्तिप्रत् हान पर वत् पेटे जौग मत्थ वाता वस्तु म ही एम्का प्रयाग हागा । घट क पेटे जौग एम् का वतनता जौग पुर वत् वाङ्ग जादार एजन म ही मभव ह । एमदिज जत्र एम् प्रकार की जाकृति वाद्धा वा लिखा दगा तभी यह घट ह एम् प्रकार का वाङ्ग हाग १

प्रत्य और वक्षपिक क अनुसार भा वाद्धा घट न जाकृति का एकर मन घटा तान चिया' एम् प्रकार का अनुव्यवमाय जत्र कर तना ह तना उम घट का प्रयथ हुआ समथा ताता ८ ३ यत् साकार तान म हा मभव न निराकार म तना

व्याकरण दशन क अनुसार ता पदाय क जाकार-वाद्य के बिना शब्द-वाङ्ग या स्फाट ही मभव तहा न गा पद मुनदत्त वाद्धा का यदि माम्नानाए गू तादि आकार वात शक्य का प्रत्यभाकरण हाता है यही स्फाट ह । वह माक्षावागमक हा ह

मशवैयाकरण मत एति न पूवपक्ष क एम् म आरम्भ म भव ही यह कहा कि वाचक शब्द घट जत्र घट्ट मात्र न वाङ्ग तक मामित ह । वह अत विपय पदाय क आकार का भान नही करा सकता १५ पर यह प्रयाययान

१ द्र० टि० ३६

२ व० पृ० १८७

३ मुगार्गमिश्राणा मतनुव्यवमायने नान गहन । नि० मुक्ता० उवानप्रमाद कृत टाका भा० १ पृ० १२६

४ घटादीना न आकारान प्रयाययति वाचक ।

वस्तुमात्रनिवृत्तिदान तन्गति नानरायका ॥

—वाप० २ १२३

त्रिया घोटन की वाचक है। वाचक शब्द का कार्य अथ का अभिधान है, चोतन नहीं। वह यदि व्यञ्जन वन जाय तभी व्यङ्ग्य अर्थ का बोध करा सकता है। सामान्य रूप में हम वचन में भ्रू हृदि वाचक शब्द में वाच्य पदार्थ का आकार-बोध कराने की सामर्थ्य नहीं मानते लगते हैं परन्तु अथ वचन स्पष्ट ही सूचित करते हैं कि वे पदार्थ व आकार का बोध शब्द में मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि शब्द द्वारा प्रतिपादित स्वरूप वाले वन आदि पदार्थों को बुद्धि का विषय हो जाने पर वाङ्मा प्रत्यक्षवत् समझता है।^१ इसका तात्पर्य यही निकलता कि जब शब्दबोध हो जाता है तो शब्द द्वारा प्रतिपादित पदार्थ पहले प्रत्येता की बुद्धि या ग्राहिका अन्तश्चेतना में निहित हो जाता है, तदनन्तर अन्तर्दृष्टि के समक्ष प्रत्यक्षवत् भासित हो जाता है।

आधुनिक विम्बवादी समीक्षकों की भी मान्यता यह है कि नौकिक पदार्थ चाक्षुष या एन्द्रिय मन्त्रिकर्ष का विषय बनने के पश्चात् तब तिरोहित हो जाते हैं तो प्रकृता की स्मृति में अदृक्क हो जाते हैं। एन्द्रिय मन्त्रिकर्ष व अन्तगत श्रावण मन्त्रिकर्ष भी हैं। निश्चित जगत् या शब्दों का पढ़न पर चाक्षुष मन्त्रिकर्ष ही होगा, पर अथवा ज्ञान एन्द्रिय विषय नहीं है। वह बुद्धि का कार्य है। अतः शब्द को पढ़न या मुनन के पश्चात् उमने बोधित पदार्थ बुद्धि का विषय बनता है। इस प्रकार मन्त्रिकर्ष में उसका मन्त्रिकर्ष स्मृति बनकर उभरता है।^२ इस समय की वेदान्त परिभाषाकार न भिन्न शब्दों में स्वीकार किया है।^३

भ्रू हृदि का जयज कथन है कि ज्ञान में जिन प्रकार स्वयं ज्ञान का और ज्ञेय का स्वरूप दिखाई देता है इसी प्रकार शब्द में उमका जपना रूप और उमने प्रतिपाद्य का रूप भी प्रकाशित होता है। जब शब्दबोधवादी जट्ट के द्वारा ब्रह्म को ज्ञेय न मान कर स्वयं ज्ञान रूप मान लेते हैं तो ज्ञान और ज्ञेय दोनों में भेद की प्रतिष्ठा हो जाती है। इसी प्रकार शब्द में उमका श्रवण-त्मक रूप और उमका प्रतिपाद्य वस्तु का जय है, अध्यायीश्वर के देह की भाँति जभेद रूप में स्थित है।^४

१ शब्दापहितरूपात्मान् बुद्धेर्विषयता गतान् ।

प्रत्यक्षमिव क्मादीन् साधनन्वने मन्यते ॥

—वाप०, ३, ७, ५

२ यत्र वाचो निमित्तानि चिह्नानीवाक्षरस्मृते ।

शब्द-पूर्वेषु यागेन भासन् प्रतिविम्बवत् ॥

—वही १, २०

३ पदानि हि स्वस्मभ्रद्धेष्वेषु स्मृति जनयति ।

—वे १० पृ० ३०

४ अत्म-रूप यथा ज्ञान ज्ञेयरूप च दृश्यते ।

अथरूप तथा शब्दे स्वरूप च प्रकाशते ॥

—वाप० १, २०

पुन व्याप्तिज्ञान भी प्रत्यक्ष पर आधारित है। क्याकि रसोई म अग्नि जी घूम का मयोग देखकर ही दाना के साहचर्य का नियम समझ मे आता ह।

उपमान—तृतीय प्रमाण उपमान है।^१ इस प्रकार उपमान अथान् मद्रुश पदाथ क द्वारा प्रकृत का वाध उपमान कहताता है। काव्य मे यह प्रमाण उपमा आदि अत्रट्काग म उपमय अथवा प्रकृत वस्तु क स्वस्व के स्पष्टीकरण के निय प्रयुक्त हाता है।^२ शास्त्रीय ग्रन्था म किमी मिद्वान्न के स्पष्टीकरण क निय न्याया का प्रयाग किया जाता है। उनम भी उपमान का भाव ही छिरा होता है। जैसे किमी प्रमट्ग म जनक पदार्थों का परिगणन करेक जब उनम प्रत्यक का एक एक करेक परिचय दिया जाय ता उमेक स्पष्टीकरण के लिए शृङ्ग-शात्रिका न्याय का उदाहरण दत है। उमेका तात्पर्य यह है कि जैसे बहुत भी गीजा का गिनान के लिए एक एक का मीग पकडकर उसकी गिनती और पहचान कराड जाय इसी प्रकार यहा एक वस्तु को प्रमश नकर उमेका परिचय दिया जाना है।

शब्द—चतुथ प्रमाण शब्द होता ह। किमी शस्त्र या आप्त पुरुष क वचन को सामन रखकर उमेक द्वारा किमी विषय का ज्ञान किया जाय, उमे शब्द प्रमाण कहत ह।^३ जैसे जास्तिक दशना मे वेद के वचन को किमी बात की मायना मिद्व करन के लिए प्रस्तुत किया जाना है। शब्द जब वाक्य म प्रयुक्त हाता ह तव उमे पद कहा जाता है। पद क अथ का पदाथ, वाक्य क अर्थ का वाक्यार्थ कहत ह। पदाथ और वाक्यार्थ के ज्ञान के लिए दशना की जग्नी अपनी मायताएँ हैं।

मारय दशन क अनुसार चक्षुरादि इन्द्रिय का जब अपन विषय मे समग होता ह मन का भी विषय क साथ व्यापार हाता है। इस मानसिक व्यापार का प्रतिविम्ब जात्मा या पुरुष म मनान्ते होता ह। चैतन्य का उस मानमवृत्ति के

१ उरमितिकरणमुपमानम । तस० उर० प्रक०

२ तु०, जब कविता दृश्य रूप पाकर चित्रकला के निकट आती है ता उसमे मत्प्रत तीन वाना की अपेक्षा की जाती है वह यथार्थ चित्रण कर, बह माथक अथवा महत्त्वपूर्ण पक्ष का चित्रण करे तथा वह रागात्मक चित्रण करे। इन तीन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए कवि यथाक्रम इन तीन युक्तियों का मुद्रन अपनाता है विम्ब उपमान प्रतीक।

— त्रिरोक' चद तुनमी परिवश, मन और साहित्य पृ० २३३

३ तु०, आप्त नामक शब्द । आप्तस्तु ययार्थवक्ता । तस० ४

प्रतिबिम्ब में युक्त जाना ही प्रत्यक्षज्ञान है। विषय में समुष्ट दृन्द्रिय के साथ विषयस्थान में मन की विषयरूप में वृत्ति हो जाना ही प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। इसी प्रकार व्याप्तिज्ञान के कारण उत्पन्न "साध्य ने विशिष्ट पक्ष है" इस प्रकार जब मन की वृत्ति हा जाती है, दृष्टी का अनुमान प्रमाण कहत है। उस प्रकार की मानस वृत्ति का जब चैतन्य में प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होता है, उस स्थिति को ही अनुमति कहते हैं। इसी प्रकार श्रुति अथवा प्रामाणिक कपिल आदि आचार्यों के वचन का सुनकर पदों के अथ व साथ मसग के रूप में परिवर्तित मानसिक व्यापार ही शब्द-प्रमाण कहनाता है। चैतन्य का उग मानस वृत्ति व प्रतिबिम्ब में युक्त हो जाना ही शब्द-ज्ञान कहनाता है। इस ज्ञान की विविध अवस्थाएँ जैसे प्रत्यक्षता, परीक्षता, स्मरण का अथ, संदेह विषयय (विपरीत ज्ञान) जादि मानस वृत्ति के ही धर्म हात है जा कि आत्मा की चेतना में उसके प्रतिबिम्बरूप उपाधि के कारण भासित हात है।^१

इसके अनुसार प्रत्येक प्रकार का ज्ञान चैतन्य में हाता है। फलस्वरूप ज्ञेय पद व अथ का स्वरूप भी उसमें प्रतिफलित हागा। क्योंकि भावमान का प्रतिफलन क्या हाता है।

पातञ्जल यागदर्शन में किसी अथ का स्पष्ट कान के लिए असम्भव व्यापार का उदाहरण दिया गया है। जैसे किसी अथे को माग में पटा रत मित। उस को उगती में रहित हाथ वाले मनुष्य ने माला में गुजा। कटी गर्दन वाले मनुष्य ने उसे गले में पहना। बिना जीभ के मनुष्य ने उसे चूमा।^२

तैत्तिरीय आरण्यक के इस सन्दर्भ को आत्मा की सबकायक्षमता प्रतिपादित करने के लिए उद्भूत किया जाता है। इस आभाषण में स्पष्ट व्यापार प्रदर्शित है जो कि प्रत्यक्ष-दृश्य है। यद्यपि यह वाक्य में सम्भव नहीं है। तथापि क्योंकि ये व्यापार शब्द में कहे गये हैं, अतः इन्हें सुन कर कल्पना-दृष्टि से ये व्यापार भी किय जाते हुए प्रतीत होंगे। फलतः प्रसङ्ग में वषणीय चैतन्य स्वरूप आत्मा या ईश्वर जिहू वा जावि में रहित होना हुआ भी इस प्रकार व सभी असम्भव काय कर सकता है। इस प्रकार का आगम्य इस पूर्वोक्त आभाषण

१ सर्वदशन-मसह पृ० ३२०

२ अथा मणिमविन्दत। तमतत्तुगुतिरावयत् अरीव प्रत्यमुञ्चत्। तमजिह्वा जसश्चत्।

म दिया जाता है। इस के आधार पर मान सकते हैं कि वाक्याय का मानम ना तात्पर्य सम्भव है।

शास्त्र का उद्देश्य मान म भा कहा गया है कि "किन्ति का देखकर यह स्पष्ट है" इस प्रकार का कुछ बात के साथ साथ "यह स्पष्ट नहीं है" इस प्रकार का कठिना जाता है। प्रत्येक एक वस्तु का प्रत्यक्ष दिवादा दर्शा है परन्तु "मम जिम पदार्थ का प्रभावप्रति जाता है" "मम स्वल्प स्मृतिगत जाता है।" "माक जाग्रा पर मन का जगत का प्रभाव जान सम्भव है।" यत् स्मरणामक वाप्य वाक्य के उच्चारण का ना जाता वह भी स्पष्ट है।^१

साहित्यशास्त्र ध्वन्यशास्त्र दर्शन के कुछ दिग्गुरुओं पर व्यापारिण है। जान का मात्राशास्त्र के सम्बन्ध में ना के व्याकरण शास्त्र का ही अनुसरण करना है। वाक्यप्रत्यय म तादृशान् परचान् "वद-वाच्य पदार्थ के आकार ना प्रतिभाम प्रानविम्व के रूप म माना जा गया है। प्रतिभाम शब्द का महायत्ना म हा विश्व के पदार्थों का ज्ञान जाता है। मूल पदार्थ शब्द के माध्यम म स्मृति के विषय वाक्य प्रत्ययवत प्रानत जाते हैं। किन्तु ना तादृशवाच्य जय अन्य शास्त्र हैं, वे कवन अनुमतिरहित म वाप्य का विषय वनत हैं। कुछ वाक्यायों न शब्द का उच्चारण करने के पश्चात् प्रानति के रूप म जय के रूप का निगम हा अथाव वाप्य माना है। कर्णादि तादा का उच्चारण करने पर उनके वाक्य का जान हात ना "मक स्वल्प का ना स्मरण के रूप म प्रतिभाम हा जाता है। शब्द म

१ तु० अथम्यामनक्तिवप्रतिपादनाय वाक्यज्यमानाणन उपादायन ।

म मभव्य प्रतिपात्क म्यात् चिदरूप आत्मा तु चक्षुर्गुणियावा-
जिह्वावर्जित एव मनचिन्मशक्तिवास्तान् मवान व्यापारान् करताति
श्रुयय । चिदात्मन प्रथमय यदमभाव्यमानमपि कायमय करोताति ।

—सुदमभाष्य पृ० ६८७

२ तत्र तन्मात्रपार्थव स्मृत च प्रतियागिनि ।

नास्मिन्त्र नैव भूभाग घटादिप्रातयागिन ।।

—प्रकरणपञ्चिका ६/६७ म सुदम पृ० ४३०

३ इ० टि० ८३

४ तादृशवाचिता शक्तिविश्वम्यान्व निवर्तनय ।

यन्त्र प्रतिभामाय नदरूप प्रतीयत ॥

—वाप० १ १२८

५ जाकारदन्त मवद्या व्यक्त स्मृति निवर्तना ।

य न प्रयवभामन्त सविमात्र तनायथा ॥

—वही २ १३३

जिन पदार्थ का ज्ञान होता है, वही उसका अर्थ माना जाता है ।^१ स्मरण पढ़ने हुए अनुभव के मस्तिष्क पर पड़े प्रभाव से उत्पन्न हुआ करता है ।^२ जैसे पहले दूधे हुए कम्बूप्रीवादिमन् पदाथ के विषय में पुन 'घट लाया' एसा कथन सुनने पर श्रोता के मस्तिष्क में घट की आकृति ब्रूम जाती है । इस प्रकार घट शब्द का वाक्याथ-ज्ञान साकार होगा, निरसकार नहीं । परन्तु उष्ण बहिन् ऐसा रहने पर बहिन् जा द्रव्य है उसका तो गूढ रूप भागित हो सकता है । परन्तु उष्णत्व की भूतता कैसे भासित होगी ? क्योंकि वह तो गुण है । अतः उमते उष्णत्वश की अनुभूति ही बाह्य का विषय होगी ।

इसी कारण जति या व्यक्तिके पदार्थ ज्ञान के मशय 'गौ' कहने में माय का जतिवाचक अथ लेन पर भी आकृति का ही पढ़ने मान होता है । मात्रजातिमान् जर्थ यह बोध जानियरक ज्ञान । वा द्रव्य में जतिन मानन है वे ता उस जति-रूप एम न विशिष्ट वस्तु में शक्तिग्रह करेग ।^३ तब भी शब्द-बोध्य पदाथ के आकार का ही बोध होगा ।

एक ही शब्द उगग्रि-भेद में वाचक नक्षक जोर व्यञ्जक बन जाता है ।^४ इसका कारण यह है कि जय एक रूप ही नहीं हुआ करता । वह अवस्था या परिस्थिति बनना जावे कि भेद में भिन्न अर्थ वा भी ज्ञान करता है । जैसे— "सूरज छिय गया" इसका सामान्य अर्थ सूर्य का अस्त ज्ञाना है वा ममी श्रानाआ की ममान रूप में प्रतीत ज्ञाना है । परन्तु मान वा काई व्यक्तिके भावावर न घबराया हुआ मा अकर कह कि सूरज छिय गया तो सूर्य का अस्त होना मान प्रतीत न होकर किसी महापुरुष के निजत का ज्ञान करायेगा ।

ज० कपिनदेय द्विवेदी न साङ्केतिक जय के प्रसङ्ग में आई० १० रिचड्स की पुस्तक मीनिग आव मीनिग के जागार पर जागडेन और रिचड्स

१ वाप० २, ३२६, ४१८

२ सम्कारजय ज्ञान स्मृति ।

—तम० प्र० ख०

३ मदम० पृ० ३०७

४ वही पृ० ३०८

५ तु०, अभिप्रादित्रयाभाधिवैशिष्ट्यात् विविधा भत ।

शब्दोऽपि वाचकस्तदल्लक्षको व्यञ्जकस्तथा ॥

—साद० २, २८

वस्तुबोद्धव्यवाक्यानाम जमनिधिविवाच्यया ।

प्रस्ताविदगकालाना वाचाशचेष्टादिकस्य च

वैशिष्ट्यात्त्वयमर्थ या बोधयेत्साजय मभवा ॥

—वही २, १५-१७

का मत दिखान हुए मिद्ध किया ह कि आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक का साद्वर्तिक अथ क सम्बन्ध म वाक्यपदाय म पूण सहमति है । इन दाना मनापिया न अर्थ क १६ नक्षण या जय दिय ह उनम कुछ निम्नलिखित ह—

७ क) अभिमत तथ्य जय ह ।

ख) मन् कल्प जय ७ ।

१० ग) किसी सन् क्त का अभिमत पदाय जय है ।

घ) जिस जय का काठ वान अभिव्यक्त करता है वह अथ ह ।

१६ ज) व्यक्ति जिस जय का सन् क्त क द्वारा समथता है ।

आ) जिस जय का अपन हृदय म भावना रखता है ।

इ) जिस भाव का वक्ता का अभिमत भाव समथता है वह अथ ह ।^१

शब्दज्ञानिया

विम्ब शब्द म विम्ब स्थिति म कौन सा अथ बोधित हागा इसकी व्यवस्था कैस हागा यन् प्रश्न उठना ह । आचार्यों न इसका उत्तर शक्तता का मथता के रूप म दिया है ।^२ 'नम शब्द का उच्चारण करन म जा मीप्रा अर्थ थाना क मस्तिष्क म जाना ७ वाच्य कहनाता है । उसका वाङ् करान वाना वृत्ति या जक्ति का अभिघा नाम दिया है ।^३ किमा भा शब्द का पत्न या मुनन क पषचान मवप्रथम यहा वनि काम करता है और सहा या गदन का विचार किय बिना किमा अभिप्राय का मकतित कर दनी है । यह सम्पूर्ण शब्द-व्यापार म काम आती है तौर जय-मन्दार म प्रवेश का द्वार है । ध्वनिकार न व्यंग्याथ क वाङ् म हमका प्रथम द्वार कहा २ । जैम प्रकाश का इच्छुक दाप म तत्र और बस्ती जुटाता है तभा उन प्रकाश का त्राभ हाना है । व्मा प्रकार इन वाच्याथ का वाङ् हान पर हो बाद क अर्थों का जान हाता है ।^४ पाछ उद्धृत कानिदाम क पद्य स्थिता क्षण जादि म आरम्भ म प्रथमवृष्टि बिन्दुओ क त्रिक प्रसार का वणन हा बाद म भासित हान वाङ् अर्थों की कुञ्जी ह । इसा निय काव्य म रसभावादिन्प जय क वास्तविक प्रत्यय हान पर भा वाच्याथ का हा मुख्य

१ जय विज्ञान और व्याकरण दशन प० ६६ ६७

२ वाच्याथों-भिषणा वाङ्ना तथ्यो लक्षणयो पुन ।

व्यन् ग्या व्यञ्जगया येनि तिष्ठ शब्दस्य शक्तस्य ॥ —माद० २ ३

३ तत्र मन् कनिताथस्य बोधनादर्शमाभिघा । —वही २ ४

४ जानाकार्यो यथा दाप जिखाया यनवाञ्जन ।

तदुपायतया तदवद् अर्थो वाच्य तदाद्त ॥ —ध्वया० १ ६

कहा गया है।^१ धाच्यालट्कार इमी वान्पाय के विविध प्रकार हैं जिन्हें आनन्दप्रान वाग्बिकल्प^२ और शब्दक 'अभिज्ञान-प्रकार-विशेष'^३ के नाम से स्मरण वरत है। इमी मे वैचिष्य या अनोखापान जाने को बक्रोक्ति की गजा दी गई है।^४ नौकिक जीवन मे प्रमुखता मे यही अभिज्ञावृत्ति और इसके द्वारा बोधित अर व्यवहार मे आते ह।

यद्यपि अथ-वाद्य के निय उत्तरदायी सभी व्यापारो के वृत्ति^५ और शक्ति ये शब्द समान रूप से बोधक ह तथापि बहुधा शक्ति शब्द अभिधा के लिये ही प्रयुक्त होता है। क्या वैयाकरण, क्या नैयायिक और क्या अन्य दार्शनिक, सभी वाच्याथबोध व लिये शक्तिग्रह और अभिधा के लिये शक्ति शब्द का ही प्रयोग करत हैं। इसनिय व्यञ्जना के साथ वृत्ति शब्द लगाया जाता है। लक्षणा के साथ शक्ति शब्द का प्रयोग भी होता है। उसका कारण यह भी है कि कुछ दार्शनिक लक्षणा को अभिधा का ही अङ्ग मानत हैं। परन्तु अत्र न वैशिष्ट्य होन के कारण उसका पृथक नामकरण किया गया है।

शब्द का सीधा अर्थ अभिधा के द्वारा ता जाता जाता है पर उसका आधार क्या है? शक्तिग्रह व प्रमग में उसके भाजन छ गिनाय गये ह जिनमे व्याकरण प्रमुख है^६ क्योंकि शब्द की शल्यत्रिया व्याकरण के द्वारा ही होनी है। यास्क

१ मुटपावहृतिर्दोषो रमश्च मुख्यस्तदाशयाद् वाच्य । —का प्र०का० ७ १

२ अनन्ता हि वाग्बिकल्पास्तत्प्रकार एव चालट्कारा ।

—ध्वन्या० पृ० ४७३

३ अभिज्ञान-प्रकार-विशेषा एव चालट्कारा ।

—अस० (विम०महि०) पृ० २१

४ दक्षाभिधेय-शब्दोक्तिरिष्टावाचामलट्कृति । —भाका० १, ३६

तत्रा—उभावेताबलट्कार्यै तयो पुनरलट्कृति ।

वत्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभट् गीमणितिरच्यते ॥ —वगी० १, १०

५ वृत्तिना विध्वान्तरभिज्ञातान्पर्यन्तलक्षणमृत्पानाम् । —भाद० ५, १

६ स च शब्दो वस्तुत एकोऽपि तन्वद्वणसम्कारै प्रतिविम्बित-तत्तद्व्याप्तान्त-पदरूपतामापन्न इति मवपदरूप सवार्थभिज्ञानशक्ति ।

—वेलम० पृ० ३२६

७ शक्ति-ग्रह व्याकरणोपमान-त्रोपापनवात्रयाद् व्यवहारतरण ।

वाक्यरूप शेषाद् विब्रूनेवदन्ति सान्निध्यत मिद्व-पदस्य वृद्धा ॥

—तमदी० आनन्द सा टीका पृ० ६६

ने तीन प्रकार के शब्द गिनाये हैं—प्रत्यक्षक्रिय, परीक्षक्रिय और प्रकल्प्यक्रिय या जविवद्यमानक्रिय। इन तीनों भेदों का आधार उनको जन्मिमत शास्त्राचार का सिद्धान्त सम्पूर्ण नामार्थों (सना, सवनाम और विशेषण) का आख्यातज या प्रकृति प्रत्यय व योग से निर्मित होना है। कुछ शब्द एव होत हैं जिनका पद्व या सुतने से स्पष्ट ही पता लग जाता है कि किम् प्रातु व माथ कौन मा प्रत्यय लगाने में यह शब्द बना है। जैसे अध्यापक शब्द की व्युत्पत्ति अिपूर्वक इट धातु में गिजथ में हुई है इसका वाग्र हान और ष्रुल् प्रत्यय क मयाग में यह पद बना है यह वाग्र हान ही अध्यापक का जय पदान वाता यह ममथ में आ जाता है। परन्तु 'घोष्क' जैसे शब्द एव है जिनमें प्रकृति प्रत्यय का विभाग समझ नहीं आता। उनमें भी कुछ ग आख्याताथ मजा रूप बन कर अडा हान में क्रिया वाता रूप गिना जा जाता है पर विग्रह करने में वह प्रकाश में जा जाता है। जैसे—राजपुरुष। यह राजन और पुरुष दो शब्दों का मिला कर बना है। राजन राजन एव कथं व्युत्पत्ति में गजू दीप्ती धातु में बना है परन्तु पुरुष शब्द पुरि मीदति इस व्युत्पत्ति में पुर पूर्वक मद् धातु में बना है। उसका प्रत्यक्ष क्रिय पुरिपाद आता। यदि पुरि जेत यह व्युत्पत्ति करें तो 'पुरिजय' यह प्रत्यक्ष क्रिय रूप बनता। फलतः बनमान रूप पराश क्रिय है।^१ परन्तु इन्द्र शब्द में यह प्रकृति और प्रत्यय का विभाग और भी जस्पष्ट है। क्योंकि 'मकी व्युत्पत्ति इन्द्र इन्द्रा (इन्द्रमदर्म) इन रूप में करत है ता प्रत्यक्षक्रिय रूप बनता है पर जत्र वह इन्द्र बन जाता है ता ज्ञानार्थ द्रष्टा भी कृष्ण हो गया और 'इन्द्र' बन गया।^२ इसमें 'इन्द्रम्' यह सवनामाज ना स्पष्ट है इसलिये इसका पराश्राक्य की श्रेणी में रखेंगे। पर जब कबन 'इन्द्र' शब्द रह गया ता अब उत्तरी स्पष्टता में नहीं रही और वह प्रकल्प्य-क्रिय की श्रेणी में जा गया। इस प्रकार के बहुत से शब्द हैं जिनमें व्याकरण

१ तत्र नामान्याख्यातवतीति शास्त्रायना नैरकन-भ्रमदश्व । अनि० १, १२

२ तु० नि० २३

३ पुरुष पुरिपाद (पुरि-+मद) पुरि जय (पुरि जेत) पुरयतर्वा पुरयत्यन्तर्
इत्यंतरपुरुषमभिप्रेत्य । —नि० २३

४ स एतमेव पुरुष ब्रह्म तत्तमनस्यदिदमदशमिती ३

तस्मादिन्द्रा नामदन्द्राह वै नाम तमिदत्र सन्तमिन्द्र इत्याचमन
पराश्रेण । पराश प्रिया इव हि देवा पराश प्रिया इव हि देवा ।

की सीधी प्रक्रिया स्पष्ट नहीं है और उन्हें शिष्ट प्रयोग के कारण माधु मान लिया गया है। ऐसे कुछ शब्दों का समाहार इस श्लोक में किया गया है—

भवेद् वर्णागमाद धस सिंहो वर्ण-विपर्ययात् ।
गूढोत्मा वणञ्चिहृतेवर्णनाशात् पृषोदरम् ॥^१

प्राणिनि ने भी बहून् में शब्दों का निर्माण जो लाक में प्रचलित थे परन्तु उनके व्याकरण-नियम के अनुसार ठीक न बैठते थे, निपालन में मान कर उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया^२। शब्दों के स्वरूप में इस विभेद का देखकर ही उन्होंने प्राणिनिदिक्का का स्वरूप-निर्दिष्टन तीन पृथक् सूत्रों में किया है। 'अथ-वदधानुरप्रत्यय प्रातिपादिकम्'^३ उन शब्दों का निर्देश करता है जिनके प्रकृति-प्रत्यय-योग का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। अन्य दो सूत्र 'मुनिट-त पदम्'^४, 'हृत्तद्धित नामान्तरञ्च', 'रथशक्तिम् और परोक्षक्रिय शब्दा का निर्देश करते हैं। उपसर्ग और निपात भी प्रथम सूत्र के विषयान्तगत ही होंगे। अव्यय भी इसी प्रकार के शब्द हैं। फलतः यास्क द्वारा गिनाये गये चारों प्रकार के पदों का इनमें समाहार हो जाता है।

शब्दों के इन भेदों का दृष्टि में रखत हुए आचार्यों ने उन्हें स्वस्व का जागरण पर यौगिक ऋड और योगरूढ इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।^५ जिनमें प्रकृति-प्रत्यय के योग का आधार पर ही जय का निर्धारण होता है, वे शब्द यौगिक माने जाते हैं। जैसे नता, पाचक आदि। ऋड वे हैं जिनमें क्रिया का अन्वित रहन पर भी प्रस्तुत अर्थ में योग स्पष्ट नहीं होता। जैसे मण्डप शब्द 'मण्डे पिबन्तीति' इस व्युत्पत्ति में बनता है। परन्तु जब शाश्वतान्तर अर्थ में उभक्त प्रयोग होता है तो यह व्युत्पत्ति मानक प्रतीत नहीं होती। वस्तुतः इस शब्द के मूल में इतिहास या परम्परा है जिसमें व्युत्पत्ति की मान्यता सिद्ध

१ सिकी० (बालमनो० लाहौर) पृ० ६६३

२ राजसूयसूयमृषोदरञ्चकुप्यकृष्टपच्यव्यथ्या ।

पा० ३६११४

३ पा० १२४८

४ पा० १४१४

५ पा० १२४६

६ चत्वारि पदजातानि नामाख्यात चोपसर्गनिपाताश्च ।

नि० ११

७ अखण्डशक्तिमात्रेणैकाग्रप्रतिपादकत्व रूढि । अवयवशक्तिमात्रसापक्ष-पदस्यैकाग्रप्रतिपादकत्व योग ।

हानी है, अथवा नहीं।' इसी प्रकार लावण्य शब्द को लिया जा सकता है। यह लवण शब्द से बना है जिसकी व्युत्पत्ति 'लुनानि' इस अर्थ में छेदनाथक लू धातु से की जाती है। भाव में 'लवणस्य भाव कम वा लावण्य' यह व्युत्पत्ति करके लावण्य शब्द बना जिसका प्रयोग शागीर्षि आभा के लिए किया जाता है। इस प्रसङ्ग में तमकानपना या तीक्ष्णपन का लावण्य का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है मर गत नहीं बैठता। अतः इन दोनों शब्दों का मूट मान लिया गया है।

योगरूढ शब्द वे हैं जो योगिक होने पर भी किसी विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अप्य दीक्षित के अनुसार अवयव-शक्ति और समुदाय शक्ति दोनों पर आधारित होकर भी केवल एक अर्थ के वाचक शब्द का योगरूढ कहते हैं।^१ जैसे मुरालय शब्द देव-मन्दिर का वाचक भी है 'मुराणाम् आलय' इस व्युत्पत्ति से। परन्तु जमरकाश में मुमेरु पर्वत का नाम मुरालय होने में उसमें मूट है। पुराणों में मुमेरु पर्वत पर लाकपात्रा की नगरी वर्णित होने में उसे सुगलय कहा जाता है। इस प्रकार पत्रो व्युत्पत्ति में देवनाया का निधाम-स्थान रूप अर्थ प्रतीत होता है। रूढ अर्थ में मुमेरु। इस कारण देव-मन्दिर रूप अर्थ की निवृत्ति होती है। इसी प्रकार अम्बुज, नीरज, सरमिज, पङ्कज आदि शब्द हैं। क्योंकि इनमें अम्बुजि, नीरे सरमि का जायने, इस व्युत्पत्ति^२ से पानी में उत्पन्न होने वाली किसी भी वस्तु का बोध होना चाहिए। परन्तु वह केवल कमल में रूढ है, मछली, कछुआ, मटक या बिंदाडा आदि का वाद्य नहीं करता। शङ्ख के लिये भामह ने अन्ज शब्द का प्रयोग किया है।^३ पर अनेकों द्वारा इस एक अर्थ में प्रयोग करने में इस रूढ ही मानना होगा।

१ कहा जाता है कि प्राचीन काल में सामूहिक भोजन के लिये जहाँ खावण वन में ऊपर अवाञ्छित पदार्थ गिरने की आशङ्का से छप्पर बनाया जाता था। नीचे कच्ची जमीन गिरने हुए मांस का पी लेती थी। आधुनिक मण्डप में मांस पीने जैसी बात तो कुछ नहीं रही है परन्तु ऊपर से ढक्कन की समानता ज्यों की ज्यों है।

२ अवयव-समुदायोभय-शक्तिमापे-समकाथ-प्रतिपादकत्व मूटि ।

—वृत्ता० पृ ३

३ अको० १, १, ४६

४ सप्तम्या जाड ।

—पा० ३० ६७

५ स मारुतावम्यितपीतवासा विश्रत्मनील शशिभागमन्जम् ।

—भावा० २, ४२

जब वाक्य में अभिधा द्वारा वाचित अर्थ मूल न हो तो अथ विधान्ति वाचित हो जाती है। अत एव अक्षर पर वचना के तात्पर्य की प्रतीति के लिये दूसरी वृत्ति का महाराज नेत्रा पड़ता है। उसे लक्षणा कहा जाता है। यह अभिधा अर्थ वयोक्ति स्वतः प्रतीति तथा ज्ञाना, इसलिये अपित कहा जाता है। जैसे दीर्घ-श्रवण जब दीर्घ श्रवणा रूप्य म इम व्युत्पत्ति मे लक्ष्मे वान वान्ते गधे के लिये प्रयुक्त होता है। पर यदि किसी वस्तु को इस नाम में पुकार बंटे तो प्रतीति वाचित हो जायगी। यद्यपि इसका समाधान श्रवणम् का अर्थ यज्ञ लेकर मानव पक्ष में किया जा सकता है तथापि आपाततः तो मानव के लिये इस शब्द का प्रयोग जाचित ही होगा। फलतः उरुच्चार म यह प्रयोग मानकर गधे के समान नाममय अथ किया जायगा।

इस लक्षणा वृत्ति के प्रयोग के लिए तीन बाने अपेक्षित होती है—

- १ मूल्य अर्थ में वाच्य २ लक्षित अर्थ का मूल्य अर्थ के साथ सम्बन्ध,
- ३ सृष्टि या प्रयोजन में मूल्य निमित्त।

मूल्य अर्थ में वाच्य दो कारणों में माना जाता है—अन्वयानुपपत्ति और तात्पर्यानुपपत्ति। किन्ती मूल्य म अन्वय अर्थगत शब्दों का परस्पर सम्बन्ध मूल्य नहीं दंठता। जैसे गगाया घोष इस वचन में आभीर-वस्ती का वाचक घोष जाति महत् और स्थिर पदार्थ का प्रोचक है, बल-प्राग के वाचक गगा पद के साथ आगे के रूप में अविन है पर यह आगागधेय सम्बन्ध बनता नहीं। क्योंकि जल की धारा में घोष के अतिक्रमण की वाच्यता नहीं है। अत आगाग के रूप में इसके अर्थ में गगा शब्द में अन्तर्मा विभक्ति आदि है, घोष के साथ गगा का अन्वय नहीं होता। तात्पर्यानुपपत्ति कहा जाती है जहां शब्दों का परस्पर अन्वय तो हो जाय पर वचना का तात्पर्य ही प्रतीत न हो। जैसे—काकेभ्यो दधि रक्षयाम्। इस वाक्य में विभक्ति आदि का दृष्टि में दो पदों का अन्वय

१ सृष्टे प्रयोजनाद् वाच्यो लक्षणा शक्तिरपिता। —साद २, ५

२ गट्गाया घोष इत्यादी च गट्गादीना घोषादिकरणतासम्भवात् मुख्यायस्य वाच्य। —मम्मट—शब्दाधि० २

३ वाक्य-सम्बन्धो लक्षणा। तस्याश्चाथोपस्थापकत्वे मुख्यायतावन्नेदके तात्पर्य-विषयान्वयितावच्छेदकताया अभावात् न तन्मूल्य शक्यतावच्छेदक-रूपेण लक्ष्यमाणस्य ग्भीवागतम्। किन्तु तात्पर्यविषयान्वये मुख्यायतावन्नेदक-रूपेण मूल्यायप्रतिबोधिकताया अभावात् सृष्टि-प्रयोजनपारयतरत्वं तन्मूल्य।

—राय (निस) ५ १४५

श्रीक है पर वक्ता का तात्पर्य मात्र शब्द से वाँचे मात्र वा बोध होने में सिद्ध नहीं होता। यदि वही किसी पात्र में टपता हुआ हो तो वाँचे से तो सुरक्षित है ही फिर वक्ता ने पुनः एसा कहना कि क्या प्रयोजन? अब मान का अर्थ उपचार में दशरूपधानक-मात्र लिया जाता है कि कि त्रि-ती कुने और छोट बच्चे का दाढ़ भी हाँ मक्ता है।

त्रिदशमथ जाति आचार्यों ने अथवानुपपत्ति में सुरप्राथक्य माना है तो जगन्नाथ ने तात्पर्य की अनुपपत्ति में। वस्तुतः प्राचीन आचार्य अथवानुपपत्ति का चक्षण का मूत्र स्वीकार करते थे। नव्य आचार्य तात्पर्यानुपपत्ति का चरण मानते थे। दाता ही अथवानुपपत्ति में मुख्य अथ क साथ अथ अथ वा सम्बन्ध जानना अपेक्षित है। इत्यतिवक्तव्यं च साथ सम्बन्धेण ही चक्षणा कला ग्या है।^१ अथवा शक्तिन मस्त्र अथ क साथ सम्बन्धेण हाने म शब्द का अर्थवाचक हाने चक्षणा का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं।^२ पर वह गद-माय का अन्तर है।

जिन सम्बन्धों में तात्पर्य शब्द वाचक अथ म अतिशक्ति अथ वह बोध चरिता है, उन में मादृश्य भी है।^३ उस उपचार में कहते हैं^४ और देग आचार्य उता कर् की गद चक्षणा गुणा पर जागरित हाने म गौणी कहताती है।^५ पहले आचार्य गौणी का शक्ति नाम म पुनः उत के और उस चक्षणा क अन्तगत स्वीकार नहीं करते थे।

आचार्य वामन ने इस मादृश्य सम्बन्ध का चरण हुए चक्षणा-प्रयोग को बचोक्ति नाम दिया है यद्यपि नामही अन्तर्वाग के प्रसङ्ग में बचोक्ति का अन्तर स्वीकार कर चक हैं और बचोक्ति में अन्तर्वाग की उपयुग्मिता

१ शक्य-सम्बन्ध चक्षणा। एत (निम्न), पृ० १४४

२ ववा० पृ० १-

३ अन्तिममेव सामीप्ये च सान्नायिक समवायेन ।

वैरगैयान् प्रियायागा चक्षणा पञ्चरा तव ॥ वा० पृ० २८

४ उपधागः हि नामान्तरत विशकवितया शब्दयो (पदार्थयो) मादृश्यानि गद-महिम्ना भद-प्रतीतिस्वगतमात्रम् । मादृ० २ (पृ० ३७)

५ नु० गदत—मादृश्य न सम्बन्धेन ह्यति गौणी चक्षणाती सिन्ना ।

विहित-शी-वायस्यैव सम्बन्धात् । वृवा० पृ० १८

६ वा० प्र० वा० पृ० १७

७ मादृश्या चक्षणा चकोक्ति ।

कालमू० ६, ३, ८

८ संपा सर्वत्र चकोक्तिरन्तर्वागौ विभाव्यत ।

यन्तोऽप्या वदित्वा वाय उक्तवत्वात्तया विना ॥ भाषा० २ ८४

भी दण्डी ने मानी थी^१ तथापि वामन ने जिस तात्पर्य में बनाकित शब्द का प्रयोग किया था, उधर भासक की दृष्टि में नहीं थी। कारण यह है कि तथाका के मूढा और प्रयाजनवती इन दो रूपों में मूढा की जयजयन्त्रिका की दृष्टि में कोई उपयुक्ति नहीं है। परन्तु प्रयोजनवती तथाका इस दृष्टि में महत्वपूर्ण है। अतः ही वामन के समय में ध्वनि-मिथ्यात्व में ही पर छोड़ित अर्थ की भावना अवश्य थी, ऐसा सूचन अरुगमन आदि प्रयोगों में भासक आदि के ग्रन्थ में मिलान में माना जा सकता है। अतिमिथ्यात्व के अनुसार प्रयाजन व्यय होता है। साक्षात्क प्रयोग करने में इस प्रकार का अतिरिक्त अर्थ प्रतीत होता है, यह तो य आचार्य भी मानते ही थे। जिस प्रकार ऊपर उदाहृत "दीपधवा" का ही प्रयोग हम ताकते हैं।

तथाका के अनन्तर तीसरी शब्द शक्ति जा कि ध्वत्थ जय का बोध कराती है, व्यञ्जना नहीं जाती है। 'व्यञ्जन प्रनाशयत्प्रान्त्या' इस व्युत्पत्ति में यह वृत्ति एव अर्थ ही वाच्य कराती है जो स्वतः किसी शब्द का नहीं होता। जैसे दीपधवा का वाच्य अर्थ यथा हुआ तथा अर्थ यथा ही जाते नाशमय हुआ, व्यर्थ जय इत्यादि नाममय जाना कि समझाने में भी समझाने में। यह तीसरा अर्थ स्वतः वाच्य नहीं है। जिस प्रकार दापक अपने प्रकार में धरे को बनाता नहीं बल्कि पहल में विद्यमान, पर दिशादि में दान हुए उसको दिखा देता है, इसी प्रकार व्यञ्जना पहल में विद्यमान, पर अर्थप्रतीति न होने हुए अर्थ का बोध कराता है।

एवं सवमान्य मिथ्यात्व यह है कि जैसे एक चार्नी एक बार छूटने के पश्चात् दुबारा नहीं चल सकती, उसी प्रकार शब्दाद्य का वाच्य कराने वाले में व्यापार एक स्थान में एक बार काम करके दुबारा काम नहीं जा सकते।^२ तात्पर्य यह है कि एक ही शब्द में भिन्न भिन्न अर्थ निकालने के लिए वाग्धार वह शब्दशक्ति काम नहीं आ सकती। या तो एक बार में ही वह कई अर्थों का भान करा देगी। अतः एक बार यदि विरत हो गई तो उसी स्थान पर पुनः प्रयुक्त न होगी। तथापि धारण में अभिज्ञ एवात्ता अर्थ उक्त-प्रकार बताकर

१ अनेप सर्वान् पुष्पांस्तं प्रायो वक्रोक्तिपू श्रियम् । — का० ६० २ ३६३

२ (क) यत्रोक्तं गम्यत्प्रान्त्याव्यस्तन्ममानविशेषण । अत्रा० २, ७६

(ख) यथाकथञ्चित्तं मादृशं यत्रोदभूतं प्रतीयात् । का० ६० २, १४

(ग) स्वावस्था सूचयन्त्येव कान्त-पारा निपिष्यते ॥ वही २, १४२

(घ) शब्दशक्ति स्वभावेन यत्र तिन्देवगम्यते । कालग० ४ ६

३ शब्दवृद्धिकर्मणा विरम्य व्यापाराभाव । का० प्रदीप २०६, सादि० २

शान्त हो जाती है। लक्षणा भामीष्य सम्बन्ध क आधार पर गगा शब्द में गगातट रूप अथ का ज्ञान करा जाता है। परन्तु वह भी इतना काम कर चुकत क पश्चात् विरत हो जाता है। जाग मध्याथवाग्र आदि शर्तें पूरी न हान में उसक त्रिग पुन अवकाश नहीं है। किन्तु एक उत्सुकता तो बनी ही रहता है कि वक्रता न क्या मात्र कर गगान्त घाप न कहकर गगाया घाप एसा प्रयोग किया। उसका तात्पर्य यदि गगान्त म था तो माया उसका ही प्रयोग कर देता। जबश्च उसका अभिप्राय और था जा कि गगान्त घाप कहत में सिद्ध नहीं हाता। कारण यह है कि तट वहन व्यापन हाता है। गगा म दूर यदि घाप का स्थिति हो तो गगरा न बड़ा जैग टानन न क्या लाभ? पजरा का जद जादि पिलान क त्रिग दूर म जाना पगा। यदि घाप शब्द का जद बापटी न तो उसम रन बाल सापु का दूर किनार पर रहन का क्या लाभ? न बहा गगा की तहरा म शीतन पवन मुक्त हागा और न पवित्रता। सीमा गगा शब्द का प्रयोग करत म घाप की गगा न सर्वथा निकट स्थिति सूचित हाता है। सम सापु का नहान जादि और एकान्त न मुद्रिया जादि सूचित हाती है। उमी बात का 'दीघश्रवा क सम्बन्ध म कहा जा सकता है। जगन्नाथ न जन्त प्रतिद्वंदा अप्ययदाक्षित क त्रिग उस शब्द का प्रयोग किया है। यजम्वा अथ म तो वह प्रयोग नहीं कर सकता था। फिर उसन द्वा शब्द का क्या चना गगा जैग शब्द का प्रयोग ना तो कर सकता था पर उसका प्रयोग करत म चम कर है। एम विद्वान का प्रत्यक्ष म गगा शब्द म गाना देना अनुचित प्रतीत हाता। अत यह शब्द चना। कवल समसदार राग ही हमका गगा रूप अथ समचन है। लक्षणा म अत्र निकला 'गद्ये क ममान नासमस'। व्यस्य अत्र हागा कि नाम तो इतना बरा है कि बडे भारी पण्डित है पर इतनी सा बात भी नहीं समच सकत कि हमर का दाता म जा गर। उम

१ नाडभिघ्रा समयाभावाद् हत्वभावान्न लक्षणा ।

उद्य न मुख्य नाप्यत्र बाधा याग पन्न ना ।

न प्रयाजनमर्त्तमिन न च शब्द रक्ष'दगति ॥

—का० प्र० का० २, १५-१६

२ तद रुक्म । रूपक च विम्बप्रतिविम्ब-भावा नास्ति इति कनाश्यान् कारिकम्मन्यन प्रचारितस्य दाक्षश्रवम उक्तिरथद्वयैव । रग० २३६ (तु० रूपक तु न क्वचिदपि विम्बप्रतिविम्बभावापन्नधमविशिष्टतया विषय-विषयिणारूपादानम् ।

चि० भी० १७२)

प्रकार अप्ययदीक्षित का उपहास व्यंग्य है। यह कार्य गद्या शब्द का प्रयोग करने से सिद्ध नहीं होता।

यह व्यञ्जनावृत्ति मुख्यत दो प्रकार की है, एक अभिधामूला, दूसरी लक्षणामूला^१। जब वाक्यांश के बाध के तुरन्त बाद व्यंग्य अर्थ का बोध होता है तब अभिधामूलाव्यञ्जना प्रयोग में आती है। पर जब अभिधा और लक्षणा के परस्पर उसका व्यापार होता है तब लक्षणामूला कहलाती है। वे शब्द पर आश्रित होती है। क्योंकि शब्द का परिवर्तन करने पर उसकी अनन्वयव्यञ्जन की शक्ति जाती रहती है। जैसे गंगा या दीघशब्दा शब्द को बदलने में।

यहां अभिधामूला व्यञ्जना भी गद्य और अर्थ पर आश्रित दो प्रकार की होती है। उनमें पहली का स्वर अनन्वयक शब्दा का प्रयोग है। मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों के मत में जब अभिधा मयागादिक द्वारा एक नियत अर्थ का बोध करने विश्रान्त हो जाती है, तब अत्र अर्थ का गद्य व्यञ्जना में होता है^२। यहां अर्थान्तर-बोध एक या अनेक परिवृत्त्यमय शब्दों के प्रयोग पर निर्भर होने में यह आन्दी व्यञ्जना कहलाती है। इनकी मान्यता यह है कि जब अभिधा एक शब्द में एक मात्र अर्थों का वाद्य करती है तब सभी अर्थों के प्रस्तुत होने में श्लेष अलंकार होता है। किन्तु जब अभिधा क्वचन एक अर्थ का ज्ञान करा कर विश्रान्त हो जाये तब अप्रस्तुत अर्थ का बोध व्यञ्जना में हुआ करता है^३। पर अप्ययदीक्षित जैसे आचार्य इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते। वे प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही अर्थों में एक शब्द में बोध में श्लेष अलंकार मानते हैं। उनका विचार में प्रवर्णादि में अनेकाशक शब्द के अर्थ में अभिधा का नियमन होने से इतना ही अंतर पड़ता है कि पहले जैदिक प्रसिद्ध अर्थ की प्रतीति होती है बाद में अप्रसिद्ध की। पुन साथ में प्रयुक्त दूसरे शब्द के सामान्य के कारण भी अत्र अर्थ का बोध हो जाता है। उनमें भी अर्थ का निर्णय होता है।^४ जैसे—माध के 'हर हिरण्वाक्ष पुर सरामुरद्विपद्विप' आदि पद्य में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में हान में "हर" पद का पहले श्रीकृष्ण

१ माद० २, १३

२ का० प्रका० २ १६

३ यथाभयोरर्थयोरनात्म्य म श्लेष । यत्र त्वेकस्मिन्नेव तत्-सामग्रीमहिम्ना तु द्वितीया प्रतीति सा व्यञ्जनति । बही, पृ० २, ७०

४ वृदा० पृ० १२

५ करोति कमादिमहीभूता यथाञ्जना मृगाणांमिव यन्तव स्तवम् ।

हरे हिरण्वाक्षपुर सरामुरद्विपद्विप प्रत्युत सा तिरस्त्रिया ॥

या विष्णु रूप अर्थ बोधित होगा। पुनः अगले ममस्त पद में द्विप शब्द का प्रयोग होने में उसके सानिध्य के कारण 'हरे' का सिंह अर्थ भी बोधित होता है। क्योंकि विष्णु या श्रीकृष्ण का द्वेष्य हाथी न होकर हिरण्याक्ष जादि दैत्य है, अतः सिंह अर्थ की प्रतीति के अभाव में द्विप शब्द का प्रयोग ही व्यर्थ सिद्ध होगा। फलस्वरूप यहाँ हरि शब्द श्रीकृष्ण एवं सिंह दोनों अर्थों का वाचक होने में शक्य अलङ्कार ही बनता है। मयोगादि में विभेजिता को भी अभिधा का नियामक गिनाया गया है। सिंह और द्विप का परस्पर विरोध होने से यहाँ हरे पद में सिंह का अर्थ वाध्य होगा। जहाँ इस प्रकार का अभिधा का नियामक नहीं होता, वहाँ भी शब्द प्रस्तुत अर्थ का बोध कराने के पश्चात् स्वभावतः अन्य सभ्य या असभ्य अर्थ में प्रवृत्त होगा ही। नैम—“यस्यानन यानिरुदारवाचाम” में विवक्षिताय स्त्री योनि शब्द का प्रभव या स्नात-रूप है परन्तु साथ में मग रूप असभ्य अर्थ का बोधक होने में दुर्गम का बोध भी होता ही है। ऐसे सभी स्थानों में व्यञ्जना नहीं मानी जा सकती। उनमें अनुसार प्रकरण और अप्रकरण में बाध्य दो अर्थों के एक शब्द में बोधित होने के स्थल में उपमादि अलङ्कार ही व्यर्थ होता है। क्योंकि अभिधा यदि शक्ति है अर्थान् उममें अर्थ-बोधन की सामर्थ्य है ना वह निरिचन ही अप्रस्तुत अर्थ का भी बोध करायेगी। उसका कोई रोक नहीं सकता। याद वह शक्ति नहीं है तो अर्थान्तर को भी बंधे बोधित करेगी।^१ एवं जहाँ भी अश्लीलता-सदृश वाप्य प्रतीत होता है वहाँ यदि वक्ता का तात्पर्य उम्नी अर्थ में है नहीं उसका बोध होगा अथवा नहीं। उदाहरण के लिए—

करिहस्तेन सवाम्थे प्रविश्यात्तद्विलोडिते ।

उपसर्पन् ध्वजं पुंससाधनात्तविराजते ।^२

इस पद्य में यदि वक्ता का तात्पर्य वाम-शास्त्रीय विषय में है, तब तो इसे अश्लील अर्थ का बोधक समझा जायेगा। पर यदि रण-विद्या (Military Science) में सम्बद्ध अर्थ ही उसका विवक्षित है ना अश्लील अर्थ का प्रतीति कैसे होगी? इसी प्रकार “या भवतः प्रिया” “वनिता गुह्यकेशाना”^३ इन पदों में कवि का

१ रग पृ० १३

२ वही, पृ० १३

३ का० प्र० का० पृ० ३५५

४ विद्यामभ्यस्यतो राजावेति या भवतः प्रिया ।

वनिता गुह्यकेशाना कथं ते पेलवन्धनम् ॥

चित्रित तापर्यं “या भवा त्रिया” और ‘गुहाक + ईश” इस अथ से है। अभिधा के इसमें नियमित होने पर अन्य अर्थ का बोध कैसे होगा ?

पण्डितराज जगन्नाथ भी इसी मत से पक्षपाती हैं। उनका तर्क भी यही है कि जैसे मणि आदि वृत्त प्रतिबन्ध के बिना अग्नि सन्नि-रूप में आई प्रत्येक वस्तु का दाहक होना है, उसी प्रकार अभिधा प्रवृत्त और अप्रवृत्त दोनों प्रकार के अर्थों का बोध करती है। उनकी दृष्टि में शब्द-शक्तिमूल ध्वनि के स्थान में हागी वृत्त कि अभिधा-प्रतिपादित अर्थ सङ्घिवाच्य होगा। “रटियोगाद्वचनीयमी” इस सिद्धांत के अनुसार अभिधाव्यापार रट अथ न नियन्त्रित होने के पश्चात् यौगिक अथ का बोध नहीं कर सकता। अतः उस स्थिति में उनका वाच्य कर्ता व लिंग व्यञ्जना का ही आश्रय लेना होगा। जैसे—

जबलाना श्रिय ह्रस्वा वारिवाहै सहातिशम ।

रमन्ते चपला यत्र स काल सधुपस्थित १ ॥

यहां अन्त में ‘श्री ‘वारिवाह’ और ‘चपला’ स्त्री एव दुःख, सुदरता और प्रेम, मेघ और पानी देने वाले कहार, रिजली और स्वर्णिनी स्त्रिया इत दा-दा अर्थों के वाचक हैं। अन्त में श्री अथ स श्री सुदरता में, वारिवाह शब्द मेघ स और चपला शब्द विद्युत् में रट है। यौगिक अथ को प्रमाण लेने पर ता वह विशेषण रूप होगा और “विशेष्य नाभिधा गच्छेन् क्षीणशक्तिविशेषणे” इस सिद्धांत के अनुसार अभिधा का नियन्त्रण उसी में होगा। पर प्रसङ्ग बार रटि के कारण मेघ आदि रूप अथ ही प्रधान ज्ञात है। फलतः यौगिक अथ का वाच्य व्यञ्जना में ही हो सकता है। जहां रटि और यौगिक का प्रश्न न हो एव वक्ता का नान्यथ दोनों अर्थों में हा, वे अभिधा के ही विषय होंगे। जैसे—

“सुरभिमास भक्षयत्वायुत्”

यह वाक्य किसी साले या मानी के द्वारा अपने बहनाई के लिए परिहास में कहा गया है। यदि अभिधेय अथ केवल “सुगन्धित मास” ही लिया जाय तो अभीष्ट परिहास की सिद्धि नहीं होगी। अतः गोमास-भक्षण रूप प्रतीयमान अर्थ भी वाच्य ही है, व्यर्थ नहीं। वस्तुतः परिहास के लिए पहर यह दुमरा अर्थ ही प्रतीत होगा पर धम-निपिद्ध हज में दसकी स्थिति आपातमात्र है, वाक्यविधान्त तो हमरे में ही हानी है।

१ रमगट्-शाधार पृ० ११३

२ वही, पृ० ११६

यहां एक बात स्पष्ट कर देनी अपक्षिप्त है। जनेकार्य-वाद्य न म्यन मे प्रवरणादि म अभिप्रा का नियन्त्रण और अप्रकृत अथ का शब्द शक्तिमून ध्वनि म वोप्र यह वाद आचार्य मम्मट न ही मवप्रथम वाक्यपदीय न जाप्रार परे प्रस्तुत किया था और उन विश्वनाथ आदि न भी अपनाया। अभिनव गुप्त न नाचन म इसकी विवेचना पहले ही कर दी थी। अप्पथदीक्षित वाला मत भी उद्धान दिखला दिया है। किन्तु^१ ध्वन्यालोक म ध्वनि का यह भेद कही प्रतिपादित नहीं है। आनन्दबद्धन एसी स्थिति म जलझार ध्वनि ही स्वीकार करते हैं^२। मम्मट एव विश्वनाथ न अनन उदाहरणा 'भद्रामना'^३ आदि एव दुर्गालघितविग्रह^४ म पयचमान न उमानझार का व्यट्ग्य हाना स्वीकार किया है। उसम पूर्व मध्यस्थिति म शब्दशक्तिमून वस्तु ध्वनि ही

१ द्रष्टव्य वाप० २ २८० २ ३१६ २ २८१ २ ३०३ २ ३०६ ३०७

२ ना० पृ० २३८-३६

३ आश्रित एवानुड कार शब्द शक्त्या प्रकाशत ।

यस्मिन्ननुक्त शब्देन शब्दशक्त्याद भवा हि स ॥ —ध्वया०, २, १

यस्मादेतत् कारा न वस्तुमान यस्मिन् काव्य शब्दशक्त्या प्रकाशत स शब्दशक्त्युद्भवो ध्वनिरित्यस्मात् विवक्षितम् । वस्तुद्वय न शब्दाक्या प्रकाशमान इत्ये । —वही पृ० २३५

४ भद्रात्मना दुर्गराहतनाविशालवसानत कृतशिलीमुख-मग्रहस्य ।

यस्यानुपप्लवगत परिवारणस्य दानाम्बुसक मुभग मलत कराऽभूत् ॥

—ना०प्र० का० २, १२ (उदा०)

५ दुर्गालघित विग्रहा मनमिज नमीनयस्तजसा

प्राचदरा शकना गृहीतगरिमा विष्वम्बूता भागिभि ।

नभत्रै शकृतक्षणो गिरि गुणै गाढा र्चि प्रारयत

गामानस्य विमूर्तिभूपित तनू गानत्युमावल्लभ ॥ —साद० २, ४३

६ प्रकृत भद्रात्मन इत्यत्राक्त विशाषण-विशिष्ट-हृस्तिप्रतीतो द्वयारथया—

(क) मियाऽसम्बद्धत्वे वाक्य भेदापनैरुपमावृत्तास्वादानुभवाच्चनन सह राजउपमाया अपि प्रतानरित्यथ । —उदा० ६६

(ख) अत्र प्राकरिणकम्पानानाम महादेवो बल्लभ भानुदेवतामनूपनवर्णने द्वितीयाथ-सूचितमप्राकरिणकस्य पावतीवल्लभस्य वर्णनमसम्बद्ध मा प्रमाङ्क्षीदिताश्वर भानुदेवयारुपमानापनयभाब कल्प्यत ।

—साद० ४ पृ० १३४

मानी है। इसने प्रतीत होता है कि अभिनवगुप्त के समय में भी ये तीनों मत विद्यमान थे।^१

अप्य दीक्षित ने इस प्रसङ्ग में नैयायिकों का मत भी उद्धृत किया है। उनके अनुसार यदि अथ लोक में पर्याप्त प्रसिद्ध हो तो प्रकरणादि ने चिन्ता भी उमरी स्मृति हो ही चायगी।^२ जैसे भुभग आदि शब्दों में भग शब्द के अन्य अर्थ की। परन्तु वह लाक्षप्रसिद्ध एवं शिष्ट समाजसम्मत अन्य अर्थ में टक जाता है और 'भगिनी' 'भगवती' 'वीयवान्' 'गिषतिङ्ग' मद्गुण शब्दों में किसी अश्लीलता या कुल्या की प्रतीति नहीं होती।^३ शास्त्र विशेष में विशिष्ट अर्थ में शब्द होने में भी जरूरीनादि दोष नहीं माने जाते। जैसे-न्यायशास्त्र में तिङ्ग-परामर्श, व्यभिचार मद्गुण शब्द सामान्य रूप में व्यवहृत होने हैं। तभी किसी ने लाक्षिकों पर पत्रती कमी थी—

परामुशतो लिङ्गानि व्यभिचार-परायणानि ।
सार्क्षिका यदि विद्वांसो विदं किन्तपराध्यते ॥

यहां परिहाम के अभीष्ट होने में वह जरूरीन अर्थ भी विवक्षित है पर उमरी प्रतीति आपातमात्र होती है। अत एव स्थान में अभिज्ञा का प्रकरणादि में नियमन सम्भव नहीं है। अत नैयायिक तिङ्ग या श्नु क द्वारा नापम का निणय करत है।

आर्यों व्यञ्जना के प्रसङ्ग में वननाया गया है कि उमम व्यङ्ग्य अथ का बोध वक्ता, बोद्धव्य (जिसमें कहा जा रहा हो-मध्यम पुरुष) वाक्य प्रकरण, प्रस्ताव देग कान, जय सन्निधि, चेटा जादि की व्यक्तिगत विशेषताओं के जावार पर होना है। इस प्रसङ्ग में एक पद्य प्रत्य अधिकाज आचार्यों ने उद्धृत किया है—

१ नानाथस्यदे शब्दजकिमूलवस्तु छवनिवाद्

—विम० ५, १ १६६७-२८ पृ० ३१-४०

२ तृवा०, पृ० १५

३ मनीनस्य हि लोकेषु न दोषान्वयण क्षमम् ।

शिवलिङ्गस्य मस्थाने कस्मान्भयत्व-भावना ॥

वन्मुमाहान्म्य-गुप्तस्य पदाथस्य विभावनात् ।

भगिनी-भगवत्यादि नासम्भयत्वं भाव्यते ॥

—सर्व०, पृ० ६८-६९

४ साद०, २, १६-१७

नि शेषच्युतचन्दन स्तनतट निमृष्टरागोऽधरो
 नेत्रे दूरमनञ्जने पुष्पिता तन्वी तवेप तनु ।
 मिथ्यावादिनि दूति बाधवजनस्याजातपोडागमे
 बापों स्नातुमिती गताऽसि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ।^१

किन्ती वनप्रान्निगता नायिका ने पश्चात्ताप व पश्चान अपन ठरुराय हुए पति का मनाकर बुलान व निय दती का उसक पास भजा पर वह स्वय उसक साथ महवाम करन लौट जाई । उसका अङ्ग चष्टा देखकर नायिका मारा रहस्य समयकर भी मयक समक्ष रहम्पीद्भेद न होन देने क लिए गूढ मङ्केत म उम उपानम्भ दती है कि लक्षणा मे विदित होना है कि तू उसक पास न जाकर बावनी म स्नान करन गई थी । यह वाच्याथ औरा क लिए है पर व्यङ्ग्यार्थ है कि तू गई ता उस नीच क पास ही थी पर मेरा सदेश न इकर स्वय उसम रमण करन ।

यहाँ बताय गए दूती क लक्षण स्नान एव सम्भोग दोनों म समान ह । इसलिए दूता के व्यक्तिगत चरित्र व कारण यह अथ प्रतीत हाता है । जाचार्य मम्मट क अनुसार अधम पद का प्रयोग इस व्यङ्ग्यार्थ के बाध का आधार है ।^२ किन्तु विश्वनाथ न जारम्भ म विपरीत लक्षणा मानकर वाद म दूती म भाग रूप अथ की व्यञ्जना म प्रतीति कही है ।^३

अप्य दीक्षित आपानत इस पद्य म लक्षणा को कवल स्नान परक बतात ह, पश्चान व्यञ्जना म सम्भोग म धटित करत है ।^४ जगन्नाथ न अत्यन्त कठार गब्दो म अप्य दीक्षित का खण्ण करव मम्मट का समथन किया है । इस पद्य म वास्तव म दूती क चारित्रिक वैशिष्ट्य म यह व्यङ्ग्य अथ निकलता है ।^५

प्रकरण की विशपना म व्यग्य अथ की प्रतीति भट्ट नारायण के निम्न पद्य म होती है —

१ का० प्र० १ (उदा०) २ पृ० १५

२ अत्र तदतिक्रमेव गतासीति प्राधान्यनाधमपदेन व्यज्यते ।

—वही, पृ० १६

३ अत्र तदतिक्रमेव गतासीति लक्षणया लक्ष्यम् । तस्य च रन्तुमिति व्यङ्ग्य प्रतिपाद्य दूती-वैशिष्ट्याद बोध्यत ।

—साद०, पृ० ४१

४ चिमी० २७ २८

५ रग० पृ० १३ १४

तथाभूता दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चाततनया
 वने व्याधं सार्धं सुचिरमुधित चलकलधरं
 ि राटस्य/वसे स्थितमनुचितारम्भनिभृत
 गृह खेद खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥^१

यहां 'तथाभूता' पद सामान्यतः 'उक्त स्थिति में पड़ो' इस अर्थ का वाचक है। परन्तु जो प्रसङ्ग जना हुआ है कि तौरवा द्वारा निम्नतर जनता किये जात रहने पर भी माई युधिष्ठिर उनके विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाना चाहत और उनमें हमारी इच्छा के विरुद्ध भ्रष्टि करने पर तुले हुए हैं इनके पद में ही खून मना - साबरखरण होने के पश्चात् पाञ्चात देण व महाराज की पुत्री द्रौपदी का जो अपमान हुआ वह सब मृत हो जाता है। मम्मट के अनुसार चतुर्थ चरण में व्यङ्ग्य है।^१

तात्पर्यावृत्ति— इस प्रकार वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य इन तीनों अर्थों की बोधिकाये तीन शब्दावृत्तियाँ होती हैं। अभिहिताच्यवादी भीमासक वाक्यार्थ-बाध व लिय तात्पर्य नामक अतिरिक्त वृत्ति स्वीकार करते हैं।^२ कुच्छ नामा ने रमना नाम की वृत्ति रम भाव का ज्ञान कराने के लिये स्वीकार की थी।^३ पर अभिनव गुप्त ने उसका स्वतन्त्र सत्ता व मानन हुए व्यञ्जना वृत्ति में उसका अन्तर्भाव किया।^४ विश्वनाथ ने इस अन्तर्भाव की बात न करने हुए सबल रमना नामक वृत्ति की मान्यता की चर्चा की है।

तात्पर्य नामक वृत्ति का अस्तित्व मानने या न मानने परन्तु शब्द-व्यवहार में तात्पर्याय या वाक्यार्थ, का महत्त्व तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। जब तक वक्ता का ज्ञान स्पष्ट न हो तब तक तात्पर्य की विश्रान्ति मभव नहीं है। उदाहरण के लिये—'विय भक्षय मा चास्य गृहे भुङ्क्था' इस वाक्य में किसी

१ वेत्त०, १, ११

२ जब यदि न योग्य खेद कुरुषु तु योग्य इति तात्त्वा प्रकाशयत ।

—का० प्रका०, पृ० ७४

३ तात्पर्याख्या वृत्तिमाह पदार्थावयवोऽत ।

तात्पर्याय तदर्थ च वाक्य नद्वाऽह परे ॥ —सिद्ध., ५, २

४ रमव्यक्तौ पुनर् वृत्ति रमनाख्या पर विदुः । —वही ५, १

५ प्रतीतिरेव विजिष्टा रमना । ला० पृ० १८७ मा च रमनारूपा प्रतीति-
 हन्त्यद्ये । वाच्यवाचकयोरेतनाधिष्ठादिविभक्तौ व्यञ्जनात्मा ध्वननव्यापार
 एव । —वही पृ० १८८

का विषय खान के नियमों प्रेरित किया जा रहा है परन्तु किसी व्यक्ति के घर खान में रखा जा रहा है। वाक्य के पद परस्पर जन्वित हैं अतः मुख्यार्थार्थ भी नहीं हो सकता। किसी व्यक्ति को विषय खान के नियमों प्रेरित भी नहीं किया जा सकता। अतः विवक्षित जाणव्य इनमें स्पष्ट नहीं होता। पर शान्ता वाक्या का माय-माय रखन में वक्ता का जाणव्य यह प्रतीत होता है कि मैंने ही विषय खा खाना पर इस व्यक्ति के घर कभी न खाना। पर किसी के घर खाना खान के उद्देश्य विषय खाना कौन पसन्द करेगा और यदि वक्ता हितैषी है तो यह भी नहीं माना जा सकता कि वह अपने वधु ही विषय खान का विवक्ष्य करेगा। अतः निष्कर्ष में इसमें घर खाना विषय खान में भी वृत्त है यह वक्ता का तात्पर्य निकलता है।

विकल्प एव आहार्य ज्ञान—इस प्रकार के आगत में विद्वत्वाचक या अष्टपद वचन काव्य भाषा में बहुधा प्रयुक्त है। तैत्तिरीय आरण्यक का इस प्रकार का एक मन्दभाग पीछे उद्धृत किया जा रहा है।^१ मम ही लोक में कभी न देखे न मुनः द्रव्य का वाक्य-प्रयोग का विषय बताया जाता है। जैसे किसी न ब्रह्मा—यह वाक्य का पुत्र आशाशुभुमुम का शिरोभूषण पहन जा रहा है। सब जानते हैं कि आकाश शून्य के अनिश्चित कुछ नहीं है न वायु का पुत्र ही संभव है इसी प्रकार अत्र गन्धर्व नाक की स्थिति वाणी का विषय बनती है।^२ अब शब्दों में यह ज्ञान है जो कम ग कम शाब्दिक जगत् में ना इनकी मत्ता सिद्ध हो ही गई। इस दार्शनिक परिभाषा में अभिधेय-मत्ता के नाम में पुकारा जाता है। अब शब्द के द्वारा कथन होगा तो बुद्धि या ज्ञान का भी विषय होगा।

दार्शनिक ज्ञान का प्रथम दो प्रकार का स्वीकार किया है—यथार्थ और अयथार्थ। पुनः अयथार्थ में तीन भेद हैं—मशय-विपर्यय, तव। इनमें मशय बड़ा होता है जहाँ एक वस्तु में यथा और अयथार्थ दोनों प्रकार का समान पर अनिश्चयतामक ज्ञान है। जैसे—यह रस्मी है या मर्ष। मशेता रस्मी समर्थकर अयथार्थ भी नहीं होता पर क्याकि ५० प्रतिशत मर्ष का ज्ञान

१ का०प्रका० २१/१

२ दशा टिप्पण ६८

३ स्वप्नभावे यथा दृष्टं पश्यन्वगम यथा।

तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणं ॥ —माण्डूक्य० ३१

४ एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धानाधमप्रकारकं ज्ञानं मशयः । —तम०प्र०ख०

भी न बन उम पकड़त म भी कतराता है । विषय-विचरीत ज्ञान है जिसे भ्रम भी कहत है । जैसे रस्मी का सप भ्रमकर भाग उठे ।^१ तब म किमी बान का मिद्ध करन क लिये अविद्यमान वस्तु की कल्पना विकल्प होता है ।^२ इसका प्रबल उदाहरण तैन्त्रीय जाण्डक का उद्धरण है ।^३ अवास्तविक होने पर भी उस प्रकार क जानो की सला लोक म है । इसी श्रेणी मे आहाय ज्ञान भी है जो कि ज्ञानबून कर किया जाता है । जेम नाटक म हम नट को देखकर भी उमम रामादि की वृद्धि करत ह । राम की भूमिका में स्थित व्यक्ति सामन भीता न रहन पर भी उम सीता मानकर अनुगम आदि की चेष्टा करना है । यदि जान में अवास्तविक वस्तु का आहाय ज्ञान हो तो उममे अनुमान व्यभिचार आदि के नियम लागू नहीं होत । इसी कारण नैयायिका ने हत्वाभाम क प्रसङ्ग म आहाय ज्ञान का पृथक् रखा है ।^४

काव्य म यही आहाय ज्ञान व्यवहार म आता है । जब हम किमी के मुख की तुलना चंद्रमा या कमल म करते हैं आखा की ममता खञ्जन पक्षी मे, कापाग की मोर के चंदो मे तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम यह नहीं जानत कि यह तुलना यथाथ नहीं है । तब भी एक मे एक अदभुत चित्र की रचना करने हैं । जैम—

कचमुपरि कलापित कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमी-दु-खण्डम ।

कुवलय-पुगल ततो विलोल तिल-कुमुम तदध प्रवालमस्मात् ॥^५

इसो आहाय ज्ञान को लेकर 'सूदाम ने दखा एक अनुपम वाग' और कवीर ने "एक प्रात कह अनहोनी । दादा ने व्याही सोनी" सदश अममव कल्पनाएँ आ है । राण की कादम्बरी न त यदि कादम्बरी के भजन वा बह मव्य चित्र निरूपण किया जाय तो क्या गहा क्या ? इसी के दन पर दमयन्ती को

१ विषयया मि-याज्ञानमतदस्त्रप्रतिष्ठम् ।

—श्री.सू०पा० १, ८

२ नृ०—अविद्या अनिद्रा । भो वयम्य, सर्पो म उपरि पतित । (सप्रहस-सम) कचदण्डकाष्ठमेतत् ।

—मालवि० ८ (पृ० ८६)

३ गण्डवनानानुपानी वस्तुषु जी विकल्प ।

—श्री० सू० पा० १, ६

४ इ० टिप्पण ६१

५ नानम्बेत्यत्र ज्ञानपदस्यानाहायाप्रामाण्य ज्ञानानास्कात्स्न्य-निश्चयपरतया नादृशनिश्चयनिष्ठ यादृश-विशिष्ट-विषयकत्वमनुमिति-प्रतिब-प्रकानति-चित्रवृत्तित्वमिति अर्थाभावात् इति दिक् ।

—रामकृती पृ० ३३०

६ हाद० १० (पृ० ३२३-२४)

‘सदस-मशय-गोचरोदरी’^१ और ‘द्वयणुकादरी’^२ मद्दुश विशेषणो म सम्बन्धित किया है ।

इस प्रकार शब्द के प्रयोग में वाच्य, तक्ष्य वृत्त्य वाक्यार्थ मवना बोध होता है । कवन मगत जयं वाच शब्दो म ही नहीं, अटपट शब्दो म भी । एक वच्चे की नोनरी बोनी और शरादी या भावावेश में अग्य व्यक्ति में वचन भी अर्थ ज्ञान कराने ही हैं । तत्र अवि क शब्दो म अर्थ न निकलेगा ? यत्न तक कि इवन चेष्टा म भी विवक्षित जाणय वा बोध हाना है ।^३ इमनिय मकु आदि का भी अर्थ निर्णय म सहायक माना गया है ।^४

आइ०ए० रिचर्ड्स तथा ब्लूम फील्ड

आइ०ए० रिचर्ड्स न चार प्रकार के अर्थ बताय है—मन्स फीनिंग टान, इन्टेशन ।^५ इनमें सैम अभिधेयाय वा समानाथक है फीनिंग मनाभाव या अनुभूति का समानाथक है । टान वाक्नु का समानांतर है निमम वचना क रख का ज्ञान हावा है । इन्टेशन तात्पर्याय ही है ।

निम प्रकार प्रकरण आदि क द्वारा अर्थ निर्धारण भारतीय जाचार्यों ने स्वीकार किया है इमा प्रकार पश्चिमी विचारका न । ब्लूमफील्ड न इस त्रिपय म ज्ञा है—

If we had an accurate knowledge of every speaker's situation and that of every hearer's response—we could simply register these two facts as the meaning of any given speech utterance and neatly separate our study from all other domains of knowledge^६

काव्य विम्व से सम्बन्ध

अत्र जय एव शब्दशक्तियो म सम्बद्ध उपयुक्तं विवेचन क पञ्चान यह

१ मैच० ४ ४०

२ ‘दृग्-गार-मग-सिक्-द्वयणुकादरि त्वम ।

—वही ११ २६

३ मन् वन-कानमवस वित ज्ञावा विदग्गया । हमन्वनापिनाकूत तीनामद्म निमानितम् ।

—माद० पृ० ४५

४ नाकाश्वेष्टादिकम्य च ।

वै गट्यादयमथ या वाग्ग्यमार्थमभवा ॥

—वही, ० १६-१७

५ Practising Criticism p 181

६ गम जवप्र द्विवेदी साहित्य सिद्धान्त पृ० ४८

स्पष्ट हा जाता है कि शब्द-प्रयोग अपने मन के भावों को प्रकट करने के लिये किया जाता है। जो उन शब्दों द्वारा वाधित होता है, वह उसका अर्थ कहलाता है। शब्दगतिशा शब्दों का वह सामर्थ्य प्रदान करती है। शब्दों के परस्पर अविनत होने पर जो पूर्ण सम्बन्ध सम्बद्ध अर्थ बनता है, वहीं पूर्ण वाक्यार्थ होता है। पदाथ-बोध का तात्पर्य यही है कि वह साकार होकर श्रोता की अंतर्दृष्टि में समझ प्रत्यक्ष हो पाय। काव्यक्षेत्र में इसी प्रत्यक्षीकरण को विश्व की मजा दी जाती है। अभिप्राय वृत्ति इस विश्वनिर्माण का सबसे प्रथम उपकरण है। क्योंकि अर्थ की पहली परत उन्हीं के द्वारा खुलती है। यदि वह चमत्कारक या वैचित्र्य लिये होगा तो निश्चय ही मृतता धारण करेगा। इस गुण को लाने के लिये उन विभिन्न प्रकार में प्रकट किया जाता है। ये प्रकार-भेद ही अलङ्कार नाम में पुकारा जाता है। जैसे माघ के—

अश्लिष्ट-भूमि रसितारमुच्चैर्लोलदभुजाकारबृहत्तरङ्गम।

फेनासमान पातभापगानामसानपरस्परारिणमाशशब्द के ॥

इस श्लोक में समुद्र का एक भूमी रान में शस्त व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें दो विश्व बनते हैं। एक भूमी में गगी का जो कि भूमि पर गिरा हुआ रोग में चिन्ता रहा हो दाता शया का मोड़ता हुआ अधर उधर मार रहा हो और मुह में क्षान उगत रहा हो। दूसरा चित्र समुद्र का है, जिसमें जन की धारा तट की भूमि का छू रही है, पानी का जोर सम्मीर ध्वनि कर रहा है, बड़ी-बड़ी तरंगें उठान मार रही हैं और जलो में जगमग उठ रहे हैं। इस प्रकार यह वाक्यान्त में बना सुन्दर काव्य विश्व है।

यह मादरसमुद्र उपेक्षा अलङ्कार में बना विश्व है। एक अन्य विश्व प्यासे हाथी का है जो कि पानी पीने के लिये सूट का जोड़ता या नदी में डालता है। किन्तु पानी टपना गीतन है कि सूट को वापिस मोड़ लेता है। यह गीतार्थ है जो की चेष्टा है जिसे बिना किसी अलङ्कार के चित्रित किया गया है। जो जगमगभावोक्ति अलङ्कार या स्वीकार परत है उनके अनुसार तो यथाथ चेष्टा चित्रित करने के कारण यहाँ पर स्वभावान्ति अलङ्कार है। किन्तु कुस्तक आदि में अनुसार जो उनके स्वीकार नहीं करते, यहाँ सीधा सादा

१ शिशुपानवध ३ . २

२ स्पृजन्तु विपुल गतिमुदक द्विरद मुखम्।

अन्यत-नृपितो वन्य प्रतिमहत्तरत वरम ॥

—वारा० ३ १६ २१

३ अलङ्काररत्नाशेपा स्वभावोक्तिरलङ्कारकृति।

अलङ्कारावतया तेषां किमप्यदवगिष्यते ॥

—वगी० १, ११

पर यथार्थ चित्रण है। भोज आदि ने ता जगद्धारहीन वचन को निरनुकार दोष स्वीकार किया है।^१ परन्तु वे भी स्वभावोक्ति का मान्यता देने हैं।^२ जो प्रकृति के यथार्थ चित्रण के प्रेमी हैं, उनके लिये यह अन्यन्त आकर्षक बिना रट ग का चित्र है।

मल ही रसवादी और ध्वनि का महत्त्व देते वान्त जाचार ऐस चित्रों को जिनमें रसभाव जादि का स्पष्ट न हो, वास्तविक काव्य न माने, परन्तु विवक्षित वस्तु का यथाय रूप में प्रस्तुत करने में कवि का अभाधारण सफलता मिली है, यह ना मानता ही पड़ेगा। यहा कवि अपन पात्र क मात्प्रथम म लटस्थ भाव में प्रकृति का निरीक्षण कर रहा है। प्रकृति उद्दीपन के रूप में न होकर स्वय ही जानम्वन रूप में वर्णित हुई है। उसलिये रस भावादि की खोज ही करनी ही तो कवि की प्रकृति-विषयक रति ही मानी जा सकती है। प्रथम उदाहरण में भी काठ रस-भाव जादि व्यक्त नहीं है। कवन समुद्र विषयक कौतूहल प्रतीत होता है।

कही कही रस का स्पष्ट होने पर भी चमत्कार बान्याथ में ही प्रतीत होता है। जैम अमरक व पद्य म—

ददृष्टवेकासन तस्थिते प्रियतमे पशुवायुषेवादरा
देवस्या नयने पिधाय विहित-त्रीडानुबन्धच्छत्र ।
ईषदवजितकन्धर सपुलक प्रेमोलनमन्मानसा-
मत्तर्हासलसत्कपोल-फलका धूर्तोऽपरा चम्बति ॥^३

यहा एक नायक व साथ बैठी दो प्रेमिकाया म प्रेम वर्णित होने में श्रुत शाराभंग है परन्तु उमक चमत्कार की अपना वाच्याथ का चमत्कार ही प्रवत है। यहा प्राचीनाभिमत श्लेष गुण है जिने कि विश्वनाथ ने प्रस्तुत विचित्रतामात्र और रस की प्रतीति में त्रिव्य करने वाना माना है।^४ अत किसी जगद कार का पुट यहा नहीं है पर नायक क व्यापार की वरता अवश्य है कि वह जपनी धूनता में एक म विशेष प्रेम रखने पर भी दूसरी को रष्ट नहीं जान दता और शठ हान पर भी दक्षिण वनन का दाग करता है। अत पाठना का काव्यानन्द उमके व्यापार म अता है, रसाभाम में नहीं, यह आपह छडकर विचार करन म स्पष्ट हा जायगा।

१ बदलकार-हीन तनिगलकारमुच्यते ।

—सर्व० १ ५३

२ वनोक्तिश्च रसाक्तिश्च स्वभावाक्तिश्च वाङ्मयम् ।

—वही ५, ८

३ अमर० १६

४ श्लेषा विचित्रता मात्रम् ।

—साद० ८, १६

यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि वाक्यावधान में आकाशा, योग्यता और मन्निधि का हेतु माना गया है। प्रबन्धकाव्या में एक पद्य रूप काव्य की अपने आप में विश्रान्ति ही बात पर उसका अन्य पद्यों में सम्बन्ध का कारण मुख्य रूप से उगरी जाकाट क्षता ही है। तभी अनेक वाक्य परस्पर अट्-गाडि-ग-भाव में मिलकर महावाक्य बनते हैं। जैसे कि कहा है—

स्वायत्बोधे समाप्तानामट् गाडि गत्वविवक्षया ।
वाक्यानामेकवाक्यत्व पुन महत्य जायते ॥^१

वैयाकरण जब वाक्य में व्यापार का प्रज्ञानता दते हैं तो क्रिया के अर्थ बिना वाक्य ही विश्रान्ति ही न हो पायेगी। उसका अभाव में वाक्य अपूर्ण रहेगा और उसका कार्य जाद्व वाक्य न होगा। यह शब्द वाक्य ही विम्व प्रस्तुत करता है। इस कारण काव्य जाम्बिया न काव्य में क्रिया व दो या दसम अत्रिक पद्यों में अविन हान की अवस्था में बुम्बक सादानितक कलापर एव बुलक इन अत्रय-गुक्क पारिभाषिक शब्दों का साम्यता ही है।^२

लक्षणा-वैशिष्ट्य—काव्य-व्यापार में विदग्धता की प्रधानता होती है। यह वक्रान्ति या वक्रता के द्वारा आती है। यहाँ तक कि वाक्यालङ्कार भी वक्रता के स्पष्ट में ही चमत्कारक या जडङ्कार बनते हैं। इस वक्रता की मात्रा अत्रिक लान के निय लक्षणा का भी व्यवहार किया जाता है। लक्षणा सदा और प्रयोजनकारी दो प्रकार की होती है। यद्यपि काव्य में कही-कही सदा लक्षणा का भी प्रयोग होता है। जैसे अप्रत्यक्ष दीक्षित द्वारा उदाहृत—

लाक्षण्यतापर भुवि प्रणय विशेषा-
ददुर्धाम्बुराशि-दुहितुस्तव तर्क्यामि ।
यत्ता विभवि वपुषा निखिलं प्रतीकै-
रन्या तु केवलमधोक्षजवक्षतैव ॥^३

इस पद्य में नावण्य जद्व सदा व रणा का उदाहरण है, परन्तु धराजनवती

१ आकाशा योग्यता मन्निधिश्च वाक्यावधाने हेतु । —नम० ४

२ साद० पृ०

३ फलव्यापारग्योधानुगम्य तु विट् स्मृता ।
फले प्रज्ञात व्यापारमिड्-जम्बु विभेषणम् । —बभूमा० २

४ छंदावच्छेदपद्य पद्य तत मुक्कत मुक्कतम् ।
कलापक चतुर्भिरव पञ्चमि कुनक स्मृतम् ॥ —साद० २, ३२३-१४

५ वृत्ता० पृ० १८

क प्रयाग म वक्षणा का विशेष चमत्कार देखन म जाना २ । विशेषकर रूपक अनन्तकार एवं जतिशयाक्ति अनन्तकार क रूप म । क्योंकि रूपक अनन्तकार मारापा वक्षणा पर जाग्रति ह जति शयाक्ति माध्यवमाना पर । इन अनन्तकार क द्वारा ता यत् काव्यविम्ब म महायत् हाता हा ह व्यङ्ग्यथाय क वाच्य म भाष्यक यागदान ३ । क्योंकि वक्षणामूला व्यञ्जना का आधार ता यत् वलि ३ । व्यङ्ग्य अथ ता सम प्रयाजन क रूप म छातिन हाता ह ३ ध्वनि क प्रयान्त-मन्त क्रमिनवाच्य और अयत्न निरस्तुत वाच्य दाना भद वक्षणा पर ता जाग्रति हाता ३ सम प्रकार प्रयाजनवती वक्षणा काव्य विम्ब निमाण म अयत्न महायत् हाता ३ । परन्तु य अनन्तकार ता गीणा वक्षणा पर माध्यमून हाता म जाग्रति ३ । शब्दा मारापा वक्षणा क भा उपाकरण मितन ह । जैसे—

आपादभाञ्जिकभारमोपमन् ग

मान दमारमरविन्दवृणासमीपम ।

अनमम स्फुरतु सततमतरात्म

नम्भाञ्ज वाचन तत्र धिन हस्ति शत्रम ॥३

इस पद्य म भगवान क अन्तगममून अर्थात् शरीर क सादर्यानिशयशाना हाल म कमनय तथा का अनन्तप्रत् विवक्षित हाता पर ता स्वय आनन्दमार अर्थात् श्रया क आनन्द बताया गया ३ । जब भगवान ता अन्तगमून ३ आर आनन्दमार भाव रूप हाता म प्रमून ह अनन्तता का मामानाधकरण्य कम तागा । क्योंकि तथयम ३— तम ताज्जिक्वणयानामाशयारभदानिरक्त सम्बन्धा अन्तुपन । अयत्न ता सम नत्रिभावक सक्ता श्रया का अभद ग मितन सम्बन्ध नया दनता । फलतः भु प्र अदाज्ज ता जान म वक्षणा करना हागा । उसक द्वारा आनन्दमार का वक्षाय हागा—अयत्तिर शान्दप्रद हाता । इस प्रकार काय कारणभाव सम्बन्ध ता श्रयना ता गत् प्राण्य आर जारापित दाना का श्रय म कथन हाता क कारण मारापा वक्षणा ३ । सादृश्य सम्बन्ध न हाता म शब्दा वक्षणा ३ । प्रयाजन ३ अन्त मुत्तर व्यक्तिनया क मौल्य म अद्भूत

१ विषयिणा त्रिनिशाणस्य विषयस्य तनव मन् तात्पर्य प्रतीतिकृत मारापा अन्तमव रूपकारकावाजम । —साद० पृ० २३

२ यस्य प्रतापिमीयानु वक्षणा समुपान्यत ।

फर शब्दकाम्यस्य व्यञ्जनानापरा क्रिया ।

आनन्द में इस आनन्द की विलक्षणता । इस प्रकार यहाँ अमूर्त आनन्दातिशय का भाव-विश्व बनता है । यहाँ कार्य-कारणभाव-भक्त हनु' जनद्वारों बनता है पर रूपक नहीं । अतः चमत्कार का मूल नक्षत्र ही है ।

व्यञ्जना के द्वारा काव्य-विश्व का निर्माण जलज रूप में होता है । उनका विस्तृत निरूपण छवि बाल परिच्छेद में किया जायगा । पहले कालिदास का "स्थिता क्षण पश्यन्तु नाटिकायाः"^१ यदि पद्य उद्भूत किया जा चुका है । उसमें बिना ही नक्षत्रों के काव्य-विश्व व्यञ्जना द्वारा बनता है । जय 'सत्चारिणी-दीपगिलेव'^२ यदि पद्य में राजाजी के वैराग्य का भाव-विश्व भी व्यञ्जना पर ही आश्रित है ।

१ अभेदेनाभिधा हेतुर्होतुमता सह ।

२ कुसु ५, २४

३ रव ६, ६८

पञ्चम परिच्छेद

ध्वनि एवं काव्य-विभव

बनोकिन एवं व्यङ्ग्य—सामान्य रूप से सभी विचारका का मन है कि काव्य की भाषा बोधोत्तम की साधारण एवं दृश्य, विज्ञान आदि की भाषा से पृथक् होती है। साहित्य की भाषा परिष्कृत, आदर्श एवं प्रभावशाली होती है। आधुनिक युग में उद्योगी और उसकी दृष्टि देखी शिल्पी आदि भागीय भाषाओं में भी मन ही मन वाद चला रहा कि काव्य या साहित्य की भाषा बड़ी होती चाहिए तो जन-साधारण के प्रयोग में आनी है किन्तु उसका जो प्रभाव रहा, उसमें सब परिचित है। स्वयं पश्चिमी साहित्य में सामाजिक प्रवृत्ति के उदय के साथ जाया भाषा का उत्तर उसका प्रमाण है। शिल्पी में पत्त, महादेवी और निराला के काव्य की नृत्ता में मैत्रीकरण गुप्त और वाद के प्रगतिवादी या प्रयोगवादी कविता के काव्य का किन्तु प्रकार का स्वागत हुआ, वह सबविधित नथ्य है, उस यथा दाहरान की आवश्यकता नहीं है। समस्त दाहमय में भी उन्हीं प्रकार दृश्य और विज्ञान की भाषा और काव्य की भाषा में पायक्य रहा है। उसका कारण क्या है ?

मन जानते हैं कि पदना के पत्थर जटिलता में वह कर घिस कर जाना नुकीलापन छोड़ जाने मटाए जा जान है। उन्हीं प्रकार शब्द नाक के वाग्यवहार में प्रियकर अपनी व्यञ्जकता खा बैठते हैं। पत्रस्वरूप के काव्य में प्रयुक्त हाकर ग्राम्य या जर्नीय मदेश दाप की मष्टि करत है। जाज का यथाप्रवादी

चुम्बन देहि मे भाये काम-चाण्डालतप्तये ।

कवि भने ही मदेश वाक्य रचना का उत्तरी समय पर मुनि चि वाता साहित्यिक और सामाजिक उस कभी भी समझ न करेगा। ऐसे शब्दों में हृदय को स्पर्श करने की सामर्थ्य नहीं रहती। जिन्हे प्रकार नकीने पत्थर में ही चुम्बन की सामर्थ्य रहती है उन्हीं प्रकार वक्रतायुक्त शब्द ही वाता या पाठक के हृदय में उतर सकता है। जब काव्य का भनावण की भाषा कहते हैं तो सामान्य

शब्द तो मानसिक भाव को प्रकट नहीं कर सकता । इसलिए किन्हीं ने कहा कि जो वक्रता में रहित वचन होता है, वह शास्त्र की वस्तु है, यही प्रयुक्त जाना है । इसके विपरीत वक्रता-पूर्ण वचन काव्य की सृष्टि करत है ।^१

भाज न गाम्भीर्य नामक गुण स्वीकार करते हुए उमका स्वरूप ध्वनिमत्ता बताया है ।^२ वान म्हाट न, जो वचन कुछ गहराई लिए होगा, वह सामान्य जन के वचन की अपेक्षा कुछ भाव छिपाने होगा । सार-पूर्ण वचन वही जाना है जो छोटे शब्दों में बहुत कुछ आनन्द प्रकट कर सके । यह वक्रता-पूर्ण वचन में ही जाना है । एज्जा पाउण्ड ने जो व्यय न शब्दों का प्रयोग न करने का निर्देश दिया था,^३ उमका तात्पर्य यही है । जब वक्रता का लक्षण मुख्यव्यवहार जाता है, वक्रता का अर्थ मृत हो जाता है । उदाहरण के लिए व्यय न जाने वाली औपदेश के लिए रामायण रहना उमक गहरा प्रभाव को व्यक्त करता है । इसी

अहो, अभिजातो वसतः ।

प्रकार इस उक्ति को दिया जा सकता है । अभिजात शब्द का सामान्य अर्थ कुलीन है । परन्तु वसन्त के सम्बन्ध में यह बात अटपटी लगती है । यदि इन शब्द-प्रयोग को पीछे छोड़ा जाय तो उक्ति सगत लगती । उच्च अभिजात वाले व्यक्ति में आशा की जाती है कि वह सत्का अनुभूत ही सुन्दर सुशील है । इस प्रकार इसमें वसन्त ऋतु की सब-हृदय-हारिता, पुष्प आदि में आकर्षकता, गीतन शब्द में सुगन्धित पवन में सुखदता अभिव्यञ्जित होती है । इन शब्दों का प्रयोग न करना अभिजात शब्द का यह प्रयोग प्रतीकात्मक है और गहरी भूमिका लिये हुए है । इसी प्रकार कुमारसम्भव में पावती के लिए "अभिजातवाचि" विशेषण लाक्षणिक वक्रता लिए है । बाणी के लिए अभिजात शब्द केवल स्वर मातृय नहीं, सवानुभूत प्रिय एवं निश्चिन्ता-पूर्ण वचन की वञ्चना करता है ।

मतोभावा का लक्ष्य शब्दों में कह, उनका बोध श्रोता का नहीं हो सकता ।

१ यत्तु वक्र वच शास्त्रे लोके तु वच एव तत् ।

वक्र यदनुरागादौ तत्र काव्यमिति धृति ॥ रद०, पृ० ३५

२ ध्वनिमत्ता तु गाम्भीर्यम् । मम० १, ७३

३ Twentieth Century Literary Criticism p 60

४ मालत्रि० ३

५ स्वरण तस्याममृतसुताया प्रजल्पितायामभिजातवाचि । कुम० १, ११

परन्तु व्यञ्जक शब्द उनका बाध कर देता है। जैसे— रामाऽस्मि मव मह^१ ।
 में 'राम' पद इनवासादि दुःख सहस्र महिष्यत्व का भाव व्यक्त करता है ।
 'रामस्य बाहुरस्मि' इत्येवमत्र मरुत शब्द रामस्यैव का जिन महत्ता का
 अभिव्यक्ति करता है वह दूसरे शब्दों से सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार
 नौकरी के लिए श्ववन्ति शब्द वृत्त के साथ जुड़ा दीनता जुगुप्सा कुत्सा
 आदि सभी भावनाओं का समक साथ जा देता है। जिसके कारण सामाजिक
 अपमान नित्य दुःखता का अनुभव आर मन्त्रिण मन्त्रों की गतिता का भाव
 ध्वनित होना है ।

रविमह प्रान्त सौभाग्यस्तुपागवृत मण्डल ।

निश्वासान्ध इवादाशश्चधन्द्रमा न प्रकाशत ॥

जयन्त निरम्बृतवाच्य श्रुति के इस उदाहरण में दर्शन के लिए प्रयुक्त
 'र' शब्द उपहृत दृष्टि का वाचक मान में दर्शन में मग्न न शान्त आ
 मातृत्व और प्रतिविम्बाप्रतिबिम्ब में मन्त्र काले शक्ति दौर्भाग्य विच्छायाता आदि
 की व्यञ्जना करता है ।^५

ता चावश्य दिवसगणनात्परामेकपत्नी

मव्यापनामविहतगतिरक्षसे भ्रातृजायाम ॥^६

इस श्लोक में प्रथम पद व्यञ्जक है । जैसे दिवसगणनात्परामेक
 प्रताप और विनाय का साधन सूचित करता है । 'एकपत्नाम' यत्किना प
 पतिव्रत और इमन्त्रिण उसकी अनुरागाइता एवं चिन्तनायता की व्यञ्जना
 करता है । अव्यापनाम यन का अव्ययता का ध्वनित करता है तो
 अविहतगति शत का भाव सूचित करना है कि इस उद्देश्य के लिए माग में
 निरन्तर चलना पड़ेगा । विरम्ब कर लिया तो भाग है यन और दौड़ धूम
 व्यथ चल जायेंगे । भ्रातृजायाम पद मध्य और यत्किना का परस्पर सम्बन्ध
 जाटना है जिसमें ध्वनित होना है कि जयना भाभी का प्राण बचाने के लिए

१ का० प्रका० (३०) ११३

२ उच० ५

३ वारा० ३ १३ १६

४ अ-प्रशब्दाञ्ज पदाधस्फटीकरणान्कन्त्र नष्टदृष्टिगत निमित्तीकृयादर्श
 नक्षत्रयो प्रतिपादयति असाधारण विच्छायात्वादिधर्मजातममथ्य प्रमाजन
 व्यनक्ति ।

—सो०, पृ० १७२

५ मद्रू० १, १०

तुम्हें यह करना ही चाहिए। यह किसी दूसरे का कार्य न होकर अपना ही नाम है। इसलिए इसकी अपेक्षा करनी उचित नहीं है। “ब्रधने” क्रिया तत्परिचय की करणीयता से उसके लिए कौतूहल की सृष्टि करती है। इसमें भाव भरा है कि देवर और भाभी का वैसे मधुर सम्बन्ध होता है, इसका ध्यान करो। प्रत्येक देवर अपनी भाभी को देखना चाहता है, उसमें परिचय के लिए कौतूहल रखता है। पुनः जब यह भाभी है तो उसके पास जाने में राङ्कोच वैसे ? तुम कोई गैर तो नहीं हो। आदि आदि भाव इन वा पङ्क्तियों में कूट-कूटकर भरे हैं। इस गम्भीर भाव की अभिव्यञ्जना उपयुक्त शब्द-चयन का परिणाम है।

आचार्य मुक्तक का वक्रोक्ति-सिद्धांत इस अभिव्यक्ति को मध्य करके ही खला था। पर्याय वक्रता और उपधार-वक्रता का विवेचन यही सूचित करता है कि घिमे पिटे शब्दों से उपयुक्त भाव-व्यञ्जना सम्भव नहीं है। जैसे—

दाहोऽम्भ प्रमृत्तिम्पच्च प्रचयदान् ब्राह्म्य प्रणालोचित
 ज्ञासा प्रेङ्खत-दीप्रदोपलतिका पाण्डिन्मि मान् वपु ।
 किञ्चा-दत्कथयामि रात्रिमखिला स्वद्वत्मघातायने
 हस्तच्छत्राविरद्धचन्द्र-महसरत्शया स्थितिवतते ॥

विरहिणी के इस सन्ताप-वर्णन में आन्तरिक दाह के लिए “अम्भ-प्रमृत्तिम्पच्च” विशेषण जिस गन्तापानिधय की अभिव्यक्ति करता है, वह सामान्य शब्दों से असम्भव है। वक्रोक्ति की इस व्यञ्जनानुकूलता का देखकर ही आनन्दवदन ने उसकी सबत्र प्राप्ति का समर्थन किया था। क्योंकि पत्रोक्ति के बिना न इस प्रकार का अवयव-कार सम्भव है न शब्दचमत्कार।

प्राचीन भाषा आदि आचार्य इस व्यञ्जना या ध्वनि के सम्बन्ध में मौन ही पर वक्रता या वक्रोक्ति का महत्त्व वे भी मुक्त कण्ठ में स्वीकार करते हैं।^१ वामन के “सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति”^२ इस वचन से लक्षणामूला व्यञ्जना का ही निर्देश है। स्पष्ट है कि इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का अलङ्कारशास्त्र में स्वागत नहीं हुआ। प्रत्युक्त विश्वनाथ ने अलङ्कारमात्र कह कर उसका उपहास कर दिया।^३

१ पर्यायवक्रत्व नाम यत्रानेकशब्दाभिधयत्वं वस्तुन किमपि पर्यायपद प्रस्तुतानुषत्वेन प्रयुज्यते । —धर्मी० पृ० २८

२ वही, पृ० २६

३ सैषा सबत्र वक्रोक्ति रनयार्थो विभाव्यते ।

—भा० का० २, ८१

४ कामूवृ० ४, ३, ४

५ माद० पृ० १६

ध्वनि-काव्य—वस्तुतः व्यङ्ग्याथ व विना न काव्य मे चमत्कार जाता है न रमानुभूति होती है। सब काव्य विम्व बँध बनेगा? आनन्दवर्द्धन न कवि का कर्त्तव्य बतनाया था कि उसे व्यङ्ग्य और तदुपयोगी शब्दा का चयन फलन करके करना चाहिए।^१ अलङ्कार योजना व लिए जो पृथक यत्न का वर्णन किया गया है वह इसके लिए नहीं है।

ध्वनि विरोधी मत—आनन्दवर्द्धन ने देखा कि उनके पूर्ववर्ती आचार्य प्रकारान्तर मे ध्वनि को मानते हुए भी उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं करते। भामह ने स्फोटवाद का अमान्य घोषित करते हुए भी व्यञ्जना का निषेध नहीं किया। एक अलङ्कार मे, सन्देह मया अरहनुति मे सर्वत्र साम्य व्यङ्ग्य रहता है। उदभट के उदाहरणो मे भी साम्य की स्पष्ट रूप मे गम्यमानता दिखाई गई है।^२ प्रतिहारेन्दुगज ने तो स्पष्ट शब्दो मे व्यञ्जना और ध्वनि की सत्ता स्वीकृत की है।^३ पर वह तो आनन्दवर्द्धन का पश्चाद्वर्ती था। इसलिये उसका ध्वनि-सिद्धान्त मे परिचित होना स्वाभाविक था। आनन्दवर्द्धन न मात्र सन्देह दूर करके इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, इसके पूर्व उन्हें प्रतिवादिया व आशेषो का उत्तर देना पडा। उनके बाद भी ध्वनिविराधियो की कमी न रही। यहा तक कि जिनके स्फोट सिद्धान्त मे सङ्केत पाकर इस ध्वनि का स्वरूप निश्चित किया था^४ व वैपाकरुण भी इसके विरोधी हो गए।^५ वेदान्ती, नैयायिक और

१ माऽथस्तद्व्यक्तिसामध्ययोगी शब्दश्च कश्चन ।

यन्तन प्रत्यभिज्ञेयो तौ शब्दाथौ महाकवे । —ध्वन्या० १, ८०

२ शपथैरपि नादय वचो न स्फाटवादिनाम । —भावा० ६ १२

३ (क) अन्तगतोरमा धर्मा यत्र तद्दीप्तक विदु । —वासाम० १, १४

(ख) शब्दशक्ति स्वभावेन यत्र निन्दव गम्यते । —वही ५ ६

४ अत एव च सहृदये यत्र वाचस्पय विवक्षितरव तत्रैव वस्त्वन्तःकार्यो प्रतीयमानयोवाच्येन सः कम-व्यवहार प्रवर्तितोऽथशक्तिमूलानुरणनस्य- व्यङ्ग्या ध्वनिरित्युक्त न तु वाचराविवक्षायामपि ।

—का० सा० मद्०, पृ० ४ ६

५ प्रथम हि विद्वामा वैपाकरणा व्याकरणमूलत्वात्मर्तविद्यानाम । न च श्रूयमाणेष वर्णेष ध्वनिरिति व्यवहरन्ति । तथैवान्यैस्तन्मतानुमागिभि मूर्तिभि काव्य नत्वाथर्दाभिर्वाच्यवाचकमभिश्च शब्दात्मा वाच्यमिति व्यपदेशया व्यञ्जकव्य-माम्याद ध्वनिरित्युक्त । — ध्वन्या० पृ० १३३ ३५

६ तु०—सङ्घविभक्त स्फाट वाक्य तदर्थं चाहु तैरप्यविथापद-पतितं सर्वेण्य-

मीमांसक सभी ने इस व्यञ्जना और ध्वनिवाद का विरोध किया। अलङ्कार मन्वस्व पर बिमिशिनी टीका के रचयिता जयरथ ने ध्वनि के विरोधी १२ मत गिनाये हैं।^१ इनमें उद्भट आदि अभिप्राय से ही व्यञ्जना का काम लेकर वाच्यालङ्कारों में ध्वनि का अन्तर्भाव करते हैं। नैयायिक लोग अनुमान से व्यङ्ग्य अर्थ का बोध मानते हैं^२ और व्यञ्जना का अनर्थाव लक्षणा में कर्तव्य है।^३ कुन्तक ने पर्यायवचना एवं उपचार-वचना में ध्वनि का अन्तर्भूत माना है।^४ मीमांसका में अनिहितान्वयवादी तात्पर्यवृत्ति में व्यङ्ग्याथ की सिद्धि स्वीकार करते हैं।^५ भट्ट ताम्रक ने भावक और भाग व्यापारा की कल्पना करते व्यञ्जना के निराकरण का प्रयत्न किया है। इनमें से कुछ का उत्तर जान-दबधन ने स्वयं दे दिया था। उत्तरवर्ती आचार्यों के आक्षेपों का उत्तर अभिनव गुप्त और मम्मट ने बड़ी दृढ़ता के साथ दिया।

व्यञ्जना का मीमांसकों की आश में ही मन्वस्व कहा विग्रह हुआ था। एकता के अभिप्राय व्यापार की जमीमित मानने से। उनका अनुमान जैसा जार में फेंका हुआ एक ही बाण एक क पश्चात् दूसरे कल्प को चीरना चला जाता है,

मनुसरणीया प्रक्रिया।

—लो०, प० ६७

एव—परिनिश्चिनिरपभ्र श-शब्द-श्रद्धाया विरिञ्चिता मनमधिष्णैव प्रश्लोश्य ध्वनिव्यवहार इति चै (तै) सङ्ग कि विरोधावितोऽपि चिन्त्येते।

—ध्वन्या०, पृ० ४४३-४

१ तात्पर्यशक्तिरभिप्राय नदायानुमिली द्विधा।

अर्थात्तत्र क्वचित्तत्र समासोक्तयत्नवृत्ति ॥

रत्नम्पकार्यता भोगो व्यापारान्तर-व्याघनम् ॥

—विर्मागिनी (नि० म०) पृ० ६ (श्री) २५

२ अनुमानऽतर्भाव सर्वस्यैव ध्वनेरप्रकाशयितम्।

—ध्वनि० १, १

३ व्यञ्जनाऽपि शक्तिनक्षणान्तर्भूता।

—तम० दी० ४

४ (क) एष एव च शब्दशक्तिमूत्रानुरणनरूपव्यङ्ग्य पदध्वनविषय बहुप चैवविप्रेषु सन्मु वाक्यध्वनेवा।

—वर्ती० २ ३६

(ख) तथा च किमपि पदार्थान्तर प्रतीयमानतया चतमि निःशय तथा-विग्रननगमाभ्यसमावय समाश्रित्य पदार्थान्तरमभिधीयमानता प्राप्स्यन्त प्रायश कत्रयो दृश्यन्त।

—वर्ती २, १४

५ तात्पर्यान्तिरेकाच्च व्यञ्जनीयस्य न ध्वनि।

—द० ४, २

६ अभिप्राय भावना चैव भोगीकरणमेव च।

अभिभा० ६, ०७७

इसी प्रकार अभिधा एक क पश्चान हूमर अथ का बोध करानी चनी जायगी^१ । परन्तु ऐसा कहत हुए व इन वान को भुना बैठे कि जब वे शक्तिग्रह को अर्थ-वाद्य का कारण मानत हैं ना जहा मद्धत क अभाव म शब्द किमी अर्थ का बोध करान म जयमथ हा वग व अभिधा का प्रयाग कैन करेगे । उदाहरण क लिए किमी न कहा कि ब्राह्मण तुम्हारे घर पुत्र हुआ है जोर तुम्हारी कन्या गभवती हा गद है । यहा पुत्रावत्ति क समाचार म ब्राह्मण का हृष का, और कन्या क अन्वन्ती हान की सूचना म विपाद की अनुमृति हागी । पाठक या श्रान्त को यह ज्ञान किसम हागा ? क्या अभिधा म या लक्षणा म ? अभिधा म ता इम-निए नहीं कह सकत कि 'पुत्रस्त जाः' इन शब्दा की हृष म शक्ति नहीं है न कन्या त गभिणी इन शब्दा का विपाद म सङ्गत हाता है । यदि शक्तिग्रह के अभाव म भी अर्थवाद्य सम्भव मानत हैं ता फिर शक्तिग्रह की अर्थवाद्य म कारणता का भाव क्या उठाये फिग्न हो ? फिर ता चाह तिन शब्द म निम किमा अथ का ज्ञान हान लगगा । यदि लक्षणा म हृष शक की अनुमृति माने तो मुख्यापवाद्य ता है हा नहीं जा लक्षणा का प्रयाग म लाये । यदि अभिधा क व्यापार का तार की भाति मानत हैं ता लक्षणा का भी मानने की क्या आवश्यकता है ? अभिधा म ही उमका प्रयाजन भी क्या नहीं मिद्ध कर लेत ?

शारदातनय और भानु न अपन जापको दाना पक्ष म रखा है । व लौकिक चाग्वापार म जिम तात्पर्य कहत हैं उम ही काव्य म ध्वनि की मज्ञा दत है^२ । उम प्रतीयमान एव ध्वनि दा भदा म द्राटन है ।^३ इम प्रकार भाज की दृष्टि म ध्वनि और तात्पर्य म तास्विक भेद नहीं है । परन्तु तात्पर्यवादिया की यह खीकतान ही है । मम्मट आदि न ना इमका उत्तर यह दिया है कि तात्पर्य का अर्थ वास्तव म यह है कि वक्ता जिनन जागय का वाप्र कराना चाहता है या शब्दा म जा कहना चाहता है उत्तर म हा उमका तात्पर्य है । जैम "दत्ता जुहानि उस वाक्य क प्रयाग म यदि यज्ञ पहन म चन रहा हा ता वक्ता का तात्पर्य दहा का आहृति तक नीमित है । यदि यन का भी विधान करना हा तो

१ माज्यमिपात्रिव दीघदाघतराभिप्रव्यापार । —वाप्रका० ४ पृ०, ४१३

२ जना "वन्वाह्य तात्पर्यनाम्पमानन्न म्वन ।

काव्य ग्मादङ्गागदिवावप्रार्थो भवति ध्रुवम् ॥

—भाप्र० ६ (पृ० १५०) ११ १२ प०

३ तात्पर्यमव वचमि ध्वनिरव काव्य । —थप्र० भा० १, पृ० ५

४ प्रतीयमानाभिप्रायमानवाक्यापानाम् आनन्त्याद् ध्वनिरूपमप्यनकप्रकारमव ।

दोनों जशों में तात्पर्य होगा। इसके अनुसार व्यंग्य अंश तक तात्पर्य वृत्ति की प्रवृत्ति ही न होगी। पुनः तात्पर्य वृत्ति का कार्य है वाक्य में भाव विभिन्न पदों का परस्पर जन्वय होने का पश्चात् निकले अर्थ का बोध कराना। इसमें आगे वह जा ही नहीं सकती।

धनञ्जय आदि का कथन है कि तात्पर्य और व्यञ्जकत्व मूलतः एक ही हैं नहीं और जहाँ तक वक्ता की विवक्षा होगी, वहाँ तक तात्पर्य का प्रसार होगा^१। यह मानने पर एक समस्या यह खड़ी होगी कि क्या जहाँ कहीं व्यंग्यार्थ का बोध होता है, सब तात्पर्य में आ जायेगा? यदि ऐसी बात है तो अनेक स्थलों में दोषों की सम्भावना ही न रहेगी। क्योंकि वाक्य में अभिव्यक्त अभिप्राय तो कवि का होता है। जो उसको अभिमत हो, वही उसका तात्पर्य मानना चाहिए। जैसे मान लिया—“विष बधय मा चाम्य गृह भुङ्क्था इम वाक्य का कण्ठ में वक्ता का तात्पर्य इतना ही है कि “विषभक्षणोदपि दुष्टम् एतद् गृहे भोजनम्” इति। तब तो जहाँ कहीं दोषों की प्रतीति होती है, व सारी कवि का अभिमत मानने लगे। जैसे “देवाद भवानी-या”^२ यथा विरद्धमनिकृत दोष माना गया है। क्योंकि भवम्य स्त्री भवानी” इस विग्रह में पार्वती का भव की पत्नी होना सिद्ध है। पुनः भवानी-पति कहकर उनका दूसरा पति होने का भाव निकलता है। यह भाव भवभूति का कभी नहीं हो सकता। तब यह कवि का भाव नहीं है तो उसे तात्पर्य में कैसे गिनेंगे और तात्पर्य की सीमा में यदि नहीं आता तो इसका ज्ञान कैसे होगा? क्योंकि अभिधा वृत्ति तो पार्वती के पति रूप अर्थ का वाक्य कर कर विरत हो गई। लक्षणा ही नहीं सकती, क्योंकि पहले तो मुख्यार्थबोध नहीं है। भवानी शब्द पावनी में रूढ़ है। यदि माने भी तो लक्ष्यार्थ क्या होगा और उनका प्रयोजन क्या होगा? इसी प्रकार पूर्वोदाहृत—“राम मन्मथशरेण”^३ आदि श्लोक में अमलपरायता दोष कैसे बनता? क्योंकि

- १ तात्पर्यान्तितरेकाञ्च व्यञ्जनीयस्य न ध्वनि ।
किमुक्त म्यादश्रुताथतात्पर्योऽप्याकिन-रुपिणि ॥
एतावत्येव विथान्तिस्तात्पर्यस्यति कि कृतम् ।
यावत् कायप्रसारित्वात् तात्पर्यं न तुला-धृतम् ॥

—दृ० ४, २-३, पृ० ०११

२ मवी० २, २८

३ अत्र भवानी-पति शब्दो भवान्या पर्यन्तरे प्रतीति करोति ।

—वा० प्रका० पृ० २६८

४ द्रष्टव्य अ० १ टि० १११

कवि न जब रूपक अलंकार बाजा है ता रूपक वाला अथ उम अभिमत ही है । तब वह अमत ता नहीं रहा । एसी अवस्था म दोष कम हुआ ? इमवे अतिरिक्त—
ससम्भ्रमेन्द्र द्रुत पातिनारंगला निमीलिताक्षीव भियाऽमरावती ।

इम पद्य म अमरावती पदकी भिया क साथ मन्वि हा जाने म 'शेष आ लज्जाजनक हाकर अश्लील दाप का बोधक हाता है । क्या कवि ने सन्धि करन जान बूझकर यह भाव प्रकट करना चाहा है आ इमम भी तात्पर्य का प्रमाण हागा ' वस्तुतः हिन्दी या मराठी जयवा इनमे मिलती जुड़ती भाषाआ को समझन और बहाने वाला सागा का ही इम अश्लील अर्थ की प्रतीति होगी । भर्तृमेष्ठ जो सम्भवतः काश्मीरी कवि थे, क मन्तिष्क म यह भावना रही हागी, यह कहना कठिन है । इमा प्रकार 'रुचिकुह' इन दो पदा को मिभाकर पढ़ने म चिट्कु' शब्द म भी अश्लील अर्थ का वाद्य हाता है, वह काश्मीरी लोग ही जान सकत हैं क्याकि यह काश्मीरी भाषा का शब्द है । कालिदास क—

चूताट कुरास्वाद कपायकण्ठ" इम प्रयाग म किभी प्राचीन आचार्य न अश्लील दोष नहीं बनाया । क्याकि आज्ञात्कुर क लिए प्रयुक्त यह शब्द संस्कृत साहित्य म भरा पडा है । आज क युग म यह शब्द ही अश्लील है और वाद्यु-निक कवि शायद ही इमका प्रयाग करगा । यही स्थिति भाज द्वारा उदाहृत 'या भवन प्रिया' और 'वनिता गुह्यवेशाना' मद्ग उदाहरण की है । इनका जय अपन जाप म अश्लील नहा है परन्तु इनमे भी "या" और "म" दोना अक्षरा का मात्र-माथ पढ़ने म ही अनभीष्ट अर्थ का वाद्य होता है । दूसर पद म भी 'गुह्यक' इतना अर्थ कोई अश्लील नहीं है । पर ईश शब्द क साथ सन्धि हा जान म उमका अर्थ ही बदल गया । वनिता क साथ समास म स्थिति और विगन गर्त । पर काट यह नहीं कह सकता कि इन कवियों की भावना वस्तुतः इन अर्थों का जान करान की थी । अच्छा मान लें कि यहा कवि की भावना कुम्भित थी और उमने जान बूझकर इसी तात्पर्य म इन शब्दों का प्रयोग किया था ता निम्नलिखित पद्य क सम्बन्ध म क्या समाधान होगा ?

तव वस्मनि वसतां शिव पुनरस्तु त्वरित समागम

अपि साधय साधयेप्सित स्मरणीया समये वय वय ॥८

१ तु० अत्र 'मरावती यश्नालम् । —का० उ० पृ० २१ (२६२६)

२ तु० कि च कुरु हृदि पदयार्थपरिण्य काव्यान्तवर्तिनि कथ दुष्टत्वम् ।

—पृ० २५

३ कुम० ३, ३०

४ सव० १ १७ (उदा०)

५ नैव० २, ६२

पण्डित समाज में अनुभूति है कि आलाचक्र-प्रवर मम्मट न नैघधीयचरित के इस श्लोक को देखकर इनमें विस्फुटमतिवृत्त दोष बताया था ; नयाकि यदि यहाँ 'वम इतन अज का पृथक् करने 'नि' इत्य अश को बदला के साथ जोड़कर पठें तो प्रमङ्ग के अनुसार मवथा अतमीष्ट या विपरीत अर्थ की प्रतीति होती है । कवि स्व-निबद्ध वक्ता नल के मुख से उमोके इष्ट-साधन के लिए जान हुण हूम की यात्रा की ममलकामना कर रहा है । तो क्या यहाँ भी कवि का तात्पर्य 'तेरे भाग में कल्याण न हो' इसमें रहा होगा ? ऐसा मानने पर निश्चय में प्रकृतार्थ की हत्या होगी ।

यदि यह भी मान ले कि यहाँ पदा को भिनाकर पढ़ने में लोगो ने यह अर्थ निकाला है और उ-ही पदों का यह अर्थ है, व्यंग्यच का यहाँ कोई प्रश्न नहीं तो शाकुन्तल ४ निम्न श्लोक की क्या स्थिति होगी —

भूयात् कुक्षोपरजोमृदुरेणुरस्याः

शान्ताभुकूलपवनश्च शिवश्च पथा १ ॥

यहाँ पतिगृह को जाने के लिए उद्यत शकुन्तला को वन-दरविया शूभाशीप दे रही है । मस्वृत्त नाहित्य में इन वाक्य में 'शिवोस्ते पन्थान सन्तु' यह वाक्य प्रयुक्त होता है । उमी को गर्भीकृत किये यह आशीर्षचन कहा गया है । किन्तु महद्दयो ने इसमें व्यङ्ग्य निकाला है कि 'अस्या पन्था एव शिव शान्ताभुकूलपवनश्च भूयात् न तु पति गृह्य' । क्या इसमें भी वक्ता का तात्पर्य मानना होगा ?

पुन मानसिक भावों की अभिव्यक्ति मीघे शब्द में कभी सम्भव नहीं है । कोई मनुष्य किसी सुन्दरी में लाख बार कहे कि मैं तुमें प्यार करता हूँ, ऐसा कहने में वह न अपन प्रेम का अनुभव करा सकेगा न सुन्दरी के मन में प्रतिक्रिया रूप में प्रेम ही जगा सकेगा । प्रत्युत यह दण्डी द्वारा उदाहृत ग्राम्य-दोष-ग्रस्त पद्य की भाँति रोप ही उत्पन्न करेगा । हाँ, आज के यथायवादी कवियों की—

गदनेनाभितप्तोऽह त्व च क्षीणा बुभुक्षया ।

एक मे चुम्बन देहि, तब दास्यामि कञ्चुकम् ३ ॥

१ शाकु० ४, ११

२ कन्य कामयमान मा न च कामयन् कथम् ।

इति ग्राम्योऽयमर्थात्मा वैरस्याय प्रकल्पत ॥

—का० द० १ ६३

३ काव्यानु० तु० ब्रह्मचर्योपतप्तोऽह त्व च क्षीणा बुभुक्षया ।

भद्रं भजस्व मा तूर्णं तव दास्याम्यह पणम् ॥ —का० तु० वि० ४२८

इस प्रकार की उक्तिया की पक्ति में अवश्य रखा जा सकता है। इसका विपरीत —

दूर मुक्तालतया विससितया विप्रलोपमानो मे ।

हस इव दन्तितादो मानसजन्मा त्वया नीत^१ ॥

इसमें महाश्वेता क प्रति पुण्टरीक की अभिव्यक्ति प्रेम आदि शब्दों का प्रयोग किय बिना भी भली प्रकार हो गई है। यह किसी भी पद का सम्बन्धित अर्थ नहीं है। उसी प्रकार—

महिनासहस्रभरिण तूह ह्रिअभ्रे सुहभ सा अमाअतो ।

अणुविणमनन्तकम्मा अट्ग अणु अ वि सिहिवेह^२ ॥

इस गाथा में नायक क प्रति नायिका का अनुराग किम शब्द का अर्थ होगा। यहाँ सीधा पुरुष और स्त्री का वृत्तान्त होना न और हृदय में प्रवेश न पा सकता है यदि निष्कप रूप में अनुराग का भाव इसका अर्थ मान भी ले तो यहाँ क्या समाधान होगा।

वेणीभूतप्रतनु-सलिला सा त्वतीतम्य सिधु

पाण्डुश्लया तटरहनवन्न सिभिर्जोर्णपयै ।

सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्तो

काश्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैपयोपाद्य^३ ॥

इसमें मेष को कहा गया है कि नर (बया ऋतु दीन जाने क कारण चल जान पग) वह निर्विघ्ना नदी जल क अभाव में क्षीण धारा धारी हो गई होगी। किनारे पर खड़े वृक्षा क पीने गील पत्ते किनारे पर बिखर पड़े होंग, जिनमें बह पीनी-पानी नग रही होगी। इस प्रकार वह नदी विरहिणीकी अवस्था में तने सौन्दर्य को प्रकट कर रही होगी। अब वह जिस प्रकार उस दुःखिता को त्याग, एसा उपाय तूने ही करना है।

यहाँ अचेतन मेष और नदी का वृत्तान्त है। सभी जानते हैं कि दृष्टि के अभाव में नदी का धारा क्षीण हो जाती है। वर्षा के कारण वह फिर से भरती है। परन्तु यहाँ सुभग सम्वादन और सौभाग्य की उपयोगिता मेष और नदी क पक्ष में क्या हो सकती है? नदी वर्षा क अभाव में सूखती है, यह तो ठीक है पर इसमें वह मेष क सौभाग्य को कैसे बतायेगी? खेती भी तो वर्षा क बिना

१ का० पृ० २६०

२ साद० १३८ पृ०

३ मद्र० १, ३०

सुख जाता है, क्या वह भी मेघ के गौभाग्य के लिए रोती है? वस्तुतः रागात्मक वृत्ति के बिना दस पद्य का तात्पर्य ही स्पष्ट नहीं हो सकता। नदी को जब हम एक बफादार प्रेमिका के रूप में देखते हैं और मेघ को प्रवासी प्रेमी के तो मारा चित्र स्पष्ट हो जाता है।

कहावत—सुन्दर सोई जो पिया मन भावे ।

यह उक्ति यद्यपि पुरुष-विषयक है परन्तु इसीका उलटकर कहा जाय कि वस्तुतः सुन्दर पुरुष वही है जिसके लिए ऐसी सुन्दरी तड़पती है। अन्यथा सुन्दरी को तड़पने की क्या आवश्यकता है?

यदि वह भी सबका ठुकरा कर किसी एक के लिए शरीर मुखानी है तो निश्चय में वह सुन्दर और भाव्यशाली होगी। इसी प्रकार "सुभग" मन्वाधन मेघ की अमाश्रयण सुन्दरता का ज्ञान करता है। इन शब्दों के प्रकाश में दोनों के अमीम अनुगम की प्रतीति होती है। चतुर्थ चरण में कवि ने विदग्ध भाषा में बहुत कुछ कह दिया है। तू वर्षा करने उमे भर देना, यह कहने में राब गुड गोबर हा जाना। सब जानन है कि विरहिणी की कृपणा की एक ही औषध है—प्रिय सङ्गम। काम जा भृष्टि का मुकुमारनम और व्यापक भाव है उमनी तृप्ति स्त्री पुरुष के मित्रन म हातीं ह। स्त्री की कामतुषा शान्त हुई और क्षीणता भी दूर हो जाती है। इसमें प्राणिक और मानसिक दोनों ही तृप्ति होती है। मानस तृप्ति के बिना आणविक तृप्ति भी दुःखलता का दूर करने में समर्थ नहीं होती। पुन चिकिन्सा-शास्त्रिया का कथन है—

असमाया जरा स्त्रीणा नराणा मीधुन जरा ।^१

इसके अनुसार निश्चिन्ता ही नायिका की कृपणा का कारण है। वह दूर होने में कृपणा भी दूर हो जाती है। पुन मेघ को कवि ने दक्षिण नायक के रूप में प्रस्तुत किया है जो कि पृथ्वी नदी, कृपक वधुए नायिके तोर वेश्याये सभी का प्रेम मन्देय प्राप्त करता और उन्हें अपना प्रेमचिन्ह (Token of Love) देना जानता है। कामुदेव शरण अग्रवान मघ को वषा रूप में देखते हैं जो कि गर्भाधान में समर्थ पुरुष के प्रतिरिक्ल कोई नहीं।^२ नारी के

१ एषु त्वनेहमहिनाममगगा दक्षिण कथित । —साद० ३, ३५

२ दाखिए, मेघदूत एक अभ्ययत पृ० ४२, वृषासि दिवो वृषभ वृषिध्या वृषा सिन्धूनाम् —श्रु० ६, ७ २०

३ तु० न हि गताऽनमक हत्यादी वाच्योऽथ क्वचिदन्यथा भवति । प्रतीयमानस्तु तत्तत्प्रकरण-वस्तु-वर्णित-वादि-विशेष-सहायतया नागात्क भजते । —वाप्रका० पृ० २२७

अनुशासक का पात्र वही पुरुष होना है जो कि उसकी कामतृप्ति कर सक। पर यह सब बातें सीधे शब्दा म काव्य म नहीं कही जाती। बहुत कुछ पाठका या श्रोताओं की समझ क लिए भी छोड़ देना चाहिए। अथवा विद्वत्प्रता की हत्या होनी है।

वाच्य और ध्वन्य में अंतर -- इतना सारा भाव क्या अभिज्ञा शक्ति क द्वारा वाग्मि होना संभव है? पुन वाच्यार्थ प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप म प्रतिबत होना है परन्तु व्यंग्याय प्रमट्ट ग आदि क द्वारा विषय भेद क कारण प्रतिव्यक्ति भिन्न हो जाता है। जैसे सूय अमृत हो गया यह वाक्य यदि किसी श्वराय हुए और स्वयं व्यक्ति क मुख म निकले तो किसी व्यक्ति की मृत्यु का भाव सूचित होगा। यदि पुजारी ने कहे क सूय अमृत हो गया तो तात्पर्य होगा कि माय काल की पूजा आरंभी तैयारी करा। किसी चोर म उसका साक्षात् यही बात कहना ता अर्थ होगा कि चोरी का मौका देखा।^१ इस प्रकार समान शब्दा म प्रतिव्यक्ति अर्थ बदल जाता है किन्तु वाच्यार्थ वही रहता है। इसीलिए किसी आचार्य ने कहा है कि पर्यायवाचन क द्वारा रुचि और वाच्य क अनुसार अर्थ बदल जाया करता है।

यह ध्वन्यध की महत्ता और उपयोगिता कानन के प्रमट्ट ग में ध्वनि विरागिणा क मता की कुछ चर्चा आ गयी है और कुछ मात्रा में उनकी निस्सारता बताई है। सम्पूर्ण मना का ध्वन्यध क नियम यहाँ पर अवलोकन नहीं है।

ऊपर का परिष्कृत म ध्वन्यध की वाच्यार्थ म अतिरिक्तता सिद्ध हो गई है। काव्य का वास्तविक चमकार इस ध्वनि क द्वारा ही जाता है। क्योंकि शब्दा म बहुत बड़ा बात कह जाना हृदय पर विशेष प्रभाव डालता है। उसमें गहराई आती है। इसीलिए आनन्दवर्द्धन ने वाचक शब्द और वाच्यार्थ क उपसर्जनानाम म ध्वनि की सत्ता स्वीकार की है।^२ उसका वाच्य अर्थ म पाठक और वैशिष्ट्य वने विस्तार म प्रतिपादित किये हैं।^३ मम्मट आदि ने भी इस विषय का विवचन किया है। यह सब सारा प्रस्तुत करना अनुसुक्ता होना।

पश्चिमी आचार्य ने भी इस ध्वन्यध की महत्ता स्वीकार की है। नाच का अभिव्यञ्जनावाद एवं क्विटरियन का जॉन जाफ क सालमेन्ट ध्वनि क

१ यत्राय शब्दा वा तमयमुसजनीकृतस्वार्थौ।

व्यञ्जन काव्य विशेष म ध्वनिरिति सूरभि कथित ॥

— ध्वन्या० १, १३

२ वही उच्यते १ पृ० ५२ म ८४ तक

जतिरिक्त कुछ नहीं है। उसी प्रकार आर्दोए^१ रिचर्डस सद्गुरु विद्वानों ने दमा-टिव मीनिंग फान्टकमटुअल मीनिंग आदि के रूप में व्यंग्य अर्थ को स्वीकार किया है।

काव्य विम्ब में ध्वनि का योग

काव्य-विम्ब के प्रथम में ध्वनि-विचार की महत्ता दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि बहुधा काव्य-विम्ब व्यंग्य अर्थ के रूप में ही जाता है। वस्तु-विम्ब के रूप में ध्वन्यर्थ का उदाहरण पीछे उद्धृत कुमारसम्भवोपनिषद् 'स्थिता अण पथममु'^२ आदि है। उसमें मगधि अवस्था में बैठे पावही का विम्ब व्यंग्यार्थ के रूप में ही आता है। रम भाव जादि के विम्ब तो अभिप्राय में बन ही नहीं सकते। वे ना बनते ही ध्वनि म हैं।

ध्वनि शब्द ध्वन् धामु^३ में बना है जिसका अर्थ शब्द बगना है। सामान्य रूप में किसी घण्ट घटियाल की आवाज या अव्यक्त जड़ को ध्वनि नाम में पुकारा जाता है। किन्तु बलि गय वण भी ध्वनि रूप ही होते हैं और तभी श्रवणेन्द्रिय-ग्राह्य होते हैं। काव्य तो है ही जड़-व्यापार का परिणाम। काव्य जब सुना जाता है तब साथ में उसका अर्थ-ग्रहण भी किया जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि श्रवणेन्द्रिय बुद्धि और मन तीनों उस ध्वनि का ग्रहण करते हैं।^४ जब बुद्धि, मन और श्रवणेन्द्रिय तीनों का संयोग शब्द में हागा तो तीनों अपने अपने विषय का ग्रहण करेंगे। बुद्धि उस शब्द में निहित अर्थ-तत्त्व का पकड़ती है श्रवणेन्द्रिय ध्वनि-मात्र को ग्रहण करती है, अर्थ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मन ध्वनि के मातृय या पारुष्य का अनुभव करता है। पर जब तीनों का संयोग हागा, अर्थ का बोध तभी हागा। जब अव्यक्त ध्वनि से किसी क्रिया का अनुकरण किया जाता है तो ध्वनिचित्र बनता है। किन्तु जब बुद्धि एव मन गमान होकर अर्थ का ग्रहण करते हैं तब अर्थ द्वारा बाधित वस्तु मूलरूप हा जाती है। अर्थशक्ति-मूल ध्वनि को अनुस्वानाम रूप भी कहा है।^५ उसका तात्पर्य है—वाक्य का अर्थ और अनुरणतात्मक (Echoing sound)

१ साभि० पृ० ४७

२ अध्या० २, टि० ४७

३ सा धा० ८१६

४ तु० आत्मा मनमा मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन । केजवमिध इत (मो० वा० प्रका० बन्नी० णु०) त भा० पृ० ७५

५ वसण प्रतिभात्प्रात्मायोऽन्वगित्त्वानसतिग ।

—ध्वन्या० २, २०

ध्वनि दोना का समन्वित रूप । इसमें अथ चित्रित विषय को मूल बनाता है और अनुरणनात्मक ध्वनि 'त्र नचित्र (sound picture) बनाता है ।^१ अंश—

उन्मञ्जज्जलकुञ्जरेद्ररभसाऽऽम्फालानुबन्धोद्धत
सर्वा पवतकन्दरोदरभुव कुचन प्रतिध्वानिनी ।
उच्चैरच्चरित ध्वनि श्रुतिपथोभाथी यथाय तथा
प्रायप्रहृ खदसत् ८२ गत् ख धवला वेलेषमुदगच्छति ॥^२

यहाँ 'द और अथ दोनों का समन्वय है । उन्मञ्जज्जलकुञ्जरेद्ररभसाऽऽम्फालानुबन्धाद्धत इसमें वृत्त पाना क और न साथ बाहर निकलन जनहस्ता के साथ पानी क मधुप की ध्वनि का अनुकरण है । सर्वा पवत' यह शीघ्र म खड हाथी क कारण पाना क फटन म हान वाना पर ध्वनि का अनुकरण है । उठत ज्वार क कारण पानी क 'छाप छाप वाप धाप फटन की ध्वनि का श्रुतिपथोभाथी यथाश्रुतथा न गद्दा म जाय लकारो म अनुवृत्त किया गया है । प्रहृ खदसख्यशश्रुधवना म आपम म टकरान और पानी म तैरत छाप वने शश्रु खर का किन किलु ध्वनि का गूज है । यह समुद्र म जात ज्वार भाग का बडा सङ्केत शब्दचित्र है निमम अथ और नादानुवृत्ति का सम्मिलित चित्र बना है । यह ध्वनि या व्यङ्ग्य रूप है । यह ध्वनि शब्द क प्रयोग म एक दल म दा पशिया का शिकार किया गया है । यह व्यङ्ग्य ग्याप का वाचक भा है और नाद का भा ।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जानन्दवधन न प्रतीयमान अथ की तुलना नारा क कन्दर म भासित हान वान लावण्य म की है जा कि उसके अन्त म पृथक् दिखाई देता है ।^३ जब शब्द और अथ काव्य क स्वरूप घटक तत्त्व स्वीकार कर लिये गये और वाच्यार्थ का वाङ्मय ही प्रतिपत्ता को उमका स्वरूप भा विम्ब रूप म दृष्टिगोचर हा गया तो अर्थ-बोध और विम्ब वाङ्मय समकारिक सिद्ध हुए परन्तु शरीर म लावण्य का वाङ्मय तो विशेष निरीक्षण क पश्चात् ही हाता है इसी प्रकार स्वयं भी वाच्यार्थ-बोध क पश्चात् ही प्रतात

१ ध्वनिश्च द्विधा अग्रध्वान शब्दध्वनिश्च ।

—Raghvan Bhoja s Srngara Prakasa p 117

२ नागा० ४ ३

३ प्रनापमान पुनर्यदव वस्त्वस्ति वाणापु महाकवीनाम् ।

यत्तत् प्रतिष्ठावयवानिरिक्त विभाति लावण्यमिवाट पनामु ॥

—ध्वया० १, ४

होगा। इनमें वाच्यार्थ और ध्वन्यर्थ के धारा में पूर्वपश्चाद्-भावितता स्पष्ट है। तब वाच्य-विम्ब और ध्वनि में समानता कैसे हुई? क्योंकि विम्ब-वाच्य तो ध्वनि की कारणता की कोटि में आ गया।

यह प्रश्न ठीक है पर उत्तर भी महज है। तब हम यह स्वीकार करना है कि जब अपबोध होता है तो अप्रतिपत्ति के साथ साथ अर्थ-विवक्षित वस्तु का विम्ब के रूप में प्रायश्चीकरण भी होता है। इस प्रकार अपबोध और विम्बबोध की महत्भावितता हुई। पर हम यह तो नहीं कहते कि वाच्यार्थ के विम्ब के साथ ही व्यङ्ग्यार्थ का भी चित्र बनता है। जब ध्वनि के मलक्ष्यक्रम और असलक्ष्यक्रम का भेद मान गया है तो स्पष्ट ही मलक्ष्यक्रम में ध्वन्यर्थ और वाच्यार्थ में क्रम है। शाब्दी व्यञ्जना के इमीतिर का भेद माना गया है— अभिधाम्ना और लक्षणाम्ना। पहली में अभिधेय के पुराने पश्चात् व्यङ्ग्यार्थ का वाच्य होता है तो दूसरी में पहले वाच्यार्थ फिर लक्ष्यार्थ और उसके पश्चात् व्यङ्ग्यार्थ का वाच्य होता है। इसी क्रम की दृष्टि में रखते हुए आज के आलोचकों ने वाच्य की तुलना प्याज में की है। जैसे प्याज में एक फाक के नीचे दूसरी फाक निकलती जाती है, उसी प्रकार एक अर्थ की तरह में दूसरा अर्थ निकलता जाता है। जल्द प्रमाणा की बुद्धि का है कि वह दिनकी गहराई तक जा सकता है। यदि वह विवेचन की भांति 'जल व ब्रह्म' को ही फलितार्थ और अन्तिम भाव समझ बैठेगा तब तो खीर पूरी ग ही मग्न हो जायगा। परन्तु यदि इन्द्र की भांति विवेचन में समग्र होगा तो 'आनन्द ब्रह्मेति व्यजानान्' की अवस्था तक पहुँच जायगा।^१ साहित्यशास्त्रियों ने जब वाचक और ताक्षणिक शब्दों के साथ व्यञ्जक शब्दों की भी मता स्वीकार की है, वे इसी

१ जमलक्ष्यक्रमोद्यत क्रमेण शानित पर।

विवक्षितार्थभिधेरस्य ध्वनरात्मा द्विधा मत ॥

—वही २, २

२ तु० ऐरिक गूटन ने कलाकृति को प्याज के समान बनाया है। जिस प्रकार प्याज के छिनकों की कई तरह एक के बाद एक होती है, उसी प्रकार कलाकृति की भी कई तरह हैं। सबसे ऊपरी तरह है दृश्य वस्तुओं का यथातथ्य वर्णन की उसके नीचे कलाकार की व्यक्तिगत रुचियाँ रुचानों तथा टिप्पणियाँ की तरह हैं।

परिवर्ज मन और साहित्य पृ० १६२

३ तैत्ति० उ० ३, ६

४ अभिधादि-त्रयानामिन्द्रियगिष्ट्यातिप्रविधो मत।

शब्दोर्जसि वाचकरतवन्नक्षका व्यञ्जकस्तथा ॥

—साद० २, १६

साय का आर सङ्कत करन लिखा दन ह कि एक अत्र र पश्चात अय जय का भा वा प्र हाता = । प्रमाण स्वल्प 'स्थिता क्षण आदि पद्य या 'अ शिचन' आदि गाथा का निया जा सकता ह । यत्र कारण ह कि काव्य का पर्यायवाचनानामद बना गया ह । परन्तु यह भा साथ साथ ध्यान म रचना = कि जितन अर्थों का प्रतीति लाया उन सभा क विम्ब प्रतिपत्ता ना भासित हान जायेंगे । परन्तु वाक्यांश का विम्ब पृथक् लागा 'श्याथ और व्यंग्यार्थ का भा पृथक् । आदि नभा मानी जायगा जबकि तात्पर्य का अभिन्न मान देंगे । उदाहरण क त्रिय निम्न पद्य =—

स्निग्ध-श्यामन-कारि त िप्तवियती बल्लद बल्लारा घना
 वाता गौरिण पयोद मुहुदामान इ कंका बला ।
 काम सत्तु इह पटोरहृदया रामोऽस्मि सर्वं सहे
 वदेही त कथ नविष्यति ह हा हा दवि । घीरा भव ॥^१

यत्र आरम्भ म वपा क्रतु का चित्र बनता =—आकाश म कात जाद वास्तु छ गय है बीच बीच म वगुता ना पडिक्तया उडनी लिखा दे रहा ह । ठणी ठण्ण पाता की पटार त्रिप पवन चल गी है । मोर मन्ता म कूब रह है । यत्र उमादक वातावरण है परन्तु प्रिया माता का अभाव राम का खन रहा = और उनक मन का विकन कर रहा ह । परन्तु राम की तुल्य अपन स्वल्प म ध्यान हो जाता = व बल्ल = मैं ना कतज पर पथर रखकर यह सब किसी प्रकार मर ना दूंगा पर रचानी माता यह सब देख कर कैम सह पायगा क्यादि

पुरध्राणा चित्त कुसुम-सकमार हि भवात !^२

यहीं पन्ना काव्य विम्ब वाक्यांश का = । वपा क्रतु का वातावरण प्रमाता का दाए म घूम जाता है । एक मध्य अत्र राम विचार मुद्रा म छ ह । पुन रामा म्मि म्म पत्र पर स्थान जाता = । वक्ता स्वय राम है, तब रामा 'स्मि' बन्त म कस जाचिय ? अत श्रवणा का आग्र प्रिया जाता ह । वह आरम्भ म राम क व्यतिगत जीवन का नृत्ति म रखकर कष्ट सहिष्णु व धर्म का ज्ञान करगता है परन्तु 'श्याथ हुआ म्म म्म म विशिष्ट राम । इस अर्थ

१ उभ शिचन शिष्णुद निमिणी पत्रस्मि रत्न वनाआ ।

शिक्षित मरगजभाअण परिद्विआ सङ्खमुत्तिवव ॥

—वहा पृ० ४४

२ ना०प्र०ना० ८ (३०) ११३

३ उच० ४ १२

की प्रतीति के मान राम की दृढ़ मुद्रा प्रतीत होती है जो कि विलखने और तड़पने माता पिता को एव अयोध्यावासियों को उसी अवस्था में छाड़ कर वन को जाने है। वन में अनेक कष्ट सहते हैं। उसके पश्चात् पुन चिन्ता की मुद्रा दृष्टि में धूम जाती है, इसमें राम की विकलता का अनुभव होता है—उसके साथ राम के पौरुषमय और सीता के स्वभाव-तुनुमार तथा बिरहक्षीण व्यक्तित्व का मान होता है और उसमें प्रस्तुत वातम्वरण में राम के बिरह की जलह्व वेदना का अनुभव और सीता के प्रति सहानुभूति जामूत होती है। इस प्रकार पद्य की परिणति अन्तिम भाव-विम्ब में होती है जब कि मारे प्रमाता उस वेदना के अनुभव में सम्मिलित होते हैं और कवि की वेदना राम के माध्यम में सावजनीन हो जाती है।

यहां इस प्रकार एक के बाद दूसरे के क्रम से चार विम्ब बनते हैं। ये और अधिक भी हो सकत हैं जब कि अप्रस्तुत-विधान अथवा उपमेयोपमेय भाव के द्वारा वाच्यार्थ का विम्ब प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिये—

नवमासधृत गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
 पीत्वा रस समुद्राणां शीं प्रसूते रसायनम् ॥
 शक्यमम्बरमारुह्य मेघ सोपानपङ्क्तिभिः ।
 कृत्वाजुंनमालाभिरल कर्तुं दिवाकर ॥
 सन्ध्यारागोत्थितस्तास्रं रन्तेष्वधिक पाण्डुरं ।
 स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धवणमिवाम्बरम् ।
 भवमारतनिश्वास सन्ध्या-चन्दन-रञ्जितम् ।
 आपाण्डु जलद भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥
 एषा घमपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
 सीतेव शोकसत्पता मही बाष्प विमुञ्चति ॥^१

यहाँ भी वर्षा ऋतु का प्रमत्त ग है। राम लक्ष्मण के साथ मातृप्रदान पवन पर निवास कर रहे हैं। पवन पर वर्षा का वातावरण अश्रित रम्य दिखाई देता है। वषारम्भ में पूर्व प्रकण्ड शीघ्र ऋतु थी। उसके उत्थाप की स्मृति अभी मस्तिष्क में गई नहीं है। उसकी तुलना में गर्वथा परिवर्तित दृश्य दृष्टि गोचर हो रहा है। सूर्य ने पिछले नौ महीनों में पृथ्वी का रस बूद बूद कर खींच लिया था। अब वह रसायन को जन्म दे रही है। रस पानी का भी बहते हैं। रम्यत इति इस व्युत्पत्ति में मेघ उसका अयन स्थान या भण्डार है। यह यौगिक

अर्थ है। पर जब सम्मिलित शब्द 'रसायन' ही लेते हैं तो वर्षा का जल रसायन है। रसायन ऐसी वस्तु को कहते हैं जो कि नीराग व्यक्ति का बल बढ़ाये। धूप के कारण सूखी वनस्पतियाँ वर्षा ऋतु में हरी मरी हो जाती हैं। वर्षा का जल कृषि व लिये नवजीवन देने वाला है। इसलिये वह रसायन कहा गया है।

पुनः अन्य अर्थ प्रतीत होता है। चौं स्त्रीनिष्ठ है और भास्कर पुल्लिङ्ग है। पृथ्वी का जा रस खींचा गया है वही शून्य है। उमम वन मम को नौ माम तक धारण करके चौं रसायन को जन्म देती है।

इसके साथ यहाँ के लगातार पाँच चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। प्रतीत यह होता है कि ये सभी परस्पर असम्बद्ध हैं। परन्तु इन सभी को माथ-माथ रूप में देखा जाये कि ये एक सम्मिलित और बहुरूपी चित्र प्रस्तुत करते हैं या नहीं। उनमें कुछ पृष्ठ भूमि और कुछ पार्श्व भूमि का वाय करत है। उनमें सर्वप्रथम म स्मृति में ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड किरणों में भूमि व रस का कण-कण सूख जाना अतदृष्टि व आग घूम जाता है। वर्षा ऋतु में पर पहले आकाश मण्डल में मेघ छा जाते हैं। दूर तक फैली कुरैया और मफद व वृक्षा की पटित क्षितिज का छूती प्रतीत हो रही है। सध्या व ममय मघ के बीच में दूरता मूय तीतर-पखी मेघा की मीठा म जाकाज रूपी प्रासाद की छत पर चढ़कर वृक्षा के शिखरों में तारण जादि बनाकर सजावट करता प्रतीत होता है। आकाश में सध्या के राग में रञ्जित और ऊपर नाचे सफेद मघ छाये हैं। उनमें लगता है गगन धायल है उसका शरीर पर सफेद पट्टी बधी हुई है। बीच में देवाई या रक्त की लानिमा दिखाई दे रही है। वह विरही की भाँति ठण्ठी साँसें भर रहा है, साथ की नानी व रूप में जाल चन्दन का लेप किए हैं उसका चेहरा सफेद या पीला पड़ गया है। ग्रीष्म ऋतु में तप कर अब वर्षा व पानी से भीगी पृथ्वी में भाप उठ रही है। लगता है सीता ही वियाग व आँसू में दुखी आसू बहा रही है।

राम स्वयं विरही हैं विरही को सारा जगत् अपनी ही भाँति वियाग की ज्वाला में जलना लगता है। इसलिए राम की रति प्रकृति में सञ्जाल हा गई है। उसमें प्राण प्रतिष्ठा हो गई है। वाच्यार्थ व द्वारा प्रकृति का स्थूल चित्र एक विस्तृत पलक पर बना है जिसमें जाग्म्व व पद्य पार्श्व भूमि का वाय करत है। वाद के पद्यों में चित्र बनता है।

ध्वन्यर्थ में चित्र सूक्ष्म हो जाता है। अब स्थूल आवृत्तियाँ लुप्त हो जाती हैं। छायाचित्रों व रूप में गगन पट्टी वाले धायल या आँसू भरते विरही की

भाति प्रतीत होता है और इस भाव भूमि पर चिरहिणी सीता उपमान के रूप में आसू बहाती प्रत्यक्ष हो जाती है। इस भाव-बिम्ब में ही चित्र की पूणता है।

प्रबन्ध गत ध्वनि मानने का तात्पर्य ही यह है कि एक समष्ट्यात्मक चित्र प्रस्तुत करना। विश्वनाथ ने जो लिखा था कि जैसे एक पद्य में कुछ पद नीरस होते हैं पर वे वाक्यगत पदों में सम्म हो जाते हैं, इसी प्रकार कुछ पद्य यदि व्यष्टिरूप में नीरस भी हों तो भी प्रबन्धवाही रस में वे भी सरस हो जाते हैं, उसका तात्पर्य यही है कि कुछ पद्य यदि बिम्ब प्रस्तुत न भी कर सकें तो प्रबन्ध के अङ्ग होकर वे व्यापक बिम्ब के अङ्ग बन जाते हैं। इस प्रकार इन उदाहरणों में काव्य बिम्ब स्वयं ध्वनि-रूप है। वस्तु-ध्वनि और अलङ्कार-ध्वनि के रूप में तो स्थूल काव्य-बिम्ब बनते हैं परन्तु रस-ध्वनि के रूप में भाव-बिम्ब बनते हैं अथवा रस और भाव के द्वारा काव्य के वे बिम्ब सजीव हो जाते हैं। आनन्द-वर्धन के शब्दों में वे आलेख्यप्रकृत नहीं रह जाते^१।

अतिशयोक्ति, समासाक्ति, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति और प्रतीप अलङ्कारों के द्वारा इन चित्रों में रङ्ग भरा गया है। वास्तव में प्राचीन आचार्यों ने जो शब्द और अक्षरों को काव्य का शरीर कहा था, वह सर्वथा यथार्थ है। अन्तर दत्तना ही है कि कवि उन्हीं सवसाधारण द्वारा प्रमुक्त शब्दों का प्रयोग करता हुआ भी उनके से ऐसी का चयन करता है जो कि उसके अभीष्ट भावा को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो। क्योंकि उनके द्वारा ही काव्य प्राणवान् होता है। किसी कवि ने लिखा है कि हम जिन शब्दों को लिखते हैं या जिनमें वार्तानाप करते हैं कवि भी उन्हीं का प्रयोग करते हैं। पर यह उन्हीं का कौशल है कि वे उनके बल में सारे जगत् को चमत्कृत कर देते हैं।^२ वेद भी

१ प्रबन्धोऽप्ययशक्ति-भू ।

—का० प्र० का० ४, ४२

२ रसवत्पद्मान्तगतनीरसपदानामिव पद्यरमेण प्रव धरमेनैव तेषा रसवत्ताङ्गी-कारात् ।

—साद० १८

३ ध्वन्या० पृ० ४१५

सौज्यस्तद्व्यक्ति-नामध्य-योगी शब्दश्च कश्चन ।

यत्नत प्रत्यभिज्ञेयो तां शब्दायीं महाकवे ॥

—ध्वन्या० १ ८

४ यानेव शब्दान् वयमानपामो

यानेव नार्थान वयमुल्लिखाम ।

तैरेव विन्यासविशेषभर्व्यै

समाहयन्ते धवया जगन्ति ॥

—का० स० पृ० २

भौतिक पदार्थ है और मिट्टी का लौढ़ा भी, पर जहाँ गेंद उछल-उछल कर श्रीहारगिर का मत्तोरञ्जन करनी है, वहाँ मिट्टी का लौढ़ पृथ्वी पर गिरकर उठ नहीं सकता। जो शब्द पढ़ने सुनने के पश्चात् हृदय में भाव न जगा सकें, किसी की समझ में न आ सकें ऐसे शब्दों का क्या करना है। किसी ने कहा है कि यैषास्वरण शब्दों की व्युत्पत्ति, साधु और असाधु का निर्णय तो करने है पर त्रिस शब्द का प्रयोग कहाँ करना चाहिए यह कवि ही जानते हैं। पिता अपनी कन्या को जन्म अत्रय देता है, पातता-भोगता है पर वह काम-बला भ कितनी दश है, इसका ज्ञान जामाता को ही होता है।^१

इस प्रसंग में रमाञ्जन मुखर्जी ने फागीमी प्रतीकवादी समीक्षकों के मन की ध्वनि सिद्धान्त में तुलना करते हुए ठीक ही कहा है कि तांत्रिकों की तन्मयी भाषा वाच्य के उपयुक्त नहीं होती, दूतने प्रण तब ता उन प्रतीकवादियों का कथन ध्वनितार के मन में मेल खाता है जिसमें तांत्रिकों के लिट्-लिट्-गमान में शब्द-व्याय थी प्रतीति का स्पष्टन किया गया है। परन्तु जब वे वाच्य में विशेष प्रकार के प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग की बकालत करते हैं वह ध्वनि-सिद्धान्त में मेल नहीं खाता। क्योंकि जिन शब्दों और अर्थों का पाठक या श्रोता समझ ही न सके, उनका क्या लाभ? अन्त मन्त्रगन्धित, एव मन्त्रमुवाध शब्दों का ही प्रयोग वाच्य में उपयुक्त होगा है जिसमें अर्थ-बाध में प्रमाणा को कठिनाई न होने पाय। (दृशीनिष्ठ वाच्य में प्रमाद गुण अपेक्षित है)। परन्तु ध्वनय के बोध में सहायक हो तो प्रतीकों का निषेध भी नहीं है।^२

इस सम्बन्ध में नैपथ्यकार और कान्दिदाग की तुलना की जायेगा कुछ बाल स्पष्ट हो जाणगी। नैपथ्यकार ने मन्त्र मन्त्र में चिन्तामणि मात्र जान दिया^३ परन्तु इस भावना में कि ये उपनिषद् रूप होने हैं और सर्वमाधारण को प्रकाश्य नहीं हैं, उसको ऐसे प्रतीकात्मक शब्दों में प्रस्तुत किया है कि आज तक टीकाकारों की बुद्धि उस मन्त्र का स्वप्न निरिद्ध करने में सक्षम हो रही है।

१ कन्या-गुप्त-पाण्डित्य जामाता वेत्ति नो पिता ॥

—अपवि० मधुसूदनी विद्वत्ति—पृ० २३४

२ Imagery in Poetry p 58

३ अत्रामात्रामार्थे गकलमुभयावाग्घटनाद् द्विधा,
भूत रूप भगवदभिधेय भवति यत् ।

तदन्तमन्त्र में स्मरन्मय मन्त्रुमात्र,
निराधार शश्वरमय तरपने सिद्ध्यन्तु सने ॥

उसका नया लाभ ? इनके विपरीत कालिदास के निम्न पद्य को ले जिनमें अत्यन्त मामात्र मुखबोध्य पदावली का प्रयोग है पर ध्वनिगर्भित होने के कारण वह हृदय का स्पर्श करती है—

तथागतया परिहास-धूर्त्वं सहया सखी वेत्रभवावभावे ।

आर्ये, व्रजामोऽन्यतः इत्यप्येन वधूरसूया-कृटिल ददर्श ॥^१

यहाँ कवि ने 'असूया-कृटिल ददर्श' इन दो शब्दों में क्या नहीं कह दिया ? यो कहिये कि पतिवरा का सारा हृदय ही उड़ेल दिया कि बस, अब देख लिया जो देखना था, अब मनचीता बर मिल गया है जिसकी खोज थी। इसके साथ छेड़खानी के लिए उपालम्भ भी है। उस मात्र में यह समोहन मन्त्र क्या कम है ? इनको पढ़ते ही स्वयंवर-सभा का सारा चित्र सामने आ जाता है कि इन्दुमती अज के सामने खड़ी है, आगे ब्रह्म का नाम नहीं लेती। सुनन्दा उसकी ओर मुह किए मुस्करा कर कुछ कहने का अभिनय कर रही है और राजकुमारी आँखे नरेण कर उसकी तरफ देख रही है। यह मूकभाषा साखी शब्दों में अत्रि भावपूर्ण और अभिव्यञ्जक है। इसी कारण आचार्यों ने चेट्टा आदि को भी भावप्रकाशन में समय बताया है।^२

वस्तु में विरागालङ्कार ध्वनि और उसमें अनुभूत काव्य-बिम्ब का उदाहरण निम्न पद्य में देखा जा सकता है—

अमन्द-चन्दन-रूपेण शीतल शीलवानिन ।

भावप्रभाण भव्योऽसाधमिद्रेष्वपि मित्रतम् ॥^३

यहा प्रकृत में 'दन' शब्द स्वामी या राजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रथमचरण काशी नरेश शीलवान् के "यथा नाम तथा गुण" धर्म का सूचन करता हुआ उसके मर्वाह्लादी शान्त स्वभाव को व्यक्त करता है। सुप्तीपमा और अनुप्रास का साहचर्य होने से जमदेवोक्त अर्धानुगाम चन्दन की आह्लादकता का विम्बित करता है। परन्तु 'दन' सूय का वाचक भी है नितक चन्दनसदृशशीतलत्व विरोधी गुण है। इस प्रकार द्रव्य का गुण में विरोध ध्वनित होता है। अपि जादि वाचक शब्द का अभाव होने में विरागभाण व्यङ्ग्य है। यहाँ सूय रूप व्यङ्ग्याय का बोध होने पर ताप का अनुभव होता

१ रघुवश ६, ८३

२ काकोपचेष्टादित्तस्य च । वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत् साऽऽम्यता ।

—साद० २, १६-१७

३ डा० मर्यादतकाम्नी—बोधिमत्त्व-नरितम् ३ ६६ में च० ल दाम

है और चन्दन-स्पर्श जितल इस उपभोदभावित विराय म शीनलता का अनुभूति का विम्व बनता है। इस प्रकार दाता हा रणशविम्व बनत हैं।^१

काव्य की भाषा मत्रमामाय हान पर भी रम भाव आदि की व्यभिव्यक्ति म समय और वैदध्य म पूण होता है। वक्रोक्ति पूण हान से वह व्याकरण का वैदुष्यभार भरित शब्दावला से सवसा पृथक् हाना है। व्यक्तिविवेकवार महिम भट्ट न र्मा कारण काव्य की भाषा का व्याकरण आदि शास्त्रा की भाषा से पृथक् बनाया है क्पाकि वैयाकरण शास्त्राम नियमा को हा ध्यान म रखवर शब्दावला का प्रयोग करते हैं^२। रमारज्जन मुखर्जी भी कहत हैं कि काव्य की भाषा व्याकरणादि स पृथक् ही होती है^३। कवि इसनिए अपक्षित भावप्रवाशन के लिए व्याकरण क नियमा की ज्वहलना भी कर दत हैं। वहा वैयाकरणा ने तो अपने मन की मडास निरकुशा कवय^४ कहकर निकाल दी पर उसकी गहराई तक जान का यत्न चहाने नहीं किया। कालिदास की व्याकरणविषयक श्रुति वतान हए कुछ ऐम प्रयोग निदशन के रूप म प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे—

युवा मुगव्यापतवाहुरसल क्पाटवक्ता परिणद्वक्तर ।

वपु प्रकर्षादजयद शुह रघुस्तथापि नीचेविनया दक्षपत ॥^५

१ कवीनामय विषयो न खण्डिकोपाध्यायानामित्यनवगततदाभिप्रायैस्तरूपेक्षित मतत ।

—व्यवि पृ० २३३ ३५

2 *It is not without reason therefore that the word is regarded as the Chief instrument for evocation of feeling and that an advice is tendered to the poet of posterity to employ such word as is able to translate the charming inner vision of the creative artist that is incapable of being brought into expression Through any other word The function of suggestion belongs to the word that takes the initiative in raising the symbolic into comprehension but since the word remains inseparable from the idea in the psychological level an equal part is played by the context also in the matter of revelation of the implicit and consequently Indian Poetics declares the expression and the expressed as conjointly suggesting the unexpressed in all cases* —Imagery in Poetry pp 58 59

रघुवश के इन पद्य में "वपु प्रकर्पात्" इस प्रयोग पर वैयाकरणा का आपत्ति है। उनके अनुसार "इसुनो सामर्थ्ये"^१ के प्रसङ्ग में "नित्य समास-मुत्तगपदस्थम्" इति सूत्र से वपु के विभक्तों को एत्व हो जाना चाहिए था। पर कवि ने जानबूझ कर यह नहीं किया।

अब सोचने की बात है कि क्या कालिदास को इस नियम का ज्ञान नहीं था जिसे हमारे मर्च में 'दुःप्रधया'^२ प्रयोग किया है। यदि वपुप्रकर्पात् ऐसा प्रयोग हो भी जाता तो कोई छन्दोभङ्ग न होता। फिर कवि ने ऐसा क्या किया? हमारी दृष्टि में उसने सोच समझ कर इस व्याकरण नियम का पालन नहीं किया। कारण यह है कि इस पद्य में कवि युवा रघु व शारीरिक विकास को प्रस्तुत कर रहा है। विवक्षित वस्तु के अनुसार ही भाषा का प्रयोग भी हो तो विषय हृदयगत हो जाता है। आजम्बो वाच्य के कारण पद्य में आज गुण का परिष्कार होना चाहिए। पूर्वाध में कवि ने इस ओज का निर्वाह तदनु रूप प्रयोजन से किया है। उत्तगपद में वाच्य उनता आजस्वी नहीं रहा अतः रचना में ह्राम आ गया। 'वपु-प्रकर्पात्' में वह ओज सुरक्षित है पर वपुप्र-कर्पात् बहने में वह है या नहीं, इसे महदय लोग स्वयं समझ सकते हैं। पूर्वाध में जो पौरुष-व्यञ्जन विम्ब रघु के तीन लोभ का प्रस्तुत किया है, उस का प्रभाव बनाय रखने के लिये वपु-प्रकर्पात् प्रयोग ही उपयुक्त है। इसी प्रकार—

भ्रूमेदमात्रेण पदान मधोन प्रभ्रशया यो नहुष चकार ।

तस्याविलाम्ब-परिशुद्धिहेतो भौमो मुने स्थान-परिग्रहोऽयम् ॥^३

इस पद्य में अगस्त्य के आश्रम का सङ्केत है। कवि ने अगस्त्य का नाम नहीं लिया है। प्रस्तुत उनके अज्ञाधारण कार्यों के द्वारा परिचय दिया है। ये दो वाक्य हैं—१ इन्द्र पद पर तपोवन से आरुढ़ हुए मदन मत्त राजा नहुष को गिरा दिया। २ वर्षा ऋतु में गदने हुए नदियाँ व तालाबों के पानी का स्वच्छ करना। कहा जाता है कि शरद् ऋतु में अगस्त्य तार का उदय होने पर मार्गों का पानी सूख जाता है और नदियाँ, तालाबों का पानी निम्न हो जाता है।^४ इन्द्र देवताओं का राजा कहा जाता है और सौ अश्वमेध यज्ञ करने के पश्चात्

१ पा० ८, ३, ४४

२ वही, ८, ३, ६६

३ रघुवश २, २७

४ वही २, २७

५ तु०—प्रसादाव्यावृत्त कुम्भयोगेनहोत्रस । वही, ४, २३

यथा— उदित अगस्त पन्थ जल सोखा ॥ रामना० ४, १४-१६

इस पद को प्राप्त करता है।^१ जो नहुप उस महान् पद पर प्रतिष्ठित हो सका और वह भी अपन जीवन काल में ही वह कितना प्रतापी होगा ? ऐसे महान् व्यक्ति का इन ऊँचे पद में गिरा दन पर कितना धमाका हुआ होगा ? यदि यदि शब्दा में उगका वणन करने लगता तो उस में पाठको या श्रोताओं का उसका अनुभव नहीं होगा। इसलिये कवि ने उस का ध्वनिचित्र यहाँ पर प्रस्तुत किया है। जब कोई वस्तु ऊपर में नीचे गिरती है तो एक क्षण अघर में रुकती है। जब पृथ्वी पर पतती है तो उस की देर तक गूज होती है। साथ ही नहुप जब अपन पद से पतित हुआ होगा तो तहलका भी मचा होगा। इसकी ध्वनि 'प्रभ्रशया या इतन अश में होती है। इसमें उम धमाक की गूज भी है। उतनी ऊँचाई में गिरी वस्तु का पृथ्वी तक पहुँचने में कुछ समय भी लगता ही है। नीचे आने आगे गिरती वस्तु का वेग हल्का हो जाता है। इस लिये 'नहुप चकार — य ध्वनिया अलापण अधिक है।

यहाँ वैयाकरणों का आपत्ति है कि यह अणजत प्रउपसर्गादि भ्रश धातु क लिट लकार प्रथम पुष्प में प्रभ्रशयाञ्चकार इकट्ठा पद होना चाहिये था पर कवि ने प्रभ्रशया इतन अश की और 'चकार' को पृथक्-पृथक् कर दिया है, यह अशुद्ध है। परन्तु क्या प्रभ्रशयाञ्चकार एमा कहने में उपर्युक्त ध्वनिचित्र बनना संभव था ? शब्द भावा का प्रकाशन के लिये हाने है, भाव शब्दों के लिये नहीं।

इसी प्रकार का व्याकरण का उल्लेखन कवि ने अन्य श्लोक में 'त पातया प्रथमभास पपात पश्चात्' इस प्रयोग में किया है। यहाँ भी पिञ्जन्त पत् धातु का लिट में रूप है जो कि पातयामास बनना चाहिये था किन्तु कवि ने पातया और आस इन दोनों अशों को विभक्त कर दिया है। वैयाकरणों का कहना है कवि ने वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया और उसमें 'पातयाभास' य किया एव साथ में आसनी अतः कवि को ऐसा करना पडा। पर हम पूछते हैं कि क्या कवि का राजाजी थी कि तुम वसन्ततिलकाछन्द का प्रयोग करो ही करा। वह अपातयत अपीपतच्च' आदि प्रयोग भी कर सकता था पर उसने यही प्रयोग क्यों चुना ? इस लिये कि एक तो कवि शिकार खेलत राजा दशरथ के बाण प्रहार की दृष्टता का अनुभव कराना चाहता है दूसरे शिकार को किन्तु

१ तु० तथा विदुर्मा मुनय शतक्रतु द्वितीयगामी नहि शब्द एव न।

प्रकार उछाल कर नीचे गिराया, इसका शब्द चित्र प्रस्तुत करना चाहता है। जगली जानवर की प्रकृति होती है कि उस पर प्रहार करो ता क्षपट कर प्रहर्ता पर जानमण क लिये उछलता है। राजा ने आरों भैसे पर जानमण किया तो वह प्रहार करने के लिये राजा की ओर उछला। अब राजा को अपनी रक्षा भी करनी पड़ी। उसने भैसे की आँख पर बाण मारा। वह बाण उसके शरीर को सीधा पार कर गया और पहले उसको नीचे गिरा दिया, पश्चात् आप भी भूमि पर गिर गया।

जब विचारणीय बात यह है कि बाण ने महिष का कौनो गिराया। किसी वस्तु का या तो धकेल कर गिराया जाता है अथवा ऊपर उठा कर नीचे गिराते हैं। बाण आकार और भार में महिष की अपेक्षा छोटा और हल्का या अत धकेल कर तो उमे गिरा नहीं सकता था। पर बीज कर ऊँच उछाल कर गिराना संभव था। इसी क्रिया का कवि ने शब्द-चित्र खींचा है। यहाँ पा 'त याम्' इतन अक्षरों में क्रमिक आरोह है। यह गिराई जाय वाली वस्तु को ऊपर ले जाने का शब्दानुकरण है। 'या पर आ कर आगह पूरा हो गया है। ऊपर उठाई गई वस्तु क्षणभर के लिये ऊपर रह कर तभी गिरेगी, इस मध्य-काल की स्थिति का अनुकरण 'प्रथमम्' से किया गया है। गिराने में वग के साथ जा टोल है, वह आ 'म' इस अक्षर में सूचित हुई है। फिर 'पान पश्चात्' इसमें स्वयं बाण का ऊपर जाकर नीचे गिरना 'प पा त' इस क्रिया के आरोह अवरोह के द्वारा सूचित हुआ है। कवि की इस सूक्ष्म साधि प्राय दृष्टि को न समझने के कारण शाब्दिक षट उमे अशुद्ध कह बैठते हैं। यहाँ स्मरणीय बात यह भी है कि किमी आलङ्कारिक न इन प्रयोगों को व्युत्पत्ति के उदाहरण के रूप में नहीं दिखाया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे इन्हे साधिप्राय मान कर दोष नहीं गिनते।

इन उदाहरणों में इन काव्य विम्बों द्वारा व्यंग्याथ चोतित किया गया है। यह 'ध्वनतीति ध्वनि'^१ इस व्युत्पत्ति से ध्वन्यथ के द्वारा काव्य-विम्ब प्रस्तुत किया गया है।

ध्वनि के द्वारा काव्यविम्ब का निर्माण अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। काव्य

१ केचित् कालिदासीया अपाणिनीय प्रयोगा । विश्व० ५, ० पृ० २५५-२६३
एव दालिदास का शब्द-अयोग एव पाणिनीय अनुशासन-शास्त्रिणाग भट्टक,
जम्भू भूनिवर्ति० ११७३ पृ० ४४-४६

२ ला० पृ० १०५

का चरम प्रयोगत अनिदानुभूति है जा कि चम कार भी कहनाती है । रसानु-
भूति कभा वाच्य नहीं होगी मद्रा ध्वङ्ग्य होगी है । चमत्कार का स्वभाव हं
साक्षात्कार या प्रत्यक्षकल्य होना । रस प्रतानि होने पर विभावादि का सारा
वातावरण प्रत्यक्षकल्य हाता है ।^१ भरत न विभावो को वाचिक और जाति गक
अभिनया स सम्बद्ध त्रिपया को प्रत्यक्षकल्य करन वाला कहा है ।^२ दशप्रकाव्य में
रस गमञ्च पर सारा वातावरण प्रत्यक्ष हा जाता है । इसी लिय मटट नौन और
उनक शिष्य अभिनव गुप्त दशरूपकामक काव्य को ही वास्तविक काव्य मानत
है । वामन न भी उही का अच्छा काव्य कहत है^३ । स्थिता क्षण आदि पद्य
म तौ व्यग्य अथ मर्माणि अवस्थागत रूप आग पावती की तत्कालीन मुद्रा को
प्रत्यक्ष करता है । ध्वनिकार न स्वयं स्वाकार किया ह कि व्यञ्जक अपन
स्वरूप का प्रकाशित करता हुआ ही अथ जय को प्रकाशित करना ह । जैम
दीपक पहल अपन आप को प्रकाशित करता है तदुपरास्य घर आदि को ।
जैम—

उद्यवादिनि देवयौ पाश्वे पितुरधोमुखौ ।

स्त्रीला-कमलपद्मणि षण्णामास पावती ॥^४

यहा पावती का हृष-गोपन रूप अवहित्या और लज्जा य भाव ध्वनित ह
जा कि इस अवस्था म पावती की मुद्रा का भी सूत करत है । ध्वनिवग्दी
आचार्यों न गुणा का रस धम कहा है । उसका मतनय यही है कि ध्वनि विषय

१ द्र०अ० १ टि० ८४

२ नाना द्रव्यवहुविधैव्यञ्जन भाव्यत यथा । एव भावा भावयति रसानभिनयं
मह । नाशा० ५ ३५

अभिनय साक्षात्कार सप्यन्न तदुपयागितया विभावादिद्व्यपदेश अभिभा०
१ २६३

३ काव्याथविषय हि प्रत्यक्षकल्यसवदनोन्त्ये रसोदय इत्युपाध्याया । वय
तु ब्रूम —काव्य ताव मुत्प्रतो दशरूपकाल्मकभव ।

—वही १ २६० ६१

४ कु० म० ६ ८४

५ ये रसस्थाडिगतो धमा गौर्यादय इवाञ्जमा । उरूपदूतवन्द स्पुरुत्तल
स्थितयो गुणा । —का०प्र०वा० ८ १ (६६)

६ यथा शीतादि शब्दाना तपामपि स्वरूप प्रतीने व्यग्यप्रतानरच नियमभावी
क्रम ।

—ध्वया० ४७७

के प्रयोग में प्रथम माधुव आदि गुण अभिव्यक्त होते हैं। वे पुनः श्रुत गारादि रसों की अभिव्यक्ति कराते हैं। श्रुद्गादि रसों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के रूप में होती है जो कि भावविम्ब के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। रागवाचक शब्द भी नाद की अभिव्यक्त करते हुए उनके मूलरूप ध्यान को प्रस्तुत करते हैं। सामनाथ एव दामोदर मिश्र ने अपने ग्रन्थ में गगोः ङ मूर्ते स्वरूप का ध्यान करने का निर्देश दिया है।^१

जाचार्य कुन्तान ने ध्वनि रः पर्यायवचना, रुद्विवचना एव उपचार वचना के अन्तर गिता है।^२ उनके उदाहरणा में भी स्पष्ट हाता है कि व्यंग्याय की प्रतीति में काव्यविम्ब का निर्माण होता है। जैसे—

ताला जाअति गुणा जाला ते सहिअएहि घेपति ।

रइ-किरणपुगाहिआई होन्ति कमलाह कमलाह ॥^३

यहाँ कमलानि एत धुप्य-विशेष ग रुड ह। पर इस दोहराना मुग्राथ में बाधा उत्पन्न करता है कि कमल कमल बन जात ह। कमल तो कमल ही रह्ये चमेरी या गेंश तो बन नहीं जायेंग। तत्र ऐसा क्या कहा ? अतः द्वितीय कमल विक्रम धम में युक्त कमल इस अर्थ का लक्षण करता है इसमें मुग्राध मनोचता आदि धर्मों में विशिष्ट होना का बोध होता है। यह व्यंग्य अर्थ अत्र प्रतीत होगा तो प्रमाता को घिरे कमल के रूप के माथ सुगन्ध सौन्दर्य आदि का जो बाध होगा जो कि मूल हुए बिना सम्भव नहीं। अतः यह ऐन्द्रिय विम्ब बन जायगा।

पर्याय-वचना को स्पष्ट करते हुए कुन्तक ने लिखा है कि श्लेष यदि किसी चमत्कार्य विद्या के अर्थ से किसी निश्चित समानाधिक शब्द का प्रयोग वाच्याय को (भूपित या प्रत्यक्षरूप करने ग समर्थ होता है) जैसे—

कुमुम-समययुगमुपसहरन्नुत्पलमलिकाधवनाट्टहासो व्रीध्याभिधानो महा-
काल ।^४

१ दुर्वाभविभा विरहासहा लिखन्ती पट पति रुदती ।

सपिन-कुचा-मितगल्ला म्थर-धम्मिल्ला धनाथी स्यात् ॥

—सामनाथ राग विबोध, ५, १७७

२ स्फटिकरचित-पीठे रम्य विलासश्रुड गे विक्रम-कमलपत्रैरधयती महेशम् ।
करधृतघनवाद्या पीतवर्णागताक्षी भुक्तिभिरियमुक्ता भैरवी भैरवस्त्री ॥

—सङ्गीतद० गंगाध्या० ४८

३ वजी० २, ६ के साथ

४ तु० रम्य रमणीय यच्छासान्तर विच्छित्त्यन्तर शिष्टत्वादि नस्य स्पर्शात्
शाभान्तर-प्रतीतिरित्यर्थ । कथम् स्वयं विशेषणेनापि । स्वयमात्मनैव स्व-
विशेषणभूतेन पदान्तरेण वा ॥ कुमुम-समय इत्यादि । (हच० पृ० ११६)
वही० ८८-८९ पृ०

इसमें 'युगमुपमहरन्' 'अट्टहासं' 'महाकाल' शब्दों का चुनाव प्रस्तुत ग्रीष्मकाल के लिए प्रयुक्त होने पर भी अप्रस्तुत प्रलयकारी महादेव का बोधक होने से अवभुत चमत्कार का अनुभव कराते हुए 'महाकाल इव महाकाल' इस प्रकार अलंकार का बोध कराने हैं। यहाँ वाच्यार्थ से ग्रीष्म ऋतु का बोध होने के साथ व्यञ्जना से महाकाल—शकर के अर्थ की प्रतीति हाती है। फलस्वरूप श्वेत अट्टहास करत महाकाल का मूल रूप उभर आता है।

ध्वनि जब वस्तु छूना होगा तब वस्तु का बाध करायेगा। जैसे इस उद्धृत अंश में महाकाल देवता का बोधक होता हुआ उन्हीं के स्वरूप का प्रत्यक्ष करता है। पर जब अलंकार ध्वनि होती है तो अलंकार काय वस्तु को प्रतीत करायेगा। जैसे ऊपर के ही उदाहरण में अप्रस्तुत महाकाल की समानता में खिली चमेली के पुष्पा में शोभायमान वसन्त को समाप्त करत ग्रीष्म ऋतु का वातावरण मूर्त हा उठता है।

इस प्रकार वस्तु ध्वनि एवं अलंकारध्वनि द्वारा निमित्त काव्य विम्ब का उदाहरण इस अध्याय में दिये गये हैं। रस ध्वनि से काव्य विम्ब की सिद्धि का प्रतिपादन आगामी पृष्ठों में किया जायेगा।

१ तु० यत्र तु सामर्थ्या क्षिप्तं सत्रलडं पारातरं शब्दशक्त्याप्रकाशते स सर्वं गव ध्वनेविषयः । यथाअत्रात्तरे कुसुमं इत्यादि ।

छठा परिच्छेद

रस-भाव ध्वनि एव काव्य-विम्ब

काव्य का मुख्य विषय भावतत्त्व—बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म के दो रूप जलनायें गये हैं—मूत और अमूत । मूत पदार्थ व इ जो कि ऐन्द्रिय मनिकर्ष के विषय बनने ह। चराचररात्मक म्यूत जगत् मारा मूत कहनाता है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष पाचो ज्ञानेन्द्रिया म में किसी न किसी एक इन्द्रिय में किया जाता है ।^१ अमूत वे हैं जिनकी मत्ता नो विभिन्न साधना में सिद्ध है पर ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष सम्भव नहीं । इसी श्रेणी में प्राणिया के मानस व्यापार आत है ।^२ इतना ज्ञान बाह्य प्रतिक्रियाओं के द्वारा ही सम्भव है । शब्द में कहने पर भी उनका अनुभव नहीं होता तथा बिना चहने सुने भी बाह्य व्यापारो या प्रतिक्रियाओं में ज्ञान हो जाता है ।^३ इस श्रेणी में मनोभाव, विकार वृत्ति एव रस आदि की गणना होती है । उनमें ही नौ मनोभावो को स्थायी,^४ नतीम को सचारी माना है^५, शेष का उनमें ही अतर्भाव कर दिया है ।^६

१ द्वै वाव ब्रह्मणो रूपं मूतं चैवामूतं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च त्यच्च
२, ३, ।

यत्र द्रव्यत्वे सति उद्दिग्दिन्द्रिय-प्रत्यक्षवत्त्व तत्रोद्भूतम्पवत्त्वम् ।

—तमदी० पृ० ४२

३ मु० नावशब्देन तावच्चित्तवृत्तिविशेषा एव चिन्विता । ये त्वेते ऋतु-
माल्यादयो विभावा वाह्यात्त वाप्यप्रभूतयोऽनुभावा एकातजडस्वाभावास्ते
न भावशब्दव्यपदेश्या ।

—अभिध० १, पृ० ३४२

४ वागङ्ग मुखरागण मन्वेताभिनयेन च ।

कवेरन्तगत भाव भावयन भाव उच्यते ॥—नाशा० ७, २

५ गिहृषिश्च शोकश्च त्रोऽरोन्माहौ नय तथा ।

जुगुप्साविस्मयम्भेनि स्थायिभावा प्रकीर्तिता ॥ —वही ६, १७

६ निर्वेदाद्यास्त्रयस्त्रिशत् व्यभिचारिण । —वही भा० १, पृ० ३४५

७ स्थायित्व चेताचतामेव । जात एव हि जन्तुरियनीभि सर्वाङ्गि परीतो
भवति । तथाहिदु खमश्लेषविद्वेषी सुखाम्बादनसादर । इतिन्यायेन

काव्य म क्याकि अनुभूतिया एव विभिन्न अवस्थाजा म परिवर्तित हात वाना मानन वक्तिया म्याया तथा पण्डितनशीत मनोवगा का चित्रण व विशदपण हाता है जन यत् भावजगन ती नाव्य का प्रधान विषय है । परन्तु भावा क उदय तय एव परिवतन क दिग टम मूत रूप क व्यापार ही उत्तरदाया हात है एमनिए जानम्वन उददीपन पृष्ठभूमि खादि क रूप म उमका भी वणन किया जाता है ।

संस्कृत काव्य शास्त्र क अनुसार इन भावा का विशदपण रम स्थायीभाव एव मञ्चाग्य भाव क रूप म हाता है । भाव और रम दाना म क्या जन्म है, इम पर कुछ प्रकाश भाङ्ग न टारा है । उदक अनुसार चवणा का अवस्था तन भाव रहता है परन्तु उमम जगती परिष्कारात्मक अनुभूति का पहँचन पर वही रम बन जाता है । भाव रम रूप म किम प्रकार परिवर्तित या पण्डित हाता है इन मन्त्रत्र म सबप्रथम अङ्गिकारी वचन भरत का रम सूत्र है जिसकी विभिन्न व्याख्याएँ आचार्यों न का ह जिनम नट्ट चाल्पट नट्ट शङ्कु क नट्ट नायक और अभिन्नर गुप्त क चार मत प्रधान है जिन्ह मग्गट न अपन काव्य प्रकाश म विवर्चित किया ह । जगन्नाथ न अवाचीन आचार्यों क भी कुछ मत दिखाय है ।

यद्यपि अगत अपन मूत्र म स्पष्ट रूप म विभाव अनुभाव जादि का निर्देश कर चक थै तथा सामाजिक का रम का आश्रय धापिय नर गय थे ।^३ तथापि

सर्वो गिरसया ज्ञान स्वात्मत्युक्तपभाजितया परमुपहृमन्नभाष्टवियाग सतप्तस्तद्धर्तनुष कापपग्वशोऽशक्ती च तता माह । किञ्चिदाजिजापुरथ्य-
नुचितवस्तुविषयवैमुख्या मकनयाऽऽनान् किञ्चिदनमीष्टतयाऽभिमत्यमान-
स्तप्तकतप्यदशनभमदिनविस्मय किञ्चिच्च जिहामुरव जायत ।

—अभिभा० भा० १ पृ० २८३

१ आभावनादयमतयविया जनन

या भाव्यत मनमि भावनया स भाव ।

या भावनापथमनाय तु वतमान

स्वाहट वृत्ती हृदि पर स्वदन रसाऽयी ॥ —शृप्र० २, पृ० ४३६

२ तत्र विभावानुभावमचारिमयागाद् रस्तनिष्पत्ति ।

—नाशा० आ १, पृ० २७२

३ यथा हि नानाप्रयत्न-मन्वृतमन श्रुञ्जाना रमाना स्वादयन्ति मुमनस पुरुषा हृषादीश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् द्वागङ्गम-
त्वापतान् स्थायिभरवानस्वादयन्ति मुमनस प्रेक्षवा हृषादीश्चाधिगच्छन्ति,

—वही, भा० १, पृ० २८८-८९

कुछ समय तत्र रस के वाग्मविवर्त अनुभविता के सम्बन्धन में स्थिति अल्पवृत्त रही। मट्ट लोल्लट के अनुसार वाक्य-नाट्य का रामादि मुख्य पात्र ही रस का आश्रय रहता था। शङ्कु के अनुसार रामादि की भूमिका में जाया नट रस का आश्रय था। मट्टनायक ने सामाजिक को रस का आश्रय स्वीकार किया और उसके लिए सांसारिकरण व्यापार की उद्भावना की परन्तु सामाजिक की रसि को कोई स्थान न दिया जाने में उनका मत भी मान्य न हुआ। पुनः भावकत्व व्यापार और भोगीकरण इन दो व्यापारों की उद्धान कलाना की वी उनमें भावक व्यापार सांसारिकरण और भोग जास्वादन या रसन एक ही है जो व्यञ्जना के द्वारा होता है।

दण्डी आदि आचार्यों के मत में भाव ही रस रूप में परिणत होता है। उसके लिए कोई प्रक्रिया आदि अपेक्षित नहीं है। यही मत मट्ट लोल्लट आदि का भी था।

उत्पत्तिवाद—भरत के सूत्र में आय निष्पत्ति शब्द का अर्थ उत्पत्ति करने मट्ट लोल्लट आदि मुख्य पात्र के वर्तमान में न रहने पर भी वाक्य में वर्णित सामग्री के द्वारा उसकी रसि की रस रूप में परिणति मानते थे। पर इस प्रकार वर्तमान में रहनादि के न रहने पर भी रस की निष्पत्ति आन्ति-मात्र सिद्ध होती है।^१

अनुमितिवाद—मट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद का न मानन हुए शङ्कु ने अनुकार्य की भूमिका में आय नट के आह्वयदिचार प्रकार के अभिनय रूप निङ्ग के द्वारा अनुकर्ता में स्थायी की अनुमति का ही रस माला है।^२

१ रसि मट्टङ्गागता गता। रूप बाहुल्यं वागम। —वादि० २, २८१

अधिहृद्य परा नोटि कोषो रीद्रात्मता गत। —वही, २ २८३

२ विभावादिभिः मद्योगाऽर्थानि स्थायिनःकला रसनिष्पत्ति। तत्र विभावश्चि-
त्तबृत्तं स्थाय्यातिगताया उत्तमौ कारणम्। अनुभावाश्च न रसजन्या
अत्रविवक्षिता। तथा रसकारणत्वेन गणनानहत्वात्। तत्र स्थाय्यव
विभावातुभावादिभिःपचितो रस। स्थायी भवन्नुपचित। स चाभयोरपि,
(मुख्यया वृत्त्या रामादौ) अनुकार्येऽनुकर्तस्य चानुसन्धानबलात् इति।
चिरन्तनाना चायमेव गक्ष। —जिम्भा० वा० १ पृ० २७२

३ तस्माद्वेत्तुभिर्विभावाख्यं कार्येऽचानुभावाभिमि सहचारिरपैश्च व्यभि-
धारिभिः प्रयत्नाजिततया कृत्रिमैरपि तथानभिमत्यमानैरनुकर्तृस्यत्वेन
निङ्गबलन प्रतीपमान स्थायीभावो मुख्यगनाक्षित स्थाय्यनुकरणरूप।
अनुकरणरूपत्वादेव च नामान्तरेण व्यपदिष्टा रस। —वही पृ० २७३

अनुकृतिवाद—इस प्रमड १ म शङ्कुव न अनुकरण की चर्चा की है । उनके अनुसार नाटय म नट अपना शिक्षा क द्वारा अनुकार्ये रमादिका अनुकरण करता है धनुष मुकुट आदि म आहाय रोमाञ्च आदि मे सान्त्विक शारीरिक चेष्टाओ से आङ्गिक एव वाणी म वाचिक अभिनय करता हुआ अपन आप को अनुकाय म अभिन दिखता है । परिणाम-स्वरूप सामाजिक उस नट का ही रामादि पात्र समचता है और उसम सानादिविषयक रत्यादि का अनुमान करता है ।^१ इस प्रकार भनिता द्वारा किया गया अनुकरण रसानुमिति का कारण होता है ।

यद्यपि केवल अनुकरण नट म स्थाया की अनुमिति म उसकी अवास्तविकता सूचित हाना है । फलत वह मिथ्याज्ञान हा हुआ । उसम शृङ्गारादि रमा भी उत्पत्ति सम्भव नहा है । इस प्रकार का वाचक ज्ञान भी हो सकता है । तथापि इसका समाधान यह है कि मणि-दीपक याय म अयन्न समानता क कारण अवास्तविक रत्यादि म ना शृङ्गारादि का उदय हो जायगा । अभिनय राम म सर्वथा पृथक् हाने पर भी चित्रतुरगयाय म सम्भव मिथ्या मशय और मादृश्य के बाध स भिन्न ज्ञान म अभिन प्रतात हाना है ।^२

यहा भट्टतीत को प्रमाण मानत हुए अभिनव १ शङ्कुव का मत निम्न तर्कों क आधार पर साङ्गीत उताया है—

१ भरत ने कहा स्थाया के अनुकरण का निवेश नहीं किया है ।^३

२ अनुकरण अङ्कित रूप म दखा गइ वस्तु का ही हाना है । जब सामाजिक ने रामादि का दखा ही नहीं ता कैम समझगा कि नट उनका अनुकरण करता है उसकी वष भया चष्टादि को देखकर रत्यादि क अनुकरण का भावना उत्पन्न होना सम्भव नहा है । क्याकि व जन् है । नात्र मानस व्यापार होने म सूक्ष्म है । चष्टाएँ नत्रग्राह य गेनी है ता रत्यादि हृदय स बोध्य । रति आदि

१ विभावा हि काव्यवचनानुसन्धेया । अनुभाव शिक्षात । व्यभिचारिण कृत्रिमनिजानुभावाजनवगत । स्थाया तु काव्यवचनदपि नानुमध्य ।

रति शोक इत्यादयो हि शब्दा रत्यादिकमभिधयोक्त्वन्धभिधा तत्वेन ।

अभिभा० भा० १ पृ० २७३

२ वही ।

३ न च मुनिवचनम् एवविश्रमन्ति क्वचित् स्थाय्यनुकरण रसाइति ।

—वही, पृ० २७६

अनुकार्यगत है तो ध्रुविक्षेपादि चेष्टाएँ अनुकर्तृगत । दृग्निए देश-गत अन्तर है ।^१

३ नट के हृदय में स्थिति रति को गम की रति का अनुकरण मानें तो तो वह किस रूप में और किसके लिए है ? यदि नट के चारों प्रकार के अभिनय में नट की मानसिक स्थिति की ही रति के रूप में प्रतीति मानें तो वह अनुकरण नहीं रहेगी । न सामाजिक नट-गत रति को दृष्टिग मान सकता है । ऐसा समझने पर रसानुभूति भी सम्भव न होगी । वास्तविक रति का अभाव जो ठहरा ।^२

४ नाव्यार्थ-बोध में आलम्बन जादि वा बोध मानता भी सगत नहीं । क्याकि नट सीता का कभी अपना आलम्बन नहीं गमनता । अनुसंधान का अर्थ बोध-योग्य होना लेने पर अनुकरण की अपेक्षा साक्षात् रति को ही क्या न स्वीकार किया जाए । म्थायी भाव के ही रसानुभूति का मुख्य तत्त्व होने में सामाजिक नट की वेधभूषा देखकर एव उमके द्वारा बते गये—

सेय ममाङ्गेषु सधारसच्छटा समूढरूपैरश्लाकिका वृशी ।
मनोरथश्रीमनस शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचर गता ॥^३

तथा—

दूराकषणमोहमन्त्र इव मे तन्नाम्नि याते श्रुति
चेत कालकलामपि प्रकृष्टे नावस्थिति ता बिना ।
एतं राकुलितरूप विपतरतेरङ्गैरनङ्गातुरं
सम्पद्येते कथ तदाप्तिसुखमित्येत न वेद्मि स्फुटम् ४ ॥

इस प्रकार के पचन सुनकर उमी को रावण समझे ।

शब्द-रूप ने जो स्थायी के अनुकरण में रस की प्रतीति कही है, उसके सम्बन्ध में एक प्रश्न यह और उठता है कि अनुकरण में उनका अभिप्राय क्या है । अनु का अर्थ सदा भी है और पश्चात् भी । यदि कहा कि सादृश अथ लेकर नट रामादि की चित्तवृत्ति का अनुकरण करता है तो यह सम्भव ही नहीं है । क्योंकि पहले मूल वस्तु को जान लेने पर ही उसके सदाश चेष्टा या नवल होती है ।^५ जब गाय को कोई दख लता है, तभी कह सकता है कि गवय गम्य

१ अभिभा० भा० १ पृ० २७४ ।

२ वही, पृ० २७५

३ का० प्र० का० ४, २६ (उदा०)

४ लो० एव बापि०

५ अभिभा०, पृ० २ ५

के जैसा है। जब नट ने राम को या उसके भावको यथाय रूप में जाना ही नहीं तब भला वह कैसे यह दावा कर सकता है कि मैं राम की चित्तवृत्ति का अनुकरण कर रहा हूँ। यदि 'अनु' का अर्थ पश्चाद्भाव लें तो अर्थ यह होगा कि मैं राम के पीछे करता हूँ। ता राम के पश्चात् होने वाला जो शोक है उसे भी अनुकरणस्वरूप मानना होगा जो कि प्रकृत में दूर है। यदि कहे कि किसी निश्चिन्त व्यक्ति का अनुकरण नहीं बल्कि उत्तम प्रकृति पात्र के शोक का अनुकरण करता हूँ तो प्रश्न होगा कि किम वस्तु के द्वारा यह अनुकरण करते हैं। क्योंकि शोक के द्वारा ता अनुकरण सम्भव है नहीं, नट को शोक किम वात का? जब वह शोक का अनुभव ही नहीं करता तो अनुकरण जैसा करेगा? जामू आदि बड़ाकर यदि शोक का अनुकरण करने की बात कहो तो वह भी ठीक नहीं। क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि जामू बहाना स्थूल काय या चेष्टा है जब कि शोकादि भाव मानस व्यापार होने में सूक्ष्म हैं। स्थूल में सूक्ष्म का अनुकरण सम्भव नहीं है। अतः केवल यह कह सकते हो कि रामादि के शोक के अनुभावा का अनुकरण कर रहा हूँ।^१ पर तब भी कठिनार्थ यह खड़ी होगी कि जब तक रामादि के शोक के अनुभावा को देखा नहीं, तब तक उनका अनुकरण कैसे किया जा सकता है?

वस्तुतः नाट्य में अवस्था के अनुकरण का विधान है, किसी भाष का नहीं। जैसे कोई यदि मृतक का अनुकरण करता है तो वह मृतक की भाँति श्वास-प्रियादि गेव कर निश्चेष्ट होकर उसकी नकल करता है न कि मर कर। मर ही गया तो अभिनय क्या करेगा? अतः स्थायी का अनुकरण सम्भव नहीं है। भरत ने भी स्थायी के अनुकरण को रस नहीं कहा है। शृङ्गार रस के अनुकरण को हास्य का उत्पादक अवश्य माना है अथवा शृङ्गाराभास का।^२

यहाँ एक भ्रान्ति यह हो सकती है कि अभिनवगुप्त अनुकरण के सिद्धान्त का खण्डन करने सत्य का अपनय कर रहे हैं। क्योंकि जब वे नाटक आदि रूपक को ही वास्तविक काव्य मानते हैं और नाट्य अभिनयमूल होना है। अभिनय अनुकरण को ही कहते हैं।^३ अभिनय के द्वारा क्यावस्तु को रसास्वाद की ओर ले जाया जाता है। भरत ने स्वयं नाट्य को अवस्थानुकृति और

१ अभिभा० भा० १, पृ० २७५

२ यद्यपि 'शृङ्गारानुकृतिर्यानु स हास्य' इति भुनिता निरूपित तथाप्योत्तर कारिक तत्र हास्यगमत्वम्।

—लो० पृ० १७८

३ भवेदभिनयोऽवस्थानुकार स चतुर्विधः।

—साद० ६, २

लोकवृत्तानुकरण रूप माना है।^१ अभिनेता को इस अनुकरण के कारण ही अनुकर्ता कहा जाता है। नाटक में वह स्वयं तो राम या रावण का स्थान ले नहीं सकता। यही सबको अनुभव होता है कि राम या रावण के चरित्र का अभिनय हो रहा है। बच्चे भी रामलीला आदि देखकर उसके अनुकरण में धनुष-बाण आदि लेकर उसी प्रकार की चेष्टा करते हैं एव लोग देखकर हँसते हैं। फिर शङ्कु ने क्या अनुचित बात कही जो अभिनव गुप्त ने इस प्रकार उनके विचारों का खण्डन किया है।

वस्तु स्थिति यह है कि अभिनवगुप्त अनुकरणवाद को अस्वीकार नहीं करते। उन्हें आपत्ति शङ्कु की व्याख्या पर ही है। प्रसङ्ग यहाँ रसोत्पत्ति का है। शङ्कु के अनुसार नट में रत्यादि की वास्तविक उपस्थिति नहीं रहनी। पर ऐसा मानने में मूलोच्छेद होना है। क्योंकि स्थायीभाव की अनुपस्थिति में रसोद्बाध की भी समावना नहीं रह जाती।

इस लिये अभिनव गुप्त का कहना है कि वास्तव में नट जब रङ्गमंच पर राम की भूमिका में आता है तो वस्तु-स्थिति का ज्ञान उसे भी रहता है। परन्तु जब वह 'रामेणप्रियजीविनेन' और 'स्मिन्प्रथमामन' आदि वचनों को बोलता है, इनका अर्थ उस भी समझ में आता है, फलस्वरूप उसे अपनी कान्ता आदि विभाव का स्मरण हो जाता है। उस स्मरण के कारण उसके हृदय में नित्य वासनारूप में विद्यमान स्थायी उद्वेग ही उठता है। परन्तु वह तो राम की भूमिका में है, उसके अपने स्थायी का स्मरण के स्थायी के साथ मन्तुलन कैसे होगा? इस लिये समान अनुभूति होने में साधारणीकरण हो जाता है। उसके आधार पर वह अपने आपको राम ही दिखाता है। जब यह तमयता उसमें आ जाती है, सामने विद्यमान सीता की भूमिका में स्थित अभिनेत्री उसके लिये सीता ही हो जाती है। उसके मुकुट, जटाजूट और मुनिवेष एव वचन आदि अभिनय, रसमंच पर बना दन का दृश्य सारे वातावरण को वास्तविक भा प्रत्यक्ष बना देते हैं। उस समय सामाजिक नट को 'यह वह व्यक्ति है'। इस रूप में नहीं समझते बल्कि राम है, यही समझते हैं।^२ शङ्कु मत के अनुसार यह

१ लोकवृत्तानुकरण नाट्यनेतृमया कृतम् । — नाशा० १, ११२

२ तु०—मुकुट-प्रतिशीघ्रकादिना तावन्नटबुद्धिराच्छाद्यते । गात्रप्राक्तनहृदय-सस्काराच्च काव्यबलानीयमानापि न तत्र रामधीविश्राम्यति । अत एवोभय देशकालत्याग । रोमाञ्चादयश्च भूयसा रतिप्रतीतिवारितया दृष्टास्तत्रापि लौकिका (वाचलोकिता) देशकालनियमेन तत्र रतिं गमयन्ति । यस्या स्वात्माऽपि तद्वासनावत्त्वादनुप्रविष्टः । अत एव न तटस्थतया रत्यवगमः ।

स्थिति नहा आती। नट म राम का आरोप करन में आहाय बुद्धि ही हाती है।

अनुकरणवाद की परम्परा

अनुकरणवाद जिस प्रकार भारत में भारत क नाट्यशास्त्र से चला, पश्चिम में जर्मनी में, जिन्होंने कविता नाट्यकृति आदि को अनुकरण (Imitation) का परिणाम माना।^१ प्लेटो के अनुसार मण्डि के प्रत्येक पदार्थ का स्रष्टा परमात्मा है उसका अनुकरण कुम्हार आदि करते हैं। उनकी रचनाओं का प्रतिवृत्ति बनाकर तैयार करते हैं। अतः उनकी रचनाएँ नकल की नकल भी होने से सवथा अवास्तविक है।^२ प्लेटो का दृष्टिकोण आदर्शवादी था। किंतु अरस्तू की दृष्टि कलावादी थी। इस लिये अनुकरणवाद क सम्बन्ध में उनकी भावना निन्दा (Condemnation) का न थी। प्रत्येक कलाकृति अनुकरण पर निर्भर है। आदि होरस प्राचीन ग्रीक लखक कवि क लिय प्राचीन लखक की कृतिया का अनुमीलन आवश्यक मानत थे।^३

वास्तव में अनुकरण दो प्रकार का जाना है एक वह जो किसी वस्तु की सजीव म पूरा प्रतिलिपि हो। दूसरी वह जो कि मूल वस्तु पर आधारित नई कृति हो। इनमें यदि प्रथम प्रकार की कृति काव्य-क्षेत्र में होगी तो वह निन्दित और चोरी समझी जायगी। परन्तु यदि पहली रचना क आधार पर कलाकार कोई नई उकृष्ट कृति तैयार करता है तो उसकी विशेषता होगा। बाण ने पहले प्रकार क कवियों क सम्बन्ध में लिखा है—

अथवणपरावृत्त्या बन्धं चिह्नं निगूहन् ।

अनाख्यात सता मध्ये कविश्चोरो विभाव्यते ॥४

न च नियतकारणतया । येनाजनाभिपद गादिसम्भावना । न च नियत-
परामैक्यततमा । यन दु खद्वेषाद्युदय । नन साधारणीभूता सन्मानवृत्तेरे-
कस्या एव वा सविदा मोचरभूता रति श्रुत गार । साधारणी (भावना च)
विभावादिभिरिति ।

—अभि भा० २८६

1 Epic poetry and tragedy comedy also and dithyrambic poetry and the music of the flute and of the types lyre in most of their forms are all in their general conception modes of imitation

—राम अवध द्विवेदी—साहित्य सिद्धान्त पृ० १७

२ वही पृ० १६

३ वही, पृ० १२

४ हच० प्रस्ता० ७

उद्भट ने कालिदास के कुमारसम्भव के आधार पर अपना काव्य लिखा और उसका नाम भी कुमारसम्भव रखा । इसमें उन्हें यग नहीं मिला । इसके विपरीत कालिदास ने रामायण में रामचरित्र लिया, वही-वही भाव-नाम्य भी है किन्तु उनके काव्य में मौलिकता है । उन्होंने कथानक की मामूली वहाँ से ली पर उसे अपने ढंग में सुसज्जित किया । कुमारसम्भव की कथा शिवपुराण में मिलती है पर कोई यह नहीं कह सकता कि कुमारसम्भव शिवपुराण की नकल है । महाभारत में वर्णित शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तल में सवथा वदन गई है । आनन्दवर्धन ने भी किसी भीमा के भीतर अनुकरण को ग्राह्य माना है।^१ अरस्तू की मायता है कि अनुकरण केवल बाह्य किया नहीं है और न वह जीवन का वाचिक प्रतिलिपि मात्र है । कवि अनुकरण द्वारा रूप और तबीन अर्थ की सृष्टि करता है तो जो प्रत्यक्ष है उसे परोक्ष से मिला देता है ।^२

पर यदि यह अनुकरण सत्य के सर्वथा समीप हो, प्रतिलिपि यथाय में मूल वस्तु प्रतीत हो तो भी कलाकार प्रशंसा का ही पात्र होगा । नाटक में यह अनुकरण की प्रवृत्ति ही तो होती है । ध्वनि के मतानुयायी जो कि मानव को अनुकरण में सर्वथा कुशल बन्दर का वशज स्वीकार करते हैं अनुकरण को मानव की मूल प्रवृत्ति मानते हैं । काव्य में शब्दों से, चित्र में रेखाओं से मूर्ति में आकृति से और नाटक में वेप-भूषा व वातावरण तथा अभिनय में अनुकरण किया जाता है ।

इस प्रसंग में अरस्तू का कथन है कि अनुकरण का विषय है त्रियाशील मानव । क्रियाशील मानव से यह स्पष्ट संकेत है कि मनुष्य की चर्चा यहाँ उस के सजीव रूप में की गई है जिस में वह कर्ता तो होता है और भोक्ता भी । त्रिया केवल बाह्य कृत्यों का नाम नहीं है, अगितु अन्तर्बृत्तिया का समावेश भी अनिवार्य रूप से होता है ।^३

नाटक में या काव्य में जब मानव की इन अन्तर्बृत्तियों का भी प्रस्तुतीकरण सम्पन्न होता है, तभी वास्तविक अनुकरण होता है ।^४ नाटक में अभिनय ही प्रधान होता है और अवस्था का अनुकरण ही अभिनय कहलाता है ।^५ आरभ

१ तु० तत्र पूर्वमनयात्म तुच्छात्म तदनन्तरम् ।

तृतीय तु प्रसिदात्म सान्यसाम्य त्यजेत् कवि । —ध्वन्या० ४, १३

२ मा०मि० पृ० १७

३ बही पृ० १७

४ त्रैलोक्यस्यास्य सवस्य नाटय भावानुकीर्तनम्, नाशा० १, १०७

५ भवेदभिनयोऽवस्थानुकार । साद० ६, २

भ भरत नाट्य को स्पष्ट रूप में लोकवृत्तानुकरण घोषित करता है।^१ इसी नाट्य के दो प्रकार माने हैं—लोकधर्मी और नाट्यधर्मी। इनमें जो नाट्य राजा का प्रकृति और मनाभावों को तो प्रस्तुत करता है परन्तु शुद्ध और आटम्बर से रहित हो लौकिक व्यापार और सामान्य जन के दिनन्दिन व्यवहार से युक्त हो अङ्गों की लीला—हाथ आँख आदि छ अङ्गों से किया जाने वाला अभिनय जिसमें न हो अनेक स्त्रियाँ और पुरुषों पर आश्रित स्वाभाविक अभिनय वाला नाट्य लोकधर्मी कहा जाता है।^२ लेकिन जिसमें पात्र सामान्य श्रेणी में ऊपर के स्तर के वढ चढ कर वचन बोलते हैं छ अङ्गों से किये जाने वाले अभिनय अट गहार आदि से युक्त ही स्वर उदात्तादि एव अलटकार आदि से युक्त वचन वाले जायें दिव्य और उनकी श्रेणी के राजा आदि के चरित्र पर आश्रित हो पवन स्य आदि वाहन तलवार हथौड़ा आदि सभी सामान्य से युक्त नाट्यधर्मी होता है।^३

उन दोनों में ही अभिनय अवस्था का होता है। राजा की स्थिति में मनुष्य के वस्त्र पहनना कर्मे बालें करेगा मुख-मुख की स्थिति में कौसी चेष्टा करेगा किस प्रकार के भाव प्रकट करेगा ये सब अभिनय द्वारा दिखाया जाता है। इस अभिनय के द्वारा पात्र के अन्तर्मन का ज्ञान होता है। जब दुष्यन्त कहता है—

रभ्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जत्तु ।

तच्छेत्तसा स्मरति नूनमभौषपूर्वं

भादस्मिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥^४

ये वाचिक अभिनय सामाजिक को मान करता है कि राजा को किसी की याद सना रही है। कवि यहाँ अभिनय सङ्केत देता है 'इति पर्युत्सुकस्तिष्ठति' सचिन्तस्तिष्ठति स्मृतिम अभिनयति' आदि न कि स्मरण करोति' या 'स्मरति आदि। सचितस्तिष्ठति का अर्थ भी चिन्तनमभिनयति' ही होगा। इसीलिये भरत ने नाट्य के लिये भावानुकीर्तन शब्द का प्रयोग किया है न कि भावानुकरण का। इसका तात्पर्य अभिनयवगुप्त न इस रूप में समझाया है

१ नानाभावापयम्पत् नानावस्थान्तरात्मकम् । लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेत-
न्मया कृतम् । नाट्या० २ ११२

२ वही, १३, ६७-६८

३ वही, १३, ६८-६९ ७२

४ शाकु० ५ २

कि अनुव्यवसाय का अनुभव कराना ही नाट्य है।^१ अनुव्यवसाय का अर्थ होता है किसी वस्तु को देखकर द्रष्टा का यह अनुभव करना कि मैं इस वस्तु को देख रहा हूँ। किसी अभिनेता में जब अभिनेय का आहार्य ज्ञान किया जाता है तो आराप होता है कि नट को रामादि समझ लिया जाता है। तब अभिनेता अपने अभिनय से सामाजिक को अनुभव कराता है कि मैं रामादि को देख रहा हूँ। यदि लोक की भाँति अनुकरण का अर्थ लिया जाय तो सामाजिक यह समझेगा कि यह रामादि की सी चेष्टा कर रहा है। अभिनय का सामाजिक को यदि यह भेद-बुद्धि हो गई तो मारा ही आनन्द जाता रहेगा। क्योंकि दूम्प की चेष्टा का अनुकरण करने से तो जोगी को हँसी आती है। इसी लिये शृङ्गार में हास्य की उत्पत्ति बताई गई है। इसी कारण अभिनय ने जहाँ अनुकरण का निषेध किया है, वहाँ यह भ्रम होता है कि वे अनुकृतिवाद के विरोधी हैं। पर उनकी दृष्टि में अनुकरण वही है जिसमें अनुकर्ता और अनुकाय का सामान्यीकरण हो जाय। तब सादृश्यज्ञान न रहने से भेदबुद्धि नहीं होगी।^२ जान ट्राइडन की परिभाषा के अनुसार नाटक मानव-स्वभाव का एक सनातन चित्र है जो उसकी भावना और भाग्यपरिवर्तनों को निरूपित करता है। चित्र में भी मनुष्य की अवस्था को ही प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें द्रष्टा उस अवस्था में चित्रित ध्वनि की आन्तरिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को स्वयं अनुमान आदि द्वारा जग सके।^३ यह वचन अभिनय गुप्त के विचार के निकट है। गट्टुक के मत में भरत या अभिनव का मत इसीलिये दूर जा पड़ता है कि शब्द कुछ केवल बाह्य अभिनय को ही स्वीकार करते हैं। आन्तरिक भाव की सत्ता भी स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत अभिनव की मान्यता है कि बाह्य चेष्टामात्र का अनुकरण रसानुभूति नहीं करा सकता। क्योंकि उसमें प्राण नहीं होता। अतः नाटक में अनुकरण के स्थान पर अभिनय होता है जिसके द्वारा पात्र के

१ अभिभा०, १, पृ० ३७

२ तु०—न हि नटा रामसदृश स्वात्मना शोचन् करोति। सर्वथैव तस्य तदा-
भावात्। भावेनाऽनुकारत्वात्। न चान्यद् वरन्वन्ति यच्छोकेन सदृश
स्यात्। अनुभावास्तु करोति। किन्तु सजातीयानेव। न तु सदृशान्।
साधारणरूपस्य च येन सादृश्यात्।

—अभि० भा० १, पृ० ३७

मनोभावों का भी ज्ञान होता है। कुम्भू स्वामी शास्त्री ने इस बात को विस्तार से स्पष्ट किया है।^१

प्रकृत में इस अनुकृतिवाद की उपयोगिता यही है कि शङ्कुक ने अभिनय की अवगमनशक्ति के नाम में पुकारा है।^२ अवगमन व्यञ्जन या ध्वनन से गृह्य नहीं है। उसकी अपेक्षा भाव या रस के मूर्तन के लिये होती है। क्योंकि रस-

- 1 The answer is simple Abhinavagupta gives us that the imitation spoken of by Bharata and that spoken of by Sri Sankuka are poles asunder Sri Sankuka speaks of and means the mechanical imitation of one person by another Bharata on the other hand, speaks of imitation *not* exactly in the sense of 'अनुकरण' but really in the sense of 'अनुभव-वाच' This is what, according to Abhinavagupta Bharata means The poet is steeped in the experience of the world By the force of his wide observation and the faculty of imagination in him, he selects, regroups and rearranges human qualities and features and creates his own personages—'of various essences distilled' He names one Rama and another Ravana simply in order that his readers might easily understand what he creates, because, these are Puranic figures and because the world already associates good qualities with some and wicked ones with others of these known figures The actor, being likewise a man of worldly experiences makes his imitation in the sense of idealisation The critical spectator is in quite a similar case He knows how to distinguish the idealisation of characters by the creative artist from the imitation of persons by the mechanical mimic The difference between Bharata's discussion of imitation and Sri Sankuka's is beautifully stressed by Abhinavagupta in the following statements

तद्विदमनुकृतिनमनुव्यवसाय-विशेषो नाट्यापरपर्यायो नानुकार इति
अमितव्यम् । (A B P 36)

- २ अवगमनशक्तिर्हि अभिनयन वाचकत्वादग्या । अत एव स्थायिपद मूर्ते
भिनविभक्तिरपि नोक्तम् । तेन रतिरनुक्रियमाणा श्रुट्गार इति
तदगमकत्व तत्प्रभवत्त्वं च युक्तम् ।

भावादि वाच्य नहीं होते, सदा व्यङ्ग्य ही होते हैं। जब वस्तुध्वनि भी व्यञ्जना के द्वारा ही बिम्बित होगी है तो रसभाव एव उनकी परिपाकावन्न अवस्था भला किस प्रकार अभिहित हो सकती है? अनुकरण ही अभिधायन है। अतः जिस प्रकार का अनुकरण प्रकृत उद्देश्य की सिद्धि के लिये हो सकता है, यह उपर्युक्त विवेचन में तुलनात्मक विश्लेषण में स्पष्ट हो गया है।

भट्टनायक का भावकत्व एव भोगवाद

मीमांसक भट्टनायक ने रसानुभूति या उसके साक्षात्कार के लिये भावकत्व नामक व्यापार की कल्पना की है जो कि अभिधाय गुप्त के अनुसार साधारणीकरण ही है। अभिधा के द्वारा शब्दाथ भाव का बोध होता है। रस कथा में उसका प्रवेश नहीं होता। इसलिये भावक व्यापार में विभावादि का साधारणीकरण होता है। बाद में महृदयधिन की द्रुति विस्तार और विकास में तीनों अवस्थाओं होती है। इससे रसानुभूति होती है।

वास्तव में यह साधारणीकरण व्यापार ही अथ भावों के मूर्तन का मुख्य साधन है। कवि के भाव का सम्प्रेषण पाठक अथवा सामाजिक तक उस साधारणीकरण से ही सम्भव है। उस साधारणीकरण का स्वरूप क्या है, इस सम्बन्ध में आचार्यों ने विवृत विवेचन किया है।

भट्टनायक रसानुभूति के लिये अभिधा, भावना और भोगीकरण इन तीन व्यापारों की कल्पना करते हैं। उनके अनुसार अभिधा में तो केवल वाक्याथ-बोध होता है, भावना से निरन्तर पर्यालाचन में भावानुसन्धान होता है और पर्यवसान में उमका भोग अर्थात् चवषा होती है। न रस की उत्पत्ति होती है और न अनुमिति केवल भोग होता है।^१ मीमांसा दर्शन में अथवा बोध के लिये भावना का आवश्यक माना गया है। जैसे इस शब्द का प्रयोग जगन्नाथ ने भी किया है^२ परन्तु उहोह इसका अर्थ पुन पुन अनुसन्धान किया है जो कि पर्यालोचन से पथक् नहीं है। क्योंकि रस-भावादि शब्दवाच्य तो होता नहीं जो कि शब्दाथ की प्रतिपत्ति के साथ ही बोध का विषय बन जाय। अब भावकत्व व्यापार का इसमें योग होता है। रस की प्रतीति भी नहीं होती। क्योंकि प्रतीति किस में होगी? अनुकाय में या अपने अन्दर? अनुकाय रामादि की अनुपस्थिति

१ द्रष्टव्य—लौ०पृ० १८२-२३

२ तु०—तदीयसहृदयतासहकृतेन भावनाविशेषमहिम्ना रग० पृ० २३
कारण च तददर्शिने भावनाविशेषे पुन पुरानुसन्धानात्मा।

के कारण उनमें तो प्रतीति संभव नहीं है। अपने में माने तो शृङ्गार में तो भले ही मुख का अनुभव हो जाय पर कहणरस में शोक का अनुभव होने में दुःख का अनुभव होगा। पुनः शृङ्गारादि की भी प्रतीति कैसे संभव है? सीता शकुन्तला आदि तो आलम्बन बन नहीं सकते, पूज्यबुद्धि बाधक होगी। अपनी कान्ता के प्रति भावानुभूति होती नहीं न सीता-विषयक रति वा रामादि के साथ साधारणीकरण संभव है, वही पूज्यत्व बुद्धि बाधक होगी। शृङ्गारादि में साधारणीकरण मानसिक दुर्बलता और आदर बुद्धि त्याग कर मान भी लें तो हनुमानगत उत्साहादि के सम्बन्ध में क्या होगा? क्योंकि प्रमाता को पता है कि समुद्रनखन की सामर्थ्य उसमें नहीं है। राम और सीता के परस्पर शृङ्गार की प्रतीति मानें तो लज्जा जुगुप्सा आदि बाधक होंगे।

इस नियम काव्य में दोषों के अभाव, गुणालंकार आदि के रहने में और नाट्य में चारों प्रकार के अभिनय में प्रमाता के हृदय की जो रसानुभूति में बाधक आविष्टता आदि की अवस्था है, वह दूर हो जायगी। इसके पश्चात् भावकत्व व्यापार जो दूसरी कथना में है, के प्रभाव में विभावादि के साधारणीकरण में रामादि भावना का विषय बन जाता है, तब भोग नामक व्यापार में ही कि मानसिक द्रुति, विस्तार अथवा विकास रूप है और ब्रह्मानन्द के तुल्य होता है, इसमें आस्वादन विभा जाता है।

यदि एक कठिनाई यह खींची जाती है कि विभावादि का साधारणीकरण किस के साथ होगा? अनुकूल के साथ? दुःख की चिन्तनबृत्ति के साथ अपना साधारणीकरण कैसे संभव है? विभावादि का स्पष्ट भेद रहेगा। जब लज्जादि का अनुभव होगा तो साधारणीकरण कैसे हो सकता है। पुनः अपनी रत्यादि के अभाव में दुःख की रति में सम्बन्ध कैसे जोड़ सकते हैं। यदि आपत्तियाँ इस मत का स्वीकार करने में उपस्थित होती हैं। इस लिये अभिनवगुप्त का कथन है कि वास्तव में प्रमाता के हृदय में भी कामना के रूप में रत्यादि भाव विद्यमान रहते हैं। काव्याय के अनुसंधान और नाट्यादि के दर्शन में वे उद्बुद्ध हो जाते हैं। परन्तु सीतादि विभावों के साथ उसके विभावों का ऐक्य कैसे होगा? पूज्यत्वादि की बुद्धि तो तब भी बाधक होगी। अतः रामादि एव आत्मीयता की भेदबुद्धि को त्यागना होगा। इसमें आलम्बन के विषय में स्त्री-सामर्थ्य बुद्धि रह जाती है, रत्यादि भी आत्मगतत्व और परगतत्व की भेद बुद्धि को त्यागकर रति-सामान्य रूप में अनुभूत होते हैं। तब शुद्ध भाव रह जाने में उनकी चमत्कारमय अनुभूति होती है, यही रस है।

इस मत की विशेषता यह है कि इसगे सामाजिक की रति का योगदान स्वीकार किया गया है। भट्ट नायक के मत में उसे स्वीकार नहीं किया गया था। दूसरी बात है कि राम-सीतादि की वैयक्तिक परिस्थिति और स्वकान्तागत आत्म रति के विशेष भेद का जोप माना है। यहाँ विभावादि का भी साधारणीकरण होता है और रत्यादि का भी। स्त्री पुरुष-नामान्य और भाव सामान्य रह जाने में ही भेद-बुद्धि का जोप होता है।

इस साधारणीकरण में सामाजिक और पात्र दोनों की रति तो आर्द्र पर कवि की रति कहर गई? उसकी चर्चा इस बीच में न होने से ही आधुनिक समीक्षका को यह आन्ति हुई है कि रमास्वाद में कवि का भाग स्वीकार नहीं किया गया है। परन्तु इस बात का पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है। भरत न जब रसानुभूति की समानता बीज में वृक्ष के जन्मादि से की तो सारी आपत्ति दूर हो जाती है। बीज पृथ्वी के अन्दर रहता है बाहर दिखाई नहीं देता। उसका विकसित रूप ही वृक्ष पुष्प और फल है जो कि बाहर दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कवि का भाव अथवा उसके हृदय में विद्यमान रस ही मूल होता है जो कि प्रत्यक्ष नहीं होता। भरत न जब कवि के भाव को अनुभवयोग्य बनाने का कारण ही भाव का भावत्व धोपित किया तो कवि की उपक्षा कहा हो गई? वास्तव में नाटक में तो कवि प्रकाश में आता ही नहीं है जो उसकी रत्यादि प्रकाश में आये। श्रव्य काव्य में कवि की टिप्पणी आदि चलती रहती है और वह कथावाचक के रूप में सामने आता है। स्वयं पात्र बन कर नहीं। अतः उसकी अनुभूति उसमें भी प्रत्यक्ष नहीं होती। केवल चोरपञ्चाशिका जादि में या शृङ्गार-शतक में कवि का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष उभर कर आता है। वस्तुतः मन्वृत में अंग्रेजी साहित्य के Subjective और Objective इन भेदों में काव्य का वर्गीकरण नहीं हुआ है। केवल स्तोत्र काव्य एसे है जो कि Subjective श्रेणी के मान जा सकता है। मेघदूत में भी कवि अप्रत्यक्ष ही हँसते ही वृक्ष के रूप में उस को छिपा देते हैं। यहाँ तक कि अमरुशतक में भी कवि पृष्ठ-भूमि में ही रहता है। 'जानि कापपराड्मुखी' आदि पद्या में अस्मद् शब्द के प्रयोग में यह भ्रम नहीं करना चाहिये कि कवि अपना ही वृत्त कह रहा है। आधुनिक समीक्षा में यही आन्ति घर कर गई है। स्वयं आधुनिक विद्वान् हिन्दी कवि अज्ञेय ने अपनी कविता 'द्वितीया के प्रति' के प्रसंग में इस का स्पष्टीकरण किया है।^१ पर जहाँ तक यह मान्यता है कि काव्य में कवि का भाव मूल रूप में छिपा रहता है इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

१ ना०शा० ६, ३८

२ 'शेखर एक जीवन्ती' की भूमिका।

घट्ट नायक द्वारा स्वीकृत भोगोत्तरण अभिनव क अनुसार रम प्रतीति मे पृथक् नहीं है । इसी प्रकार भावक व व्यापार विभावादि के अनुगीतन के द्वारा भाव को आस्वादन के योग्य बनाना ही है और कुछ नहीं ।^१

इस प्रकार रत्यादि के विभावादि द्वारा उदबुद्ध होन पर साधारणीकरण न चरम विद्यन्ति के रूप मे अनुभव करना ही रम है । वही चमत्कारात्मा है ।^२

इत रस का अनुभव करने का पात्र प्रतिभान की शक्ति स सम्पन्न मन वाला व्यक्ति होता है जो सूक्ष्म बातों का पकड़ सकता हा ।^३ वह जब काव्य क 'ग्रीवाभङ्गाभिराम'^४ आदि वचना को सुनकर उनका आशय समझ लेता है ता वष्य विषय का साक्षात्कारात्मकबोध होता है जिसमे विभिन्न वाक्यों से हान वाली काल-भेद की विषमता तिरोहित हा जाती है । क्याकि ग्रीवाभङ्गाभिराम आदि म ता स्ताकमुर्व्या प्रयाति इम क्रिया म वर्तमान काल है किन्तु उमापि नीलालक^५ आदि पद्य म क्रिया भूतकाल की है, वर्तमान काल मे विद्यमान प्रमाणा अतीत म हुई घटना का साक्षात्कार कैम करेगा, यह व्यपत्ति साक्षात्कार म बाधा उत्पन्न कर सकती है । पर कवि क भाव क साथ साधारणीकरण हान से प्रमाणा उसा भावावस्थिति म पहुँच जाता है जिसमे पहुँचे हुए कवि ने वह सब लिखा या । परिणामस्वरूप काव्य या नाटय म वर्णित भीत मृग शिशु ती एव सामाजिक ती व्यक्तिगत सत्ता समाप्त हो जाती

१ प्रतीत्यादिव्यतिरिक्तश्च समारे वा भोग इति न विदम रमनेति चेत् मापि प्रतिपत्तिरेव । यत् काव्येन भाव्यन्त रसा इत्युच्यन्त तत्र विभावादिजनितध्वना मनास्वादरूपप्रयत्नोचरतापादानमय यदि भावन तदभ्युपगम्यत एव । अभिभा० २७७

२ संवेदनादप्रया व्यङ्ग्यपरमवित्तिगाचर ।

आस्वादाना माऽनुभवो रम काव्याथ उच्यन्त ॥

—वही पृ० २७७

३ अधिकारी चान विमलप्रतिभानशाविहृदय ।

—वही पृ० २७६

४ शाकु० १७ देखा टिप्पण २४६

५ उमापि नीलमलकमध्यगामि विस्त्र सयन्ती नवकणिकारम् ।

चकार कण्ठ्युतपल्लवेन मूर्ध्ना प्रणाम वृषमह्वजाय ॥ —कुम ३६२

६ द्रयादि वाक्यभ्या वाक्याथप्रतिपत्तश्नन्तर मानसी साक्षात्कारात्मिकाऽ—
पहमिततत्तद्वास्यापात्तकालादिविभिभागा ताव प्रतातिरूपजायत ।

—अभिभा० १ पृ० २७६

है। फलस्वरूप काव्यनिबद्ध भय आदि भाव जात्मगतत्व और परगतत्व की सङ्कुचित सीमा का अनिर्गमण करके भावभौम और सबसुगीण बन जाते हैं। फलस्वरूप भयानक रस प्रतीति का विषय बनकर माना आद्यो के आगे धूमन लगता है। यह साधारणीकरण सङ्कुचित न हाकर ध्वानक होना है और जानना में युक्त सभी महुदया को रसाध्वान हो जाता है।^१

इसी प्रकार रसा मिरना जुड़ना भाव सुगीणह्वर भट्टाचाय न प्रकट किया है। उनके अनुसार भी प्रमाता रसाध्वान के समय अपनी सङ्कुचित मता को भूत जाता है और उमका अट व्यापक हो जाता है वह ऐम दिव्य भाव लार में पहुँच जाता है जहा सम्पूर्ण महुदया में उमका भयद सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसी एकता का अभिनव गुण न हृदयमवाध की मत्रा दी ह।^२ इसी प्रकार के भाव रसा रञ्जन मूर्च्छी ने प्रकट किए ह।^३

काव्य की चरणा करते हुए और विलक्षण चरणाजन्य प्रतिक्रिया में पून व्यक्ति के मन का चौक जाना ही चमत्कार कहलाता है। वह मा नाकागमन मानग व्यापार या सङ्कल्प या स्मृति के रूप में प्रतीत होता है। यह स्मृति तार्किका का अभिमत यथायनुभव में हान वाला स्मरणान्मक ज्ञान न होकर प्रतिभात है जिमको दूसरे शब्दा में साक्षात्कार या प्रत्यक्षीकरण कह सकते हैं।

१ अभिमा० १, पृ० २७६

२ At the time of experiencing poetry, the appreciator forgets his own narrow self and his ego-boundaries are expanded so to say. As a result of this he experiences his oneness with all the connoisseurs of poetic art and undergoes a state that is referred to as *Hridayasain vāda* by *Abhinavagupta*. The appreciator starts to experience the feelings in his representative capacity as the expansion of his ego-boundaries takes place. —Im in *Maha* p 21

3 Indian aesthetics gives an extended scope to the process of Universalisation and asserts that at the time of the appreciation of poetry the experience is Universalized or in other words is conducted to the higher plane of consciousness, reaching which he discovers his connection with humanity at large.

सांस्कृतिक को अभिमत स्मृति इसलिए नहीं है कि वह पूर्व अनुभव पर आश्रित होती है जबकि रस का अनुभव पहले नहीं होता है।^१

लोक में कारण, नाय और सहयोगी कारण के नाम में व्यवहृत तुल्य काव्य और नाट्य में विभाव अनुभाव एव मञ्चारी भाव कहलाते हैं। ये अलौकिक पद उन्हें वैयक्तिक गीमत्त में उठाकर सार्वभौम बना देते हैं। यद्यपि ये रम्यादि भाव सामान्य हैं पर काव्य का जटिल बनने पर वे दर्शनार्थी के रूप धारण कर लेते हैं, उन्हें साद्वर्णना एवं चित्रवर्णनीयता प्राप्त हो जाती है।^२ इस साद्वर्णनीयता द्वारा ही वे कि एव सामान्य में भाव-संवाद या हृदय-संवाद संभव होता है। अनुभवा की वैयक्तिकता में जा टपटपी, अमूया, शङ्का त्राम आदि की संभावना रहती है एक द्वारा तुल्य हो जाती है। प्रमाता की सङ्कुचित वृत्ति का नाप हानकर विक्रम होता है और वह अनुभूति के एक दिव्य क्षण में पहुँचता है जहाँ उस प्रकार के दुःखदायी अनुभवों के लिए कोई स्थान नहीं रहता है।^३

यह साद्वर्णनीयकरण जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाट्य में भी अभिनय, नाट्यधर्मी अभिनय के उपकरण विभाव अनुभाव और मञ्चारी भावों की सहायता में संभव होता है। रङ्गशास्त्र का वातावरण सामान्य नायक में पृथक् होता है। यह अवश्य है कि प्रसङ्ग, औचित्य आदि का उसमें ध्यान रखना पड़ता है। जैसे शृङ्गार में गीति नृत्य ज्ञान-परिहास उन वातावरण के उपयुक्त चित्र आदि उपयोग रहते हैं किन्तु मधुप के ममम जोगीला वातावरण रहता है। अतः इन स्थान पर शीघ्र के उद्दीपक संवाद आदि उपयुक्त रहते हैं। काव्य में कल्पना का सहायता में प्रसङ्ग गान्धर्व वातावरण बनाया जाता है। पर नाट्य में सामग्री रङ्गमञ्च पर प्रयत्न-कल्प होती है, इसलिए अभि-

१ द्र० टि० १ ६४

Indian aesthetics gives an extended scope to the process of Universalisation and asserts that at the time of the appreciation of Poetry, the experiencer is Universalized, or in other words is conducted to the higher plane of consciousness, reaching which he discovers his connection with humanity at large —Imagery in poetry P 31

२ Im in Poetry P 36

३ अमि भा० १, पृ० २८१

नवगुण, भद्र तौन और वामन प्रबन्धकाव्य, उसमें भी दशरूपकात्मक को ही वास्तविक काव्य स्वीकार करते हैं। क्योंकि प्रत्यक्षीकरण पर कवि का सारा कौशल निभर करता है।

इनमें यद्यपि रस परिपोष के लिए स्थानी के अतिरिक्त विभावादि की अपेक्षा की गई है, तथापि प्रसङ्गवश कहीं चमत्कार विभाव की प्रधानता से सम्भव होना है जिसमें साधारणीकरण ही जाता है कहीं अनुभावों या संचारिया की प्रधानता से। कहीं दो की प्रधानता रहती है, अभिनव किन्तु सबकी समान रूप में प्रधानता का प्रमुखता देते हैं जो कि नाट्य में ही हो पाती है।^१

इनमें विभाव की प्रधानता निम्न पद्य में पाई जाती है—

केलीकन्दलितस्य विभ्रममधो घुर्गं वपुस्ते दूशो
भङ्गीभङ्ग गुरकामकामुकमिद भ्रुनमकुमभ्रम ।
आप्रातोऽपि विकारकारणमहो चक्रप्रभृज्जन्मासव
सत्य सुन्दरि बेषसस्त्रिपतीसारस्त्वमेव कृति ॥^२

यहां नायिका का असाधारण सौन्दर्य आलम्बन मात्र की प्रधानता लिए है जिसके वन पर विस्मय के साथ-साथ रति रूप स्थायी का उदय अथवा उद्रेक होता है। मालविकाग्निमित्र में मालविका का देखकर जनिमित्र के "दीर्घाक्ष शरदिन्दु"^३ जादि भावोद्गार भी इसी विभावप्राधान्य की श्रेणी में आते हैं।

अनुभाव दो प्रकार के होते हैं जिनमें कुछ तो भावोदय के परिणाम-स्वरूप स्वतः ही आविर्भूत हो जाते हैं। उन्हें मार्त्तिका भाव कहते हैं। इन्हें

१ किन्तु समप्राप्तय एव रसास्वादस्योत्कर्ष । तच्च प्रबन्ध एव भवति ।
वस्तुनस्तु दशरूपक एव । —अभिभा० १, २५७

काव्येऽपि नाट्यमान एव रस । काव्याद्यविषये हि प्रत्यक्षकल्पमवेदनोदये
रसोदय इत्युपाध्याया । —वही, १, २६०

सन्दर्भेषु दशरूपक श्रेय । गद्वित्रिचित्र चित्रपदवद्विशेषसाकल्यात् ।

—वाल् मू वृ० १, ३, ३०-३१

२ अभिभा० १, पृ० २८६

३ दीर्घाक्ष शरदिन्दुकान्ति वदन बाहू नतावसयो

सक्षिप्त निविडोन्नतन्मामुर पार्श्वे प्रमूष्ट इव ।

मध्य पाणिमितो नितम्बि जघन पादावरालट्गुली

छन्दो नर्तायितुर्यथैव मनस श्लिष्ट तथास्या वपु ॥ —मालवि० २, ३

काद व्यक्ति जानबूझ कर उत्पन्न नहीं कर सकता । दूसरे अनुभाव यत्नज हान है । पहन मूग्म हान है दूसरे स्थून । भरत न मात्त्विक भावा का सम्बन्ध सीधा मनाभावा क साथ हान म उह भावा क वाच गिनाया है यत्नज चण्डा का नना । क्याकि वे अय नारणा म भा उत्पन्न हा सकती है और कृत्रिम ना ।^१

कान्ति चद्र पाण्य न पारचाय काव्य शास्त्र क अध्ययन प्रसङ्ग म मनाविज्ञान का दष्टि म मात्त्विक भावा का उत्पत्ति पर विचार किया है । यत्नज अनुभाव बाह्य हापन मानव क मस्तिष्क म हनवन उत्पन्न करत है जिन्म नाशिया म भा क्रिया म उत्पन्न हाना ह उस अन्गा का मञ्चानन मोता है । यत् इच्छा य ममव न हान क कारण अपत्नज ही है ।^२

मात्त्विक भाव भरत न आठ गिनाय है—स्तम्भ स्वद रामाञ्च स्वभङ्ग वपथु (कम्प) वैवथ्य (रग फाका पन्ना) अश्र और प्रनथ (मूछा)^३ पर कात्म्बरी आदि म कुष्ठ अय विकार भा दम्भ पय हैं जैम—अन्गा का स्फुरण श्वासात्पम एव नयन आदि का लाल हाना इह भी अयत्नज हान स मात्त्विका म गिनाया चाहिए ।^४ कुष्ठ क विचार म नज्जा का अनुभाव गमंते

१ इत् हि सत्त्व नाम मन प्रभवम् । तच्च ममाहितमनस्त्वादुच्यते । मनस ममाग्नी मवनिष्पत्तिभवति । तस्य च यामौ स्वभावो रोमाञ्चाश्रुववण्णा दिनक्षणा यथाभावात्पगत । स न शक्याऽयमनमावतु मिति लोकस्वभादानु करणवाच्च नात्यस्य सत्त्वमीप्सितम् । —नाशा० १ पृ० ३७५

2 The movements excited in brain by external stimulus, direct animal spirit to wards certain muscles and cause movement of limbs Thus involuntary action is the reaction to external stimulus in wh ch the will plays no part e.g we involuntarily close our eyes at a friend s thrusting his hand to strike them This action is involuntary or reflex Stimulation of different nerves is responsible for difference in the cause of movements of animal spirits and accordingly in the physical response —West Aesth p 197 नाशा० ७ ६४ ।

८ (क) अनन्तर च मन्मन्मदनावकाशम इव दातुम् आहितसताना निरायु श्वासमहत् ।

(ख) सामिलाप हृदय द्यातुवामम एव स्फुरितमुखमभूत कुचपुगलम् । —का० पृ० २६८

से मुख पर लाली आना (Blushing) भी सात्त्विको में गिना जाना चाहिये। सामान्यतः Blushing का अर्थ शर्माना करते हैं तो वीटा, ह्री आदि शब्दों से उमका सङ्केत हो जाता है पर मुख की लाली उसका अर्थ लें सात्त्विक में ही उसकी गणना उचित है। इतना अवश्य है कि नयनमुख आदि का लाल होना शृङ्गार और क्रोध दानो में समान रूप से सम्भव है पर Blushing केवल शृङ्गार में या उससे सम्बद्ध किसी बात को कहने सुनने या देखने में ही हो सकता है।¹

कुछ लोग इसका अन्तर्भाव वैवण्य में करते हैं। वैवण्य का अभिनय भरत ने मुख का रंग बदलने एवं नाडी-पीडन आदि में करने का परामर्श दिया है क्योंकि यह काय कठिन होता है।² साहित्य वपणकार भेहरे का रंग बदल जाना ही वैवण्य मानत हैं क्योंकि विवर्णता का अर्थ विगतवर्णता और भित्तवर्णता भी सम्भव है।³ भक्षण में त्रिवर्णता के कारणों में विपाद, मद और रोष तीनों का गिनाया है। आगे "आद्य" पद से अन्य कारणों को सम्भावना भी स्वीकार की है। अतः उनमें लज्जा का भी समाहार हो जाता है। एक बात और है, विपाद के कारण से मुख का रंग या तो उब जाता है या काला पड़ता है। परन्तु मद और रोष में लाल होना है। लज्जा में भी लाल ही होता है। अतः मद और रोष के द्वारा लज्जा का समाहार करने से रक्तवर्णता का ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु यह आश्चर्य की बात है, किसी भी आचार्य ने शब्दतः इस अनुभावा में नहीं गिना है। यह अवश्य है कि Blushing सात्त्विक भाव ही हो सकता है, अन्य अनुभाव नहीं। इसलिए उसका अन्तर्भाव वैवण्य में ही सम्भव है।

(ग) मलयवाग्भामिप्रस्थितस्य मनसो भागमिवोपदिशद्भिः पुर प्रवृत्त श्वामैः ।
—वा०, पृ० २७०

(घ) स राजा रोपताम्राक्ष वारा ५ ४०, २ ।

(ङ) विशेष विचार के लिए क्वचित्तर्गता सात्त्विकभावाः ।

—वि० स० नव०, १६६८, पृ० ३-१०

1 शब्दार्थ—A missing link in Sanskrit literature and Poetics— by Dr R C Jaitly, in Principles of Literary Criticism of Dr R C Dvivedi, Motilal Banarsidass, pp 51-66

२ मुखवर्णपरानृत्त्या नाडीपीडनयोगतः ।

वैवण्यमभिनतस्य प्रयत्नात्सिद्धिं दुष्करम् ॥

—नागा० ७, १०५

३ विपादमदरोषाद्यैर्वर्णान्पित्व विवर्णता ।

—साद ३, १३६

अस्तु, सात्त्विक भावा का चमत्कार अन्य अनुभावो की अपेक्षा अधिक होता है। उसकी प्रधानता से होने वाला साधारणीकरण निम्न पद्य मे पाया जाता है—

यद्विभ्रम्य विलोकितेषु बहुशो निस्थेमनी लोचने
यद् गात्राणि दरिद्रति प्रतिदिन लूनाग्निनीपालवत् ।
दूर्वाकाण्डविडम्बकश्च निविडो यत्पाण्डिमा गण्डयो
कुण्ठे धूनि सद्योवनासु वनितास्वैर्यैव वेद्यस्यति ॥^१

इसमे श्रीकृष्ण ने प्रति गोपिकाओ का अभिलाष विप्रनम्न रत्न है। अनुभाव के रूप मे उनके नयनो का स्तब्ध रहना, अङ्गा की क्षीणता, कपोल का पीला पटना ये सात्त्विक रहे गये हैं, जिनका चमत्कार प्रधान रूप से हृदय को प्रभावित करता है। मञ्चारियो पर आधारित चमत्कारमूलक साधारणीकरण—

आत्तमात्तमधिकान्तमोक्षतु कानरा शफरशङ्किनो जहो ।
अञ्जलो जलमधीरलोचनालोचनप्रतिशरीरलाञ्छितम् ॥^२

इस श्लोक मे देख सकते हैं। यहा अपनी अञ्जली मे लिए पानी मे अपने नेत्रो की परछाईं पडने पर उमे मछली समझकर बार-बार घबराकर टालती हुई किसी मृगधा नायिका के विलक और त्राम आदि मञ्चारियो का चमत्कार प्रधान है।

अभिनव गुप्त आदि आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठापित यह साधारणीकरण का सिद्धांत सभी आचार्यों को मान्य नहीं हुआ। वे लोग इस प्रकार रत्यादि और आलम्बन आदि का भेद होने से रस-बोध सम्भव न मानकर एक दोष-विशेष की कल्पना करते हैं जिसके द्वारा मुख्य पात्र-गत भाव उहे अपने अंदर भी प्रतीत होने लगता है। उस भाव के कारण ही वे रस-अनुभव स्वीकार करते हैं। इस भाव की अपने अन्दर स्थिति भ्रमभाव होती है। दोष के द्वारा ही सहृदय की अपनी दुष्यन्त आदि नायक के साथ अभेद बुद्धि हो जाती है। शकुन्तलादि के प्रति तब आलम्बन बुद्धि भी हो जाती है। यहा जगन्नाथ का एक कथन यह भी है कि इतिहासप्रतिपादित दुष्यन्त शकुन्तला एव सहृदय के साथ अभेद सम्बन्ध मे अध्यवसित दुष्यन्त-शकुन्तला दोनो पृथक् हैं। उनकी स्थिति सीप मे प्रतीत हुए रजतखण्ड की सी होगी जो कि केवल दाप-विशेष की देन है। उनके अनुसार

१ अभिभा० १, पृ० २८६

२ वही, १, २८६।

दुष्यन्तादि के विभावादि के साथ अपनी विभावबुद्धि दोष की कल्पना के बिना सम्भव नहीं।'

जगन्नाथ द्वारा प्रतिपादित यह मत आधुनिक जालोचको के इस मत में मेल खा जाता है कि शकुन्तला आदि सामाजिक के भी आलम्बन बन सकते हैं। अन्तर इतना है कि उनके मत में किसी दोष-विशेष की बात नहीं कही गई है। जैसे यह बात भावना पर निर्भर है। नाक में देखा जाता है कि बहुत में चिन्तनी बहिन और पुत्री आदि में भी अगम्यात्व की दृष्टि नहीं रखते। उनके लिए शकुन्तला आदि का क्या महत्त्व है? एक व्यक्ति राम और सीता का ऐतिहासिक पात्र ही नहीं मानता उसकी दृष्टि में सीता के लिए पूज्यात्व बुद्धि कहाँ से होगा? इसलिए जगन्नाथ का यह कथन भी अशत ठीक है कि सामाजिक का साधारणीकरण कवि की रति में होता है। परन्तु विभावादि के साधारणीकरण में शकुन्तला आदि की बुद्धि नहीं रहती। तब तो स्त्री सामान्य की बुद्धि रहनी है और रामादि में दुष्यन्तादि का दोष होता है।^१

विश्वनाथ के मत में जब सामाजिक के हनुमान् के साथ साधारणीकरण या अभेद बुद्धि की बात की जाती है तो उनके अनुसार भी आलम्बन के साधारणीकरण की बात सिद्ध होती है।^२ चिन्त के जगन्नाथ की भाँति किसी ऐसी प्रतिबन्धक की कल्पना नहीं करनी है जो शकुन्तला आदि में अगम्यात्व आदि की बुद्धि का रोक सके।

रामचन्द्र शुक्ल ने भी साधारणीकरण पर विचार किया है। उनके अनुसार मत्स्य के आचार्य सामाजिक का साधारणीकरण कवि अथवा अनुनाम की चित्तवृत्ति के साथ मानते हैं।^३ इससे उनकी अरुचि ध्वनित होती है। उनका मुकाम आलम्बन के साथ साधारणीकरण की ओर है जिसका अशक समर्थन नग्न भी करत है। परन्तु केवल चित्तवृत्ति या केवल विभावादि का साधारणीकरण मानने में पूर्वोक्त दोष आ जाते हैं। पुन जब नट को भी हम काव्यावचिन्तन में सामाजिक काटि में गिनत हैं, तब उसका साधारणीकरण किसके साथ होगा केवल कवि की चित्तवृत्ति के साथ या विभावादि के साथ भी? यदि केवल चित्तवृत्ति के साथ मानें तो विक्रमोद्योग वाली विपत्ति आ

१ गग० पृ० २५।

२ रीतिकालीन काव्य की भूमिका पृ० ४

३ उल्गाहादि गमुद्बोध साधारण्यभिमानत।

नृणामपि समुद्रादिलब्धनादौ न दुष्यति ॥

—साद० ३, ११

४ रस-मीमांसा

—पृ० ३४४ नाप्र० स० ३, स० २०१७ प्रका०

खती होगी। वहाँ कवि की रति उर्वशी-मुहुरवा की परस्पर रति के रूप में है, उर्वशी लक्ष्मी की भूमिका में है अतः उम विष्णु के प्रति रति का अभिनय करना चाहिए था। पर उमकी निजी रति थी। पुरूरवा के प्रति। उम ही वह अभिव्यक्त कर बैठी और रसभङ्ग हो गया।^१ कारण उमकी रति का कवि की रति के साथ ता साधारणीकरण हुआ पर विभाव के प्रति वैयक्तिकता बनी गयी। इसी कारण अर्थात् अभिनय के प्रसङ्ग में नट नटी का रसानुभूति में भाग स्वीकार नहीं किया।^२ बड़ा चार प्रकार के अभिनयों में नास्तिक भी एक है। नास्तिक का वह अभिनय मात्र करना है हृदय में वस्तु न रखना नहीं। उमका अपनी वैयक्तिक रति तटस्थ रूप में रहनी है। हा, काव्यार्थ के अनुभूति में उम वैयक्तिकता का खास मत ना वह ही रसानुभव कर सकता है।^३

यदि साधारणीकरण विभावादि के साथ भा हा जाता है तो विभावा का या तो वैशिष्ट्य समाप्त करना होगा और उन्हें भी लोक-सामान्य के धरतल पर लाना होगा अथवा सामाजिक का अपनी भावभूमि का उदात्तीकरण करके उम्मी ऊँचे स्तर पर पहुँचना होगा जिस पर कवि की भावभूमि है। क्योंकि उसमें यह अंतर स्पष्ट रूप में देखा जाता है। जब हम कानिदास के 'जनाप्रान् पुष्प'^४ जादि पत्र का पढ़ते हैं तो उममें शकुन्तला के मामल मौदर्य और उमके प्रति वामना की प्रीति जाना है। उमके विपरीत भवभूति के 'म्लानस्य जीव कमस्य' जादि पत्र का पढ़ते और मुनते हैं तो उममें सीता के बाह्य मौदर्य के प्रति जावपण के स्थान पर आन्तरिक प्रेमवृत्ति की आम्बाद्य चेतना का

१ तु०—लक्ष्मीभूमिकया वनमाना उर्वशी वासुकीभूमिकया वतमानया मनकया पुष्टा। समग्रता त्रैलोक्यपुरुषा सकशवा वाकपाला। कतमिन् हृदयाभिनयज्ञ इति। तस्या पुरुषोत्तम इति मणितव्ये पुरुषवर्मीनि निर्गता वाणी।
—वि०, १०, १-२

२ शिक्षाभ्यामादिमात्रेण राघवाद् मरुपताम्।
दशयन्ततका नैव रमस्यादम्बादका भवन् ॥
—सा०, ३, ६६

३ काव्यार्थभावननायमपि मभ्यपदास्पदम्।
—सा०, -, १६११

४ शकु० २ १०

५ म्लानस्य जीवकृमुमस्य विकामनानि
सन्तपणानि मङ्गलद्रियमाह्वानानि।
एनानि त मुवचनानि मराहृहाक्षि
वणामृतानि मनमश्च रमायनानि ॥

अनुभव होता है। सुखविप्रधान व्यक्तिगो का रुझान इसी औदात्य की ओर रहता है। नागिनस को इसी प्रकार का औदात्य अभिप्रेत रहा होगा। ग्राम्यत्व, अश्लीलत्व, विरहमतिक्रमत्व आदि दोषों के निराकरण का तात्पर्य यही था कि ग्राम्य या अश्लील शब्दों के श्रवणमात्र में सम्य समाज को अरुचि का अनुभव होता है, पुन बहिन, पुत्री, माता आदि के सान्निध्य में उनका प्रयाग या उच्चारण सङ्कोच उत्पन्न करने वाला हान्य है। हा, जो उसी स्वर के लगे है, उन्हें इस प्रकार के शब्दों पर कोई आपत्ति नहीं हानी।

अतः साधारणीकरण का वास्तविक तात्पर्य निर्वेपकनीकरण या सावभौमता को प्राप्त करना ही है। यह तभी सम्भव है जबकि मनाभाव, विभायादि सभी का निर्वेपकनीकरण हो। पात्र भी दिव्य भावलाव की वस्तु बन जाये। इसके साथ साधारणीकरण में यह भी अभिप्राय है कि भावादि का सामान्यीकरण किया जाय। पात्र यदि उच्च स्तर का है और सामानिक निम्न स्तर का तो इस वैषम्य का अनुभव होने से उसका साधारणीकरण सम्भव न होगा। काव्य नाटको में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि रामकृष्ण आदि महापुरुषों का भी मानवी वातावरण में ही प्रस्तुत किया जाता है, लोकोत्तर रूप में नहीं। उत्तर-रामचरित में हम राम को सामान्य मानव की भाँति सीता के वियोग में विकल देखते हैं।^१ अभिज्ञानशावुतल में धीरोदात्त दुष्यन्त शकुंतला को देखते ही कामवृत्ति का विकार हो जाता है। "मुहुरड्गुलिसवृताग्रोष्ठ"^२ सद्गुण वचन

१ ग्राम्यत्वम् ग्राम्यकक्षातित्रातमप्राप्ततागरभावम् । ग्राम्यता प्रयाजक विदग्ग्राविदग्प्रमिद्धाप्रमिद्धत्वप्रयुक्तगोभारहित्व वैमुख्यप्रयाजकम् ।

—वा ३०, २६०

त्रीशालाम्बनविभावादिभूताऽमभ्यार्थोऽस्मिन्निद्वारेत्यर्थे

—वही, २४६

इदं च प्रकृतप्रतीतिरपचनत्कारापकपकमिति बोध्यम् ।

—वही, २७४

२ तु — हा हा देवि ज्वलति हृदय ध्वसते देहबन्ध

शून्य मन्य जगदविरलज्वालमस्तज्वलामि ।

सीदन्प्रेतमसि विधुरा मञ्जलीवातरात्मा

विध्वत्सोह मगयति कथं मदभाग्यं करोमि ॥ —उच० ३, २८

३ मुहुरड्गुलिसवृताधरोठ प्रतिपेधाऽग्विकनवाभिरगमम् ।

मुषमसविदति पक्षमलाभ्या कथमप्युन्नमित न चुम्बिल तु ॥

—शाकु० ३, २४

उसकी रति के लिए अधीरता व मूचक हैं, गम्भीरता क नहीं। यह सब सामाजिक का वैपम्य का अनुभव न होन देने के लिए है। नगन्द्र की यह आपत्ति कि बुरे आदमी व साथ साधारणीकरण काट न करना चाह्या।^१ कोई प्रबल नहीं है। सामाजिक स्वयं जब उन बुरादया से खाली नहीं है तो वह उसमें घणा व्यक्तिगत रूप में कैम करगा? क्या वस्तुतः रति की घृणित वस्तु व प्रति सहानुभूति हागी है? आनीकियममयण म वाल्मीकि शूर्पणखा का सीता एव गम क साथ वैपम्य दिधान है।^२ क्या उनकी सहानुभूति दोना व प्रति है? वस्तुतः बड़ा दोना म विषमता दिखाकर शूर्पणखा का उपहास किया है। एमो इतिया म जिनम समाज क कृत्सित पक्षा का चित्रण हाता है वहा बाभ्रम रम प्रदान मानना चाहिए। प्राचीन प्रहमना म समाज क एम ही वर्ग का चित्रण चित्रित किया जाता था। इमम कुरुमा का भाव हा पुष्ट हाता था। अन्यथा निम्नस्तर क व्यक्तिना का उनका पात्र क्या बनाया गया? लाग दिना क विवृत जात्रण का इखनर हो ता उसकी हँसी उठान है। एम आनम्बन क प्रति कामा का भाव था हाता। यदि सहानुभूति हागा ता उपहास चाइ नग करगा।

ए प्रमत्त ग म साधारणीकरण का अभिप्राय यट भी है कि सामाजिक का भावक बनना पन्ता है। कट वार कवि की भावभूमि बहुत गहरी जयवा ऊँची हाती है। सामाय व्यक्ति की उम तक पहुँच नहा हाती। परिणामम्बटन बह एमा रचना का कठिन या जसट गत कट दता है। उदाहरण क त्रिप वासुदेव शरण जप्रवाल हाग का गइ मेघनूत की आध्यात्मिक व्याख्या का एक आलाचक न अप्रामटि गक और खीचतान घापित किया। किन्तु दतना कहन म काम नहीं चलता। एम प्रकार ता बदमन्या की अरविन्दकृत व्याख्या उन्ह गटग्या का गान बतान वाल पाश्चात्या क लिय उपहास का विषय हागी। वस्तुतः कवि की भाव भूमि तक पहुँचन क लिय उस कई वार पढना पन्ता है। तभी काव्य का आलाचनामूत कहा गया है। आलोचक प्रवर आइ० ए० रिचर्ड्स ने इमी लिय उन लागो का उपहास किया है जो एक वार ही किता रचना को पढकर उम समझन का दम्भ करत हैं।^३

१ राका भू० पृ० ५४

२ वारा० ३ १८ १३

3 It is that most poetry needs several readings in which its varied factors may fit themselves together before it can be grasped. Readers who claim to dispense with this prelimi

दार्शनिक आधार

अभिनव गुप्त ने भला की बरिखा 'यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो' आदि के व्याख्यान में विज्ञानवाद, स्फोटवाद, द्विधाभिधान आदि अनेक दार्शनिक सिद्धांतों का संक्षेप किया है पर उस प्रकृतानुसंगी मान कर स्पष्ट नहीं किया है। परन्तु विज्ञानवाद और स्फोटवाद दोनों विम्ब सम्प्रथी प्रारणा के समर्थन हैं। क्योंकि सबभूय मानने वाले विज्ञानवाद के अनुसर वस्तु-मत्त्व न होने पर भी विज्ञान या बुद्धि के द्वारा पदार्थ दिखाई देते हैं।^१ इसी प्रकार काव्य के शब्द-व्यापारमात्र होने पर भी उसमें वर्णित पदार्थ प्रत्यक्षवत् दिखाई देते हैं। स्फोटवाद के अनुसार तो पदार्थों पर उसके जागर के मात्र होगा।

भोज ने शृङ्गार को एक मात्र रस मानते हुए उसका उद्भव 'अहम्' में स्वीकार किया है।^२ सारग दशन में जिस प्रकार महत् तन्व में 'अहम्' का उद्भव होने के पश्चात् ही तन्मात्र, इन्द्रिय और महाभूत पर वैकारिक सग का उदय स्वीकार किया गया है।^३ वस्तुतः रत्यादि भाव की शृङ्गार रूप में

nary study, who think that all good poetry should come home to them entirely at a first reading hardly realise how clever they must be —Practical Criticism p 190

१ अत्र च विज्ञानवादी, द्विधाभिधान स्फोटतत्त्व, रसकार्यवाद एकत्वदशन-मित्यादि द्रष्टव्यम् । वयं तु प्रकृतानुसंगी-श्रुतलक्ष-सन्दर्शनमिथ्याप्रवास-सश्रयमगिहितपूर्विण रत्याम्नाम् । —अभिमा०, भा० १, पृ० २६४

२ विज्ञप्तिभाक्त्रमेवेदमतदर्शविभासनात् ।

नद्वत तैमिग्वस्यासन् वेगोऽदूमादिदजनात् ॥

यत स्वबीजाद् विज्ञप्तिर्यदाभासा प्रवर्तते ।

द्विविधायनत्वेन तं तस्या मुनिरश्रवीत् ॥

—विमासि०, १, १, ६

३ रसाभिमानोऽहृदकार शृङ्गार इति गीयत ॥

—सक०, ७, १

४ यत्तत् सत्वगुण स्वच्छ ज्ञान्त भगवत पदम् ।

यदाहुर्वासुदवाप्य चित्त तमहदादिकम् ॥

—भापु०, ३, २६, २१

महत्तत्त्व यं विकुर्वाणाद् भगवद्बीर्यमभवात् ।

क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविध समपद्यत ॥

—वही, १, २८, ३

वकारिकाद् विकुर्वाणान् मनस्तत्त्वमत्रायत ।

सत्त्वत्कल्पयित्वाभ्या वर्तत कामसमव ॥

—वही, ३, २६, २७

ते तामानीन्द्रियाण्येव क्रिया-ज्ञान-विभायण ।

—वही, ३, २६, ३१

सामनाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्बीर्यचोदितात् ।

परिणति अहम् क काम की हा तृप्ति हाती है। भरत ने भी कवि क मानस म स्थित वाच रूप म अभिनय एव काव्यान्वय का प्राप्ति रूप पुष्प जीर फल की प्राप्ति कही है। इस दृष्टि में वह मत विधान क अनुकूल है। वदात क अनुसार भी तत्त्वमसि आदि क श्रवण मनन निदिध्यासन आदि क पश्चात् तेष माद्यक माहम् का अनुभूति तक पहुँचता है तभी वह ब्रह्मभूयत्व का प्राप्ति करता है। पर वहा उसक 'अहम् का 'म' म विनयन हाकर 'जाम' मात्र का अवस्थिति रह जाती है। यहा मा प्रमी और प्रमिका क अहम् रूप द्वैत का विनयन ज्ञान पर होना का अद्वैत ज्ञान पर हा पूर्ण शून्य गार हागा। यहा शून्य भावस्य पराकाष्ठाम इत्यति गच्छन्ति 'शून्य गार' इस व्युत्पत्ति का अर्थयता हागा। यहा उक्तिपद् का भा सा काष्ठा मा परा गति' है।

आधुनिक मनाविज्ञान भी सारा प्रवृत्तिया क मूल म मानव क अहम् (ego) का हा स्वीकार करना है।^१ उसकी प्रक्रिया यद्यपि भिन्न है और प्रवृत्त म उस का विवचन अनावश्यक है तथापि यह ता मानना ही हागा कि जहा तक मानव का विभजन प्रवृत्तिया क मूल का प्रश्न है भारतीय और पश्चात् दृष्टिकोण एव विद्यु पर पहुँच जाना है।

मानुभूति का माक्षाकार प्रक्रिया का शव वदात क सिद्धांत म आत्म-साक्षात्कार का विद्या क माद्य समन्वय क्रिया जाता है। उसक अनुसार आदि-तत्त्व महेश्वर सम्पूर्ण विश्व का राज है। उसका जकिनया आत्मप्रकाश, आत्म ज्ञान और जामच्छा है। सम्पूर्ण विश्व इस वी का जाग्राम ही है। उसम म शक्तिया मूय म किरणा का भाति प्रस्फटित हुआ करती हैं। आभास क प्रथम क्रम म जिव एव जकिन का प्रादुर्भाव हाता है जो कि विमश अथवा आनन्दरूप है। जिनम आत्मा जपन ही प्रकाश अथवा सत्ता पर जारूढ रहती है। जावाभाएँ मा जमा महातत्त्व क आभास हैं। परन्तु माया तथा मत्त्व, रजस और तमग गुणा म आकषित हान क कारण क ज्ञानता जनित सुख-दुख इत्यादि क मन् कुचित वधन म जकना रहता है। और आत्मस्वरूप प्रसातित्रय जानद या विमन् म वञ्चित रहता है। जावात्मा का मकुचित करने वाले मुख्य वधन कना विद्या राग नियति और काल हैं। आत्मा यौगिक उनाया स

शब्दमात्रमभूतममानस्य श्रोत्र तु शब्दगम ॥

भाषु० ३ २६ ३०

कामस्तम्भ ममवतता मनसा रत प्रथम यदासाधन ।

ऋ १० १ ६

तथा मूल रसा सर्वे तस्या भावा व्यवस्थिता ॥

—नाशा० ६ ३८

१ मुखप्रायेण सम्भन क्रतुमाल्यादिमवक ।

पुष्प प्रमदायुक्त शून्य गार इति मजित ॥

—नाशा० ६ ४६

२ द० अ० १ पृ० १६

मायाकृत मामास्मि ब्रह्मणो का परित्याग बरके त्रिगुण की सीमा से ऊपर उठता है और शिव की अवस्था में पहुँच कर अपन निगल रूप का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार वह विमर्ग आनन्द या महायोग जयवा चमत्कार का आस्वादन करता है।^१

इस दार्शनिक विश्लेषण के अनुसार आत्मा की निज शुद्ध चैतन्य एव आनन्दमय मत्ता के साक्षात्कार और चमत्कार का अभेद स्पष्ट हो जाता है।

स्वर्गीय कान्तिचन्द्र पाण्डेय ने नाट्य में होने वाले इस रसानुभव को स्पष्ट-रूप में काव्य विम्ब (Image) के रूप में प्रतिपादित किया है। मनोविज्ञान और दर्शन के अनुसार वे स्पष्ट रूप से काव्यानन्द का महत्त्वपूर्ण पक्ष साक्षात्करण या प्रत्यक्षीकरण (Visualisation) मानते हैं। यह अनुभव वस्तुतः मूर्त न होकर मानस मूर्तीकरणरूप का होता है।^२

इस साक्षात्करण का साधन अभिनव गुप्त ने प्रतिभा या प्रतिभान का स्वीकार किया है।^३

१ विक्रमादित्य राम-काव्य-समीक्षा पृ. १०७

2 But the experience is essentially psycho physical. Another subjective pre requisite of the aesthetic experience is therefore the power of Visualization. The real aesthetic image is not what is given. The given is only one third of the total. The suggested elements and the spiritual meaning which are not given are supplied by the power of visualisation which partly removes the shifting of squee-barrier which divides the unconscious from the conscious and brings about the Union of the suggested elements and the spiritual meaning which come from the unconscious, with the given and thus completes the image. This image is different from that which arises in a determinate cognition in as much as the latter is determined by the purposive attitude of the percipient. But in the former case the aesthetic attitude, which is characterized by freedom from all individual purposiveness is the determining factor. Hence the aesthetic image has life which a mere cognitive image totally lacks. This power of clear Visualisation of the aesthetic image in all its fullness and life is technically called Prati-bha' —Indian Aesthetics p 151

३ अपि तु प्रतिभानापरणयाय-साक्षात्कारस्वभावयत्तिविति।

साहित्याचार्य प्रायः इस पक्ष पर एकमत है कि रसानुभूति का अधिकारी मनुष्य ही होता है। अभिनव न उम विम्व प्रतिमान शालिहृदय यह विशयण प्रदान किया है। इसके अनुसार एक सवमाय मत यह बनता है कि रसास्वादन के त्रिय एक विशेष साहित्यिक प्रतिभा और अभिरुचि की अपभा हानी है। उसका पश्चिमी आनाचक भी किमी सीमा तक मानत है। आद० ए० रिचरड म यद्यपि पूर्णरूप म इसम सहमत नहीं ह फिर भी सामान्य साहित्य बुद्धि म वाव्यमौवर्पागुभव की बुद्धि का पृथक् व भी स्वीकार करत हैं।^१ यह पाथक्य ही अधिकारी और अनधिकारी का निणय करता है। विशयभाव न जा पूर्वजम एव बनमान जन्म दोनों म भव्द वासना का रसानुभूति के त्रिय उन्नरदायी ठहराया है^२ उमका आधार यही है कि जिन लोगा म मस्काररूप म इस प्रकार की वामना विद्यमान ह ते ता साधारणाकरण एव इस भाव क साक्षाकरण क योग्य ह। जिनम यह वामना नहीं है, वे गगाला मे तग पत्थर और कुमिया की गीति उम रस प्रतिपत्ति क अधिकारी नहीं हान। वास्तव म रसास्वाद के उपयुक्त विशेष मानसिक स्थिति अपक्षित हानी है जिनका सट्कत अनाविष्ट-त्वादि धर्मों म किया गया है। नाटयशास्त्र क आधार पर गुप्त का मारा रस-विवेचन प्रत्यक्षीकरण पर बन बना ह। उनका मत है कि काव्य क उद्देश्य की सिद्धि अथादिज्ञान क प्रत्यक्षीकरण क विना मभव नहीं ह। वात्स्यायन क मत का प्रमाण बन हुए वे सार ज्ञान की प्रत्यक्षात्मकता पर बल देत है।^३ इसी कारण नाटकादि दृश्य वाव्यो म प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया सहज होन म उम ही

१ वहा १ पृ० २७८

2 The case for a distinct aesthetic species of experience can take two forms. It may be held that there is some unique kind of mental element which enters into aesthetic experiences and into no others. Thus Mr. Clive Bell used to maintain the existence of a unique emotion 'aesthetic emotion' as the differentia

—Principles of Literary Criticism p 9

Art envisaged as a mystic ineffable virtue is a close relative of the 'aesthetic mood', and may easily be permitted in its effects through the habits of mind which as an idea it fosters, and to which, as a mystery, it appeals. —Ibid p 11

३ न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम।—साद०, ३, ६, पृ० २३-२४

४ सर्वा ज्ञेय प्रमिति प्रपक्षपरा। (न्या० सू० भा० १, ३) अभिभा० १, पृ० २८१

वास्तविक काव्य स्वीकार किया है। श्रव्यकाव्य में उतनी सरलता नहीं होती, जितनी दृश्य में। कारण यह है कि दृश्यकाव्य को देखने में तो सामाजिकों में इस प्रकार रसानुभूति और प्रत्यक्षीकरण की योग्यता आ जाती है। पर श्रव्यकाव्य को पढ़ने में सहृदयों ने ही प्रत्यक्षीकरण ज्ञान महभव है। इस कथन में 'श्रव्य' शब्द का प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण है।^१

साथ में दृष्ट्यादृश्य विषयों के सम्बन्ध में द्रष्टा के मन में उनके मत्त में असत्य होने का विकल्प उठता है, नाटक में ऐसा सम्भव नहीं। इसलिए यह लोक में विनक्षण है और प्रत्यक्षानुभूति का विषय होता है।^२

काव्यरस की विशेषता लौकिक रसों से यह है कि यह शब्द-प्रयोग में अनुभूत होता है। जोन में खाद रहन में माध्यम का अनुभव नहीं होता। परन्तु काव्य में यह सम्भव है। शब्द के द्वारा उसका उदय होता है एव उसको प्रयोजक बनाकर काव्य में शब्द का प्रयोग किया जाता है।^३

इस रस की अनुभूति के लिए ही चार प्रकार के अभिनय किये जाते हैं। उनमें जाहाय का उपयोग भी प्रत्यक्षीकरण के लिए ही होता है।^४

काव्यानन्द ऐसा मद्यत होता है कि उसमें वास्तव में श्रेणिविभाजन आदि सम्भव नहीं। अतः वस्तुतः रस तो एक ही होता है। वह मारे दृश्य काव्य में छाया रहता है। पर अनुभूतियों के देश कालकृत विभाग होने से उक्त विभिन्न भागों में विभक्त कर दिया गया है।^५ नाट्य की प्रक्रिया का उद्देश्य ही नाटकीय कथावस्तु को प्रत्यक्षकल्प बनाना है। यद्यपि रूपका की रचना भी शब्दमयी होती है और धूमरि के द्वारा अभिजाति के अनुमान का साथ भी शब्द के माध्यम

१ काव्य तु गुणानङ्कारमनोहरशब्दायशरीरे लाकोत्तररसप्राणके हृदय-मवादवशात् निमग्नान्तरिका तावद् भवति चित्तवृत्तिः । किन्तु सवस्य प्रत्यक्षमाक्षान्कारकत्वात् तत्र न धीरुवेति —अभिभा०, १, पृ० ३६

२ अयमिति प्रत्यक्षकल्पानुष्णवसाय । लोकप्रसिद्धगत्यात्म्यादिबिलक्षणत्वान् दन्तवदवाच्यः ।—वही १, पृ० ३३

३ अत एव शब्दप्रादुभाव इति शब्दा रसा पठ्यन्त इति ।—वही, पृ० २६१

४ चत्वारोऽभिनया ह्येव (२, २३)—आहार्यन्याऽपि ध्रुव प्रतिशीपक—मुक्तादे प्रत्यक्षबुद्धावुपमागन्तत्त्वात् सूचयति । —वही १, पृ० २६८

५ एक एव तावत् परमार्थतो रस सत्त्वस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति । तस्यैव पुनर्भागादुशा विभागः । —वही २७१

म नी हाना इ तथापि अभिनय का वैशिष्ट्य यह है कि उमका व्यापार सब कुछ त्रिया का प्रयत्न-सुप्रदर्शन करने के लिए ही होता है।

अभिनय गण्य न ही नर्त्त अन्त आचार्यो न भी स्त्री पश्य पर द्रव दिया है। विश्वनाथ रसप्रक्रिया के प्रसङ्ग में कहते हैं कि पश्य स्थायी, सुञ्चारा एव उक्त त्रिभावानुभाव का सूक्ष्म-सूक्ष्म धारा ज्ञाता है परन्तु परचान सम्मिलित हान पर प्रत्यक्षतः भासित हान ही है। इस रूप में परिणत मान है। इस प्रसङ्ग में उक्तान वाक्यपदीय का यह वाक्य उद्धृत का है—

शब्दोपरितः पास्तान बुद्धविषयता गतान ।
प्रत्यक्षानिब कसादीन साधनत्वेन भायते ॥१

सत्रहवा गताली के उगमग द्विचमान विश्वनाथ देव के मत में भी रसाद-वाग् न त्रिभावानि का बाध कराने वाले त्रिभावन, अनुभवान, सुञ्चारण आदि व्यापार का प्रथम शब्दादि का उद्भावन पश्य कुछ कम स्पष्ट तब स्पष्टतर और अन्त में स्पष्टतम रहता है। परिणामस्वरूप अन्तमात्रण एवमात्र अनुभूति और प्रयत्न अवभासन रूप प्रभावानुभवता का अनुभव जाता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ के माध्यम में त्रिभावानि के प्रयत्नकारण का व्यापार स्पष्टतरभावानि में ही सम्भव है।^१ यह व्यापार का प्रथम शब्द और अर्थ के माध्यम में उभा प्रकार मात्वावागमय जाता है जैसा कि वद्वान में 'तत्त्वमसि' में मात्वावाक्य का अर्थवाग् मान के पश्चान में ही वद्वान में उभा प्रकार का अनुभव होता है।

अभिनयकाव्यशास्त्र शास्त्रि द्वारा नृसिंह के व न भा रूपक शब्द की

१ अभिनयन नि सुशब्दत्रिभुगव्यापारविसदृशमव प्रत्यक्षव्यापारवत्वमिति निश्चय्याम् ।
—अभिध० १ २८१

२ अत्रापि प्रथममर्ककण प्रतीयमाना सर्वेष्वनाभूता स्फुरत् एव रसता-
मापद्यते । तदुक्तम शब्दादिति (वाप० ३ ७) मद० ३ २८

३ तथाञ्च त्रिभावानुभावन-सुञ्चारणाद्य व्यापारवन्दान तथाविधा मज्ञा ।
तथा च व्यापारणा यथाक्रम ग्वादरापन प्रकाश स्फुरत्तर, स्फुरनमश्च ।
फल विगनितवदान्त-वना-वस्विति पुन स्फुरणादिचम-कारित्व च ।

—सामुमि० पृ० ८६

या च वृत्ति काव्य व्यङ्ग्यनाभूदिति ग्यदव्यय । या च तन्वमसीत्यथव
काव्य शब्दार्थाभ्या माक्षारकाररूपा जायते ।
—वहा, पृ० १०१

व्युत्पत्ति करने हुए यही आशय प्रकट किया है।^१ विशेषकर भी इसी पक्ष पर बल देता है।^२

भाव ध्वनि का भी आस्वादन नहीं होता है जबकि उनका बिम्ब बन जाय। यह ठीक है कि य दोनो ही मानम अनुभूति रूप होने से इनका ऐन्द्रिय बिम्ब बनना सम्भव नहीं परन्तु ऐन्द्रिय बिम्ब का वस्तुतः मूल वस्तुशा का भी नहीं बनना। शब्द के द्वारा वर्णित वस्तु अन्तर्दृष्टि में ही देखी जा सकती है न कि चमचक्षुओं से। अभिनव गुप्त ने इसीलिए प्रत्यक्षकल्प शब्द का प्रयोग किया है। भावना के द्वारा ही हम उस वस्तु को अपने समक्ष मूल हृदय देखते हैं। पुन रस-भाव के साक्षात्कार या प्रत्यक्षकल्प हान का आशय यह है कि नाट्यप्रती के द्वारा सारा वातावरण यथाथ भा बन जाने से सम्पूर्ण जालम्बन और उद्दीपन आदि प्रत्यक्षतुल्य हो जाते हैं। अभिनव-कृत मारा विवचन इय प्रत्यक्षीकरण पर ही बन देता है।^३

दार्शनिक दृष्टि में पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि रस मत्त्व के उद्देश्य से प्रभूत होने के कारण प्रकाश रूप है क्योंकि सत्त्व प्रकाशक होता है। आह्लाद का स्वस्व ही प्रकाशात्मक है। रत्नानन्द के साक्षात्कार में प्रकाश और आह्लाद समाहित रूप में प्रतीत हान है। अभिनव जब रस-मिथ्यात में स्फोटवाद एवं विज्ञानवाद का समन्वय करते हैं सब प्रत्यक्षीभाव में कमी क्या रह गई? पुन भाव को चित्-स्वरूप स्वीकार करने पर रस एवं भाव के प्रकाशरूप होने में संन्देह ही नहीं रह जाता।^४

भरत आदि आचार्यों ने रसा के विवर्ज्य रग बनाये हैं इसका क्या प्रयाजन ?^५

१ रूपयति दशयति रसादिकम् इति रूपकम् । नञ्जराज यशो भूषण पृ० ७४

२ भविष्यान्त-चातुर्यात् साप्तादिव परिस्फुरन् । अतीति कम्ममास्वाद्यो यस्मात्सोऽन रसा मत ॥
—चम०, ४, १

३ काव्याद्यविषये हि प्रत्यक्षकल्पमवेदनादपे रसादय इत्युपाध्यायाः ।

—अभिभा०, १, २६०

तथा—परिस्फुट एव साक्षात्कारकल्प कान्धाद्य स्फुरति ।

—वही, १, पृ० २०७

४ मत्त्वोद्देशादखण्डम्वप्रकाशानन्द चि मय ।

—साद०, ३, २

तथा—स्वमविच्छरणरूपम्यैः पतस्य प्रकाशस्यानन्दमारत्वात् ।

—अभिभा०, १, पृ० २०२

५ श्यामा भवति शृङ्गार सिता हास्य प्रकीर्तित ।

कपोत कवणश्चैव रक्तो रौद्र प्रकीर्तित ॥

पीरा वीरस्तु विज्ञेय कृष्णश्चैव भयानक ।

नीरवणस्तु वीभ्रस पीतश्चैवाद्भुव स्मृत ॥ —नाशा०, ६, ४२-४३

क्या कभी मनामावा का भी रंग होता है ? परन्तु यत्र उन भावों या रसों की प्रतिक्रिया न सूचक हैं। उदाहरण के लिए शृङ्गार रा उर्ष श्याम बतनाया है। श्याम का जय काता नीला नहीं है। क्योंकि व रंग तो भयानक एव बोधन्म म गिनाय है। यह वण गौर व गाथ कुष्ठ इत्यादी तिरा ज्ञान है। शृङ्गार में मनुष्य उज्ज्वल अविष्य व स्वप्न देखता है मात्र जिम मात्रवाग देखना कहत है। टमी कारण शृङ्गार का उज्ज्वल (चटकीरा) भी क्या है तिमका रंग तज चढता है। प्राचीन समय म श्याम वण ली दय का मानदण्ड (Standard) समझा जाता था। शृङ्गार म मानव की वृत्ति उज्ज्वल हो जाती है इसलिये उमरा वण श्याम कहा है। काव्य म चित्त प्रमत्त जाना है हूँमने समय दौन बाहर दिखार्टे दन है उनका चमक मफेदी जानी है। य मभी मफेद जान है इस प्रतिक्रिया व कारण उमका वण मफेद कहा है। रोद्र व वण रक्त कहा है। क्योंकि उमका स्थायी भाव प्राध है। प्राध म मानव का मुख तान हा जाता है। पुन टमम रक्त खोवन नगना है। खून व नजा जोर गर्मी जान पर उमका प्रभाव स्पष्ट तान रंग व रूप म दिखाए दना है। इस प्रकार वण निरूपण टमी दृष्टि न किया गया है कि यथाम्भव रसा का मूल बनाया जाय। अतिनव-भारती म रसा व वण का निरूपण ध्यान म उपयोगी जनाया गया है। किसी ने मुख का रंग बदलन के लिए भी उमका आवश्यक माना है^१।

पाण्डित्य मर्मस्थव यद्यपि रसमिद्वान्त का नहीं मानत तथापि तांशस्वाद जिम के Aesthetic experience नाम म व्यवहृत करत है, व प्रमदुग म का ता-करण एव अमूल व मूर्तीकरण पर जन दन है। इस प्रमदुग म इटली के प्रसिद्ध विचारक क्रोचे (Croce) ने ज्ञान की स्वयंप्रकाशता मध्य-ग्रीमन का स्पष्टीकरण करत हुए विप्रमादिय राम न दिखा है कि स्वयंप्रकाश ज्ञान मानन मन की शाश्वत एव कलात्मक उद्गम की हेतु प्राथमिक श्रिया है। क्या भी मय म स्वयंप्रकाशात्मक जानरसा है एव आत्मा का रूप ज्ञान व कारण शाश्वत (Eternal) है। इसम बौद्धिक मत्व या प्रमा (Concept) का स्पष्ट नहीं जाना है मनाविभाषावन्म्वी (Individual) जाना है जबकि प्रमा सामान्यावन्म्वी (Universal) जानी है। स्वयंप्रकाश ज्ञान कल्पना प्रसूत जाना है जोर मूर्तिमान् (Imagistic) भी। टमने मितरर प्रमा भी इसक रंग मेरग जाी है। यह व वस्तुमा के मस्तर मानवमन न विद्यर रहत है परन्तु जब व अत वरण

१ शृङ्गार शचिरज्ज्वल ।

—अको०, १, , १०

२ यर्णाभिधान पूहादी ध्यान उपयोगि । मुखरामेश्वरियन्व ।

की स्वयभूत क्रिया द्वारा मगठित तथा मूर्तिमान् होने है सभी वे स्वय प्रकाश (Intutions) की मज्ञा प्राप्त करते हैं। इस मानस-क्रिया के उत्तरण नवीन या प्राचीन हो सकत है पर मन के लिए उनका यह अन्तर गौण है। वहा मुख्य बात है अमृत को मृत बनाना तथा विभिन्न तत्त्वों का एकता के मूत्र म अनुस्यूत करना जिनमे व एक तत्त्व व अवयवमात्र हो जायँ और अपनी सत्ता को एकत्व में विनोद कर दे। स्वयप्रकाश ज्ञान का विजिष्ट अट्ग है अभिव्यक्ति (Expression) जमूल का मृत बनाना आदि^१।

यहा मिलानकर देखा जाय ता यह मत बहुत कुछ भारतीय मत में मेल खाता है। विश्वनाथ न भी रम की जानरूपता^२ स्वयप्रकाशता^३, व्यक्ति रसाध्यादि की दध्यादिन्याय न रम रस म परिणति र रूप में व्यक्ति प्रतिपादित भी है^४। रम का ब्रह्मास्वाद-स्रोतक कहा है। ब्रह्म का स्वस्व भी प्रकाश एव आनन्दत्मक स्वीकार किया गया है। 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' इन शब्दों म वह ज्ञान भा है। प्रकाश का साक्षरकार ही आनन्दानुभव एव ब्रह्म-साक्षात्कार है^५ ज्ञान की मूलता प्रकाशात्मिका है। ज्ञान के लिए Imagestic विशेषण रम की मूलता व विम्बामकता का स्पष्ट सिद्ध कर दता है।

स्व० कान्तिचन्द्र पाण्डेय न पाश्चात्यमत म भा नाट्य क ही वास्तविक काव्य माना जान की पुष्टि की है। उनके अनुभार बाणी के माध्यम स मानव जीवन का प्रस्तुतीकरण इसी कला म सम्भव है। इसलिए काव्य-कला और उमम भा नाट्य सर्वोत्कृष्ट है।^६

१ काव्य-समीक्षा, पृ० १३१

२ नन्वेतावता रमस्याज्ञियन्वमुक्त भवति। व्यञ्जनायाश्च ज्ञानविशेषत्वाद् द्वयारैक्यमापनितम्। सार०, पृ० १०

३ सत्त्वोत्रे न दध्ण्डम्यप्रकाशानन्दचिन्मय। —वही, ३, २

४ व्यक्ता दध्यादिन्यायत रसान्तरपरिणतो व्यक्तीकृत एव रस। न तु दीपन घट इव पूवसिद्धो व्यज्यते। —वही, पृ० ४७

५ वही, ३०

६ समेक भान्तमवृमति सर्वं तस्य भासा मवमिद विभाति। —वही०, ५, १५

७ रसो वै स रस लक्ष्मवाय लक्ष्मनदी भवति। —तं०उ०, २, ९

८ Among arts in general, that type of art which uses human speech as its medium, is the highest For no other medium of artistic presentation is fully adequate to the presentation of spiritual life Poetry, therefore, is the highest type

भाव विन्धु के अन्य साधन

सात्त्विक रसदृष्टिया मुद्राएँ—अभिनय चार प्रकार का बताया गया है—
 आत्मीय वाचिक आगत्य और सात्त्विक । इनमें शरीर के विभिन्न अंगों
 से किया जान वाला अभिनय अर्थात् गैरवृत्तम आत्मीयकम् इस व्युत्पत्ति में
 आत्मीयक कहलाता है ।^१ इसमें तान भेद हं गरीर स मुख में और चपटा आस
 हाने वाला ।^२ इस प्रकार यह शाखा अंग और उपादंग इन तानों में युक्त
 होता है । इनमें शिर हान कमर, उस्थन धमन और चरण इन अंगों
 और प्रयत्न गा स छ अंगों का नाम देना जाना है ।^३ यह छ अंग कह जाते हैं
 और नयन भवें नामिका हाठ कपास ठाण्य यह छ उपादंग कह जाते हैं ।^४
 आत्मीयक अभिनय का नाट्य की शाखा माना है ।

वाणी में हान वाता अभिनय वाचिक कहलाता है ।^५ वप भ्रूपा मुकुट
 आदि में हान वाला अभिनय आहाय हाना है तथा मानसिक भावा और

of art And dramatic poetry is the highest phase of the
 art of poetry (1) because it is elaborated both in form
 and such stance into a whole which is most complete
 and (2) because it combines in it self the objectivity of
 epic and subjectivity of lyric and thus is the synthesis of
 thesis and antithesis It presents to the imaginative vision
 of the spectator an essentially independent action as a
 definite fact —West Aesth pp 431 32

१ आत्मीयको वाचिकश्चैव ह्याहाय सात्त्विकश्चनया । नैयम्भुवभिनया
 विप्राश्चनुया पत्रिकल्पित ॥ —नाशा० ८ ६

२ अर्थात् गैरवृत्त आत्मीयकम् । —अभि० भा० पृ० २७२

३ त्रिविधम्वात्मीयका नय गरीरा मुखनम्नया ।
 तथा चपटा वृत्तश्चैव शम्भ्रात् गापात् म मयुत ॥ —नाशा० ८ ११

४ शिराहस्तकटावक्ष पाश्वकपादसमन्वित ।
 अर्थात् प्रयत्न गसयुक्त पण्ड गा नाटयमड ग्रह ॥ —वहा ८, १२

५ तस्य शिरात्स्तार पाश्वकटापादत पण्ड गानि ।
 नव भ्रूनासाधरकपासचिबुकाधुपात् गानि ॥ —वही ८ १३

६ आत्मीयकस्तु भवच्छाया । —वहा ८ १५

७ न हि वाग्व वाचिकम् । तथा निवृत्त तु वाचिकम् । —अभि भा० २७३
 आहायभिनयानाम नया नपथ्यजा विधि —नाशा० २१ २

चतुर्विध तु नपथ्य पुम्नाऽनकार एव च ।
 तथात् म रचना चैव जय मजीव एव च ॥ —वही, २१, ५

अनुभूति का अभिनय सात्त्विक कहा जाता है। सत्त्व मन की अवस्था विशेष तो कहते हैं। उसमें सम्बन्ध रखने में या उसकी क्रिया-प्रतिन्रियाओं का अभिनय सात्त्विक होता है। सात्त्विक अभिनय में सम्बद्ध रसदृष्टियाँ और मुद्राएँ भी होती हैं जो कि अपन आप में आङ्गिक अभिनय के अन्तर्गत हैं। ये रस की अभिव्यक्ति में विशेष रूप से सहायक होती हैं। समराट्गण मूत्रधार में कहा गया है कि हाथ के द्वारा नाटकीय विषय अथवा रस जो कि वस्तुतः व्यथायुक्त है का सूचित करते हुए और दृष्टि में बताने हुए पूर्ण रूप से अभिनय देखने के कारण नाटकीय व्यापार समीक्षका दिखाई देता है। चित्र में भी रस-दृष्टियाँ भावा की अभिव्यक्ति में सहायक होती हैं।^१

रस दृष्टियाँ—भरत ने कान्ता भयानका, हास्या करुणा, अद्भुता गौरी वीरा और बीभत्साय आठ प्रकार की रस दृष्टियाँ गिनाई हैं।^२ इसी प्रकार स्वामी भावों में स्निग्हा ह्लाटा दीना क्रुद्धा दीप्ता भयान्विता जुगुप्सिता और विम्बिता ये आठ दृष्टियाँ बड़ी हैं।^३

इसमें अतिरिक्त नाट्य में ३६ दृष्टियाँ भी गिनाई हैं जिनका सम्बन्ध रस और भाव में है। ये शून्या मलिका धान्ता मन्त्रलिता, प्लान्ता जटि क्ता, विषण्णा मृकृता, कुञ्चिता अभिनप्ता, जिह्मा, मलनिता, विनकिता, अधमुकुला विभ्रान्ता, विष्णुता आनेदरा, विवोगा वस्ता, मदिगा हैं।^४ इनमें मलनिता दो बार आ गई है। प्रतीत जाना है, यहाँ पाठ अष्ट और काँई दृष्टि छूट गई है। जिनके स्थान पर इसकी पुनरावृत्ति हो गई है। पहली रस विशेष में सम्बद्ध है ये सामान्य हैं, किसी एक से बँधी नहीं हैं। भरत ने नाट्य में इन

१ रजस्तमोभ्यामस्पृष्ट मन सत्त्वमिहोच्यते । —माद०, ३

तथा दृष्टि सत्त्व नाम मन प्रभवम् । तत्त्व समाहितमनस्त्वादुच्यते । मनम
मयागो मत्त्वनिर्बृतिभवंति । लोकस्वभावानुकरणत्वाच्च नाट्यम्य
मत्त्वमीप्सितम् । —नाशा० ७, पृ० १२६-३३

२ हृत्नेन सूचयन्तर्था दृष्ट्या च प्रतिपादयन् ।
सजीव इव दृश्यते सर्वाभिनयदशनात् ॥ —समू० ८२ ३३
रमानामय दक्ष्यामो दृष्टीना (वेइ मिह) लक्षणम् ।
तदायता यतश्चित्रे भावव्यक्ति प्रजायते ॥ —वही, ८२, १

३ नाशा०, ८, ३८

४ वही, ८ ३६

५ वही, ८, ४०-४३

६ सम्भवतः सवदिता ही ।

दृष्टिया का अत्यन्त महत्त्व दिया है। इन्हीं के द्वारा रस और भाव की आरम्भिक प्रयत्न अभिव्यक्ति होती है। अन्य अङ्गों में तो बाद में ही अभिनय किया जाता है।^१

मनुष्य का मुख-मुख जन विभिन्न अवस्थाओं में नाटक में दिखाई जाती हैं और वह सब आदि गक वाचिक आदि अभिनयों में ही सम्भव है। इस प्रकार अभिनयों की प्रमुखता का कारण ही यह नाट्य कहना जाता है। नाट्य और नाटक तथा नट शब्द अवस्थाएँ अथवा चप्टा उच्छ्वसकूट करने अर्थ में नट धातु में निष्पन्न होते हैं।^२ भाषावैज्ञानिक इसका सम्बन्ध नृत धातु में मानते हैं। नृत्य का भावाभिव्यक्ति शान्त व चरण नाट्य में उमका सम्बन्ध है।^३ दृष्टियों और मुद्राएँ ही नृत्य में भावा को मूलता प्रदान करती हैं। विभावा में जो वाच्यार्थ रस का अभिव्यक्ति होती है वह अनुभावा का द्वारा अनुभूति का विषय बनती है। विभाव का द्वारा नाय या उदभाविता का अनुभाव का द्वारा प्रतीति की और चित्रण जानते हैं। इस प्रसङ्ग में भक्त द्वारा जो विभाव और अनुभाव की अनुभूति दी गई है वह वास्तव में आंतरिक भावा की अभिव्यक्ति का कारण विज्ञेय सम्बन्धपूर्ण है। दृष्टिया और मुद्राएँ का इस अभिनय में सर्वाधिक योगदान होता है।

नाट्य के प्रसङ्ग में भक्त ने रसदृष्टियों का सम्बन्धपूर्ण काय गिनाया है। आदि गक अभिनय का एक प्रकार चित्र अभिनय के नाम में व्यवहृत होता है। उमका ही ही और दृष्टियों का साथ साथ उपयोग होता है। उदाहरण के लिए प्रातःकाल रात्रि सायंकाल दिन का मूचना दाना हाथा की हृदयी ऊपर करके एवं ध्वनिवाद्यों पर नृत्य हुए वगैरे की तरफ से जाने हुए मिर को ऊँचा उठाकर ऊपर की ओर देखने में देनी चाहिए। त्रिखर हुए या दकट्टे वृत्त में प्राणिया फँस हुए मरावरा दिशाआ प्रण और नक्षत्रा की भी ऊपर की ओर

१ इह भावा रसाश्चैव दृष्टयामेव प्रतिष्ठिता ।

दृष्टया हि सूचितो भाव पश्चादस्यैविभाष्यते ॥ --नाशा० १३, ३०-३१

अवस्था या हि लोकस्य मुखदुःखसमुदभवा ।

नानापुरुषमन्वारा नाटक मभवेद्विह ॥

योय स्वभावा लोकस्य नानावस्थान्तरगमक ।

साऽऽ गद्यभिनयैषुकनो नाटयमित्यभिधीयते ॥ --वही १६ १०१, १०३

२ पा० घा० १३ ६२

३ रमभावाश्च नृत नृत्य ताननयाधयम ।

—६० ४० २६

देखकर सूचित करे। उसी प्रकार के हाथों और उसी सिर से तथा नीचे की ओर देखने में भूमि पर स्थित पदार्थों का संकेत करे।^१

इतना अवश्य है कि सामाजिक इतना प्रबुद्ध होता चाहिए कि वह इन दृष्टियाँ और चेष्टाओं का आशय समझ सके। अन्यथा उसे देखकर पता ही न लगेगा कि यह संकेत किधर है।

मुद्रा—सूचित करने योग्य विषय को सूचित करने को मुद्रा कहते हैं।^२ यह भी मुख, दृष्टि, हाथ आदि अङ्गों के द्वारा बनाई जाती है। आजकल इसे छाप, अप्रेजी में Pose कहते हैं। यह हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ती है, इसलिए मुद्रा नाम अन्वर्थ्य होता है। बहुत-सी मुद्राएँ प्रतीक बन गई हैं। जैसे प्रश्न-मुद्रा, अभय-मुद्रा, वन्द-मुद्रा, ध्यानमुद्रा आदि। शास्त्रीय नृत्य एव अभिनय में मुद्राया का महत्त्वपूर्ण योग होता है। भरत ने यद्यपि मुद्रा का नाम नहीं लिया है तथापि अभिनय के प्रमद्ग में उनका विस्तार से परिगणन किया है। मुद्रा-निर्माण का प्रकार बताने हुए उन्होंने कहा है कि जिसका जो चिह्न हा, जैसा वेप हो या काम हो या रूप हो, उसे अच्छी या बुरी बात को दिखाकर संकेतित करना चाहिए।^३ जिसे जिस भाव में दिखाया गया हो, चाहे वह सुखद हो या दुःखद, द्रष्टा उसका प्रभाव लेकर सब-कुछ उमीम व्याप्त देखता है। यहाँ सब पश्यति तमयम्' यह वरुणाश महत्त्वपूर्ण है।^४ इसका तात्पर्य यही है कि अपने बदर स्थिर मस्कारों और भावनाओं के अनुसार ही मनुष्य मुद्राओं का अभिप्राय समझता है और लोक में सब आर उसी वस्तु को व्याप्त देखता है। उदाहरण के लिए शक्तिपूजा में भगवती को योनि मुद्रा दिखाने का विधान है। सामान्य व्यक्ति उसका अभिप्राय अश्लील भाव में लेगा परन्तु उसका वास्तविक तात्पर्य दार्शनिक है। शिवसहिता में उसे समाधि के समय की आसनविशेष से सम्बद्धस्थिति दिखाया है। जैसे—

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे पूरयेन् मन ।

गुदमेदुत्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रथते ॥

१ नाशा० २५, २-५

२ सूच्यार्थसूचन मुद्राप्रवृत्ताय परे पदे ।

—कुवलय० १३६

३ यद् यस्य चिह्नं न वेपो वा कर्म वा रूपमेव वा ।

निर्देश्य सहितस्तौ इष्टानिष्टाथदर्शनात् ॥

—नाशा० २५, ३६

४ यो येन भवेनोद्दिष्टं सुखदेनेतरेण वा ।

स तदाहितमस्कारं सर्वं पश्यति तमयम् ॥

—वही २५, ३८

ब्रह्म म योनिगत ध्यात्वा काम कन्दुक सन्निभम् ।
 सूर्यकोटिप्रतीकाश चन्द्रकोटिमुगीतलम् ॥
 तस्योर्ध्वं तु गिला मूकना चिद्रूपा परमा कला ।
 तथा सन्निभमात्मनमेकीभूत विचिन्तयेत् ॥
 योनिमुद्रा पराह येवा वधस्तस्या प्रकीर्तिर ।^१

मुद्राया का प्रयोग व्यावहारिक जीवन म सदा ही होता है । उदाहरण क लिए काष्ठ व्यक्ति यदि कष्ट हा जाय ता मुख की आकृति एमी हा जायगी जैसे रोप म भगी हा । यदि काष्ठ दु खद सूचना या आन्तरिक कष्ट हागा ता आकृति रानी हागा । यही रादन मद्रा हागी । अभिनय क लिए भी इस प्रकार की मद्राया का नाटयनि आदि म मकन किया जाता है । जैसे दुष्यन्त का दखकर शकुन्तीना द्वारा भावपदशन का मकन कवि शृङ्गाररज्जा मयनि ।^२ टन शब्दा म दना है । पुष्पावचय क लिए व नमस्कार क लिए वयानहस्त बनाना^३ मद्रा ही ह ।

भरत का कथन है कि मिर को कनक म डक कर धूर, धून पत्त धुजा, लगन और हवा का अभिनय करना चाहिए । इसी प्रकार भूमि का दपा हाना व गर्मी का दगना छाह खाजन की मुद्रा म करना चाहिए । हाथा का स्वम्भिक की आकृति म कनक हाश की भाति बध कर नीच की ओर लुबान म मिह, रीछ बन्दर, बाध और ठूमर गनी जानवर दिखान चाहिए । गुरुजना को प्रणाम करने क लिए हाथ स्वम्भिककार एव त्रिपताक बनान चाहिए । चावुक पकन्न जीर रथ की गम मम्भायन म हाथा का स्वम्भिक और नेटक क मुख के आकार का बनाना चाहिए । इसी प्रकार हाथ का मिर पर रखकर छाता हाथ खपा करक ध्वजा या पनाका (बण्डी) एव दण धारण का व दूसर शम्भा का पकडन का अभिनय करना चाहिए ।^४

य मद्राएँ कवन नाटक मही प्रयुक्त नहीं होता, शब्दकाव्य म भा न दिखाई जानी ह । उदाहरण के लिए इन्द्र म युद्ध करन क निमित्त रघु जानीठ नामक मुद्रा म बैठना है ।^५ इडकर जी पर बाण का प्रहार करने क लिए उग्रत

१ गिव म० ४ १ ३ ७

२ गक० १ पृ० २०

३ वयानहस्त कृत्वा ।

—शिवम० पृ० १३४

४ बना २५ ७ १५ १६ २३

५ अतिष्ठदातीत्यविशेष शाभिनावपु प्रकर्षेणविडिम्बितश्वर ॥ —म० ३, ५३

कामदेव को कवि ने विशेष मुद्रा में बैठा दिखाया है।^१ उसके सम्बन्ध में गणेश प्रभसूरि का कथन है कि काम इसी मुद्रा में बैठा रहा होगा।^२

रस-प्रतीति में बाधकत्व—आचार्यों ने रस प्रतीति में बाधक दोष गिनाये हैं।^३ उनका वास्तविक तात्पर्य यही है कि उनके कारण रसोद्बोध के रूप में जो बिम्ब बनता होना है वह नहीं बनता। उदाहरण के लिए शृङ्गार विशेषकर विप्रलम्भ शृङ्गार में सयुक्त एव कठोर ध्वनियाँ वर्जित हैं। क्योंकि सुकुमार होने के कारण उनके द्वारा उसका आस्वाद नहीं होता।^४ जैसे नैषध का—

दृगुपहृत्यपमृत्पुविरूपता क्षमयतेऽपरनिजरसेविता ।

अतिशयाध्यवपु क्षतिपाश्र्ढता स्मर भवति भवन्तमुपासितु ॥^५

यह पद्य दमप्रतीति के विरह-वर्णन के प्रसङ्ग में आया है। दमप्रतीति मनाप के कारण काम का रस नहीं है। यह कवि ने सम्भवतः विरहिणी के क्षाम को प्रकट करने के लिए इस प्रकार की कर्कट ध्वनियाँ प्रयुक्त की हैं। का.प्र में जैम मनुष्य दास पीमता है उस प्रकार इन शब्दों का उच्चारण करने में वक्ता को दासता या दवाना पड़ना है। इस प्रकार धाम की प्रतिक्रिया का अनुकरण नष्ट हो गया परन्तु यह भी देखना है कि वक्ता कौन है। वह उत्तम प्रकृति नायिका है, इस प्रकार के कर्कट शब्द उसके मुख में नहीं जाँचते। और इन धाम की

१ म दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टि तताममाकुञ्चितसव्यपादम ।

दक्षिण चक्रीकृतचारुचाप प्रहतु मधुयनमारमप्रागिम ॥ —कुम. ३ ७०

२ अत्र अनुधरमस्थानमीदृशेव स्यादिति । —जम० ८, ८२ पृ० ३२१

३ यती दुष्टेषु क्वचिद् रमस्याप्रतीतिरेव क्वचित्प्रतीयमानस्यापकप, क्वचिन्तु विनम्ब एव गौर्म क्वचिदधम्य मुग्धभूतस्याऽप्रतीतिरेव, क्वचिद् विनम्बेन प्रतीतिरेव । क्वचिदचमन्कारित्यनुभवमिदम । इत्युद्देश्यप्रतीत्यनुत्पादो व्यक्त एव । तद्विधातवता च कस्यचिन्नाभात् । यथा रसोपाणाम् । कस्यचित् परम्परया । यथा शब्दादि-दोषाणाम् ।

—का. प्र० का २६१ ४६

४ तत्र टवगवाञ्जितान् वर्गाणां प्रथम तृतीये शक्तिरन्तर्देश च घटिता नैवट्येन प्रयुक्तैरनुस्वारपरमवर्गे शुद्धानुनासिकैश्च शक्तिता वक्ष्यमाणे सामान्यतो विशेषतश्च निषिद्धे सयागाद्यैश्चुम्बिता, अवृत्तिमूढुत्तिवा रचनाऽऽनु-पूर्व्यात्मिका माधुय-व्यञ्जिका । —रत्न, पृ० ६३-६६

५ न० ३०, ४, ८१

दीवाल क पीछे मुख्य विप्रलम्भ छिप सा जाता है । वहाँ तो 'कोपेऽपि कान्त मुत्तम वाली उक्ति चरिताथ होनी चाहिए । जैसे—

अपसारय घनासार ऋह हार दूर एव कि कमलं ।
अलमलमालिमूणालैरिति वदति दिवानिशा बाला ॥^१

यह शब्दावली नायिका क कनकण्ठ स निकनी मधुर वाणी की प्रतिध्वनि ही प्रतीति होती है । जबकि पहले श्लोक की वर्णयोजना किसी बर्कशा के मुख स निकनी कटु भाषा की गूज प्रतात होती है । हाँ, उसी प्रसङ्ग का—

श्रवणपूरतमालदलाड कुर शशिकुरङ्ग-मुखे सखि निक्षिप ।
किमपि तुन्विलित रूपगयत्यमु सपदि तेन तदुच्छ्रयच्छसिमि क्षणम् ॥^२

यह पद्य प्रवृत्त रसानुकूल वर्णयाजना लिए है । इसलिये वह उत्तमप्रवृत्ति नायिका क व्यक्तित्व का प्रकाश म लाती हुई उसकी मानसिक वेदना का अनुभव कराती है । इसी प्रकार—

हारो जलाद्रवसन नलिनीदलानि प्रालेयशीकरमुच्चस्तुहिताशुभास ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चदनानि निर्वाणमेप्यति कथ स मनीभवाग्नि ॥^३

वाण क इस पद्य म वियोग शृङ्गार का भाव-विम्ब प्रस्तुत करने की क्षमता है । यदि ऐसी वान न होती ता जगन्नाथ मम्मट द्वारा रौद्र रस के उदाहरण क रूप म उदघृत—

कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरु पातक
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादिभवाद्धिन्दायुषं ।
नरकरिपुणा सार्धं तेषा सभोमकिरीटिना—
मयमहमसुड मेदीमासं करोमि दिगां बत्तिम् ॥^४

इस पद्य की आलोचना न करते ।

रीति और गुणों के प्रसङ्ग म जाचार्यों ने जो विषय, वचन आदि का

१ का० प्र० का० ८ (उ) ३४२

२ नै० च० ४ ५६

३ औ० वि० पृ० ३३

४ (वे० स० ३ २४) काव्यप्रकाशगत रौद्ररसोदाहरणे तु 'कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरु पातकम् इति पद्ये रौद्ररसव्यञ्जनक्षमा नास्ति वृत्ति, अतस्तत्कवेरशक्तिरेव ।

औचित्य देखते हुए रचना करी का निर्देश किया है।^१ उसका उद्देश्य यही है कि ये भाव-बिम्ब बनने में बाधा न पड़े। इस भाव-बिम्ब को ही अभिनय ने स्पष्ट शब्दों में 'मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतिपत्ति' कहा है। वे स्वान-स्वान पर रस-निष्पत्ति के प्रसङ्ग में प्रत्यक्षताऽऽपादन की बात करते हैं। उदाहरण के लिए—

स्फुटस्फुटप्रतीनिकायशब्दलिङ्गसम्भवेऽपि न प्रतीतिविश्राम्यति ।
स्फुट-प्रतीति रूप प्रत्यक्षोचित प्रत्यय साक्षाद्-क्षत्वात् ।^२

यथाऽऽहु सर्वा चेष प्रमिति प्रत्यक्षपरा । इति । त्वसाक्षात्कृते
आगमानुमानशर्तैरप्यन-यथाभावस्य स्वसवेवनात् अभिनयन हि सशब्द-
लिङ्ग व्यापार-विसदृशमेव प्रत्यक्षव्यापारकत्वम् ।^३

भयकम्पयोरेव वा तदत्र साक्षात्कारायमाणत्वे परिपोषिका नटादितामयो ।^४
तत्र नाट्य नाम नटगताभिनयप्रभ-वसाक्षात्कारायमाणरुघने मानमनिश्चला-
ध्यवसेय समस्तनाटकाद्य-यतमकाद्यविशेषान्च द्योतनीयोऽर्थ ।^५

आहार्यस्यापि धनु प्रतिशौर्यं मुकूटादे प्रत्यक्ष-बुद्धावुपयोगेऽन्तरङ्गत्व
सूचयति ।^६

रस को ही काव्याथ या काव्य की आत्मा कहने का तात्पर्य ही यह है कि चमत्कार के रूप में प्रत्यक्षीकरण है। तभी काव्यानन्द ब्रह्मानन्दसहोदर हो सकता है। जाधुनिक जालोचक इसलिए रसात्मक कविता या काव्य का इमेज या बिम्ब की गन्ना बने हैं।

उदाहरण के लिए—

In it the implicit represented by the emotive content
reigns supreme and also, be the total consciousness of the
reader, as a result of which his narrow personality is put into

१ वक्नुवाचप्रवक्ष्यामामौचित्यो क्वचित् क्वचित् ।

रचनावन्निवर्णानामन्यथात्वमपीष्यन् ॥ —का० प्र० का०, ६, ३७

२ अभिमा० १ पृ० २८१

३ वही, पृ० २८१,

४ वही, १, २७६

५ वही, १, पृ० २६६,

६ वही, १, पृ० २६८ ।

sleep and his ego boundaries expand This does not hold good of the Poetic Image brought about by Samasakti or Aksepa¹

इन प्रति क्तया म रस पदान काव्य क लिए ही Poetic Image कहा गया है । रमारञ्जन मुक्तियों की साधारणीकरण की काव्य विम्ब क निर्माण म उपयोगिता का समर्थन करते हुए कहते हैं—

It is because of this power of the poetic image to reveal a Universal feeling that, it enlarges the mind and constant application to poetic Art expands the boundaries of the ego. The excitant, the ensuant the permanent mood and the accessory that serve as the constituents of the image, each, as a matter of fact is generalised through the power of Universalization inherent in the expression²

इस प्रकार एक शयदा एव निर्दोष शब्दाथ क प्रयोग स सर्व-सर्वेद्य काव्य का निर्माण होता है । वह काव्य उनकी दृष्टि म एव विम्ब ही है—

As the Universal word and the Universal content bring into being the Universal Image Indian Aesthetics ushers in the concept of parca of perfection and recognises its two varieties the faultlessness of expression and the faultlessness of context³

इस प्रकार भव ही काव्य को विम्ब मानते हुए रस का उसका अमाधारण हनु मानें या चमत्कारप्राण होने क नाते रस का विम्ब मानकर उससे काव्य की संप्रणता स्वीकार करें रस एव विम्ब शाना का काव्य म अपरिहायत्व सिद्ध हो जाता है । मिथ्यातत शरीर एव आत्मा क भिन्न होने पर भी जिन प्रकार शाना म भेद प्रतीत नहीं होता और किसी अट्ग क विक्षत होने पर भी घायल हो गया ऐसा अनुभव किया जाता है इसी प्रकार शब्द और अथ के काव्य शरीर क रूप म और रस क आत्मा क रूप म मान्य होने पर भी उनका पृथक्-पृथक् नहीं गिना जाता और सब मिनकर एक काव्य-मुरप की सृष्टि करते हैं ।⁴ काव्य विम्ब या शरीर तो शब्द और अथ स ही बनता है, रस उसमें प्राणाधान करता है । तभी वह पूण विम्ब कहनाता है ।

१ टा० कानीपद गिरि कांसेप्ट आफ पोयट्री एन इण्डियन एप्रोच —पृ० ३६

२ I P p 36

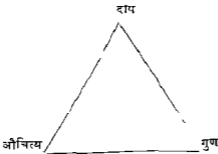
३ वही पृ० ३६

४ शब्दार्थों त शरारम, संस्कृत मुख प्राकृत बाहु जपनमपञ्च श, पैशाच पादो, उरा मिश्रम । सम प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि । उक्तिचण च ते वचा रस आमा । —श० मी० १, ३ पृ० १६ (चौ०)

सातवाँ परिच्छेद

औचित्य, दोष, गुण, रीति, वृत्ति, शय्या, पाक और काव्य-विश्व

चमत्कार के मापनों में रस और ध्वनि का विवेचन पहले ही चुका है। इनके निर्वर्द्धि का प्रमुख आधार है औचित्य की रक्षा। जिस प्रकार शरीर के बङ्ग-प्रत्यङ्ग का निर्माण उचित रीति से होने पर मन्द्य का आधान करता है और उसके अभाव में विरूपता आ, इसी प्रकार काव्य के शरीर शब्द और व्यंजना की यथायथ योजना चमत्कारात्मक तत्त्वा का उत्पादन करती है तभी चमत्कार आता है। उसके अभाव में काव्य की आत्मा नष्ट होने वाले रस का भी परिपाक नहीं हो पाता और वह 'मामाम हा जाना है।' इसी कारण क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रस का भी प्राण कहा है।^१ यदि उचित पद का प्रयोग होगा तो वह व्यञ्जक भी होगा मायुय आदि गुणों की योजना भी करेगा, अर्थ के अनुरूप हान पर शय्या और पाक की मृष्टि भी होगी। रसानुकूल हान से वृत्ति का और गुण का व्यञ्जक होने में रीति का विधान करेगा। अनुचित होने में वह अनेक दोषों का आधार होने से इन सभी चमत्कार के साधनों का घातक होगा। इन प्रकार औचित्य काव्य-विश्व का प्रत्यक्ष आधार है। यह बात निम्न त्रिकोण में स्पष्ट हो जाती है—



- १ रसानामा अनीचित्यप्रवर्तितता
 २ औचित्यस्य चमत्कारकारिणप्रचारुवर्षणे ।
 रगनीवितभूतरस विचार कुहनेऽधुना ॥

—का० प्र० का० ४, ३६

—औचित्य १ ३

इस त्रिंशत्तम को दखन से ज्ञात हाता है कि दोष वह दुधारा है जा औचित्य और गुण दादा का घातक है। क्याकि अनौचित्य होने पर दोष हाता है। जब दाप हा गया तो औचित्य कहा रह गया और गुण भी कहा ? शब्द म औचित्य रहता है ता बहु व्यञ्जक भी होगा। जैसे अपुष्टाथ दाप न स्थल म भग्नी क शब्द होने म व्यञ्जकता नहीं आती। इस विपरीत यदि शब्द सामिप्राय हाता ता अवश्य व्यञ्जक हाता। इस कारण कहा अपुष्टाथ दोष भी नहीं रहता। जैम—

न्यक्कारो ह ययमेव मे यदरयस्तत्राऽप्यसौ तापस
सोऽप्यत्रैव निहति राक्षसकृत् जीवत्महो रावण ।
धिग्धिक शकृजित प्रबोधितवता कि कुम्भकणन वा
स्वप्राप्तिकाविन्दुठनवृथोच्छून किमेभिभुजं ॥^१

यहा वाक्य-व्यापा व्यङ्ग्याथघापन सत्र क समान धुब्ध महाप्रतापी रावण क नाथ और खीझ क भाव का अभिव्यक्त कर रहा है जिसक कारण स्वयं की गावडा का लूटन क कारण अपना भजाया का फूलना भी उस व्यय तग रहा है जा कि असूया को व्यक्त कर रहा ह। यहा जाचार्यों द्वारा प्रतिपादित अविमृष्टविधेयाश दाप कवन आशय की विसम्ब स उन्मिप्रति नराना है। वृथा शब्द क समास म पत्र जान म यज्यमान असूया की प्रतीति म बाधा हानी है जबकि विवक्षित भाव है—टूट जाय म दाह जा स्वर्ग-न्सी गावडी को लूटन क कारण तो फूल रहा है पर इस तुच्छ शत्रु का कुछ भी न विगात् मकी। इस प्रकार कविनिबद्ध वक्ता क हृदय क क्षोभ और असूया की प्रतीति म बाधा होने म दाप हुआ, यही अनौचित्य है। इसन उस भाव विम्ब का घूमिल कर दिया।^१ परन्तु अनौचित्य स्थिति-सापक्ष हाता है। एक स्थिति म जा अनौचित्य प्रनीत होता है दूसरी म वही गुण या दापाभाव बन जाता है। जैम जाजा माना क परिहाम म 'सुरभिमान मक्षयत्यावुत् यह आपातमात्र म जुगुप्सा व्यञ्जक अश्लील वस्तुत दाप नहीं रहता।

इम औचित्य के निर्वाह न लिए एजा पाउण्ड क कुछ निर्देश कविया के लिए अत्यन्त महत्त्व क हैं—

१ ना० प्र० भा० पृ०, २७५

२ जत्र च शब्दरचना विपरीता कृति वाक्यस्यैव दोषो न वाक्याथस्य ।

१ प्रवृत्त विषय का चाहे वह भात्मगत हो या विषयगत, (बिना किसी व्यय की भूमिका के) सीधा निरूपण करे ।

२ ऐसे शब्द का कभी प्रयोग न करो जो कि विषय-प्रतिपादन में सहायक न हों ।

३ जहाँ तक लय का सम्बन्ध है, मूढ़ गीतारमर वाक्यांशों की अविति की दृष्टि से पद-गोत्रना करो, छंद या वाद्य की भाँवना की दृष्टि से नहीं । (तात्पर्य यह है कि अपमूर्त्तगति पर ध्यान देना चाहिए) ।

४ काव्य-द्विम्ब यही है जो एक ही क्षण में बौद्धिक एवं भावात्मक सश्लिष्टता प्रस्तुत करे । यहाँ सश्लिष्ट शब्द आधुनिक मनावैज्ञानिकों को अभिमत अथ म प्रयुक्त किया है जैसा कि बर्नाट हाट का मत है ।

इस प्रकार की सश्लिष्ट अनुभूति एक निश्चित क्षण में उत्पन्न होनी चाहिए जो कि सहमा देना तैर काल की सीमाओं से मुक्त कर दे । यह सहमा उदभूत अनुभूति वसी ही होनी चाहिए जैसी कि हमें सवथेष्ट कलाकृति की उपस्थिति में हुआ करती है ।

भारी भरकाम पुस्तकें लिखने की अपेक्षा जीवन-भर में एक विम्बमान प्रस्तुत कर देना कहीं अच्छा है ।

हो सकता है कुछ लोग इन सभी बातों को विवादास्पद मानें । किन्तु काव्य-रचना आरम्भ करने वालों के लिए बजतीय बातों की एक सूची प्रस्तुत कर देना कहीं उचित होगा ।

आरम्भ करते समय विद्वानों का भरी प्रकार साक्षात् विवेचन, शब्दों की परिमितता एवं संगीतारमक पद-समूहों की अविति की दृष्टि में भना प्रकार सोच लो । सिद्धांत के रूप में नहीं, प्रत्युत शीघ्रकालीन चिन्तन के परिणाम-स्वरूप । अन्य व्यक्ति के चिन्तन का विषय होने पर भी (ग्राह्यता की दृष्टि से) वह विचारणीय हो सकता है । ऐसे व्यक्तियों द्वारा की गई आलोचना पर कभी ध्यान मत दो जिन्होंने कोई उल्लेखनीय रचना नहीं की हो । यूनानी कवियों और नाटककारों की वास्तविक कृतियों के मध्य पाई जाने वाली त्रुटियाँ एवं यूनानी व रामन वैयाकरणों द्वारा अपने छंदों का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए कल्पित परिभाषाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए ।

भाषा—भाषा के सम्बन्ध में एका पाठ्य का निर्देश है कि कभी नि मार विशेषणों का प्रयोग न करो जिनसे किसी विशिष्ट बात पर प्रकाश नहीं पड़ता । “शांति का धूमिल देश” सदृश प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए ।

इसमें काव्य विश्व फीके नि शीव हो जाने हैं। इस प्रकार के प्रयोग अवास्तविक को ठोस सत्य म मित्रा देने हैं। ऐस प्रयोग मदा के लेखक किया करत हैं जो कि नभी यह अनुभव नही करे कि प्राकृतिक पदाः एक पूर्ण समर्थ प्रतीत होता है।

मदा अवास्तविक या हवाई याता य वचां। जो वान उत्तम गद्य म निवी जा चत्री है उमे मध्यम श्रेणी क पद्य म लिखन का यत्न मन करो। उत्तम गद्य रचना अस्थनीय रूप स रठिन रनाह पर विस्तार म व्यथ म लिखकर तुम यदि उम कठिनाई म बचन म असफल यत्न करत हो ता यह न सोचा कि को^२ भा बुद्धिमान धावा खा जायगा (और इस असफलता को समझैगा नही)। यह कल्पना न कर बैठना कि काव्यकता मठमीत कला मे मरत है या तुम (अपनी साधारण रचना म) किसी वाक्य ममन को प्रस्तुत कर सकोग।

मल ही या ता किसी अत्र कार का प्रयोग नी मत करो। पर यदि करता ही है ता अच्छे अत्र कार का करा।^३

काव्य विश्व के निर्माण क लिए एखा पाठण्ड महाशय क य निर्देश आभ्यात्मिक और नवनिहित कविया के लिए निम्नदेह बहुत महत्व रखत हैं।

उन कारण आचार्यों न दोषा को निय और अनित्य इन दा श्रेणिया मे विभक्त किया है।^४ जस अप्रतीतत्व दोष सामान्य रूप स एक गाम्बमात्र मे प्रसिद्ध शब्द क प्रयोग म हजा करता है^५ परन्तु वहा वकता एव बाद्धा क तद्विपर्यय जाता होत पर दाप न रर कर गुण बन जाता है।^६ जैसे

माध्ये निदिचतमन्वयेन घटित विभ्रतपक्षे स्थिति
व्यावृत्त च विपक्षनो भवति यत तस्साधन मिद्धये ।
पस्साध्य स्वयमेव तुल्यमभयो पक्षे विरुद्ध च यत
तस्याट गीकरणेन वादिन इव स्वात स्वामिनो निपह ॥^६

1 Twentieth Century Literary Criticism p 60

० तु०—स चाय द्विविध —नित्योऽनित्यश्च । तत्रानुकरणादयत प्रवारेण ममाघातुमजकयो नित्य । यथा च्युतसंस्कृत्यादि । अयादुशस्त्वनित्य यथाऽप्रयुक्तत्वादि । — १० प्र० का० पृ० २४६

२ अप्रतीत यत कबले शास्त्रे प्रसिद्धम । —वही पृ० २५६

४ गुण स्यादप्रतीतत्व ज्ञत्व चेद वकनवाध्ययो । —साद० ७ १०

५ मरा० ५ १०

मुद्राराक्षस के इस पद्य में राजनीति विषयक विवेचन नैय्यायिक शब्दावली में किया गया है। 'यादशास्त्र-परिचित पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण अप्रतीत दोष का विषय होत पर भी समान रूप में राजनीयिक सिद्धान्त का वाचन होने के कारण राक्षस के मुख में इन शब्दों का प्रयोग अनुचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उम जपनी मता म चन्द्रगुप्त-पक्षीय गुप्तचरों के भर जाने का मन्देह हो गया है। एव विद्वान् राजनधज के मुख से इस प्रकार का शब्दावली का प्रयोग को अनुचित नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यहाँ अप्रतीतत्व गुण ही बन गया है।

वस्तुतः दास की परिभाषा मुख्य जय का अपकपक या घातक जाना है।^१ मुख्य अथ रम या चमत्कार है। यह अपकपकता बड़ी माशान् होती है तो वही परम्परा में।^२ जहाँ अपकपकता होगी वही अनीचित्य होगा पर जहाँ प्रत्युत वाच्यगुणता होगी वही औचित्य ही होगा। जैसे अजमाकित म ग्राम्यात्व का गुण माना गया है। उसका कारण यह है कि धरता के मानाजित एक बौद्धिक स्तर के अनुरूप शब्दावली एवं विचार उसके वर्णितत्व का प्रकाश में आते हैं। इसमें स्वाभाविकता ही रक्षा होती है। इसी कारण प्राचीन नाटकों में स्त्रियों एवं निम्न वर्ग के पात्रों में विद्वान् में प्राकृत का प्रयोग कराया जाता था। भोजन गवार के रेशमी रुमाद में वह का मुख पात्रों का ध्यान करने में दोष माना है।^३ उसका कारण अस्वाभाविकता और अनीचित्य ही है। प्राचीन काल में एनी मानी और राजा नाम ही रेशमी वस्त्र पहन पाते थे। सामान्य व्यक्ति के लिए वह दुर्लभ था। उस स्वाभाविकता और औचित्य का निवाह करने में स्थिति के अनुरूप त्रिम्ब बनता है। अथवा प्रतिकूल वाच्य होने में त्रिम्ब बनने में बाधा होती है।

१ मुद्राराक्षसवृत्तिर्दोषो रमश्च मुष्पमन्दाभवाद् वाच्यः ।

— का० प्र० का०, ७, १

२ तद्विधानकता च कस्यचित् साक्षात् । यदा रसदापाणाम् । तस्यचित् परम्परया । यथा शब्दादिदापाणाम् ।

— वही पृ० २४६

३ अधमप्रकृत्युक्तिषु ग्राम्यो गुणः ।

— वही, पृ० ३५८

४ पट्टमुत्तरिज्जेण पामरो पामरीय परिणुमद् ।

अहमदज कूरकुम्भी मणेण मेउल्लिअ वक्षपम ॥

अत्र पामरस्य पट्टाशुकान्तरियाभरणानौचित्याद् औचित्यविरुद्धम् इदम् ।

— मक० १, (३०) ८०

ये दोष कही पद म कही पदांश मे कही वाक्य मे कही अर्थ म कही अलङ्कार म तो कहा ग्य म रहते है।^१ रम म रहन जाने दोष माक्षान उसकी प्रतीति म बाधक हान है। क्योंकि उनही अनुमूति वा विम्ब नही बन पाता। अन्त कारदोष मा चमकार क घानक हान म साक्षात ही विम्ब क बाधक होकर रम प्रतीति मे कमी लात है। जवाचक^२ निहताथ^३ अप्रयुक्तत्व^४, अप्रतीतत्व^५ श्लाघ क बाध म वाग हान क कारण विम्ब नही बनन देत। ग्राम्यत्व^६ जशनीलत्व^७ हृदि विरुद्ध प्रतानि कराने क कारण श्लेष हान है। क्योंकि उमम मानसिक मन् काक्ष या क्षोभ होता है। वह विम्ब बोध म बाधक बनता है। परन्तु परिस्थितिवश वह भी दाप नही रहता। कामशास्त्रीय विषय अथवा मुग्ताग्म्भ गाष्ठी म जशनीलत्व भी गुण माना गया है। क्योंकि उम प्रकार की बातें नायक नायिका की रीगवलि का जगान म सहायक पाता है। पूर्वोदाहृत अविमल विधवाश म विधवा का यथास्थान न रखन क कारण अथ-बोध म अस्पष्टता जाती है। अन्त कार काय म चमकार पात है पर उनका भी अथवास्थानप्रयाग प्रत्युत हचिभन्ग करता है। उदाहरण क लिए आतुर प्रभाक्ष्वघन क वन्दन म अनुप्रास की अतिमात्रा गौरी क प्रति महानुभूति क म्यान पर उपहास का अनुभव कराना है।^८ रम प्रकार अस्मान म जवाकार प्रयाग चमकार का उदादक न होकर अभाष्ट विम्ब क दिमाण म प्रयुक्त वाचक हाना है। इन मभा दापा क परिहार का दष्टि म रखन हुए

१ पद तदश वाक्यार्थे सन्वन्ति रमऽपि यत । —साद० ७ १

एभ्य पृथगदवारदापाणा नैव सम्भव । —वहा ७ १६

२ तदथाविवक्षाया तु प्रमिद्विलाभनावाचकम् । —काउ० पृ० २५३

३ निहताथ (यदुभयाथमप्रमिद्वार्थे प्रयुक्तम्) । प० २५१

४ अप्रयुक्त (तथाऽऽमानम र कावतिनादृतम्) । —वहा पृ० २५०

५ अप्रतीतत्वमकदशमादप्रमिद्वम् । —साद० पृ० ३२६

६ ग्राम्य यत्रेव न वा स्थितम् । —का० प्र० का० १२६

७ श्लेषा जुगुप्साऽमन् गल व्यञ्जकत्वात् त्रिधा । वही पृ० २१६

८ दाहा महान आहर हारान् हरिण मणिदपणान् म देहृ धहि वदेहि हिमलवलिम्ब नलाट लालावति घनमारभादधूली निवहि धवलाक्षि निक्षिप चन्पुपि इद्रवात्त कान्तिमति ।

—हच०, पृ० ५०२

क्षेमन्द्र ने औचित्य के निर्वाह के लिए विविध मन्थन गिनाये हैं ।^१ उन सभी में जब औचित्य की हानि होती है तो दाप बन जात है । आचार्य भरत के समय में ही इस औचित्य पर बल दिया जाता रहा है ।^२ भामह वण्डी, वामन, आनन्दवधन आदि सभी प्राचीन आचार्यों ने इस औचित्य के निर्वाह पर बल दिया है । कहीं दाप-निरूपण के रूप में अनौचित्य-प्रदर्शन के द्वारा तो कहीं माधान् औचित्य की चर्चा में । आचार्य कुतक ने मार्गों के गुण गिनाते हुए औचित्य का उनमें प्रमुख स्थान दिया है ।^३ महिम भट्ट ने भी अपनी समीक्षा में अनौचित्य-ग्रस्त प्रयोगों पर विचार किया है ।^४ सबका तात्पर्य यही है कि काव्य-चमत्कार जयवा दिम्बनिर्माण में बाधक इन तत्त्वों में काव्य को बचाया जाए ।

नित्य दाप म च्युतमसृष्टि व्याकरण के अनुगामन ना उन्नट् घन हानि मे काव्य को उपहमनीय बनाता है, गतार्थ,^५ अनवीकृत या कथिन-पद^६ कौतूहन की हत्या करन मे काव्य के प्रति श्रान्ता की प्रवृत्ति नहीं होन दन । विरुद्ध-

१ पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽनट्करणे रसः । क्रियाया वाक्ये लिङ्गे वचने च विशेषणे । उपसर्ग निपात च काले देशे क्ले वन । तत्त्वेतत्त्वेऽप्यभिप्राय स्वभावे मार सङ्ग्रह । प्रतिभायामवस्थाया विचारे नाम्न्यथाशिरि । काव्यम्याङ्गणु च प्राट्टरीचित्य व्यापिजीवितम् ॥ —औचि० म, १०

२ तु—वयाऽनुस्य प्रथमस्तुपो वपा वेनुटपश्च गतिप्रचारः ।

गति-प्रचारानुगत च पाठ्य पाठ्यातुरूपार्जिनयश्च काव्य ।

—नाशा०, १३ ६४

चेत्रीदितप्रभितिभिविष्टतैश्च शब्दैर्युक्ता च भानि लनिता भरतप्रयोगा । यशक्तिवैवहारवमधरेण ताकर्तवैश्याद्विजैरिव कमण्डनदण्डहस्तै ।

—वही, १७, १२३

३ आञ्जसेन स्वभावस्य महत्त्व येन पोष्यत ।

प्रकारेण तदौचित्यमुचिताख्यानजीवितम् ॥

—वजी०, १, ५३

४ व्यवि०, २

५ यदप्रयोजन यच्च मताय व्यर्थमेव तत् ।

—सक० १, १३७

६ अनवीकृतो भट्टन्दन्तरण यन्वत्त्व तन्न प्रापित । एत-भङ्गिनिदिष्टाने-काव इत्यथ ।

—का० प्र०, पृ० ३३६

७ प्रयोगनशून्यत्वे सति समानार्थक नमानानुपूर्विकमवबत्त्व तत्त्वमित्यथ ।

—का० उ० पृ० ३००

मतिकृत^१ और अमतपराथता^२ अभीष्ट क विम्ब विम्ब का निर्माण होत म त्याज्य मान गय है । हतवृत्त^३ और पत्रप्रकपता^४ अश्रव्यता उत्पन्न करत है । अस्वा नस्य समामता^५ समाप्त-पुनरात्ता,^६ अक्रम^७ या दुष्कमता,^८ गभितना^९ व्याकीणता^{१०} दूरावयता विम्ब मे अथ की उपस्थिति करारत हैं । दुश्रवता^{११} म कठार ध्वनिद्या हान क कारण धाना का काव्य-श्रवण म प्रवृत्ति ही नही हाना । प्रतिकूलवण प्रकृत सम्बन्धक गुणा का उपघातक होत म रमानुभूति को आघात पहुँचाता ह ।^{१२} निरथक वचना म काइ विम्ब ही नही बनगा ।^{१३} शास्त्र इतिहास पुगणा^{१४} क विरुद्ध वचन म आद्य विम्ब या मिथिक विम्ब की हन्या जाती ह ।^{१५} अभवन्मतसम्बन्ध भी अथवोऽ म वाधक हाने म विम्ब नही बनन देना ।

१ विरुद्धमतिकृत पदान्तरगनिधानन प्रकृतप्रतीति यचकारतप्रतीतिजनकम् ।

—का० प्र० का० प्र० २६०

२ अमत प्रकृतविरुद्ध पगर्षो यत्र ।

—वही, पृ० ३२४

३ हत वयणानुमरणस्य प्रथम अत्राप्तगुणभावात्तदधु रमानुगुण च घृत यत्र तद्धतवृत्तम् ।

वही पृ० ३६५

४ अत्र न सरकृतस्य वऽऽकृतस्य वा प्रकपय यत्रान्तर पातो निष्कप ।

—वही ३०१

५ अस्थानस्यैव चासाग्यस्त्रानस्थवम् ।

—वही पृ० ३१२

६ समाप्त मत पुनरागतम् । वाक्य समाप्त पुनस्तदन्वयि शब्दोपादान यत्रैत्यथ ।

वही प्र० ३०१

७ अविद्यमान नमा यत्र तत ।

वही ३४३

८ दुष्ट क्रमा यत्र । दुष्ट च च नोक्शास्त्र विरुद्धवम् ।

—वही पृ० ३३०

९ यत्र वाक्यस्य मध्य वाक्यान्तरमनुप्रविशति ।

—वही २११

१० व्याकीण यमिथा याम्भन्विभवतीनामसगति ।

—सक० १२३

११ परपवणतया श्रुतिदुःखावहत्व दुःश्रवत्वम् ।

—साद० पृ० २०८

१२ तत्र प्रतिकूलवण विवक्षितरसात् प्रतिकूना अननुगुणा वर्णा यत्र तत ।

—का० प्र० का० पृ० २६०

१३ निरथक पादपूरणमात्रप्रयाजन चादिपदम् ।

—वही पृ० २५२

१४ धर्मायकामलास्त्रादि विराद्य काङ्क्षि या भवत ।

तमागमविराधाच्च दापमाचक्षत बुधा ॥

—सक० १५७

१५ तु० ज० ७ टि० ८१ ८२

१६ अभवन मने (ऽष्ट) याग (सम्बन्ध) यत्र तत ।

— का० प्र० का०, पृ० ३०३

अनित्य दोष कही परिस्थित्यनुसार दोष ही नहीं रहते तो अन्यत्र गुण ती वन जाते हैं। इसके निदशन-स्वरूप 'ग्राम्यत्व' और 'अशनीलत्व' है। मत्त क वचनो न रखसित पद,^३ निरर्थक आवृत्ति^४ क्षम्य हो जाती है। यह उनके उदाहरणों में स्पष्ट हो जाता है। पूर्वोक्त दोषों में से कुछ के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

ब्राहि मां वरुणा-सिंधो दीनव-धोऽतिदीनकम् ।

देव देव महादेव महाशिव महेश्वर ॥^५

इस पद्य में "ब्राहि" पद गैड् जातु क लाट् क मध्यम पुरुष एक वचन में खता है। नित्य अन्तमेवद जातु का परस्मैवद में प्रयोग करने से यह च्युतममृत्ति दोष का विषय है। पदगत होने में यह पददोष का उदाहरण है।

मन्त्रो मे नाऽस्ति न च विबुधस्याऽस्ति विद्विर्न विद्या

तन्त्र मे नाऽस्ति विधिरपि नो मेन वित्तप्रतिष्ठे ।

आप्ये ते पाद-जलज-रथो मेऽवलम्ब पवित्र

दुःसाध्यावस्म विरलतरस्पेह पुत्रस्य सात ॥^६

पद्मनारायण त्रिपाठी के दृग पद्य में प्रत्येक चरण का अन्तुष अक्षर शक्ति या अमास के अरण अगले पद में जुगुपान में यतिभट्ग वाक्यगत इतवून वाप को उत्पन्न कर रहा है। वाग्म्वार 'म' पद जान से अनवीकृत है। घञन्त "अवलम्ब" का नपुंसक विट्ग में प्रयोग भी विङ्गानुशासनभट्ग का निदशन है। इस प्रकार यहाँ वाक्यगत जोर पद गत दोषों ही दोष है। यतिभट्ग शश्रयता के कारण नाद-विम्ब नहीं बनने देता।^७

विरद्धमतिवृत्त् का श्वत पूर्वोदाहण 'नव बतमनिवतना' आदि पद्य है जिसमें अभिमत अथ 'शिवास्ते पञ्चान मन्तु' के विरुद्ध 'तव शिव वन्म

१ द्र० टि०, ११

२ सुरतारभागोष्पादावश्लीनत्व नना गुन । —साद० ७ १७

३ वि वि श्रिय म-स-स्वय मु-मु-भुखासव दहि म
तन्-न्यज दु-दु-द्रुत म-म भाजन काञ्चनम । —शृ० प्र० १।० २ पृ० २१

४ मा मा-मानद माति सामलमिति क्षामाधराल्लापिनी । —साद० ७

५ छगू राम शम्भ्री-नरगुराम-दिश्विनयम । —४ १०

६ पा.श० १६५

७ पद्मनारायण त्रिपाठी-दवीगतकम् १-२३

८ द्र० अ० टि० ६२

९ वा० रा० ९ १३ ५६

अन्नप्रोतबृहत्कपालनलक कूरवणत्कड् वण
 प्रायप्रेडिखलभूरिभूधणरवंराघोयपन्त्यम्बरम ।
 पीतच्छदितरक्तकदमघनप्राग्मारघोरोल्लास
 इव्यालीलस्तनभारभरववबुदपोंदित धावति ॥^१

इस पद्य मे श्रुतिकट वणयोजना मे वण्य ताडका के भयड कर एव काधादित
 रूप एव भागन की त्रिधा का गति विम्ब बनता है। यदि यहा कामल वण-
 योजना होती तो भाव मे माम्य न हाने क कारण नाद-विम्ब न बनता जा कि
 उमके चने मे घमाके का अनुभव कराना है। फलस्वरूप यह प्रतिकूलवर्ग का
 स्थल बन जाता। इस प्रकार—

नन्द्यानन्दयु श्रुतृते परिहररलोकानितो वा तत
 आकपन गिरिजाञ्चन चनदलनेनाञ्चलश्री शिव ॥^२

यहा शिव पावती क विवाह प्रसङ्ग मे प्रकृत रम श्रुट गार क विरुद्ध यु-
 श्रुतृते एव आकपन इन प्रयाग मे दु धवता है। पुन श्रुतृते मे बूकने
 का स्मरण गान से जुगुप्सा-व्यञ्जक अज्ञान का विषय है। दाना ही प्रकृत रस
 के विम्ब की याजना मे बाधा गानन क कारण दोष है।

इसा प्रकार दूरान्वय दोष भी विम्ब निमाण मे वध्या जानता है। जैम—

दूर भूक्तालतया विससितया विप्रलोभ्यमानो मे
 हस इव दशिताशो मानमजन्मा त्वया नीत ॥^३

विप्रलम्भ श्रुत गार मे सम्बद्ध इस पद्य मे श्रुत की याजना क कारण जो
 सुन्दर भावविम्ब बनता है उसमे दूर एव नीत इन दोनो पदा क दूर दूर
 पद जानने मे असफुलता आ गइ है।

अय-दोषा मे दोषव का कारण अभिमत विम्ब क विरुद्ध का बनना
 या अभिमत विम्ब का न बनना घेना होन है। जैम अपुष्टाथ दोष शब्दा की
 भरगार होने पर भी कवि ना अभिप्राय प्रकट करन मे अनामध्य हाना है।^४
 उदाहरण क लिए—

१ (म० बी० १ ३५ (का० प्र० का० २८६ (उ)

२ प्रमुदत्त शास्त्री—गम० ३ ७६

३ का० पृ० २८०

४ तत्रापुष्ट पुष्टादिभन । पुष्टत्व च विवक्षित्यशेषप्रयोजकानुपादानरम् ।
 तद्विरहश्च द्विधाऽप्रयोजकत्वाल प्रयान्त्वेष्यनन्यलभ्यत्वाच्च ।

बन्धो, प्रकृतेः परशु वैभवम्
 रात्रावपि यन्नैव क्षीयते ।
 अथे तमसि प्रतिक्षण यत्
 भूयो मितमेवोपदीयते ॥
 तारा सख्यातीता गगने
 मन्वे नयनानि ता कस्यचित् ।
 यस्तु निमेषेनिश्चन्द नो
 निद्रापयतीवोर्वीक्रोडे ॥
 भूमान चेद् द्रष्टुमीहसे
 सततानन्दप्रवाहमेतत्
 गेह्द्वाराण्यपावृत्त्य भो
 एहि बहि क्षिर उन्नमय स्वयम् ॥^१

‘प्रकृतेर्वैभवम्’ इस शीर्षक में जटिकन पस्तुत कविता में पाठको को अपक्षा हाती है कि इमन प्रकृति क सौन्दर्य वा कुछ चित्रण होगा परतु रात्री के निद्रित अन्धकार और तारो क टिमटिमाने के अतिरिक्त कुछ भी देखने को नहीं मिलता जिसका पुणविम्ब बन सके । इसकी अपेक्षा उमी कवि की ‘बीज न क्रियते’ कविता जगना विदक्षित जागय प्रकट करके एक पूरा चित्र प्रस्तुत करती है—

य एते हरिता गुशीतला बहुवर्णकुमुभा सुरभिता
 बहुगुणा फलिता खगनीडोकृता
 खिलसति पादपा
 तेषा जमदानि बीजानि यानि
 कि तेषामजघत् ? मृतानि जीवन्ति वा
 शीर्णानि तानि भूमौ
 मृत्तिका-भूतानि
 न मृतानि तावत्
 अन्यानि भविष्यन्ति भूयासि
 पादपेभ्यस्तेभ्य एव ।^२

इममें बीज से वृक्ष का उद्भव, पुष्पित एवं फलित होना एवं पश्चात् स्वयं

१ कृष्णलाल शिञ्जारव ५३

२ वही, पृ० ८७

प्राण होकर धीज रूप में शय रहत हुए भविष्य में अथ बहुत में वृक्षा व जगने की सम्भावना छान जान का पूरा भाव व्यक्त किया गया है जिसमें कि—

यना वा द्मानि भूतानि जायन्त यन जातानि जीवन्ति यत्प्रययभि
सविजन्ति की रहस्य भावना व्यञ्जित हानी है । इस प्रकार पूर्ण अभिप्राय प्रकट करने में यह पूरा चित्र प्रस्तुत करता है ।

अज्ञान का दाप भाग में प्रतिपादित किया है जो वाक्य में क्रिया में हानि के कारण उत्पन्न होता है ।^१ एक वाक्य के उद्देश्य और विधय का अर्थ होत है । क्रिया विधय अज्ञ है । कवि का अभिमत तात्पर्य क्या है इसका ज्ञान क्रिया में आ हागा और एक बिना शब्द बाध जो कि वाक्य का अर्थ विम्व प्रस्तुत करना में नही बनना ।^२ जब वाक्यात्मक वाक्य का पूरा आकार में बनने में यह अज्ञान दोष कल्पना है । जैसे—

शलघुतारद्धाद्धं मूषन्यावद्धमुग्धशशिलसलम ।

शीर्षपरिष्ठितगड म सध्याप्रणत प्रथनायम ॥^३

जब वाक्य में क्रिया पक्ष अनुक्त हानि में नमस्कारादि भाव क्या विवक्षित है अस्पष्ट है । इस कारण इसका विम्व बनना सम्भव नहीं है । मम्मट आदि में इस दाप का नहीं गिनाया है । उनके अनुसार साक्षात् में इस अन्तभूतकर सकते हैं । यद्यपि प्रदापकार में स्पष्टाकरण में विशेपण का साक्षात् क्षता कहा है पर क्रिया के अभाव में भाषा आवाक्षा रहती है ।^४

अभिव्यक्तसम्बन्ध

जब वाक्य में जाय पदा का परस्पर सम्बन्ध जो कवि का अभिमत है न बनता है यह दाप होता है । क्योंकि वाक्यार्थ के अनिष्पन्न रहने से कवि का अभाष्ट विम्व नहीं बन पाता । यत्तदोक्तिय सम्बन्ध दम सिद्धांत के अनुसार

१ मैत्रि० उच० ३ १

२ क्रिया-व्यवधिहीन यदजरीर तदुच्यते ।

—सूक्त० १ २७

३ तु—क्रिया-याद्युपलक्षणम् । प्रधानपदहीनमिति वाद्व्ययम् । प्रधानाविमर्शो हि वाक्यजरीरमत्र न निष्पन्न स्यात् ।

—रद० १८

४ सूक्त० (उदा०) १ ६०

५ साक्षात् क्ष महासाक्षात् क्षया वतत । इतरणदायाचयाय विशेषण साक्षात् क्षायय ।

—का० प्र० का० ३४०

६ द्र० टि० ४२

यत् का प्रयोग होने पर तन का प्रयोग भी आवश्यक है। अत्यन्त वाक्य-विश्रांति नहीं होनी। न्यूनगद दोष भी बन जाता है। जैसा कि आचार्य गम्मत का कथन है—

अत्र गुणानां च पराधत्वादमन्त्रव्य समत्वान् स्यात्' —इत्युक्तनयेन यन्त्रुब्दनिर्देशानामर्थानां परस्परमममन्त्रयेन यैरित्यत्र विशेष्यम्याप्रतिनीरिति ।
 'अत्र यदित्यत्र तदिति', तदानीमित्यत्र यदेति वचन नास्ति ।'

उदाहरण के लिए—

जाह्नवी सकलपावनी मुधास्यन्दिनी किल कलिन्दनन्दिनी ।

ये सदाऽमृतमये स्वचारिभि सिञ्चत शुभमहो भहीयसीम ॥^१

द्विजेन्द्रनाथ के इस पद्य में 'ये' सवनाम का अन्वय किसी के साथ नहीं है। क्योंकि पूर्वाग्रह में जाह्नवी और कलिन्दनन्दिनी के साथ-साथ ही उनके विशेषण 'सकल-पावनी' और 'मुधास्यन्दिनी' आ गये हैं। पुनः ये वे साथ 'न' लगाया नहीं है। हा यदि 'ये' के स्थान पर 'या' प्रयोग हा तो मही का विशेषण इन में निर्दोष होगा। 'सा' का अघ्याहार 'काऽपि' के साथ २/२ में किया जाता है, अतः यत्र उम्का आक्षेप अनावश्यक है।

शास्त्रविरोध

शास्त्र द्वारा तो कम वर्जित हो, यदि काव्य में उसका वर्णन होता है^२ तो पाठक यह श्रोता को शास्त्रीय नियम के सम्कार के कारण वाद हो जाने से बानपाथ-विश्रान्ति नहीं होती। फलतः काव्य-विश्व बनने में बाधा पड़ती है। इसलिए इस दोष का वर्जित किया गया है। जैम—

शुभ्रशतशकलालिमण्डिते कृटिटे च सति वाशयेऽमले ।

वर्णित सरसिजैरलकृते वारिकेलिमतिलतोया व्यधु ॥^३

द्विजेन्द्रनाथ के ही इस पद्य में ब्रह्म-मचारियों (वर्णित) की जलक्रीड़ा का वर्णन मिलता है। धर्मशास्त्र में ब्रह्म-मचारियों के लिए जलक्रीड़ा का निषेध है।^४ इसके अतिरिक्त ताकविकृद्ध वर्णन भी है। कवि आश्रमों का वर्णन कर

१ का० प्र० का पृ० ३०४-५

२ द्विजेन्द्रनाथ-मन्त्राव्यवधि २८

३ द्र० टि० ४१

४ स्वावि० २ ३२

५ नाऽन्मु श्लाघमानम्नापात् ।

श्लाघन विक्रयन तन्व वरताटनभिषर्ग ।—श्री० १० मू०, १ २३ ४०

रहा है। आश्रम निश्चय में नगर में बाहर पना में हाग जहाँ कि पक्का पशी वाले (कुटिटम) सरावर हान सम्भव नहीं ह।

दुष्कर्म

श्राव और शास्त्र में ऋषि वस्तु का उल्लेख पहल किया जाता है निष्कृष्ट का बाद में। अथवा पहल करन योग्य कर्म का पहल कहा जाता है बाद में करन योग्य काय का। इसके विपरीत वणन हा ता दुष्कर्म दोष होता है। यहा लाक और जाम्त्रकृत विराज हान क कारण वाक्यार्थ-बाध में बाधा पत्ता = जिममें उमका विम्ब नहीं बनन पाता। जैसे पद्मनारायण त्रिपाठी का—

तत श्रुताभ्यासपरमुमुक्षुभिस्तपस्विभि स्यष्टिल शायिभिर्मुनिभि ।
उपास्यमान भरत सवाध्वस्तपोनिधि सम्प्रणनाम रामवत ॥
मुनिप्रभावोदगतदिव्यभूतयो छुराज्यसम्भारसभावनोद्यता ।
समागताऽऽतिथ्यपराधना अयुरगम्यरूपो महिमा महीयसाम् ॥
तपोऽम्बुराशभरतो मुने पुर कथामभृष्वन रघुनायकाधयाम् ।
यथा द्विरेफ स्मितचम्पके वने स्थितोज्यहोराधमवाहयत् सुखम् ॥^१

इन श्लोका में क्रम न ग पाया जाता है। क्योंकि यहा भरत का भरद्वाज मुनि क आश्रम में जाना मुनि को प्रणाम करना उनके प्रभाव से दिव्य वृक्षा का भरत के स्वागत के लिए आना भरत का वहाँ एक दिन रात निवास करना वर्णित है। लाकव्यवहार क अनुसार पहल भरत का आश्रम में टिकने क बाद में देववृक्षा क स्वागत क लिये आन क स्वागत का वर्णन हाना चाहिए था किन्तु यहा पहल वृक्षा का जाना और तब भरत क रक्त का वर्णन है। इसके अतिरिक्त स्वागत जिम प्रकार हुआ एमा कछ वर्णन नहा किया है यह दुष्कर्म प्रवृत्तगत है। मात्र इस क्रमऽऽप्ट मज्ञा दन ह।^२

इन उदाहरणों में यह सिद्ध हो जाता है कि आचार्यों ने काव्यदाप इसी कारण मान है कि उनके कारण विम्ब निमाण में बाधा पत्ता है। पीछे गिनाये गय दापा में पदगत वाक्यगत और अथगत तीना ही प्रकार के दोषों का उदाहरण हैं।

१ इ० टि० ३५

२ रामचरित भाग २ १६ १४ १६

३ नमऽऽप्ट भवदाय शाब्दो वायत्र तत्रम ।

रस-दोष

आनन्दवदन, मम्मट आदि रसवादी आचार्यों ने कोई दस रसदोष गिनाये हैं। उनमें—

१ पहला रस स्थायीभाव और सचारी इनका शब्द से उल्लेख करने से बनता है।^१ इसके दो कारण हैं। शब्द मात्र से कहने से रसादि का बोध नहीं होता जैसे खाट का नाम लेन मात्र से चिमी का मुह भीटा नहीं हो जाता।

२ यह निदान और व्यवहार की बात है कि मनोभाव को मीधे शब्दों में कहना गणान्पन के अतिरिक्त कुछ नहीं। उस प्रकार या तो शब्द से कहने से भाव की अनुभूति होगी ही नहीं या विपरीत प्रतिक्रिया होगी। फलतः अभीष्ट विम्ब बनन की सम्भावना नहीं रहती।

चन्द्रभण्डलमालोचय शृङ्गारे मग्नमान्तरम।^२

यहा शृङ्गार का शब्द से कवन शृङ्गार की अनुभूति नहीं कराता।

३ अनुभाव और विभाव की कष्ट म रत्नना दूसरा रस-दोष है।^३ विभाव, अनुभाव और सचारी भावों के योग से ही सा स्थायी का रस के रूप में परिपाक होता है। जब उनका बाध ही कटिनाई में होगा तो रस की प्रतीति भी कैसे होगी। जैसे—

करवाणि पुण्यजनसकलिता फलिता महीं हि हतपुण्यजनाम्।

प्रणमित्युदप्रभुजवण्डमती निगवन् सुतीक्ष्णशुचिवातमथंत ॥^४

पद्मनागपण जिगाठी के इस पद्य में कवि का विवक्षित भाव तो यह है कि राम ने मुनियों के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मुनियों के निवास की इस भूमि का राक्षसों से हीन कर दूंगा, ऐसा कहते हुए वे सुतीक्ष्ण के आश्रम को चले गये। इसमें राम का उल्गाह ध्वनि होना था। परन्तु कवि विरोधाभास अलङ्कार के मोह में पड़ गया है। इस कारण उत्साह, आलम्बन विभाव-पुण्यजन भजा ऊँचे उठाना रूप अनुभाव आदि का और सचारियों का ज्ञान कष्ट में ही है। बल्कि 'एसा कहते-कहते ही सुतीक्ष्ण के आश्रम को चले गये' यह कहने में प्रतिज्ञा के विषय में राम की दृढ़ता प्रतीत नहीं होती। शत

१ व्यभिचारिणमस्थायिभावाना शब्दवाच्यता।

का० प्र० का०, ७, ६०

२ माद०, पृ० २४८

३ कष्टवल्पनया व्यक्तरनुभावविभावया। वही,

४ का० च०, २, १७, ८

का प्रयाग प्रतिज्ञा करने और गमन का त्रिया ग यागपद्य का सूचित करता है पूवपश्चादभविता को नहीं इसमें लगता है कि एसा चलन-चलन कहा फलत वास्तव म गक्षमा का मारन का उमाह राम म है या नहा यह सदह अपन्न हाता है । एम कारण भाव विम्ब नहीं बनना । अत यह मरे रस पाप का उदाहरण है ।

३ विराधी रस क विभाव सञ्चारी और अनुभावा का प्रकृत रस म निवर्धन तीसरा दोष है । जिस प्रकार खीर म नमक और खटाई जा दूध का फलन वान पदाप है मालन न दूध पट जाता है और रस भड ग हा जाना है इसा प्रकार विरुद्ध रस क विभावादि अग्न म प्रकृत रस का पण्पाक ता हाता ही नहीं प्रयुत रस भड ग भा हा जाता है । जैम—

लावण्यद्रविणव्ययो न गणित बलेशो महान स्वीकृत
स्वच्छदस्य मुस जनस्य वसतश्चिन्तानलो दीपित ।
एपापि स्वयमेव तुल्य रमणभावाद वराकी हता
कोऽथश्चेतसि वेधसा विनिहितस्त-वीमिमा त-चता ॥^१

इस पद्य म किसी सुन्दरा क रूप नावण्य का व्यथता उमक अनुरूप वर म उमका मयोग न हा पाने क कारण प्रकट का गई है । इस म पथम चरण और धतुध चरण का भाव ता विसा रागा का मा है जिम सुन्दरा क सौन्दय और शौवन की व्यथता दख कर उसक प्रति सहानभति उत्पन हा रहा है किंतु ततीय चरण का भाव कुछ तटस्थ का मा है 'वराकीहता यह कथन अनुराग क विवरीत शान्तरस म पयधमिन हाता है । क्याकि हता या भी अमम गल वाचक अशनील है । चाहन वाल क मुख म एम प्रकार की बात प्रमिका क दिये निकरना राग-वृत्ति क अनकूल नहीं । यदि वक्ता विरक्त हो ता उमक लिय दूमर चरण का भाव प्रतिकूल है क्याकि इसम स्वय उसकी रागवृत्ति मुन्त्री क प्रति प्रनीत होती है पर दोना ही प्रकार क भाव एक दूमरे म कट जान क कारण यहा न शृंगार ही बनता है न शान्त । फलत आनन्दवधन न इसका अप्रमृत्त प्रशमा का उदाहरण माना है ।^२ वम इस पद्य क भाव म विसा भी रस का भाव विम्ब नहीं बन पाता है ।

१ प्रतिकूलविभाविग्रह

—का०प्र०का० ७ ६१

२ ध्व-या० पृ० ४८७

३ तु०—यतो न तावदय गणिण कस्यचिद्विकल्प । तस्य एपापि स्वयमेव तुल्यरमणभावाद वराकी हता त्वेवविधाकथनुत्पत्त ।

—ध्व-या० पृ० ४८७ ८६

मम्मट द्वारा उदाहृत पद्य में भी आरम्भ के ३ चरण नायक की रासवृत्ति का प्रकट करते हैं। क्योंकि मन्तार करके वह नायिका को मान छोड़ने और रसि के लिए प्रवृत्त होने को कह रहा है। पर अन्त में यह कहना कि 'समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता' यह शारा रस का विभाग आ गया है जो समय की अनित्यता को प्रकट करना है। पुनः समय के लिये 'काल' शब्द यो भी मृत्युवाचक होने में मृत्यु की छाया का आभास करा देता है जिससे प्रवृत्त भाव पर पानी फिर जाता है।^१ इस प्रकार विरोधी रस का अनुभाव आने से प्रवृत्त रस की अनुभूति समाप्त हो जाती है और अभीष्ट विम्ब नहीं बन पाता। इसी लिए आचार्या न यह विधान किया है कि विरोधी रस के अङ्गों का वाच्य रूप में ही निवृत्त होना चाहिए न कि वाचक रूप में या परस्पर वाच्य-वाचिन रूप में। पहले रूप में वाच्य रस का परिपाक होने से पूरा ही शमन हो जाता है एवं प्रवृत्त रस का चमत्कार व्याप्त रहता है। जैसे—

स्व-मातृभूमि-सङ्कटे स्फुटेऽपि के भटोद्भटा ।

कुक्षु नु शेरते सुता प्रगाढमानमानसा ।

चलन्तु दीप्ति-साहसा युवान ऊढसाहसा ।

ध्रुवेऽपि ज्योतिषक्षये स्थिरेऽथवा जगत्तये ।

वसून्यसूनु पद धन श्रिय विचारयति ये ।

बल न धारयन्ति ते,

भक्ति न धारयति ते,

दिनानि कास-धूक-शूकरादिबन्धयति ते ।

वज्रतु ते लय भयेन धीयमान-मानसा ॥^२

प्रस्तुत लेखक ने इस गीत में आरम्भ में वीर रस का प्रवाह है, मध्य में मृत्यु एवं धन आदि की नश्वरता का भाव आ गया है जो कि शान्तरस का

१ प्रमादे वर्तन्व प्रकृतय मुद सन्धज रूप

प्रिये शृण्वन्त्यङ्गान्धमृतमिव त मिक्षुनु वच ।

निधान गौरुधाना क्षणमभिमुख स्थापय मुख

न मुग्धे प्रत्येत् प्रभवति गत कालहरिण ॥

अत्र शृङ्गार प्रतिकूलम्य ज्ञान्तस्वानित्यता-प्रकाशनरूपो विभावस्त प्रका-

जिगो निर्वेदश्च व्यभिचार्युपात्ता

- का० प्र० का०, पृ० ३६६

२ मञ्जायादेदिकुद्धम्य वाच्यस्योक्तिगुणावहा ।

—वही, ७, ६३

३ अरागो०, २४

उददीपन विभाव है। परन्तु दश रक्षा के समक्ष धन प्राण का विचार करना कातरता का लक्षण है। इस वीर रस क भाव से बाधित हो कर वह प्रकृत रस का ही अङ्ग एव पोषक हो गया है। इस प्रकार अट गी रस का पोषक हान म उसका भावविम्ब सुतरा स्पष्ट हो गया है।

४ अकाण्ड प्रथम अर्थात् जन्ममय म किन्ती रस का निवन्धन भी दापावह हाता है।^१ इस का तात्पर्य यह है कि अचमर क अनुमार ही रमा का निवन्धन हाता चाहिए। विवाह क समय श्रुट गार अथवा हास्य का निवन्धन तो ठीक है पर वीर या रौद्र का अनुपयुक्त होता है। जैसे वेणा सहार नाटक क दूमरे अङ्क म दुर्योधन एव भानुमती का विलास-वपन सर्वथा अनामयिक है।

५ अकाण्डच्छेद जिम ममय किन्ती रस का पूरा परिपाक हो रहा हो उम सहसा समाप्त कर दना भी दोष हाता ह। क्योंकि पाठका श्रुताभा या दशका का रस भङ्ग हो जाता है। जैसे महावीर चरित म परशुराम और राम क सवाद म मधुपर्क का पूरा वातावरण है और दाना आर मे पाण चडा हुआ है उसी समय राम का यह कहना कि मैं जरा बगन खुनवान जाता हूँ, अकस्मात वीर रस का विच्छेद कर देता है।^२ इतना ही नहीं इसम सामाजिक की राम क प्रति हीन भावना भी उभरती है कि जब लडन का समय आया तो घटाना बना कर खिसन गया^३। पनम्बरूप कवि नायक का जा प्रभाव सामाजिक के मन पर नानना चाहता है वह जातः रहता है और अशीष्ट रस की मिद्धि भी नहीं हाती। यह कवि की अव्युत्पत्ति एव जगत्ति का दानक हाता है^४।

६ पुष्ट हुए रस को बारम्बार प्रदीप्त करना सामाजिक म अहचि और छीन उपन्न करक रसभङ्ग कर देता है। जैसे कुमारसभव म रति क

१ अकाण्डे प्रथम यथा-वेणीसहारे द्वितीयेऽन् केऽनेकवीरमन्धे प्रवृत्ते भानुमत्या सह दुर्योधनस्य श्रुट गारदणनम् । —का०प्र०का० ३६६

२ अकाण्डे छेदा यथा-वीरचरित द्वितीयेऽङ्क राघवभागवयोवाराविरुद्धे वीररस 'कट्कणभाचनाय गच्छामि इति राघवस्पाक्तौ ।

—वही पृ ३६६

३ अकाण्डे हि तथावचन व्याजन निगम प्रतिनादयद् वीरत्वाभाव पयवस्यति । —वही,

४ अव्युत्पत्तिवृत्तो दोष शक्त्या सन्नियत क्व ।

यस्त्वशक्तिवृत्तस्तस्य स अटित्यवभासत ॥ —ध्वया० पृ० ३१६

५ परिपोष गतस्याऽपि धीन पुन्यन दीपनम ।

—वही, ३, १६

कामदहन के पश्चात् विलाप में बरुण रस प्रकष को पहुँच चका है । परन्तु वसन्त को देखकर वह पुनः विलाप आरम्भ कर देती है । यह मनोवैज्ञानिक मत्व है कि किसी के विलाप का सुन कर आरम्भ में महानुभूति होती है पर अति होने पर चिढ़ हो जाती है ।^१ इस प्रकार अभीष्ट भाव का विश्व नहीं बनने पाता ।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने रति के पुनः विलाप का कारण स्पष्ट कर दिया है कि किसी बन्धु को दखन में मनुष्य के दुःख या शोक का बाज टूट जाता है ।^२ रामायण में भी दशरथ की मृत्यु के पश्चात् बारम्बार रतिया का कुहराम दिखाया गया है ।^३

७ वनिया का अशुचित प्रयाग भी रस-भाव का विश्व बनने में बाधक होता है ।^४ यहाँ आनन्दवर्धन ने वृत्ति-अनौचित्य का दास्य अर्थ दिया है ।

१ नायक आदि का प्रकृति के विरुद्ध आचरण । जैसे श्रृङ्गार उत्तम प्रकृति वाले पात्र में दिखाया जाता है । उमम विदग्ध व्यवहार की ही अपेक्षा की जाती है न कि यवास्पन की । जैसा कि काम आरत में कहा है—ताम्बूलदान विद्विना विमृजेद् वयम्या द्वयर्थे पदैः पिशुनयेच्च रहस्यवस्तु । वह रत्यादि की अभिरापा भी विदग्धरीति में सूचित करता है । जैसे रिग्भु कपूतर का क्वतरी के पीछे जाने हुए अपनी प्रेमिका को दिखाता ।^५ इसमें विपरीत 'क्षुम्बन रहि

१ तमवक्ष्य रशोद सा भय स्तनगबाधगरो जघान च । —कुम० ४ २६

२ तु० उपसुक्तो हि रम स्व-सामग्री-नव्यपरिपाप पुन पुन परामृषयमान परिम्लानक्षुम-रत्नं कल्पत । —ध्व०या० ५० ३६४

३ स्वजनस्य द्वि दुःखमग्रता विवृतद्वारमिवोपजायत । —कुस०, ४, २६

४ तु०—तत्र सर्वा नरेन्द्रस्य कैङ्गो-प्रमुखा स्त्रिय । एतस्य आकमतप्ता निपगुमतचेतना । वा०रा० २, ६५, २५-२६

पुन वही, २, ६६, २, ७५, २ ७६, २, ७७, २, १०२

५ रमस्य स्याद् विरोजाय वल्पिनौचित्यमेव च । —ध्व०या० ३, १६

६ तथा वृत्तेव्यवहारस्य यदनीचित्य नदान रसभङ्ग गहेतुरव । यथा नायक प्रति नायिकायाः कस्माश्चिदुचिता भडि गमत्तरेण स्वय सम्भोगाभिलाषकथने । वही, पृ० ३६४

७ का०प्र०का० पृ० ३१५

८ निरद्वय यान्ती तर्ना कपाली कूजकपालस्य पुखे वदाने ।

मयि स्मिताङ्ग वदनारविन्द मा मन्द-मन्द नमयावभूव ॥ —रग०, पृ० ७६

म भार्ये काम-घण्टाल-तृप्तय मदृश उक्तिया का प्रयाग नायक की जविदग्धता ही सूचित करता है। उमम भा नायक क प्रति अथद्धा हान म उस क साथ साधारणाकरण नहा हा पाता। इसी प्रकार धारादात्त राम का छिपकर वाता का माग्ना उचित काय नहा ह।^२ वीर रस का आशय भी उत्तम प्रकृति ही हाता ह।^३ वह छल नही करता, इमनिय अनौचित्य का भाव मन म ज्ञान स साधारणीकरण न हान क कारण रम-नुभूति नहा हाती। इस्तीनिय भवभूति न इस घटना म परिवर्तन कर दिया। उसक अनुमार वाती गवण क मत्री माल्यवान क कहन म स्वय गम को भारत आता है और बदल म राम क हाया मारा जाता है। उदान्तराधव म ता इस घटना का छाड ही दिया ह। इस घटना और ताडका-वज्र-मदृश कर्म करन क निय अनुरगमचरित म राम का उपहास कराया गया है।

वक्ष्योचित्य का दूसरा अर्थ ह भग्ताइत वैशिकी आदि वृत्तिया का निर्देश क विद्वद्ध प्रयाग। जैम शृङ्गार मे वैशिकी वीर और अद्भुत म मान्वती, गीद्र, वीभत्स आदि म आरभटी और सभी रमा म भाग्ती का विधान है पर कवि इमम विषयय कर द। या उपनागरिका परुषा और कामला इन ताना वृत्तिया का यथानियम प्रयाग न करना भी इसम आ जाता है। क्वाकि शृङ्गार म उपनागरिका करुण और शाल म कामता एव वीर जादि मे परुषा का विधान है। च्मक विपरीत प्रयाग म प्रयुक्त पदवाचना अभीष्ट रम

१ रग० पृ० ६०

२ तपु च या यथाभूतस्वायथावर्णन प्रकृति विपर्यया दाप ।

यथा धीरादात्तस्य रामस्य गीराद्धतवच्छद्मना वालिवध ।

—साद० पृ० २५०

३ उत्तम-प्रकृतिवीर ।

—वही ३, २३२

४ अनुचिन्मितिधृत यथा—रामस्यच्छदमना वालिवध । तच्चादात्तराधव नाक्तमत्र । वीरचरित तु वाती नामवधा-वमागता रामण ह्य इदन्यथा कृत ।

—वही पृ० १८०

५ वृद्धास्मिन् विचारणाय-चरितान्मिच्छन्तु हं वतत ।

मुदरम्नादमनज्यकुण्ड यगमो लाज महाना हि त ।

यानि श्रेष्ठ्यनुत्तानुद्धायपि पदायामन खरायोत्रन

यद वा कौशलमिद्र सूनुनिधन तत्राप्यभिज्ञो जन ॥

—उप०, ५, ३५

के परिधान में समथ नहीं जाती। उद्धत पदावली शृङ्गार के और कोमल वर्णमाला वीर, रौद्र आदि के व्यञ्जन में समथ नहीं होगी।^१

इनके अनिश्चित दोष परम्पर विरोधी रस का एक ही आश्रय होना या एक ही आनन्दन होना, उनका बीच में व्यवधान डालने बिना साथ साथ आना, अद्भुत रस का अद्भुत की भाँति विस्तार में निबन्धन, ये दोष भी आचार्यों ने गिनाने हैं जो कि निन्द्य होना है और कवि का कनक्य यथाशक्ति इन्हे काव्य में न आने देना है। जैसे शृङ्गार और गान्धर्व रस एक ही आश्रय में नहीं दिखाने चाहिये। क्योंकि शृङ्गार जहाँ सामाजिक भावों में प्रदूर्ति का सूचक है वहाँ उनमें विरक्ति करना है। इसी प्रकार शृङ्गार और वीर का आनन्दन-भेद होना चाहिये। त्रिमक प्रति प्रेम है उस चीतने या मारने पीटने का उत्साह उचित नहीं। इसी प्रकार दो रीतियों में बीच में व्यवधान डालना चाहिये। शृङ्गार के पश्चात् जद्भुत का जय रस डालकर पश्चात करण रस दिखाना उचित होगा।^२ जैसे कुमारभक्त म 'निर्वाण-भूषिष्ठ'^३ आदि पद्य में लेकर 'हरम्बु किञ्चित्'^४ और 'जुमाणि नीलानक'^५ तक निबद्ध शृङ्गार के पश्चात् मोक्ष प्रभो महर' म रौद्र रस और तदुपगन्त रति का विलास 'जय माहवरायणा' आदि रौद्र म प्रभुत्त करने कठण की योजना की गई है। आनन्दन-भेद में वीर, वीभक्त और भयानक सद्भुत रस एक ही आश्रय में दिखाये जा सकते हैं। जैसे मालतीमात्र में मालती की प्राप्ति में निराश माधव के महाभासविषय के लिये प्रमशान-मेवन के प्रसंग में वीभक्त रस की योजना है। वही मालती की चीख पुकार सुनने पर उनकी रक्षा के लिये माधव के काली-मान्दर में पहुँचने में वीर रस है तो मालती की वलि देने के लिये उग्रत कापालिक अघारघण्ट के प्रति रौद्र रस की योजना हुई

१ यदि वा वृत्तीना भरत-प्रनिष्ठाना केशिकनादीना काव्यरत्नद्वारान्तर-
प्रसिद्धानामुपनागरिकादीना वा यदनौचित्यमविषये निबन्धन तदपि रस-
भङ्गहेतु ।

— ध्वया०, ३६४

२ ध्वन्या० ३, २०-२२ तथा ३, २४-२५

— वही, ३, २६

३ कुस० ३, ५२

४ वही, ३, ६७

५ वही, ३, ६२

६ वही, ३, ७२

७ वही, ४, १

है।^१ इस प्रकार आत्मवन भद होने म रसा का यहा विरोध न हाकर सामञ्जस्य ही है। परिणाम-स्वरूप भाव विम्ब वनन म कोई बाधा नहा भाती। एक ही पद्य म दा विराधा रसा का समन्वय भा इसी विधि म हा जाता है। जस—

कपोले जगन्कया करिकलभदतद्युतिमुपि
स्मर स्मेर स्फारोडडभरपुलक वक्त्रकमलम् ।
मुहु पश्यञ्चृष्वन रजनिचरसेना-कलकलम
जटाजूटप्रथिय द्रढयति रघूणा परिवृढ ॥^२

इस पद्य म साता का आत्मवन वननकर गति और राक्षसा क प्राँव उत्साह एक ही आश्रय गम क हृदय म दिखाया गया है जिमम काह अनौचित्य नहीं है।

भावशबन्ता म एक भाव का बर्ताकर जब दूसरा भाव जार मारता म वहा भा तर वितक का परिस्थिति म मानव मन म हान वान अतर्द्ध का चित्रण हाता ^३।^३ कठार वनमान का तुनता म जावपक अनौत का स्मृति क विम्ब मग्निज्ज म जान ^४ या प्रतिक्षण बदहन वान भाव सिनमा का गल की भानि नया-नया भावचित्र पस्तुत करन म। जम वशा क सहमा अन्वय हा जान पर पुस्त्रवा क मानम-द्वन्द्व क चित्रण म।^४

इस प्रकार स्थानी-पुताक याय म त्रिवाय गय काव्य-दाया क दाहृणा स यह सुतरा स्पष्ट हा जाना है कि य दाप काव्य विम्बा क निर्माण म बाधक

१ ड० मामा० ४ अ० क

२ कपोला जानकया करिकलभदतद्युतिमुपि
स्मरस्मरगण्डाडभरपुलक वक्त्रकमलम्
मुहु पश्यञ्चृष्वन रजनिचरसेनाकलकलम
जटाजूटप्रथिय द्रढयति रघूणा परिवृढ ॥

—सक० ५ ३६६

३ शबन्ता त कावभदन निरतरतया पूवपूर्वोपमदिनाम ।

—का०प्र०का० १३०

४ तिष्ठत कापवशात प्रभादपिट्ठिना दाध न मा कुष्यति
स्वगायान्तातिताभवन गधि पुनर्भावाद्रमस्या मन ।
ता हतु विबुधद्विगाऽपि च न म शकना पुरावतिना
मा चात्यन्तमगाचर नयनयाजनिदि कोज्य विधि ॥ —विक० ४ ६

तत्त्व ही हं। जब वे परिस्थिति-भेद में विम्ब के बाधक नहीं होने, बरिक्त सहायक होते हैं, वहां वे गुण भी बन जाते हैं। उदाहरण के लिये दुःश्रवत्व या श्रुतिवद्वत्त्व शृटगार, शान्त और कृष्ण में तो दोष होता है परन्तु वीर, बीभत्स, रौद्र आदि में उत्तरोत्तर प्रकृति का अध्यायक होने से गुण ही बनता है। जैसे पहले उदाहृत 'उत्कृत्योत्कृत्य०'^१ आदि एव 'अन्वप्राप्त०'^२ आदि पद्यों में यह दुःश्रवत्व दोष न हाकर गुण ही है। यही स्थिति 'चञ्चद्भुज०'^३ आदि पद्य की है। इसमें धीराद्धत प्रकृति भीम क्रोधवेश में दुर्योधन की जघा तोडन का प्रण करता है। अतः समामबहुलता और सयुक्त वर्णों में रौद्र का भाव-विम्ब बनने में सहायता ही होती है। वीर रस में विवक और समय होना है, अतः वहां दुःश्रवत्व न्यून मात्रा में ही उपकारी हाता है। जैसे—

चत्वारो वयमृत्विज स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरि
सङ्प्रामाध्यरदोक्षितो नरपति पत्नी गृहीत-प्रता ।
कीरव्या पशव प्रिया-परिभव-क्लेशोपशान्ति फल
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीत यशो-दुन्दुभि ॥^४

यहाँ युधिष्ठिर की रण-शोषणा सुन कर प्रमत्त एव सन्तुष्ट भीमसेन का केवल युद्ध-विषयक उन्माह विवक्षित हैं। फलतः इस समय भावावश के उप-युक्त ही दुःश्रवत्व वहां पर आया है। प्रतिकूल वर्णों क्योंकि प्रत्येक रस की अनुभूति में बाधा डालता है, इस लिये उक्त नित्यदोष के रूप में बर्जित हो गया है।

अलङ्कार दोष—अलङ्कार जमा कि पढ़ने दिग्दर्शन के रूप में कहा जा चुका है, काव्यविम्ब के निर्माण में प्रमुख सहायक है। यहाँ तक कहा जा सकता है और आगे के अध्यायों में दिखाया जाएगा कि अलङ्कार स्वयं अपने आप में विम्ब है। अतः उनमें दोष होने का अर्थ हुआ-विम्ब की अपूर्णता या अस्पष्टता। इसलिये आचार्यों ने उनके भी दोष प्रस्तुत किये हैं। उसका एक

१ मामा०, ५, १६, द० टि २, ७०

२ मदी०, १, ३५

३ चञ्चद्भुजसंमितचण्डगदाभिघात-

सञ्चूर्णितोरयुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्तयानावनद्धघन-शोणित-शोणशणि-

हन्सस्यिष्यति अचारनव देवि भीम ॥

—वेम०, १, २१

४ वही, १, २५

म बढकर हो जाता है। काव्य के ऐसे धर्म जो उसे सामान्य काव्य रचना से बढकर सिद्ध कर दें गुण कहलाने हैं। यह बढकर होना अर्थात् उत्कृष्ट का भाव ही काव्य-गुण क नाग से पुकारा गया है।^१ काव्य म उत्कृष्ट की कसौटी चमत्कार है जो जितना अधिक चमत्कारक होगा वह उतना ही उत्कृष्ट काव्य कहलायेगा। चमत्कार का स्वरूप पहचाना जा चुका है।^२ वामन न काव्य की शाभा क उत्पादन धर्मों को गुण^३ और उसम अतिशय न आधान करन वाले धर्मों को अलंकार कहा है। प्रयोजन दोनों का एक ही है—चमत्कार जनकता म काव्यसिद्ध वस्तु का प्रत्यक्षकल्प करना। वामन गुणा का सम्बन्ध रीति म जोडन है जो कि चमत्कार पूरणपदयोजना ही ह।^४ दस प्रकार रीति शब्द पर आधारित सिद्ध हानी है। पर निरवक शब्द का काव्य म बौद्ध स्थान नहीं होता इसलिए अविनाभाव म अथ भी सड गहीत है। अत गुणा को शब्दाश्रित एव अर्थाश्रित इन दो श्रेणिया म विभक्त किया गया है। गुणा की भाति अनडकार भी शब्द और अथ पर आश्रित होने स शब्दासडकार व अर्थालंकार दो प्रकार के हैं। सम्भवत इस समानता को देखते हुए ही उदभट न गुण और अलंकार म भेद परम्परामात्र पर आश्रित बताया है।^५ जग्नि पुराण म भी गुण चमत्काराद्ययं धम ही माना गया है।^६

किंतु ध्वनि सिद्धांत का प्रतिष्ठा होने क पश्चात स्थिति परिवर्तित हो

१ रमवत्समानाधकरणवे सति उत्कृष्टं तु व गुण वम ।

—सामुसि० सू १३५

तथा—तु० गुणवत् भूमन् प्रशसाया वः मत्प ।

—रद० ३

२ द० अ० टि० ८ ६४

३ काव्यस्य शोभाधायका धमा गुणास्तदनिगय इतवस्त्वलंकारा ।

—का० सू० वृ० ३२ ३-४

४ विशिष्ट-पदरचना रीति ।

—वही, १ २ ७

विशेषो गुणान्मा ।

—वही, २, ४

५ अत्राना शोभाद मन्शा न ग रुरा न तुल्या अनडकारा इत विवक मुक वा मयोग ममवायेया शोभादीनाम स्म भद । इह तूभयेषा ममवायेन स्थितिरिति अभिधाय तस्माद गडर्डीरका प्रवहेण गुणानडकारभद इति भामह विवरण यद नटरोदभटोऽभ्यगात् तन्निरस्तम ।

—का० नु० वि ५ ३५

६ य काव्य महती छायामनुगह्यात्पसो गुण ।

—अपु०, ३४६ ३

गई। गुणों का सम्बन्ध रस में जुटकर वे काव्य के अपरिहार्य तत्त्व बन गये। परन्तु अलङ्कारों का महत्त्व घट कर बाह्य शोभा के साधन के रूप में ही रह गया।^१ नाट्यशास्त्र में उहे दोषाभाव रूप माना गया है।^२ परन्तु ऐसा मत्र नहीं मानते। कुछ दोषाभावमात्र स्वीकार करते हैं।^३ इस प्रकार जगन्नाथ के पूर्व तत्र को परम्पराएँ चलती रही है। (१) शब्दार्थ-प्रमवादी (२) रसप्रमवादी। इसरी परम्परा में रीति का नाम मचटना हो गया और उसका सम्बन्ध गुणों के साथ आश्रय-आश्रयिभाव में माना गया। वह शब्द और अर्थ गुण की दो श्रेणिया में उह विभक्त करती है। नाम में समान होने पर भी दानों के लक्षण पृथक् पृथक् देती है। इसके अनुसार दोनों की सख्या दस है।

द्वारा परम्परा केवल तीन गुण स्वीकार करती है और उसका धन मानने के कारण उक्त शब्दगत और अयगत भेद नहीं करती।^४ रस-भाव आन्तरिक चित्तवृत्ति विशेष है ता मायुय ओज भी चित्तवृत्ति के ही धन है। क्योंकि विश्वनाथ चित्त की द्रुति की अवस्था का नाम मायुय और दीप्तता का नाम ओज^५ मानते हैं। आन्तरिकवृत्ति शब्द से सीधी बने जाती जा सकती है? जैम खाण्ड कहते मात्र में विमी का मुँह मीठा नहीं हो जाता इसी प्रकार शब्द के उपचारपमात्र से चित्तवृत्ति का वाप नहीं हो सकता। अन्यथा व्यञ्जनावृत्ति एवं विभावादि की कल्पना का क्या औचित्य? रसभावादि की वाच्यमहत्ता का तब क्या आधार होगा? इसलिए उपचार से ही नहीं परन्तु शब्द और अर्थ में भी इन गुणों की स्थिति स्वीकार की है।^६ इसीलिए विश्वनाथ ने ओज का अर्थ समके व्यञ्जक चित्तवृत्ति-विशेष उपचार में माना है।^७

- १ तमधमचलम्बल्ल वेज्जि गल्ले गुणा स्मृता ।
- २ अङ्गाधितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या वटणादिषु ॥ —ध्वया०, २, ३
- ३ एते दोषास्तु विज्ञेया भूगिभिर्नाटकाश्रया ।
गुणा विषययादेया मायुर्भौदार्यलक्षणा ॥ —नाशा०, १, ६६
- ४ क्वचिन्न दोषो न गुणः । —का० प्र० का०, पृ० ३५
- ५ तु० —ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शीर्षादय इवाऽऽपन ।
उत्कथहेतवस्तस्युत्कथस्थितयो गुणा ॥ —वही, = १
- ६ चित्तद्रवीभावमगो हलादो मायुयमुच्यत । —साद०, ८, ०
- ७ ओजश्चित्तम्य विस्ताररूप दीप्तत्वमुच्यत । —वही, = ४
- ८ तु० —तथा गुणाना भङ्ग काव्याभासन्वपर्यवतापी वाप । —रद०, पृ० २६
- ९ तु० —य रसस्याङ्गिनो धर्मा शीर्षादय इवाऽऽपन ।
उत्कथहेतवस्तस्युत्कथस्थितयो गुणा ॥ —का० प्र० का०, ८, १
- १० गुणवृत्त्या पुनस्तेषा वृत्ति शब्दाथयोमता । —वही ८, ८१
- ११ ओजमि भक्तया ओन'अब्दवाच्ये शब्दार्थधर्मविशेषे । —साद०, पृ० २६६

रेवाप्रसाद द्विवेदी न यहा शब्द और अथ मे वस्त्र और शरीर क सादृश्य कल्पना की है ।^१ जैम शरीर शब्द म आवृत रहसा है इसी प्रकार अथ शब्द से आवृत रहना है । शब्द ध्वन्यामक होने म साधा उस धम का प्रकट नही कर सकता । उधर हृदय क आतर्गिक धम शब्द ध्व्यापार क बिना अथ साधन म प्रयत्न नही हो सकत अनुमति-वेद्य जो ठहर । अत सिद्धातत नन ही उहर म का धम मानत रह परन्तु शब्दध्व्यापार प्रधान काव्य म उनका प्रकाशन शब्द और अथ क माध्यम म ही सम्भव है । नादमाधुय शब्द म आर पदाथ-स्फुटता अथ म हागा । पुन माधुय आदि धम है जा धर्मी म रहत हुए भी शब्द म वाच्य नहा हा सकत । व्यङ्ग्य ही होग । इसलिए रमवादा माधुय आदि को रम का धम मानन पर भा उनका व्यञ्जक शब्द और अथ म उपचरित करत है । आनन्दवधन का भा सम्भवत यह इष्ट था पर खुनकर उन्हाने नही क्त ।

वामन आदि गुणा नो शब्दाथ वृत्ति स्वीकार करत थ । उत्तरकाल म पण्डितगण जगन्नाथ न भी पुन इसी मत का समर्थन किया । उन्हान दार्शनिक दृष्टि म एक प्रश्न और उठाया कि इसको काव्य की आमा मानत हो तो आमा तो विभ्र और निगण है । अत उसम माधुय आदि को वृत्ति कैमे स्वीकार की जा सकती है ? खैर यह आपत्ति ता शार्दूलक आधार पर है अथथा रम का काव्यामव औपचारिक अथ म है । पुन जब आमा को नित्य सत सदृश विशेषणा म विनिष्ट कहत हैं ता य भी तो गुण हा हैं । व्यावहारिक दृष्टि स गुणा को शब्दाथ निष्ठ मानना आवश्यक हो जाता है । जब उपचार मे यह स्वीकार करत थ है ता मीध शब्दा म प्रत्यक्ष क्या नही उह शब्दाथवृत्ति कह दत ? इसी दुबलना का अनुभव करके साहित्य मुद्रानिधुकार न रमगत तीन गुणा क अतिरिक्त शब्दाथगत गुण भी गिनाय है ।^२ यही माग जगन्नाथ भी अपनात है । प्राचीना न अनुगोत्र स वे पहल तीन गुण रस धम क रूप म गिनात है पर बाद म रमप्रमता पर अपनी असहमति प्रकट करके शब्दाथ गुणा का विवेचन भा करत है ।

१ सामुसि भूमि० पृ० १४ १५

२ रग० पृ० ५४ ५५

३ मपुर-कोमल-कान्तपदावलि शृणु तदा जयदेव-सरस्वतीम ।

इत्यादि व्यवहारदशनात गुणाना शब्दवृत्तित्वमुपाचार विनैव कल्प्यताम किं रसधमव कल्पना-बुध्यमनन्ति ।

गुण और काव्य-विम्ब

गुणों को इस प्रकार रस धर्म और शब्दाध-धर्म मानने का प्रयोजन क्या है? क्यों इनके निर्वाह के लिए प्रत्येक गुण की व्यञ्जक-विशेष ध्वनियों का परिगणन कराया है? जब इन प्रश्नों पर विचार करते हैं तो यही कारण प्रकाश में आता है कि अर्भाष्ट अर्थ की प्रत्यक्षकल्पना-मिद्धि के लिए य गुण आवश्यक एवं अपरिहाय हैं। शृङ्गार करुण एवं भान्त तीनों ही सुकुमार रस हैं, इसकी अनुभूति कोमल होगी है। उमके प्रकाशन के लिए कोमल ध्वनिया का ही प्रयोग होगा तभी ऐन्द्रिय विम्ब के बाद उमकी महायता में भाव विम्ब भी बन पायेगा^१ इसी अभिप्राय से पण्डितराज ने अमरक ने "गून्ध वासुगूह आदि पद्य का सयोग शृङ्गार का विदग्ध स्वीकार करन में आनति की थी^२ और मम्मट द्वारा रौद्र क उदाहृत पद्य का रौद्ररस के व्यञ्जन में जममथ घोषित किया था।^३ इसी प्रकार शब्दाध-धर्म के रूप में परिगणित शब्द और अर्थ के गुण नाद-चित्र और अर्थचित्र के निर्माण में असाधारण रूप में सहायक होते हैं इसी तात्पर्य में इन गुणों का प्रतिपादन किया। अनट्कारों का प्रयोजन भी काव्य-विम्ब-निर्माण है और गुणों का भी, अत उदभट्ट जादि ने इह असत्कारा म ही गिन किया और वासन आदि नौदयवादी आचार्यों ने गुणों की असत्कारों से अधिक प्राथमिकता दी। क्योंकि अनट्कार प्राय वाच्यार्थ का ही प्रकाशित कर पाते हैं रस भाव उनकी परिधि में नहीं आते। पर गुण इस कार्य में अनिवाय रूप में सहायक होते हैं।

भामहू आदि गुणप्रयवादी आचार्य माधुर्य आज और प्रमाद केवल य ही तीन गुण स्वीकार करते हैं। भरत, दण्डी आदि श्लेष समता, सुकुमारता, अथव्यक्ति उदारता कान्ति एवं समाधि ये सात जतिरिक्त मानते हैं। इस प्रकार कुम्भ दस ही मानते हैं। भोज तक जाते-जाते ये गुण २४ हो जाते हैं।

१ मूर्ध्नि वर्गात्पया स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।

अद्वितीमध्यवृत्तिर्वा माधुर्यं धटना तथा ॥

दोष आद्यलुनीयाभ्यामन्त्ययारेण तुल्ययो ।

यदि गणो वृत्तिर्द्वैर्त्र्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥

—का० प्र० का०, ८, ७४-७५

२ करुणे विप्रलम्भे तन्त्रान्ते चातिशयान्वितम् ।

—वही ८, ६६

३ रग०, पृ० ७४

४ रग०, पृ० ३७

उनमें उदात्ता और्जिय प्रेष मुग्धना या सौशब्द, मौढ्य गाम्भीय, विस्तर मक्षेप, ममित्व भावित्व, गति, रीति, उक्ति, प्रौढि ये उनके द्वारा स्वीकार किए गये जनिरिक्त गुण हैं। इन्हीं २४ का वे अर्थगुण मानते हैं। वामन जादि की भाति परिभाषा सबकी पृथक् देते हैं। उसके अतिरिक्त कुछ ऐसे गुण गिनाते हैं जो मूलत दोष मान गये हैं परन्तु परिस्थिति भद में गुण बन जाते हैं। दूसरे शब्दा में अनिय दोष ही गुण मान लिए गए हैं। उनकी मर्या भी २४ ही है। वामन की भाति भाज भी काव्य के लिए गुणा का होना अपरिहाय मानते हैं। गुणहीन किन्तु जलङ्कृत नारी के शरीर की भाति अनेक कारयुक्त हान पर भी कवि का बचन गुणों के बिना चमत्कारक नहीं होता।^१

कृतक—कुन्तक नामह की गुणत्रयवादिनी परम्परा का ही अपनाया है परन्तु पृथक् रूप में। भामह गुणा की चर्चा तो करते हैं पर उतन उत्साह में नहीं^२ तितन से जलङ्कारों की। इससे विपरीत कुन्तक गुणों की महत्ता उसी प्रकार स्वीकार करते हैं जिस प्रकार दण्डी आदि।^३ उनहान गुणा का नवीन नाम दिय है, नय डट ग म उनका स्वरूप प्रतिपादित किया है जिसमें वे उनका चक्रान्तिमिद्धान्त के अनुकूल बैठ सके। दण्डी आदि की भाति वे गुणा को अनेक कारों में नहीं गिनते। पर रीति या मग का धर्म मानते हुए उन्ही प्रकार

१ युक्तरिव रूपमट ग काव्य स्वदत्त शुद्धगुण तदप्यतीव ।

विहितप्रणय निरन्तराभि मदलङ्कारविकल्प-कल्पनाभि ॥

—सक०, १, १५०

२ यदि भवति वचश्च्युत गुणेभ्यो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङ्गनाया ।

अपिजनदयितानि दुभन्व नियतमलङ्करणानि सश्रयन्त ॥

—वही, १, १५६

३ तु०—माधुय मभिवान्छन्त प्रसाद च सुमेघस ।

समासवन्ति भूयामि पदानि न प्रयुञ्जत ॥

कविदोजोऽभिधित्सन्त समस्यन्ति बहूनपि ।

भाका०, २, १-२

४ वैचित्र्य सौकुमार्य च यत्र सङ्कीर्णता गते ।

प्राज्ञेते सट्जाहार्य-ओभातिशयशालिनी ॥

माधुयादिगुणश्रमा वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ।

यत्र कामपि पुष्पानि बन्धच्छायातिरिक्तताम् ॥

—वही, १, ४६-५०

ते गुणा का निरूपण करते हैं ।^१ उनको अभिन्न गुण तीन न होकर चार हैं ; यद्यपि राज की सत्ता उनके शब्दा में श्लक्ष्ण होती है^२ तथापि प्रत्यक्षतः सत्ता स्वीकार नहीं की है । उनके गुण भावुर्य, प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य हैं । इनमें भावुर्य और प्रसाद का स्वस्व तो बहुत मिल्न नहीं है पर शेष दो का स्वस्व नवीन रीति में प्रस्तुत किया गया है ।^३

अग्निपुराण—अग्निपुराणकार ने कुल १८ गुण स्वीकार किए हैं जिन्हें शब्द, अर्थ और उभय गुण के रूप में विभक्त किया है । इस प्रकार कुल ६ गुण माने हैं—श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, औदार्य और भोज । इनमें लालित्य का छाडकर श्लेष भोज द्वारा प्रतिपादित गुण ही है । परन्तु ये केवल शब्द गुण हैं । अथगुणा में भावुर्य, सविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढि और सामयिकता हैं । इनमें भावुर्य, उदारता और प्रौढि भोज-प्रतिपादित ही हैं । श्लेष नवीन है । इसी प्रकार उभय गुणा में प्रसाद, नौभाग्य, यशामय, प्रशम्यता, पाक और राग की गणना है । इनमें पाक भोज की प्रौढि में समानता रखता है ।^४ यथामर्य उत्तरवर्ती जाचार्यों ने अण्डकारों में गिना है ।^५

विम्ब निर्माण में योगदान—प्रकृत में विचारणीय विषय गुणों का काव्य-विम्ब में सम्बन्ध अथवा उनके निर्माण में योगदान है । रस के प्रसङ्ग में यह देखा जा चुका है कि रस में एष कविता ही मन्वे अर्थों में काव्य कहलाती है । रस और गुणों का जब अभेद या अनिवाय सम्बन्ध स्वीकार करते हैं तो गुणों का योग काव्य-विम्ब में स्वतः सिद्ध हो जाता है । रस का नियत धर्म आह्वय

१ तु०—श्लेष प्रसाद समता भावुर्यं सुकुमारता ।

अथशक्तिरुद्धारस्त्वमात्र — कान्ति-समाधय ॥ —काद० १, ४१-२

इति वैदभ्रमागस्य प्राणा द्वागुणा स्मृता ।

एषा विषय य प्रायो दृश्यत गौडवत्सनि ॥

गतत्रिष्वपि मार्गेषु गुणद्वितयमुग्धतम् ।

पदवाक्यप्रबन्धाना व्यापकत्वेन चतते ॥ —वजी०, १, ५७

२ अममस्तपदयास प्रमिद्ध काव्यवत्सनि ।

किञ्चिदोज नृशन् प्राय प्रमादोऽप्यत्र दृश्यते ॥ —वही, १, ४५

३ वही १, ४७-४८

४ उच्चैः परिणति वापि पाक इत्यभिधीयते । —अपु०, ३४६, २२

तु०—उक्त प्रौढ परीषाद् प्रौढिरियभिधीयते । —सक०, १, ७७

५ यथामर्यमनूददेश-उद्विष्टाना क्रमेणयत् । समद० १० ७७

है और जिस धम के द्वारा उम आत्माद की अभिव्यक्ति होती है वह गुण है विशेष कर माधुर्य। उम उम भव ही आह्वानाद में अभिन मानें या उमका हेतु। क्योंकि आह्वानाद में मून में चमकार है और चमकार में हा पदाथ का स्पष्ट प्रतिभासन मवित आदि सम्भव है। उम चमकार के द्वारा हा हृदय की प्रति दानि या विकास सम्भव मान है।* जन साक्षात्कार या प्रत्यक्ष-फलता उनम ही शरीर। प्रमाद के लक्षण में ता वाच्य (शब्दाथ शरीर) का अथ-समपण उमका आवश्यक धम स्वाकार किया गया है।** उम समपण का तात्पर्य प्रकाशन या प्रत्यक्षभासन है*** जा कि वाच्य विम्ब में माथ उमका माया सम्बन्ध होता है। उम प्रकार रमवाच्या का दृष्टि में ता गुणा का वाच्य विम्ब के निमाण में अनय-माधारण याग है।

अन्य दण्ड आदि द्वारा निरूपित उम गुणा का भी यन वन प्रकारण वाच्य विम्ब में सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। उनम कुछ का स्वरूप ही इस सम्बन्ध की पूर्णता कर देता है।

श्लेष—जैम श्लेष शब्द गुण का स्वरूप विभिन्न पदा की मधि आदि के कारण भासित हान धारी एकता है।**** उममें अनक पत्नी को मधि में एक सा कर लिया जाता है। उममें नाद-चित्र बनता है। जैम—

शारदीय प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिसवृता।¹

यत्नी शारदीय इव द्यौः ताराभिः अभिशाभिता इतन पद मधि के कारण परम्पर सहित होकर एक पद का भासित भासित है। उम प्रकार श्याम इव पाराशर के—

* गुणानां चैवा द्रुतिर्दानि विकासाम्वास्तिस्त्रिषित्तुन्य प्रमण प्रयोज्या ।
—रत्न० पृ० ५४

** समपण वाच्यस्य यत्नु-मवर्तमान प्रति ।
म प्रमादा गुणा जैय सव-माधारणक्रिय ॥ —ध्व-या० २, १०

*** समपण सम्यगपण हृदय सवादन प्रतिपन्न प्रति
म्यामाविशन व्यापारक इति शुक्वाष्ठाग्निदृष्टान्तेन ।
—त्रो० २१२

**** शब्दानां भिन्नानामप्यैक-प्रतिमान प्रयोजक महितयैक-जातीयकवण-
विन्यामविशेषा गाढ-वापर-पर्याय श्लेष ।
—रत्न० पृ० ५६

असाहता मृदु मयास्तदेन भार्गो
साऽलीक-कुञ्चितदृगाह "किमन्धकोऽसि" ।
आर्यायि कोमलगिराऽयमघाऽपि मन्दम्
अन्धीकृतोऽस्मि सुकुमारि न चाहमन्ध ॥^१

इसमें "असाहता", "मयास्तदेन", "साऽलीककुञ्चितदृगाह", "किमन्ध-कोऽसि" आदि पद सहित होने में एक पद्यन् प्रतीत हो रहे है। ममृण पदावली और श्रुट्-शर की सरसता यहाँ समान रूप में बिम्ब का निर्माण करती है।

अथगुणश्लेष में क्रम, कौटिल्य अनुलवणता एव उपपत्ति चारों का समन्वय होता है।^२ इसमें क्रियान्मक शब्द चित्र बनता है। जैसे अमरुक के "दृष्ट्वैकामन-सस्थिते"^३ आदि पद्य में। यहाँ "एकासन-सस्थिते प्रियतमे दृष्ट्वा" "पश्चाद् उपेय" "एकस्या नयनं पिधाय", "ईपद्बन्धिनिकन्धर" "अपरा चुम्बति" ये नायक की क्रियाओं का क्रम है।

एक की आँखें बंद करके दूसरी का चम्बन करना, पहली का उमका पता न चलने देना नायक की चतुराई के रूप में कुटिलता है। परिहास में पीछे से आँखें बन्द करना आपानजनक या अमङ्गत भी नहीं है। यही अनुलवणता है। "ईपद्बन्धिनिकन्धर" आदि से उपपत्ति बनती है। इस प्रकार यह स्पष्ट ही क्रियान्मक चित्र है। इसी प्रकार प्रस्तुत लेखक के—

परागपुञ्ज-पिञ्जरो भरन्दबिन्दुतुन्दिल
प्रोहलोलकुण्डलो मिलिन्दवन्द उद्धत ।
स्फुटत्-कलि-म्बनध्वनन्-भृङ्ग गतुङ्-गमङ्-गलो
मधमिल-प्रसूनभृत्-प्रियाकरो विनृत्यति ॥^४

इस पद्य में भी क्रमादि क होने में होली खेलन का गठन-चित्र बनता है। दोल मञ्जरी जादि बाजा के शब्द का अनुकरण होने से नाद बिम्ब भी है।

प्रसाद—पद समुदाय जहाँ पढ़ने या सुनने मात्र में अर्थ का बोझ कराय, वह शब्द गुण प्रसाद होता है।^५ जैसे पद्मनारायण त्रिपाठी के—

१ ममा०, २८

२ क्रम-कौटिल्य-अनुलवण-श्लेष-पत्ति-स्वयं-योग-घटनात्मा श्लेष ।

—मामुसि०, ६, १५५

३ द्र० अ०, ४, टि० १७८

४ समासता वसन्त-गञ्जमी ।

—वि० म०, पर्वरी १६६७ (४, २)

५ द्र० अ०, ७, १३५ टि०

रात्रिञ्चराणा मुखमाशुगासे
गुण समारोप्य गुणाग्रणी स ।
तूणं तुणीराद् विशिख विगृह्णन्
मारीचमूचे वचन महाहम् ॥^१

इस पद्य मे अथवणमात्र म अथबोऽ हा जाना है । अर्थगुण प्रसाद की परिभाषा जयदेवस्य यावदथपदना प्रसाद^२ भी इस पर घटित हानी है । क्याकि यहाँ काट्टे पद यथ नहीं है । अर्थ मुवाग्र होने मे वाच्य-विम्ब बनने मे बठिनार्ह नहीं हानी ।

ममता—शब्द गुण क रूप म इसम जिम शिथिल या निविडबन्ध मे वाच्य का उपक्रम किया हा उमी म उम ममाप्त करना होता है ।^३ अर्थगुण मे भी त्रिग क्रिया आदि म आरम्भ किया हा उमी म वाच्य की पूर्ति होनी चाहिए ।^४
जैम—

उदेति सचिता साश्रस्ताग्र एवाऽस्तमेत च ।^५

इसम ताग्र विज्ञेपण और एति क्रिया का दोहराया गया है । बन्ध की ममता का उदाहरण ऊपर उद्धृत 'परागपृञ्ज आदि है । इस गुण म काव्य मे बन्ध एक भाव की एकता का निर्वाह होता है । उसक बिना काव्य मे विम्ब नहीं बनता ।

माधुर्य—प्राचीन आचार्य शब्द गुण माधुर्य म अमममता और अर्थ गुण मे पुनरुक्ति का अभाव मानत हैं ।^६ पहल प्रकार का माधुर्य ब्रह्मानन्द शुकन के

देशे विदेशेषु च संव बाला ख्याति प्रयाता विदुषां समाजे ।
गुण्येन केनापि सता मनेन बृद्धापि बालेव विभायजयम् ॥^७

१ ग० च०, १ मा० ४५

२ अथ-जैमस्य यावदथर्थपदना प्रसाद ।

—सागुप्ति० ६, १५७

३ प्रतिपाद प्रतिशदावमेकभागपरिग्रह ।

दुव-ऽा दुर्विभावश्च ममतानि मता गुण ॥

—सागुप्ति०, ६ १६७

४ जयदेवस्य अथभद मप्रता ।

—वही ६ १५७

५ पृथक्पदव माधुर्यम् ।

—साद०, ८, ११

६ माधुर्यम् उचितवैषिष्यम् । अनवीकृतस्य निराकरणेनैवाङ्गीकारः ।

—वही, प० २६८

७ नेहरूचरित, ५, २७

इस पद्य में देखा जा सकता है। इसमें कोई शब्द पुनरुक्त नहीं है। अतः अथ गुण भी है।

मुकुमारता—दुःश्रवता दाप कः त्याग करत मे मुकुमारता गुण वतता है।^१ जपनीय शब्द का प्रयोग न करने में भी यह गुण आ जाता है।^२ इसने उदाहरण के रूप में—

तथा चमत्कारकृति मिथस्तौ प्रदश्य ह्य बीर-गति प्रयाती ।

ययोर्पंश स्थास्पति विश्वमध्ये यावत् तौ चन्द्र-दिवाकरी स्त ॥^३

द्विजेन्द्रनाथ क इस पद्य का ने सकते हैं। इसमें मुकुमार पदावली है। सायं ही पञ्जीराम और चन्द्रवन्द्यायी की एक दूमरे के हार में मृत्यु का वर्णन भी बीर-गति की प्राप्ति रूप शब्दों में किया है। इस गुण का काव्यविम्ब निर्माण में यागदान रत्नेश्वर ने इन शब्दों में स्वीकार किया है—

सौकुमार्यमाहेति अभुषातेनानुभावाभु-निमित्त-मता चित्तद्रुति
करतलामलकवत् प्रकाश्यते ।^४

अथव्यक्ति—अथव्यक्ति गुण का नाम ही इस बात को सिद्ध कर देता है कि इसका राय विवक्षित वस्तु का प्रत्यक्षरूप प्रस्तुत करता है। भोजन किसी वस्तु के साक्षात् स्वरूप को कहना इसका लक्षण किया है।^५ रत्नेश्वर ने अपने व्याख्यान में इसे स्पष्ट करने हुए कहा है कि कबल कवि की प्रतिभा में ज्ञेय अपने असामान्य रूप को प्रत्यक्षवत् कहना ही माभात-कथन कहलाता है। कवि की प्रतिभा के कारण प्रत्यक्षरूपवाय करने वाले शब्दों में सदा ही रचना का अथव्यक्ति गुण कहते हैं। शब्द गुण अथव्यक्ति की परिभाषा में काव्य में किसी पद का अभाव न जानने अथ का स्पष्ट होना उसका स्वरूप बतलाया गया

१ दुःश्रवता-श्यागात् मुकुमारता ।

—साद० ८ १२

२ सौकुमार्यम् श्रान्त्यम् । अमट्-गुणरूपाश्लीषस्य निराकरणेनैवाट्-गीकार ।

—यही पृ० २६८

३ स्व० दि० १६, ५०

४ रत्नरक्षण पृ० ७६

५ अथव्यक्ति स्वरूपस्य माभात् कथनमुच्यते ।

—सं०, १, ८६

६ स्वरूप स्वप्नसाधारण कविप्रतिभैकगोचर चमत्कारिरूप तस्य साम्नात् कथनम् । कविप्रतिभैकान् माभात्कारसोदरप्रतीति-जनकपदवरत्न मन्दि-
स्पाथव्यक्तिर्नामा गुण । अर्थो यद्येकनस्तस्य व्यक्ति प्रत्यक्षायमाणता ।

—रत्न०, पृ० ७६

है।^१ मम्मट आदि इन गुण की गतायता स्वभावोक्ति में मानकर इसे अनावश्यक मानते हैं। इस प्रकार अयध्यक्ति गुण और स्वभावोक्ति दोनों का ही कार्य वर्ष्य वस्तु का प्रत्यक्षीकरण ही है, यह सिद्ध हो जाता है।

औदाय—शब्द गुण औदार्य का आग्रार पदों की विकटता है।^२ विमृता का अर्थ नाचता हुआ मा नगना है। अरुंगुण में ग्राम्य दोष का अभाव ही अपेक्षित है।^३ पर दण्डी ने औदाय की अ परिभाषा दी है उसको देखते हुए काव्यविम्ब का निर्माण ही इसका प्रयोजन है। स्वयं अपने मन में उत्कर्ष की बातें करना ही उदारता है।^४ पर किमी अन्य आचार्य के मन में उत्तम विशेषणों का प्रयोग ही इसका लक्षण है। जैसे—

श्लाघ्यैर्विशेषणयुक्तमुदार कश्चिद्विष्यते ।

यया लीलाम्बुजश्रीडासरोहेमाङ्गदादय ॥^५

इसमें लीलाम्बुज शब्द ने उसके सुन्दर वर्णों, सुगन्ध, जाकार की प्रतीति होती है। इस प्रकार शीटामर घाट और भ्रमर आदि का, हेमाङ्गद कान्ति एवं तरलता (क्षणमलाहट) का द्योतक है। तरुण वाचस्पति ने श्लाघ्य का अर्थ वैशिष्ट्य प्रतीतिकृत किया है।^६ रत्नेश्वर ने इसका उदाहरण में उमाद रोग में गृहीत व्यक्ति की चेष्टा का प्रकाशन दिखाया है।^७ यह स्पष्ट रूप में काव्य-विम्ब की स्वीकृति का सङ्केत है।

१ अभिप्रायमानस्वभावोरूपप्रतङ्कारण वग्नस्वभाव-स्फुटस्वरूपाय-व्यक्ति स्वीकृता । —का०प्र०का०, पृ० २६७

२ उदारता विमृता-वचनक्षणा । विकटत्व पदाना नृत्यप्रायत्नम् ।

—साद०, पृ० २६३

३ उदारता अग्राम्यत्वम् ग्राम्यन्वनिगकरणेनैवाङ्गीकार ।

—वही, पृ० २८८

४ उत्कर्षवान् गुण कश्चिद यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते ।

तदुदाराह्वय तत्र मनसा काव्य-पद्धति ॥

—वा०, १, ७६

५ वही० १, ७६

६ धर्मन्द कु० काद० हि० न्या पृ० ६४

७ आराहत्यवतीरह प्रदिशति स्वप्न नगं स्पष्टते

ख अग्रानेदि विचेष्टत क्षितितले कुञ्जोदरे लीयते ।

अन्तर्भ्राम्यति कोटरस्य विलसत्यालम्बन वीरुध

किं तद् यन्न करति मारुतेवश यात कृशानुवने ॥ मक०, १, ८३ (उ०)

दण्डों द्वारा दिया गया जीदायों का दूसरा नक्षण भोज की दृष्टि से औदात्य का है ।^१ औदात्य के विषय में वामन अथवा साहित्यदण्डकार द्वारा दिया गया नक्षण ही उभय भी दिशा है । भोज की दृष्टि में अथ गुण उदारता का नक्षण वैभवानिधय का वणन है ।^२ नाद मायुय और सहृदयतापूर्ण अर्थ के एवञ्चित होने पर दोनों प्रकार का जीदाय एक ही स्थल में मिल सकता है । जैसे मेघदूत के निम्न पद्य में दाना ही विशेषताएँ मिलती हैं—

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा पादपा नित्यपुष्पा
हसश्रेणीरसितरशना नित्यपद्मा नलिन्य ।
केकौत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्य-भास्वत्कलापा
नित्य-ज्योत्स्ना प्रतिहततमोवृत्तिरम्या प्रदोषा ॥^३

उभय पद-यद्गता विकृता एव मुञ्चिषूण भावो न पूज्यते । उभय गुण का विशेष चमत्कार समकाल अनुप्रास में प्राया जाता है । जैसे—

चलन्ललट्कृत्य महारय हय स बाहवाहोच्चित्रदेषपेशल ।
प्रमोदनिष्पद्तराक्षिपक्षभिव्यलोकिलोक्नगरालपर्यन्त ॥^४

यह गुण नाद-मौदन एव भावाँ व सामञ्जस्य में काव्यबिम्ब के निर्माण में अतीव उपकारी होता है । रत्नेश्वर की सम्मति है कि दीर्घानुस्वारादि रूप सहृदय-भावद्य वर्णों का प्रचुरमात्रा में प्रयोग नृत्य के समान चमत्कारिता लाता है ।^५

मारुतवश यात दयनेनामादरोग गृहीत इति अब्दमूलानुस्वान् (सार) बनेनावगम्यत । उमाद-गटीतोऽपि वृक्षाराट्णाविक्रमगमभ्रतमव्यवस्थित च करोति । दन इत्यनेन यत्र सर्वथैव प्रतीकारामभव इति निरट्कुशोन्मादचेष्टितमवापवृ ह्यति । नगै स्पद्धते, पथतोच्छ्रायमनुकरोतीति दूर-प्रसृत उमाद । एष व्यानेऽन्यत्रापि तथैवानिप्राद । किं तद् यदिति न शक्यते गणयितुमुमाद-चेष्टितानीति प्रकाशन्त्येति पथित्वाविच्छेदान् प्रमारणम्य पयवसान श्वेत्थनेन पविशतीति मट काच । —रद०, पृ० ५८

१ श्लाघ्येविशेषणैर्योगो यस्तु सा स्यादुदात्तता ।

—सक०, १, ७०

२ विकटाक्षरव धन्वमार्यैरौदान्यमुञ्चत । बही

३ भूत्युत्कष उदारता ।

—बही, १, ८१

४ मेघ० २ ३

५ नै०च० १, ६६

अस्मि तावन्तूत्पन्नीव पवानीति सहृदयानां क्वचिदर्थं व्यवहार । तथा-भूतान्यक्षराणि दीर्घानुस्वारादिरूपाणि सहृदय-भावदनीयानि । अत एव नृत्यतुल्यता । —रद०, पृ० ५७

ओजस—ओज गुण कुछ अन्तर के साथ मभा आचार्यों न माना है। शब्द गुण ओजस म समान-बहुलता मुख्य माना ग है।^१ कुछ न मभास व्यास पदाय क म्थान पर वाक्य ओज वाक्य क निय पद का प्रयोग एव रचना का साभिप्राय जाना य पाच तत्त्व प्रौढि क स्वाकार किय है।^२ प्राचीना का ओज का लक्षण मभास भयम्ब श म्थान क निय और पदा का साभिप्राय होना धय गुण क निय आज आदि का भा माय है।^३ मम्मत् न आत्मा का दीप्तता का हेतु जान माना है।^४ विष्वक्ताय विम्बत् ओज दाप्तता का आज म अभिन स्वीकार करत है।^५ किन्तु यन् मात्रय का आह्वान और दूति म अभिद मानन क तुल्य है। काव्य विम्ब म म्थका याग नाद विम्ब बनान का दृष्टि मे महत्व पूण है। यन् साहित्यसु-गभि-प्रवार न भा स्वाकार किया है। जय—

क्षुद्रा सत्रासमते विजहत हरय क्षुण्णशकमकुम्भा
युष्मददेहेषु लज्जा दधति परममौ सायका निष्पतत ।
सौमित्रे निष्ठ पात्र त्वमसि नहि हया नन्वह मेघनाद
किञ्चिद भ्रू भङ्ग गन्तोला निर्घमितजर्लाधि रामभ-वेषयामि ॥^६

यह पद्य वीर रम क म्थाया—माह और त्र आदि मञ्चकारिया म वार रम का निर्णयन ज्ञान म साभिप्रायता का द्वाहृण है। समान-बहुलता का उदाहरण निम्न पद्य है—

सरम्भो स्पदि-पमक्षरदमलजलक्षालनक्षामयाऽपि
त्र मड गोदभद धूम ज्वलितमिद पुर पिङ्गया नेत्र भासा ।
मन्म हद्रस्य रौद्र रसमभिनयतस्ताण्डवेषु स्मरत्या
सजातोदप्रकम्प कथमपि धरया धारित पादघात ॥^७

१ जात्र समान भूयम्बमन्त् गद्यस्य जीविन्म । —काद० १ ८०

२ पदार्थे वाक्यरचना वाक्याय च पत्नाभिधा ।

प्रौढि ध्याय-समानौ च साभिप्राय-चमस्य च ॥

—का०प्र०का० पृ० ३६६ पर उदधृत

३ जात्र समानभूयम्बम ।

—सक० १ ७१

तथा—आज स्वाध्यवमायस्य विशयार्थेषु या भवत ॥ —वही १ ८२

४ दीप्त्यात्मविम्बत् हृत्तराजा वीररमन्विति । —का०प्र०का० ८ ६६

५ आजरिचतस्य विस्तराम्प दाप्त-वमुच्यत । —साद० ८ ४

६ अननाधिष्ठिता प्राय शब्दा श्रानरसायाम । —सामुसि० ६ १५२

७ का०प्र०का० ८ ११६ (३०)

८ मुरा० ३ ३०

कान्ति—ग्राम्यदोष-ग्रन्त पदा को त्याग कर रवीन मुखविपर पदो का प्रयोग ही कान्ति कहलसता है ।^१ अर्थगुणा में रसभाव की परिपक्वता ही कान्ति कहलाती है ।^२ जैसे—

दाहोऽम्भ-प्रसूतिम्पच प्रचयवान वाष्प प्रणालोचित
शवासा प्रेङ्खित दीप्र-दीपलतिका पाण्डिम्नि मग्न वपु ।
किञ्चान्वित् कथयामि रात्रिमखिला त्वद्-वर्त्म-वातायने
हस्तच्छन्न-विरुद्ध-चन्द्रमहसस्तस्या स्थिति वतते ॥^३

इसमें दोनों ही गुण जा गये हैं । दाह की तीव्रता 'अम्भ प्रसूतिम्पच' में, वाष्प की अधिकता 'प्रणालोचित' में, शवासा की दीघता 'प्रेङ्खित-दीप्रदीपलतिका' में बंधण्य का अतिशय 'मग्न' में सूचित किया गया है । इस लाक्षणिक वनता में सर्वत्रा मौलिकता ला दी है । पुन ये सभी विशेषण वाच्य का विम्ब प्रस्तुत करने हैं चित्तमें विरहिणी की मन्तव्यतावस्था प्रत्यक्षकला हा जाती है ।

अनाधि देश क्तमस्त्वयाऽद्य वसन्तमुक्तस्य दशा वनस्य ।^४

भी इसी का उदाहरण है । इस प्रकार यह गुण ऐन्द्रिय एक मानस दोनों ही विम्बों के निर्माण में उपकारक है ।

समाधि—पयो अथवा गद्य में जो यति आदि के कारण श्वाहाह और अवरोह होता है उस ही समाधि रहत है ।^५ उत्कलिका-प्राय गद्य में यह गुण स्पष्ट लक्षित होता है । पद्य में वन्य क उतार चढाव में यह अष्टय चमत्कारी सिद्ध होता है । परन्तु भोज में किसी में अथ धर्म के अध्यारोप की इसका स्वतः स्वीकार किया है ।^६ यद्यपि इसमें रूपक जलवार टकराता है परन्तु मभवत आचार्य का हात्पर्य यह है कि रूपक में वस्तु का आरोप होता है इसमें वस्तु के धर्म का । परन्तु अलकार-प्रकरण में जो समाधि अलकार भोज में पडा है, उस का लक्षण भी यही है ।^७ दोनों में विभाजक रेखा कोई नहीं रखी है । क्योंकि किसी में धर्मों का अध्यास रूपक ही हागा ।

१ ग्राम्य-दु श्रवतात्यागात् कान्तिरथ सुकुमारता । — साद०, ८, १२

२ रसाध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्याना कान्तिनामक । — बही, ८, ६

३ वजी० १, ४८

४ मैत्र० ८, २२

५ समाधिरारोहावराहत्तम । — साद०, ८, पृ० २६६

६ समाधि भाऽयधर्माणा यदन्यत्राविरोपणम् । सक०, १, ७२

७ समाधिर्म यधर्माणामध्यत्रारोपण विदु । — बही, ४, ४४

नाम म पुकारण है पर वामन न रीति शब्द का ही चना और दृष्ट काव्य का वामा क ल्य म स्वाकार किया भरत न भात य नी इनका दश विषय क आधार पर हा नामकरण मानत है न हा वा म कृतक न इस पर आपत्ति का है ।^३ आखिर नायवत्तिया का भा दा विषय क आधार पर हा नामकरण हुआ है ।^४ मारम्बत पुरुष और साहित्य विद्यावधू न प्रमत्त ग म गज्जखर राना क विदभदा क वामगुम स्थान म ठिकन का वात म इम ममथत करता म । वाण न भा टा क विभिन्न भागा म रचना प्रकार विषय म प्रचार का उल्लेख किया है ।^५ वस्तुत आरम्भ म प्रस्ता म साहित्यकारा न जवग क्षतप गौत्र्या क णि विषय रचि ग्य गगा पर ममत्त क वदन्त-वत्तय ग्ट प्रानावताहत म ल गच राना रग हागा और विषय क आधार पर मवत्र णना प्रयाग हान लगा गगा । अत्र वन नामा न एम्पिनिक महव भौगतिक नामा क साथ गग हुआ म इन स्वीकार करत म काद दाप नग है ।

रगता ह विभिन्न रचना प्रकार हाउ पर नी दा ग गवाण ल्य म महवकारा म प्रचरित ग्ट गग—नालत जीग गाढवद्य ग्मातण भामह

१ अस्तवतका गिरा माय सधमन्दत परस्परम ।

तत्र वत्तगौत्र्या वप्येन प्रस्फुटतरी ।

—वा० १ ४०

भामह न भा टा दाना का चचा का ह परंतु माग मना नहा दा ।

दाद्वय भा० १० १ २० ५

गानामा काव्ये । विगण पदरचना राने ।

—कामूक० १ ६ ३

२ एतच्चानयमप्ययुक्तिपुक्तम धमाद दश भद निवधतत्र रान—नदाना मातन्त्यादिमभ्यव प्रयुज्यत ।

—दश ४१

३ किन्तु नानादगापभापाचारा लाञ्छ णि कृव लागानुमतऽनुवृत्तिसाऽनभ्य मया चत्वावप्रवनाभान्त भारदारभटा नात्वना कः कः चान

—नाग० १२ ५० २१६

४ नरास्मि मनाज्मना ददत्तः श्रीडावाना विदमेषुवत्सगम नाम गग्म । तत्र मारम्बतन्तामौभभा गग्मवत पारगिनाय ।

—वा० मा० १ ३ (५० २६)

५ शतप प्रायमुदाक्षय प्रगच्यन्तः शीरवम ।

उ प्र णातिशात्प गौण्वभरन्धर

—ट ० १० ८

६ नु० णाति स्यात् पदावय लभन्तः ना तु त्रिदा भना ।

कामना कठिना मि ण चति स्यात् ॥—शगणवमुधावर १ २ ३ २८

वैदभ और गौड दो ही मार्गों का उल्लेख करने हैं। दण्डी भी सूक्ष्म भेद के कारण अनेक प्रकार होने पर भी दण्डी दोनों का विवेचन करते हैं। आगे वामन के समय तक पाञ्चाली भी सम्मिलित हो गई और दण्ड के आते आते नाटी की भी गणना हो गई। भोज जायन्तिका और मागधी ये दो रीतियाँ और मानत हैं।^१

प्रकृत में रीति का विवेचन हमें काव्य-विश्व के मन्दर्भ में करना है। रीतियों का सम्बन्ध गुणों के साथ माना गया है। इस पक्ष पर अण्डकारवादी और ध्वनिवादी दोनों ही एकमत हैं। अन्तर दत्तना ही है कि अण्डकारवादी रीति को प्रमुख और गुणों को उनका धर्म स्वीकार करते हैं पर ध्वनिवादी रीति को सट्-घटना नाम दते हुए उमें गुणों का अङ्ग मानत हैं। इसका कारण गुणों को रस का प्रम मानना है। इस आग्रह के कारण येन जिन प्रकारेण सभी नाव्यतत्त्वों का रस और गुण का अङ्ग म सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। पर जब चाहे औपचारिक रूप में ही नहीं, गुणों का शब्द और अर्थ का धर्म स्वीकार कर दिया जाता रीतियों का रस के सट्घटने में निदान का स्वच्छन्द रखन में क्या हानि है? हाँ गुणों में उनका सम्बन्ध तब भी बना ही रहगा पर उनकी रस-प्रमता का दुराग्रह अवश्य हीना करना होगा। आज के विविध गठितताओं में जकड़े बानाकरण में कवि के लिए आवश्यक नहीं कि वह रसों के घेरे में ही बन्द रहें और इन समस्याओं में प्रति उदासीन रहें ता उनके दैनन्दिन जीवन को दृष्टाती रहती है। यदि ऐसा करेगा तो उसका काय मदा

- १ सा त्रिधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति । कामूवृ०, १, २ ६
- २ नाम्ना वृत्तिर्द्धा भवति ममासासमासाभेदेन ।
वृत्ते ममामवन्त्यान्तत्र म्यु रीतयस्मिन् ॥
पाञ्चाली नाटीया गाडीया चेति नामतो विहिता ।
लघुमात्र्यायतविरचनसमागभेदाविभारितम् ॥ —रुवा० २ ३०४
- ३ वैदर्भी माश्र पाञ्चाली गौडीयाऽऽत्रतिका तथा ।
लाटीया मागधी चेति षोडश रीतिनिगद्यत ॥ —सक०, २ २७
- ४ इति वैदभ-भागस्य प्राणा दश गुणः स्मृता । —काद०, १ ४२
- ५ पद-सट्-घटना रीतिरड्-गमस्थाविशेषवत् । —साद०, ६, १
- ६ गुणानाश्चित्य तिष्ठती मागुर्यादीन् व्यनक्ति सा । रसः ।
—ध्वया० ३, ६
- ७ गुण-रूपा पुनस्तेषा वृत्ति गन्दाऽयोधता ॥

के लिए जीवन में दूर जा पड़ेगा। इसलिए आज यह सम्भव है कि रस-सम्बन्धी मान्यताओं के सम्बन्ध में धारणा को कुछ मोड़ा जाय। शृङ्गार और वीर को ही प्रधानता देने में काम नहीं चलेगा। न भक्ति की वाँसुरी बजाने से किसी भी मन्तोप होगा। समाज के आश्रय को जिसका अनुभव कवि भी करता है, काव्य में स्थान देना होगा। जिसके कारण जब तक गौण समझे गये रोद्र और शीघ्रता को आगे लाना पड़ेगा; शास्त्रीय न सही, बौद्धिक कविता की अपेक्षा आज के युग में सम्भव नहीं है। टी० एम० इलियट तक ही वह सीमित नहीं रह सकती। उस स्थिति में गीति और गुणों का सम्बन्ध शब्द और अर्थ के माध्यम से जोड़ना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि आधुनिक कवि रस की सर्वथा उपेक्षा कर दे। शाश्वत मनोवस्तियों से तो मानव बच कर नहीं जा सकता है? यथावम वह चाहे तो शृङ्गार की वाँसुरी या वीर की भेरी बजाये तो उसे कौन रोकता है? पर उसीमें लक्ष्मी नहीं रह सकेगा।

अन्तु, गुणों का सम्बन्ध रीतियों के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ा ही रहा है। इसलिए यदि गुण काव्य विम्ब में सहायक होंगे तो रीति क्यों न होगी? उनकी परिभाषाएँ गुणों में मिलती जुटती हैं। केवल इतना अंतर है कि रीति में गुणों का निर्देश किया गया है। जैसे 'मधुरा रचना'^१ घटनोद्धत्य-शास्त्रिणी आदि।^२

प्राचीन आचार्य वैदर्भी में समामाभाव पर बहुत बल देने थे।^३ और वीर आदि रस-प्रधान गौरी में समासबहुलता^४ किन्तु आनन्दबर्धन ने वैदर्भी आदि भेद न मानकर असमासा, मध्य समासा और दीघ-समासा तीन प्रकार की रचना अथवा मङ्घटना स्वीकार की है।^५ उनके अनुसार शृङ्गार में भी तीनों प्रकार की रचना होनी सम्भव है। वीररस में भी समास का हाना आवश्यक नहीं है।

१ तु०—एतासु तिसपु रीतिपु रेखांभिव चित्र काव्य प्रतिष्ठितमिति ।

—कासूव०, १, २, १३

२ साद०, ८, ४ एक रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा ।

—वही, ६, ३

३ वही, ८, ७

४ असमासा तु वैदर्भी वृत्ते रसमासाया वैदर्भी —सका०, २, ६

५ समास-बहुला गौरी । —साद०, ६, ४

६ असमासा समामव मध्यमेन च भूयिता ।

तथा दीघ-समासति विधाय मङ्घटनोदिता ॥

—छन्दशा०, ३, ५

यदि ओज गुण में दीप्ति होती हो तो उमम भी समास-रहित रचना सम्भव है।^१ वीर रस में 'क्षुद्रा सन्नाममेते'^२ आदि पद्य जा कि समास-रहित हैं, उनमें उदाहरण है। रौद्र रस में समास-हीन रचना का उदाहरण—

यो य शस्त्र विभति स्वभुजगुहमद पाण्डवीना चमूना
यो य पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्या गती वा ।
यो यस्तत्कम्पसाक्षी चरति मयि रणे यश्च प्रतीप
कोद्याघस्तस्य तस्य त्वयनिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥^३

यह पद्य है। इसमें बिना समास के भी अच्छी रस-प्राप्ति हुई है। प्रसाद-गुण के कारण धान-प्रकाशन में कोई कठिनाई नहीं होती।

महाप्रलय-मारुत-प्रचल-पुच्छरावनक-
प्रचण्ड घन-गजित-प्रतिरवतनुकारे भुहु ।
रव श्रवण-भेरव स्थगितरोदती-कन्दर
कुतोऽय्य समरोदधेरपमभूतपूर्व पुर ॥^४

यह ओज गुण भ्रम-बहुला रचना का उदाहरण है। प्राचीनोक्त श्लेष-गण और ओज दागा के मिश्रण में यह गौडी का उदाहरण बनता है।

उ नीलनीलनीलोत्पलदलवनामोदमेदम्बिपूर
क्रोडक्रोडद्विजाली गहदबलिमत्स्फरफालवाचालवीचि ।^५

यह मधुर वर्णों में पठित समास-बहुल पद्य वीर रस में सम्बन्ध रखता है। शृङ्गार रस में दीप समास वाली वृत्ति का उदाहरण जयदेव का—

ललितजदड गलता परिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकर-निकर-करन्वितकोवित-श्रुजित-कुञ्ज-बुटीरे ॥

१ तथा हि शृङ्गाग्नि दीप-समासादृश्यत रौद्रादिष्वसमामा चेति । तथा रौद्रादिष्वप्यसमामा दृश्यते । या य अत्र विभति स्वभुज-गुहमद "द्वयादी ।
—वही, पृ ३१२

२ इ० टि० १७५

३ वं०, ३, ३२

४ वही, ३, ४

५ नै० च०, १२, १०१

६ गी०, १, ३

यत् सोत हे । इमम माधुम गुण = अधिरतर वण जल्प प्राण हे । अ प
आचार्या इ मत म यह ममाम प्रचरता = कारण पाञ्चात्री रीति का उदाहरण
हे ।

श्रुत्वा गार म ईद रीं रीति का मयम अधिा उत्तम माना = । वामन न
वाच्यशास्त्रा म बदार्थी का ही प्राहय स्वीकार किया है क्योंकि उमम व मनी गुण
पाय जान है ता दण्डी न इन रीति न प्राण घोषित क्रिय है ।^१

रीति और वृत्ति मे अंतर—मम्मट^२ न इनी रीतिया का उपनागरिका,
पक्षपा और वाचका इन वृत्तियो म अभिन्न स्वीकार किया है पातु म्मट और
भाज इह गतिना म पूर्वक गिता है । वण जीव रीतिया ही नति रीति जीव
वृत्तिया म नी वाच्यशास्त्र अंतर धारा ही है । रीति नही विधिल गार और
मध्यम इन वधी या रचना प्रकारा म सम्बद्ध है वही वृत्ति विभिन्न रसा की
व्यञ्जक वण यात्रा म सम्बद्ध रखता है ।^३ उसम शिबिनता आदि पर विचार
नही किया जाता ।

बुक्तक— रीति पर नीतिव विचार बुन्तव का है । उद्दान चमत्कार का
माथा रा दखत हुए उह मुकुमार वैचित्र्य ग और मध्यम भाग य नय नाम दिए
है ।^४ इनम मुकुमार भाग हा प्राचीना वा वैदभ भाग या वैदर्भी रीति ह जिसक

१ गमहा पञ्चपपदामाज वाति गमि उताम ।

मधुरा मुकुमारा च पाञ्चात्री कवया विदु ॥ —साद० पृ० २०१ (६)

—सक०, २, पृ० ३०

२ तामा पूया आहया । गणनावत्यान । —का पृ० वृ० १, २, ३४

३ शक्य प्रमाद ममता माधुय मुकुमारता ।

अथव्यक्तिहदारवमाग वातिनामाधय ॥

इति वैदभ भागस्य प्राणा टाग गुणा स्मृता ॥ —साद० १, ४१-४२

४ माधयव्यञ्ज वैदर्भोपनागरिकोच्यत ।

भाज प्रकाशवैस्तैस्तु पक्षपा सोमता परं ॥ —का० प्र० का० ६, ८०

वपाञ्चिकदता वैदर्भीप्रमुखा रतिया मता । —वही, ६, ८१

५ वृत्तया रसात्तमिथयकयमुगुणवणव्यवहारात्मिवा प्रथममभिधीयन्त ।

—का० सा० म० व० २५७

तया—महुरावत्यमानपु य स्ववर्ग्येषु वयत ।

वाच्यध्यापी म सादर्शी वृत्तिस्तिर्यभिधीयत ॥ —सक० ७, ७८

६ मति तत्र त्रयो मार्गा नवि-प्रस्थान-हेतव ।

मुकुमारा विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मक । —वही०, १ २४

मात्रा, नायक्य, प्रसाद और आभिजात्य व गुण है। उनमें शब्द-भेद में समान-रहित रचना तो ही माधुर्य का स्वरूप लक्षित किया है। प्रसाद अनायास जय-समपकता रूप ही माना है और मुदर वर्ण धारणा एवं चमत्कारजनक शब्दा के प्रयोग रूप गदा का प्रयोग लावण्य का स्वरूप उभाया है। यह वस्तुतः कव-सौन्दर्यमूलक है। वन्द की श्रुति-मुख्यता ही आभिजात्य नाम से अभिहित है।

वैचित्र्य मात्र वक्रोक्ति-रूप में एक आश्चर्य-प्रवण रचना-गणना है। यह व्यष्टि-प्रधान होता है। उसमें ही माधुर्य, प्रसाद आभिजात्य और लावण्य यही गुण होने हैं परन्तु उनमें स्वरूप भिन्न है। पहला पृथक्-पदत्व वाला भाग वह गाढ़त्व का पाना है। अत्रिवाश पद बिना समासा वाले हैं, कुछ जोन गुण भी रहता है, वह गगन के रूप में, बीच-बीच में कोई दूसरे वाक्य भी आ जाये। अलुप्त विसर्गात् पदा ही याचना में लावण्य गुण आता है। पदों का मन्त्रम रूप जिसमें न अक्षर कठोर पदा का प्रयोग है न कामलतम का, एसा आभिजात्य गुण भी इस माग में रहता है। इस प्रकार यह विचित्र माग आनन्दवजन की दीप्तसमासा सद्घटना का प्रतिरूप है।

तीसरा माग गद्यम है जिसमें पूर्वोक्त चारों गुण ही मध्यम रूप लिए हान हैं। यह मध्यम-समासा सद्घटना का समीनान्तर है।

वस्तुतः कुन्तक-प्रतिपादित भागा के स्वरूप स्पष्ट नहीं है। क्याकि 'तिल-पदधातना वाली रचना इन तीनों मार्गों में न किमक अतगत होगी' यदि विचित्र माग में उमे गिने तो उसके गुणा व कारण परस्पर विरधिता आती है। जैन एक ओर तो गाढ़बन्ध वाला माधुर्य उसमें प्रयाज्य बनाया है तो दूसरी ओर अममम्पददायना रूप प्रसाद भी। गाढ़बन्धना समासा व कारण आती है। जो गुण कुन्तक न स्वीकार किए हैं उनमें आज की गणना नहीं है, जब उसका मायता ही नहीं दी तो उसमें स्पष्ट का विधान कैम कर दिया? जो उदाहरण इसमें दिये गये हैं, उनमें वणीसहार के 'मन्यायस्ताणवाम्भ' आदि सद्गन एक भी पद्य नहीं है। ये गौड माग की रटिल रचनामा से समानता नहीं रखत।

पुन अद आचार्यों की भक्ति प्रकारान्तर से इट्टोने भी औचित्य का विधान किया है और चमत्कार-प्रवणता एवं मौभाग्य का औचित्य के साथ तीना मार्गों

१ वही, १, ३०-३३

२ वही, १, ४४-४७

३ वही १, ४६-४९

म सामान्य गुण के रूप म निर्वाहिय बनाया ॥^१ इसम भी मोर नवीनता नही है । मम्मट आदि न आनन्दवर्धन क अनुसार ही वक्ता विषय वष्य आदि का दृष्टि म रखकर रचना क भादव या औद्धत्य का निर्देश किया है ।^२

अम सबका प्रयोजन क्या है ? पीछे आन की परिभाषा क प्रमत्त ग म यह कहा जा चका है कि नाद विम्व या ध्वनि चित्र म इसकी उपयागिता हानी है । जिस प्रकार शृङ्गार कृष्ण और ज्ञान म माधुय गुण आवश्यक माना गया है इसी प्रकार रम मुकुमार या मध्यम मार्ग जिन्ह अय शब्द म वैदर्भी और पाञ्चाली कहा गया है अधिक उपयागी होत हैं । उसका हतु यही है कि कामन पदयोजना शिथिल वन्ज कामन भावर क अभिव्यञ्जन और सबदन म अधिक सहायक हान है । शृङ्गार म ही नायक या नायिका की दशा, वेष चेट्या आदि का वर्णन हो तो ममास का प्रयोग वाच्य का सामूहिक चित्र प्रस्तुत करता है । परन्तु जब मानसिक उदगार प्रकट विग जा रह ह तब ममास उपयोगी नही रहता मुक्त पद ही भाव-प्रकाशन म अधिक सहायक होत है । पुन प्रमी या प्रेमिका क चाटवचना म कम्पन की प्रतिध्वनि चाहिए जो कि शिथिल पदा म ही सम्भव ह गाढ पदा म नही । लम्बी लम्बा आहा और श्वासा की प्रतिध्वनि दीघ और विमग-सहित पदा म ही मुनी जा सकती है । आलिगन सघष सम्मर्द और अड ग-सट ग का शब्दचित्र तदवाचक शब्दा, जिनम मयुक्तव्यञ्जना का प्रयोग हा म ही बन सकता ह । इन बातों का ध्यान रखत हुए रचना करना ही औचित्य का निर्वाह है । मध-गजन, उमाते, भूधान विस्फोट वृक्ष की शाखाआ का टूटना आदि का शब्द चित्र महाप्राण सयुक्त ध्वनिया म अच्छा बनगा । इनक लिए अनुकरणात्मक शब्दा का प्रयोग विशेष उपयोगी रहता है । जैम—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाड गन्तुणजटिलचचतपामुदण्डोऽतरिक्षे
झाकारी शर्कराल पथि विटपिना स्वघकावै सधूम ॥^३

इन पट्टि क्तपा म आधी का वर्णन हान म कवि न मयुक्त व्यञ्जनों से युक्त ममग प्रचुर गाढ वन्ज का प्रयाग किया है । 'दिक्षुव्यूढाङ्घ्रिपाङ्ग' यह

१ आञ्जलेन स्वभावस्य महत्त्व यन पाप्यते ।

प्रकारेण तदौचित्यमुचिताख्यान-जीवितम् ॥

—बहा, १, ५३

२ वस्तुवाच्यप्रवधानामौचित्येन क्वचित् क्वचित् ।

रचनावृत्तिवर्णानामन्यथात्वमपीष्यत ॥

—का० प्र० का०, ८, ११

३ वेस०, २, १७

अश वृक्षों की शाखाओं का आधी के पाकों के कारण दिशाओं में जोर से फटने या छोट वृक्षों के हवा के जोर में उखड़ने की प्रतिध्वनि है। सयुस्तादि 'दिशा' पर होने वाले बलाघात के बाद "व्युडाघ्रिपाङ्ग" ये अश उखड़ने के बाद हवा में झूलने की ध्वनि लिए हैं। 'तृणजटिलचलत्पामुदण्ड' ये पद आधी चलने के समय वस्तुओं के ऊपर से उतर उड़ने में होने वाली फर्-फर् की ध्वनि का चित्र प्रस्तुत करता है तथा न जोर में चलने पर जोर की माय-माय का अनुकरण "शाकारी" पद से दिया गया है। आधी चलने पर उल्लेख के कण रमे और स्पर्शकट्ट होत हैं, यह म भर जाय तो किरकिराहट उत्पन्न करने है। अतः "शकराल" पद के "ग-क" इन अशों में उस किर-किर का अनुकरण है, "स्क्न्ध-कार्य" में पटों में रग-रग धान में हर्द 'खम्-खम्' की ध्वनि का अनुकरण है। इस प्रकार इस श्लोक का वाक्यार्थ और ध्वनियाँ दोनों आधी चलने का सूत्रचित्र प्रस्तुत करत हैं। ध्वनिचित्रों से आधी में होने वाली ध्वनियों का अनुभव होता है। इसलिए इसमें शब्दचित्र और ध्वनिचित्र (Sound picture) दोनों ही हैं। इनके द्वारा वातावरण को गम्भीरता का ज्ञान होता है, उसमें भावविम्ब भी बनता है। इस प्रकार यह एक पूरा त्रिशिष्ट विम्ब (Complex image) है।

इस प्रसङ्ग में यह ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि कवना स्त्री है या पुरुष, किस श्रेणी का है, किस मानसिक अवस्था में है। यदि नारी पात्र होना तो उसको उक्ति में कोमल ध्वनियाँ ही उचित रहती हैं, लघु समास वाली मानुसार्थिक अन्वेषणवाली पदावली अधिक उपयुक्त होगी जो उसके मधुर कण्ठ में उपयुक्त है। ऊपर उदाहृत 'ललित-नवङ्ग' आदि गीत गोपिका-गीत हान के कारण अत्यन्त कामध्वनियाँ में हैं। नकार का जो कि भाषा-विज्ञान में liquid ध्वनि कहलाती है, आधिक्य कण्ठ की कोमलता और भावतरलता का अनुभव कराता है।

पुरुष का कण्ठस्वर कुछ माटा और गम्भीर होता है। इसलिए उसके वचनों में महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग विशेष उपयुक्त रहता है। जब भावुकता की स्थिति में है तो असमस्त अवका छोटे सभास वाले पदों का प्रयोग ठीक रहता है। माय में वग का पञ्चम वग माधुर्य सा देता है। जैसे—

अनाध्यात पुष्प कितलयमलून करवहै—
रनरविद्ध रत्न मधु नवभनास्वाधितरसम् ।

अरवण्ड पुण्याना फलमिव च तदल्पमनघ
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थाम्यति विधि ॥^१

दुप्यन्त की इस उक्ति में शकलता रूप का वर्णन करत हुए उमर हादिस "लान का ध्वनत हाना है जो कि पाठ ११" मानस में मवदन रूप में ममान्त या जाता है एक अपूर्व मौदय का कथित प्रतिमा उनकी जन्मदृष्टि का रूप स्थिति हा जाती है । इसमें स्थान स्थान में न्युक्त व्यञ्जना का प्रयाग जिक्र कामन "वनिया का चयन न करना पुनस्वर का मान करत है ।

चाओ म यह रचना अधिक तरल हा जानी है । उदाहरण के लिए—

अनेन कल्याणि मृणालकोमल
व्रतेन गात्रं ग्लपयत्यकारणम् ।
प्रसादमाकाक्षति यस्तवोत्सुक
स किं त्वया दासजनं प्रसाद्यते ॥^२

चित्रमावर्णीय के इस पद्य में रानी औशीनरी का चापलूसी की गद्द है । परन्तु यह उदगार कथा कि नायक के मच्छ हृदय में ही निहित है, इसलिए उमर बनावटी तरवता है जो कि मानसिक स्थिति का ज्ञाप करता है । परन्तु प्रेम का मच्छता उदात्त में दूसरे शब्दा में ही नम भावावग के कारण उम्बडनी मा वनिया है—

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं व्रजति मे शरीरेऽस्मिन् ।
प्रथमं कल्याणुभते चौरितमपि मे त्वया हृदयम् ॥^३

यह प्रमी और प्रेमिका की जामन मानन हुए वात है, इसमें उहला उक्ति बना बनावटा चापलूसी नहीं है ।

नागज में उपयुक्त विवचन के आधार पर रीतिया का काव्यत्रिम्व में यागदान सिद्ध हा जाता है ।

वृत्ति

वृत्ति का अर्थ है वचन या व्यवहार । काव्य रचना के प्रसङ्ग में इसका अर्थ होगा स्मानुगुण वर्णोच्चारणमक व्यापार । उस के साथ साथ भी सम्मिलित है । पीछे गणो और रीतियों के प्रसङ्ग में विशिष्ट प्रकार की वर्ण-वाचना और

१ पाक० २, १०

२ चित्र० ३, १३

३ वही ३, १७

पद-गोचरा की चर्चा हुई है। इस प्रकार रम-भावादि की अभिव्यक्ति के उद्देश्य में प्रकृत गुण और रीति के अनुकूल वर्णों का विन्यास वृत्ति नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार वृत्तियाँ गणा एव रीतियों का घटक तत्त्व मिट्टी होती हैं। रीति में वर्ण-समुदायक्रम पद-रचना के स्वतन्त्र पर दृष्टि रखी जाती है तो वृत्ति में उन पदों के घटक वर्णों के चयन पर। यत्र रम-भावादि का प्रकाशन रहता है। परन्तु जान के बौद्धिक दृष्टिकोण प्रसङ्ग में वृत्ति का क्षेत्र रम-भाव तक सीमित न रखकर यदि पद का नाम उठाने जैसे विचार-वस्तु तक भी विस्तृत करना होगा। फलतः विवक्षित प्रिय के प्रतिपादन में मध्य वर्ण-याता ही वृत्ति का नाम से पुकारी जाती है।

वृत्तियों का सप्रथम परिचय उद्भट के काव्यालङ्कार्यामर-मटमल्ल में मिलता है। अनुश्रम अलङ्कार प्रसङ्ग में त्रिसप्त अक्षरों का दृष्टि में न रखकर रचना में चमत्कार प्राप्त करने लिए अनुकूल वर्णों के चयन पर ही बड़ा विश्वास है, इसका विवचन हुआ है। जाम्बवत, रुद्रट, मन्मथ आदि में भी इसी चर्चा की ओर सम्मति ज्ञादि न ता इह रीति प्रो म अभिन्न ने स्वीकार कर लिया। साहित्यसुश्रुति प्रकाश और जगत्कारचन्द्रिकाकारों ने पुनः वृत्तियों और गीतियों का सूक्ष्म परिगणन किया है और उह भी चमत्कार का पथ सूत्र स्वीकार किया है।

उद्भट द्वारा गिनाई गई वृत्तियाँ तीन हैं—उपनागरिका, पुरुषा और कोमला। इतम नागरक सौन्दर्य के समान विशेष चयन में जिसमें वर्ण-विन्यास किया जाता है परन्तु विदग्धता रहती है ऐसी वृत्ति उपनागरिका कहती हैं। कठोर और मयुक्त वर्णों में प्रचुर वृत्ति पुरुषा कहलाती है वित्तु जिसमें इन दोनों में अविच्छिन्न वर्णों का प्रयोग होता है, वह कोमला कहलाती है और उसे ग्राम्या भी कहते हैं। इनमें उपनागरिका वैदर्भी में, पुरुषा गौडी में एवं कोमला पाञ्चाबी में अभिन्न सम्बन्धी जाती हैं।

१ द्र० टि०, २३३

२ मयुग प्रीटा पुरुषा ललितता त्रेति वृत्तय पञ्च । —सामुसि० ७ १७०
माधुयव्यञ्जकवर्णवदधौ गीतिरिष्यत ।

आज प्रकाशकेगौरी पाञ्चाबी तैत्तिथापरी । —वही, ६ १६२-४३

३ द्र० अ० टि० ६४

४ वृत्तयो रमाद्यभिन्नकयनुगुणवर्णमध्यवहारान्तिका प्रथमभिर्घोषन्ते । ताश्च
लिम्ब परपापनागिवाग्राम्याभिदात । —रामाम० पृ० २१७

भाज एव ह्रदट इव वनित्या की मर्यादा दत्त है। ह्रदट व अनुमात्र प्रीणा जोर भद्रा य दा वृत्तिया अधिक है। माहिय मुग-भि-पुकार न भी उन्हे मायता दी है। भाज दणविशेष मे सम्बन्ध जाकर वृत्तिया की मर्यादा वारह तक बढ़ा दत्त है। उनमे क्रिया वण या वग विशेष व जाधिक्य म प्रयाग के अतिरिक्त अ य काद अंतर नहीं है।

ह्रदट जोर विश्वनाथ दव ने उपनागरिका का मधुरा, और कामना का ललिता नाम दिया है। परिभाषा यथापूर्व है। इन नवम्बीहृत वृत्तिया म प्रीणा म म पर रफ लगाकर क या त न माय मयुक्त मकार का अधिक प्रयाग होता है। टक्का का परियाग कर दिया जाता है।^१ भद्रा म टन वृत्तिया म श्रेय वचे वणों का अधिक प्रयाग होता है। जैसे टकार अमयुक्त न, यगों व द्विताय अर रकार क माय।^२

ध्यान दन की बात यह है कि इनका मुख्य प्रयोजन काव्य म श्रद्धयता का आशान करना है। यही अनुप्रास का मुख्य काय होता है। अनावृत्त रमानुकूल वण-याजना स्थायी प्रभाव उत्पन्न करती है। प्रतिकूल वण याजना रम-भंग का हत है।^३ उनमे माधुयगुण-सम्पन् हान म मधुरा अथवा उपनागरिका श्रुट गार करुण और शान्त रम म उपयुक्त रहता है। पाञ्चदश श्रुट भागदि व अतिरिक्त वीर म नी जना प्रभाव दिखानी है। गौड कामनाम जोर भयानक म प्रधान रूप म परुषा प्रभावशालिनी सिद्ध होता है। प्रीणा का अतिशय माना कणकट भा वन जाता है। जैसे—

मास्तयमुत्साय विचाय कायमार्या समर्यादिमुदहरन्तु'

यहाँ रफ जोर य का मयाग वाचन म और सुनन म दाना ही प्रकार म नाटिन्य उत्पन्न करता है। बाडा मात्रा म वार वीभत्स आद म उपयुक्त हो सकता है। भद्रा का प्रयाग भा उन्हीं रमा म अनुकूल रहेगा। रफ का वण व

१ द्र० टि०, १३६ पृ० २, १६

२ काणादी कातनी कौट का कौटुक्का वाणवामिका।

द्राविडा माधुरा मासा मायधी ताञ्जनिप्पिका। —स०, २ ७८

३ अचटवमाने मुक्त्रा वग्ययणा उपरि रफ-मयुक्ता।

कप-मुत्तश्च तकार प्रौढाया कस्तियुक्तश्च ॥

—सामुप्ति० ७, १७१ १७२

४ परिजिप्ता भद्राया पृथगथवा श्रव्यमयुक्ता।

—वही, ७ ५३२

५ का० प्र० का०, पृ० ३३१

नीचे प्रयाग परुषा म ही उपयुक्त हो सकता है, शेष में नहीं। जैसे चञ्ची चक्षारपट्टि क्त' यहा और 'शेषघ्रणाङ्घ्रि पाणीन्' आदि पदा में उत्पन्न वाक्य अद्भुत और वीभत्स की व्यञ्जना में सहायक हो सकता है शृङ्गार-रादि में नहीं। इत्यादि 'ह्रीणा च हृष्टा च वभाण भैमी' शृङ्गार-प्रमदुग में दुःखता और प्रतिकूलवृत्तता का वापस प्रस्त है।

वृत्ति और काव्यविम्ब

वृत्तियों के स्वरूप का विवेचन में यह स्पष्ट हो जाना है कि उचित रीति में प्रयुक्त ये वृत्तियाँ नाद-मात्र के उदय में हृदय का प्रभावित करती हैं। रस और भाव में सम्बद्ध होने का अर्थ ही यह है कि उनमें अनुकूल उपायोचना उसकी अभिनयवृत्ति में सहायक होती। मधुर रस मानुस्वार या अनुनामिक वर्णों का या वचन के पञ्चम वर्ण का जनन सर्वत्र प्रथम तृतीय वर्ण के साथ मधुर नामन श्रुति होने से शृङ्गाररादि कोमल रसाधी अभिव्यक्ति माधुर्य गुण की सृष्टि काय करायेंगे। गोत्रादि में दुःख और कणकट ध्वनियाँ उग्रता का प्रकट करने में अधिक समर्थ हैं। उनमें अज की सृष्टि होती है। काव्य की श्रवणश्रव्य और दृश्य दाना काव्या में अपकृत है क्योंकि दोनों का उद्देश्य समवेद्य है। इसलिए यद्यत् एव यद्यत् कृत क्रियाभो या उनमें वचन शब्द का प्रयोग नाट्यादि में वृत्तित ही किया है।^१ ज्ञानाम्मित शब्द प्रज्ञान ज्ञान में आरम्भ में नादविम्ब और वाद में शब्द विम्ब बनना आवश्यक है। इसलिए इन वृत्तियों की उपयोजिता विम्ब-निर्माण में स्पष्ट हो जानी है और उसी प्रयोजन का दृष्टि में रखते हुए आचार्यों ने इनका विधान किया है।

गद्य-काव्य और विम्ब

इसी प्रमदुग में गद्य काव्य में विम्ब की दृष्टि में इन वृत्तियों की उपयोजिता पर विचार अनुपयुक्त न होगा। यद्यपि प्राचीन आचार्यों ने समासप्राचुर्यरूप

१ वही, पृ० ५८६

२ शीर्षघ्रणाङ्घ्रि घ्रणाङ्घ्रिभिर्पघर्नधधर-व्यक्तधोपान्
दीर्घाङ्घ्रान्तघौर्षे पुनरपि घटयत्येक उल्लासयन् ॥
घर्माशोस्तस्य बोद्धन्तिगुणघन-घृणानिघ्ननिविघ्नवृत्ते—
दत्तार्धा सिद्ध-सद-धैविद-गु नृणय शीघ्रगहोविधानम् ॥

—वही, ७, ३०२ (उ०)

३ नै० ल० ३ ६७

४ नाशा, १०, १२३ द० टि० ७, २३

आत्र का गद्य का प्राण माना है तथापि जय चतुरर नमाम मे नवथा विरहित गद्य का भा काव्य म मान्यता मिल गई। वाणभट्ट क गद्य म हा कड प्रजा का रचनाएँ मिलता है। वणता म त्त्र नमान नवादा म छान् अथवा मयया समम विरहित पदावता का प्रयोग हुआ है। कादम्बरा और हृषिकि म प्रथक-पृथक आदेश म है। नया हान क कारण कादम्बरा म नन धने ममान और जाटलबध नना है जितन जाख्यायिका नान क कारण हृषिकि म है। अतद्द ह न चित्रण न प्राय ममान विरहित या छान् ममाना वान वाक्य है। नग जाद्यों का गामग रथक बामन न गद्य क तान भद किम है—बनगि प्र उत्कृत्तिका प्राय और चण । प्रथम दा प्रका नम्ब ममाना वान गद्य क है। इनम नव मममन पद —क अश म कमा छद का जे धनता हा ना वृत्तर्गि १ कहा है। प्राय वरसाता नया का मान उमम हिनारे उठता है ता आराह और जवग पात्रा प्राय ता उत्कृत्तिका प्राय गद्य कहाना है।^१ छान् छान् ममाना का चूणक कान है। साहित्य श्यणसार न चार म मानन हृष सब म ममानरति प्रकार मुक्तक नाम म और स्वाकार किया । भाज न वन-ग्रन्थि वी —काव्य प्राय दा म नुव्य म म स्वाकार किया है एक प्रकार मित्र है किना जाचाय न नानन निष्ठर चणक और जाविद्ध य चार भद और स्वाकार किया है परन्तु भाज क अनुसर दा चा । नवा का जलभाव राति और वनिया म हागा।^२ रतश्वर न वस वान का म्यष्ट कान हृष निष्ठा है कि नतिन शिना म निष्ठ जाग्भटा वान म चूणक वैदम माग म आविद्ध गौनाया आदि म प्रयुक्त गता है

- १ गद्य वन-गि चणम कृत्तिका प्राय च । —कामूद १ ००
 २ वनभाग्युन मम । —साद २२०
 ३ उत्कृत्तिका वानात्मन प्रायम । उच्चावन्तमिव गाममानामयथ ।
 —रद० पृ० १५१
 ४ नुय चालरममानम्
 —साद० ६ ३३०
 ५ वनगि जितन गद्य मक्तक वनगि च ।
 भवदु कनिसाप्रय चूणक च वनविद्यम ॥ —वहा ६ २३३
 ६ गद्यमत्कनिमाशय पणगि प्राति च द्विग्रा ।
 द्विधैव गद्य पद्यादिभान मिथमनाप्यन ॥ —मक ० ०१
 ७ लनित निष्ठर चणमाद्धि चेति याऽन ।
 गिप गत गद्यस्य गानवृथामविष्ति ॥ —वही २ ०६
 ८ रद० पृ० १५१

मद्य और पद्य रूप परस्पर में भी एक गति रहती है। उसके कारण तय बँध जाती है, सगीनात्मक तन्त्र उममे आ जाने है। उसमे नाद विम्ब बन जाता है। गतिषों छ १ द्रुता, विलम्बिता मध्या द्रुतविलम्बिता, द्रुतमध्या और मध्य-विलम्बिता। य कही लघुवर्णों के प्रयोग में कही केवल गुरु वर्णों का प्रयोग करने को कही केवल मध्य माग को अपनाने में वनती है। उदाहरण के लिए—

ज्वनमन्ति च विनयदामिनवगुणि भयञ्जितमननि चलनशिथिल-मणि-वनक-
मुहुर-दिग्ग-निकररुःचरजि मि, विनुलिन-कुमुमशेखररजसि राजचर्के ।^१

इस गद्याण में चवन वगुणों का प्रयोग है।

‘मागप्राननिर्गतैराप्रहाराकजालम पुर सरजग्महतगतम्बिताम्भ-कुम्भं’
अथवा—सवनश्च मूरिमन्त्रामहसम-पक्षन-मुभिता ।^२

पाकव-पितृच्छ-गच्छच्छटाच्छटित-वापलैर अकाण्डकण्डूना इव कप्रत
भर्त्तरिता ककरस्थनी

इन वाक्यखण्डों में मद्योग द्रुता गुरु वर्णों का प्रयोग है—

‘भित्तिभागाना सप्ततूमीना प्रामादाना’

‘शानसिंहस्तरया एबोषकाध्याया प्रातेवद्वाना’

इन रेखाङ्कितपदा में कवन दीप्ति और गुरु वर्ण हैं।

क्रमेण च कुल मे वपुषि यम इव मनुनामन मनुमान इव नव-पन्ननेन,
नवन्नव इव कुमुमेन, कुमुम इव मयुक्तेण, मयुक्ते इव मदेन नवजीवनत
पदम् ।^३

इन मद्योगों में पहले पदों वगैरे की बहृता द्रुत गति, उमन भी
किसान का अनुकरण कानी है। उमके पञ्चव वाले वाक्य-खण्डों में एक गुरु

१ सङ्, २, २२

२ हच, पृ० ७३०

३ वनी, पृ० ७४१

४ वही, पृ० १२८

५ वी पृ० १२२

६ कल्याण मंत्री, पृ० २२

७ शिवराजविनय प्र० भाष०, पृ० १३०

८ का०, पृ० २६०

एक लघु वण का प्रयोग द्रुतविलम्बित गति का अनुकरण करता है। गृह या दीर्घबहुल पदा म मध्यविलम्बित गति ह। ३ लम्ब तम्ब कदम रखन का अनुकरण है। सबसे अन्तिम सदा म विलम्बित गति ह। वातावाप म जा स्थिति होता है उमा का अनुकरण है। २ कविकाप्राय गद्य म आगत अवगत अच्छा जाता है।

नैय— तत्र वाग्भटपटलान्तरं ग-नुग्-ग कुञ्जर-मकर भीषण-कटक जनान्प्रिमथनम-दगायमाण-ममृददण्-भुजदण् ।

२मम दहरा का उतार बढ़ाव मा गजता ह ।

वृत्तगद्य गद्य—विल्ला-न्त-कारमित्-मण-वार-पटयलयमुखरित, परिदृत न्ण-वार-जुना-टिचय-मणवभादिदिभ्यग्मणारगणाव जयनीषणयन गदिर गतिकर नाप्य स्पृशति गजता ।^१ इस वाक्याग्र म दखा जा सकता है। क्वाकि २मम विल्ला-न्त-कारमित् इतना जग खग्रग छद क आग्मित्क जग का निमाण करता २। कारमित्शणत्कार-न्तना जग अनुष्टुप का प्रथम चरण बनता ह। वचबमुखरित इतना जग खग्रग क आदि क मान अमरा क पञ्चात क मप्लक का निमाण करता २। वक्षाविवभुग्मणा यह अग अनुष्टुप क नविपुला भेद का प्रथम चरण आत्ममान किय है तथा वमतविलका क जादि क आठ जम्बर तिण ह। मणणा मणाय गयताय यह जग आया छद का चतुस चरण बनता २ ना जयत-मन्दिर गतिकर द्वादशा गजाति क छद क आरम्भ का भाग बनता है। टणत्कारतुनावाति इतना अनुष्टुप क प्रथमचरण क आदि जग का और तुनाकोटिचय यह अग अनुष्टुप क द्वितीय चरण क आग्मित्क छ अक्षरा का भाग बनता है। चूणक का उदाहरण—

अपगतमले हि मनसि स्फटिक-मणाविव रजतिकरगभस्तया विशन्ति सुधनापदशगणा । गुरुवचनमम वमपि मलिनमिव महदुपजनयति श्रवणस्थित गूढमभक्ष्यन्व ।^२

इस अग म अपगतमले स्फटिकमणाविव रजतिकरगभस्तया , गुरुवचनम श्रवणस्थित य छात्रे छात्र ममाम है ।

१ दशकुमार-चरित पृ० ६

२ शिव प्रसाद भारद्वाज कृत कथा— न्याम श्वरमगला (माघ १६७६ अ-क) पृ० ४०

३ का० पृ० १२६

मुक्ताक का उदाहरण 'त्रमेण च कृत मे' इत्यादि वाक्य है ।^१

यद्यपि द्राण की ख्याति पाञ्चाली रीति के लिए है परन्तु आध्यायिका कनाते हर्षचरित म गौडी रीति भी है । वैदर्भी के प्रयोगो की भी कमी नहीं है । जैम यही अन्तिम मन्वन्त भाष्य आर प्रसाद दानो मे युक्त है । प्राचीना के धनुमान इलेपगुण भी है ।

इन मन्वन्तवाक्या मे मभी वृत्तिया मिलती है ।

इनम मधुरावृत्ति ना उदाहरण—

तस्य मुख-लावण्य-विदुग्निदु । तस्य च चक्षुषो विक्षेपा कुमुदजुवनय-
कमलाकरा । तस्य च अधरमणोर्दीप्तया विरहित वधूक-वनराजय । तस्य
च अङ्गस्थ परभागरश्मम् अनट् ॥^२

इत्यादि मन्वाज है ।

परुषा का स्थल—उत्तरात्तर-तारत्तार रक्षन्तरतातिमीर्यन्यपि तरुण-
तिस्तिरी न तरोर वतरति ।^३

यह वाक्य है ।

कामला का निदर्शन—ग्राम ग्रामे सरसकदली-दलदोलनाद्भूतवातवीजितत-
रन्त-वीरिचमालालालितघटलशफरीतरट्टिगतानि पल्वलानि कलमम-सीमिश्रम-
शनम् इति सद्यमपि मानवचन्द्राना दानवाना परिपथिना मनमन्वि ।^४

उन पञ्चित्या को निया जा मन्वन्त है । अथवा—

तमा च दत्तप्रसादानन्तरमवनिनलाश्लिष्टनाटरेखया शिर प्रणामनाभ्य-
क्षत मह शुक्नानामेनोनेत्याय हर्षविशेष-निमग्रेण त्वयमरणा मनसा पवनचलित-
नीलकुवलयमदल-लीलाविटम्बकेन दर्शनेनादणा परिस्फुरताडनित धमानस्तत्कान-
सेवाममुचिनेन विरद्विरनेन विरजनेनामुगम्यमान पुर मसपिपीतामनिन-
लोलम्बूलश्रियाना प्रदीपिकानामा दोडेन समुत्सायमाण-वक्षा तर-तिमिर-सहति-
रन्त पुरमयासीत् ।^५

महानवि द्राण की इन पङ्क्तियो म उसका उज्ज्वल रूप मिलता है ।

१ द्र० टि०, १७१

२ हच० १, पृ० ७४ ७५

३ गिरादि०, १, पृ० १४६-५०

४ न्याम पृ० ४२

५ का०, पृ० १३५-३६

प्रोदावृत्ति—विदुधाचायकायाकाय-विचार्यं माहित्यंरमायं परिबृत्त —मखना-
चापितःऽणीरमणीसौभाग्यभागभगवदात् धनदपंकन्दर्प-सौदयमोदप्रहृद्यनिग्व-
चरूपा नूना उभूव ।^१

दण्णी र रम गद्या म वनी मफवता म प्रमुक्त हृद है । इयी प्रभार भद्रा
वृत्ति का अदृष्टकवाटपट्टमर घट्टुम्फटितननाटपट्टम्रिपरपट्टेन पदान्तर इव
रकनाजकस्य मुखम जाच्छाद्य प्रहृदनी ।^२ रम वाक्याग म दखा जा मकता है ।

एत मभी उद्घृत गद्याजा म रमानुकून वर्णयाजना क द्वारा प्रमट्गानुकूल
रचना म भावानुत्प जौर जय का मामञ्जस्य स्थापित करक वष्य रमादि का
मून किया गया है । य इम सत्य क प्रमाण है कि पूव चर्चित गीतिया व
चनिया दापोभाव व गुणा क द्वारा मफव कायविम्व कवल पद्य म ही नहीं गद्य
म भी हान है ।

पाक—विश्वश्वराकन चमका-भाधना म पाक भी एक ह । पाक क्या है,
एम विषय म मवप्रथम वामन न विचार किया ह । जब तर वि का कविब
परिग्व नहा जाना है तब तक उमका मन तावागल रहता है कि किस शब्द
का रग्वू किसका न रग्वू । पर तब यह जनिर्गोतावम्या द्र हा जाता है और
कवि स्थिरता म शब्द प्रयाग करन लगता है ता उम वाणा मिद्ध हा जाता है ।^३
मम्भवत भवभूति न अपन विषय म इमा आशय म कटा था—

य ब्रह्माणमिध देवी वाग्बशयवानुव्रतते ।^४

पाक क स्वरूप पर वस्तुन गयाप्न विवाद रहा है । राजप्रखर न उम पर
अच्छा प्रकाश डाला है । आचाय मरुत क जनुमार मुप बीर निट् अर्थात्

१ द० कु० च० १ पृ० ५

२ हच० पृ० १६

३ आचायादरणे तावद् भावद दोनायत मन ।

पदाना स्थापित स्थैर्ये हन्त मिद्धा सरस्वती ॥

—वार्मी०, ६५

आग्रह-परिग्रहादपि पदस्थैर्यपयवमायस्नस्मात्

पदाना-परिपृतिर्वमुख्य

पाक इति वामनीया । तदाह —

यपदानि त्यजत्येव परिवृत्ति महिष्णुताम् ।

त शब्दान-निष्णाता शब्दपाक प्रचक्षत ॥ —वही

४ उच० प्रस्ता०, १ २

सुबन्त और तिङ्न्त शब्दा के श्रुत्यनुकूल का ज्ञान ही वस्तुतः पाक है।^१ इस पर आपत्ति की गई कि यह तो शब्दसौष्ठवमान है। हमारे आचार्य कहते हैं कि पद्ययोजना में स्थिरता ही पाक है।—उचित शब्दों के ग्रहण और अनुचिन्ने के परिष्कार के द्वारा भी पद्यप्रयोग में स्थिरता आ जाती है। इस प्रकार जिस अवस्था में काव्य में प्रयुक्त पद पद्याय-प्रयोग में समर्थ न रहे वही स्थिति पाक कहनाती है। तात्पर्य यह है कि कवि की रचना एक महल की भाँति है। उसमें जहाँ एक इँट का निकाल देता उसकी स्थानपूर्ति सम्भव नहीं होगी। उन्हीं प्रकार एक परिनिष्ठित काव्य में पद्ययोजना इस प्रकार होती है कि उसमें से एक पद को हटा कर दूसरा नहीं रखा जा सकता। क्योंकि उसका रखना उस पद के वातावरण में न आ सकेगा। उदाहरण के लिए—

तस्मिन्नावश्यं दिवसागणनात्परामेकपत्नी—

मव्यापन्नामत्रिहृत-गतिद्वयसि भ्रातृजायाम् ।*

इस पद्य में प्रत्येक पद मुनिश्चित पावना के अनुसार भाव-गर्भित है।^२ समानार्थक अथ पदा में परिवर्तित होने पर वह गम्भीरता नहीं रह जायेगी। इन्हींलिए पाक की एक परिभाषा में शब्दा की पर्याय-परिवृत्त्यसमृद्धता उसका प्रधान गुण मानी है। इसके विरुद्ध रामशेखर की पत्नी अचान्तमुन्दरी का विचार है कि यह आवश्यक नहीं, प्रत्येक महाकवि एक आशय की अभिव्यक्ति के लिए समान शब्द का ही प्रयोग करे। इसलिए उनकी दृष्टि में राम-वर्णिका के उपयुक्त शब्द और अर्थ का प्रधान जिसमें गुण, अलङ्कार, गीति और उक्ति-प्रकार सभी का उक्ति निवाह हो, उसमें चमत्कारी काव्यग्रन्थ ही पाक माना है।^३ अचान्तमुन्दरी ने इस प्रसंग में किसी आचार्य का मत उद्धृत किया है कि रमादि-सामग्री रहने पर भी बिना पाक के काव्य का चमत्कार आम्बादि

१ परिणाम —मुपा तिडा च व्युत्पत्ति इति मङ्गलम् ।

सौशब्दमेतत् । पद-निवेशनिकम्पना इत्याचार्या । —कामी० प० ६४

२ मेहु, १, १०

३ द्र० अ०, ५, पृ० १६० ६१

४ तस्माद् रसाचित-शब्दाय-सक्ति-निवृत्तन पाक । यदाह

गुणालङ्कार-रौत्युक्ति शब्दायग्रन्थम् ।

स्वदने सुधिया येन वाच्य (काव्य) पाक स मा प्रति ॥

नहीं हाता ।^१ राजशेखर क अनुसार पाक अभिधावृत्ति का विषय है और अभ्यास करन म कवि की रचना म वह कालांतर म आ ही जाता है ।^२

इसन निष्कर्ष यह निकलता है कि पाक काव्य का अतिरिक्त घम नहीं ह । प्रतिभासिद्ध कवि का वृत्ति म वह स्वभाव म रहता है । अभ्यास करन म अन्य कविया म रचना म आ जाता है ।

भाज न सम्भवत पाक का हा प्रौढि कहा है ।^३ अग्निपुराण भा (शब्द और अर्थ क याग क) उक्त परिणाम का पाक कहता है ।^४ माहियनुग्रासिधु-र क अनुसार काव्य गुणा का किसी रचना म स्पष्टता क साथ पूण रूप म स्थिति पाक नाम म पुकारी जाता है । विनयवर्णन चारा प्रकार क अर्थो म गम्भारता की स्थिति का पाक कहा ह । उनक अनुसार जैम विना पाक क दिव्य भाज पदार्थ भी स्वादु नहा हान इसी प्रकार पाक क विना काव्यवृत्ति भी चमत्कारक नहा हाना ।

विश्वेश्वर क अनुसार भी गन्दा की आनन्ददायक परिपक्व स्थिति पाक नाम म पुकारी जाता ह । उस प्रकार सभी आचार्यों क मन इसी बात की पुष्टि करत हैं कि पद याचना की परिनिष्ठित स्थिति है पाक ।^५

पाको का तारतम्य—पाका की मर्या और तारतम्य क विषय म भी इन आचार्यों म एकमन्य नहीं ह । राजशेखर क अनुसार अभ्यासी कवि की रचना म यह पाक नौ प्रकार म आता है—१ पिचुमन्द पाक । पिचुमन्द नीम को

१ मति बदनरि सयर्षे शब्द सति रम सति ।

अस्ति तन्न विना यन परिम्वदि वाड मयम ॥

—वही, पृ० ६६

२ परपाकाभिधाविषयमन्तसहृदयभ्रमिद्धिसिद्ध एव व्यवहाराड गम् ।

—वही पृ० ६७

३ मक० १ ७७

४ उच्च परिणति कापि पाक इयनिधीयत ।

—अपु०, ३४७ २२

५ गुणस्फटत्वसाकन्य काव्यपाक प्रपक्षत ॥

चूतम्य परिणामन म चागमपमीयत ॥

—सागुमि० पृ० ३५५

६ क्षतुविधानामर्थाना गाम्भीय पाक उच्यत ;

अपूर्व भोज्यमप्यत्र नि पाक नैव रोचत ।

अपाक काव्य-वधोऽपि तत पाका निरूप्यत ॥

—शृच०, ४-५

७ पाक वाचा परीपाकमाहुराम्बादभेदुरम ।

—च० च०, ४, ४४

कहन हैं। वह कडवा होता है। इस प्रकार रचना का आरम्भ में जित तक अम्बादु रहना पिचुमन्द तुल्य पाक कहा जाता है। २ बदर पाक—बेर जैसे दखन में अच्छा लगता है पर चाटा खान के बाद अच्छा नहीं लगता, उमी प्रकार जो रचना आरम्भ में बहुत चमत्कारी हो न सर्वथा चमत्कारहीन हो परन्तु पयवमान में आनन्दप्रद प्रतीत न हो, वह बदर पाक कहा जाता है। ३ मूट्टीका पाक—जो आरम्भ में फीकी पर अन्त में स्वादिष्ठ हो। जैसे किसिमिग वह मूट्टीका पाक कहलाता है। ४ आरम्भ में कुछ स्वादिष्ठ हो और पयवमान में तीरम हो, उम बार्ताकिपाक कहते हैं। जैसे बैंगन, ५ जो जादि और अन्त में मध्यम श्रेणी का स्वादिष्ट होता हो, वह तिलिटी पाक कहलाता है। तिलिटी इसरी का कहते हैं। वह न अधिक् स्वादिष्ठ होती है न जजिक् विरम ६ महत्कारपाक—जैसे आम आरम्भ में स्वादु नहीं लगता पर अन्त में उसका स्वाद दर तक बना रहता है। इसी प्रकार का चमत्कारी पाक महत्कार पाक कहा जाता है, ७ त्रमुक् पाक—जो आरम्भ में स्वादिष्ठ लग पर बाद में तीरम, जैसे गुपारी, ८ त्रपुपपाक—त्रपुप ककड़ी को कहते हैं। जैसे बट आरम्भ में तो बहुत स्वादिष्ठ लगती है पर बाद में स्वाद कुछ फीका पड जाता है इसी प्रकार का रचना-प्रकार त्रपुप पाक कहा जाता है। ९ नालिकेर पाक—जो जादि न भी अन्त में भी नागियन की गिरी के समान आनन्ददायक हो वह नालिकेर पाक कहा जाता है। इनके अतिरिक्त एक नगित्य पाक भी होता है। कपिन्य कंध के फल को कहते हैं जा कि सत्रथा विरस होता है। वह सबथा न्याज्य है। राजशेखर के अनुसार इन नौ पाका की तिकड़ी है। जैसे पिचुमन्द, बदर, मुट्टीका यह एकजिक है। बार्ताकि, तिलिटीक और महत्कार इसरी तिकड़ी है। त्रमुक्, त्रपुप और नालिकेरपाक यह तीसरा तिकड़ी है। इनमें प्रत्येक तिकड़ी के पहले दो सब बर्जनीय है। क्याकि वे सबथा रमहीन होत हैं।

राजशेखर ने अपने विचार में सबसे उत्तम नागिकेलपाक को ठहराया है।^१ परन्तु परम्परा में सर्वात्तम भट्टीका पाक होता है जिसमें सब सार ही लग होता है। न उसे छीनना होता है, न खदाना। न उमम गुठली हाती है न छिनका। अमम ग छिनका भी होता है और गुठली भी। नागियन का छिनका बहुत बठोर होता है। उसे साफ करन और तोड़ने पर बडा श्रम करना पडता है। इसरु पयवनात तोडन पर उनमें ने सीछी गिरी निकलती है। इस प्रकार जिम काव्य को समपने में बहुत श्रम करना पडे, तभी उसके रस का बोध हो थरी

१ कामी०, पृ० ६६-६७

२ आद्यन्तयो स्वादु नालिकेरपाकम् ।

—वही, पृ० ६७

नालिकरपाक होता है। तभी नालिकर की कविता का नालिकरफलसम्मित कहा है।^१ मञ्जना और दुनना की तुलना क्रमशः नालिकर और बदर में की गई है। नालिकर ऊपर म नीरम और भीतर म नरम होता है पर वेर दग्धन म सुदग्ध पर चखन म नारम प्रतीत होता है।^२ कानिदास व काव्य म मृद्धाका पाक माना गया है। जैसे किण्विश म म रखत नै अपना रम छान जगती है इसी प्रकार उनका काव्य मुनत ही हृदय म पँठ कर उम रमाणावित करन लगता है। कामाकि व कानिदास व काव्या म यही मृद्धाका पाक मिलता है।

पाक और विम्ब—चमत्कार का नाम ही विम्ब है यह हम स्थापित कर चुके हैं। पाक या काव्य वर आम्बावप्रद अवस्था का नाम है। पत्रत पाक म चमत्कार हान पर विम्ब स्वयं बन जाता है। इसीलिए विश्वेश्वर पाण्डित म पाक का चमत्कार का स्ान स्वाकार किया है।

भाज म पाका का निश्चित मध्या म गिना कर नालिकरपाक और मृद्धाका-पाक हा शब्द म गिनाय है। मभव है, उनका दृष्टि म महकार पाक आदि भी रहे हा तिनका समाप्तर जादि स कर दिया है। उनक अनुसार स्वच्छत कोमल या कठार पदा स परिवर्तित करक ग्राम्य आदि दाप ग्रस्त पदा का हटारर उचित और निर्दोष पदावना का प्रयाग हा पार होता है। व नालिकर, मृद्धाका आदि है।^३ लश्वर म अपन स्पष्टीकरण म लिखा है कि जैसे नालिकर त्वचा म कठिन किन्तु अन्तर म रम एव मधुर गिरी म पूण होता है एसा ही अन्त संगम किन्तु ऊपर म कठिन काव्यग्रन्थ नालिकरपाक कहा जाता है। मयाग और दाव स्वर्गे व वाग्ण कुछ कठारना जा जाना मृद्धाकापाक कहलाता है।^४ अग्निपुराण म मृद्धाका या द्राक्षा नालिकर अम्बु य तान पाक गिनात है।^५

१ आत्रम्य शब्दमथस्य द्राकप्रतीतिशता नहि ।

म नालिकरपाक म्यादन्तगूँडरसोदय ॥

—शृच०, ८, ७

२ नालिकर-फल-सम्मित बचो भारवे मपदि तद विमज्जते । सवङ्कपा

—म० म्लो० ६

३ नालिकरफलाकारा दग्धन्तर्जपि हि सञ्जना ।

अये बदरिकाकारा वहिरेव मनाहरा ॥ —मुभा० पृ० ४७ श्लो० २४

४ सच० १ ७७

५ रद० पृ७ ७५

भी लिखा चतुर्विध है ।^१ अन्वु सभवत आम्रपाक ही भूल में छप गया हो । यहाँ नारिकेनाम्बु का अर्थ नारियल का पानी' ने तो पाक के दो ही भेद रह जाते हैं ।

साहित्य-मुद्रा मिश्रणकार ने आम्र और वृन्ताक दो गिनाये हैं ।^२ इनमें आम्र प्रगम्य और वृन्ताक त्याग्य है । विनयवर्णी ने द्राक्षा पाक और नारिकेरपाक ये दो ही गिनाये हैं ।^३ विश्ववक्त्र ने खर और मूदु ये दो पाक माने हैं उनमें खर नारिकेर का और मूदु द्राक्षापाक का समानांतर है ।^४ द्राक्षापाक का उदाहरण कानिदास का निम्न पद्य है—

त्वामालित्य प्रणय-वृपिता घातुरायं शिलाय—

भरमान ते चरण पतित पावदिच्छामि कर्तुम् ।

अद्रेस्ताव मुहुरुपचितदृष्टि रानुष्यते मे

चूरन्तन्मिन्तपि न सहते सट्ट गम नी कृतात् ॥^५

यहाँ पद योजना आपातन तीक्ष्ण प्रतीत होती है । परन्तु पर्यायाचन करने पर अर्थ के महज ही हृदयङ्गम ही ज्ञान में विवक्षित भाव का विम्ब बन जाता है । नारिकेरपाक का गुन्वर उदाहरण भारवि का निम्न पद्य है—

१ मूढीका नारिकेनाम्बु-पाक-भेदाच्चतुर्विधः ।

जादाधन्व न सौरस्य मूढीकापाक एव स । —अपु०, ३४६, २२-२३

२ गुणस्फुटन्व-माकल्य काव्यपाके प्रचक्षते ।

चृतस्य परिणामेन स चायमुपभीषत ॥

मुष्टिङ्गमस्तार-मार यत किन्ट-वरनु-गुण भवत् ।

काव्य वृन्ताकपाक स्यात्तज्जुगल्म न नगम्यत ॥ —सातुंगम०, पृ० ३१५

३ द्राक्षापाको नारिकेरपाकौऽपि द्विविधा मते ।

आनन्व्य गब्दमथस्य द्राक् प्रतीतियतोऽपि ॥

स द्राक्षापाक इत्युक्तो वहिरत स्फुटसः ।

आलम्ब्य गब्दमथस्य द्राक् प्रतीतियता नहि ।

स नारिकेरपाक स्यादन्तर्गुडरभोदय ॥ —ब०, ६, ५-७

४ माज्य मूदु खरकेचि समागत द्विधा भवेत् ।

अत्र द्राक्षापाक टवाक्लिशेन समास्वाददायी शब्द-परिणामो मूदुपाक

इत्युच्यते । —ब० च० पृ० १०३

अत्र खरपाक द्वे विमर्शकलेणेन विलम्ब्याम्बावदायी शब्दपरिणाम खरपाक

इत्युच्यते । —वही, पृ० १०४

५ मेढू० २, ४६

गुणानुरक्ताभनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजां नराधिप ।

परंस्त्वदय क इवापसारेयेन् मनोरमामात्मवधूमिव धियम^१ ॥

यहा शब्द अलङ्कार क कारण वाच्य मूल म कठोर ह पर पयवमान म अयत नहरा प्रभाव छोडता है । भाव के स्पष्ट हो जाने पर दाना ज्यों के समानान्तर दो विम्ब बनते हैं जिन का सम्मिलित रूप मिश्र विम्ब होता है । शय्या—विश्वेश्वर ने चमत्कार का छठा साधन शय्या को बताया है । परन्तु उसकी शय्या की परिभाषा पाक म सवधा मिलती है । अत दाना म क्या अन्तर है यह स्पष्ट नहीं है । क्योंकि शब्द परिवृत्त्यमहत्व पाक का भी लक्षण है । शय्या क लिये भी कहा है—

शय्या पदानामयोग्यमत्रो विनिमयासहा ।

साहित्यस्य पराकाष्ठा शय्या देशविभेदत ।

लोकं प्रसिद्धमित्येषा प्राज्ञशय्येति कीर्तिता^२

यह परिभाषा ही अपन अर्थ म अशक्त है । तीन बार शय्या शब्द का प्रयोग जा कि साभिप्राय नहीं है यह सूचित करता है कि जाचाय न अपन किसी पूर्ववर्ती म यह धारणा ज्या की न्या न ना नी पर उसका स्वका स्पष्ट नहीं हुआ ।

नादम्बरीकार न कथा क प्रसङ्ग म शय्या शब्द का प्रयोग किया है^३ जिन का अर्थ टीकाकार मानुचन्द्र ने जनकार्य-काय का हवाला देत हुए शब्द-गुम्फ किया है^४ । अत शय्या और पाक म अन्तर यही प्रतीत होना है कि जहाँ पाक म पद अथ क विचार से परिवृत्ति नहीं सहा कहा शय्या म छवि की दृष्टि म पदा की समानता रहती है । नादम्बरी ने रमन शय्या स्वयमभ्युपागता^५ का अर्थ श्रृंगारादि रस-प्रवणना म पदा मा अप्रयत्न-गाध्य हाकर म्वत स्पून हो जाना ही प्रतीत होता है ।

१ कि० १, ३१

२ च च०, पृ० १०४

३ रमन शय्या स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ;

—का०, प्रस्ता० ८

४ शय्या तल्प शब्द-गुल्फे इत्यनकाथ । पृ० ४

५ शय्यन्याहु पदार्थाना घटनाया परस्परम् ।

स प्रकान्तन कस्मिश्चित प्रकान्तन कुत्रचित् ॥ —मक० २, ५४

पदार्थानां प्रवृत्ताप्रवृत्तवस्तूनाम् तच्च योजनीय शब्दाव-भेदन द्विविधम् ।

—रद० १८३

भोज ने भी शय्या का निरूपण किया है किन्तु उन के विवेचन से इस सम्बन्ध में उनकी धारणा सबजा भिन्न प्रतीत होती है। क्योंकि उनकी दृष्टि में शय्या का सम्बन्ध केवल पद से न होकर अथ म भी है। वे अथ प्रयोग की बातों को एकत्र सूच देना ही शय्या मानत हैं।

विश्वेश्वर ने शय्या का जो उदाहरण दिया है उस में ध्वनिया का साम्य ही मिलता है।

नि साणेषु धण धण धणमिति ध्वानानुसन्धासिधु ।^१

इस पदिक्त में "आणे" 'अण' 'आना' अनु" इन ध्वनियों की समानता में नाद-मौन्द्य अथवा ध्वनिचित्र की मृष्टि की गई है। इसलिये विश्वेश्वर का मन्वाव्य यही लगता है कि वाक्य में प्रयुक्त पदा ण ध्वनि-साम्य है या कि श्रुतिमुद्र होने के माद-म्याध ध्वनिविश्व का निर्माण करे। विजय-वर्णी ने भी पदों का आनुगुण्य या अयोन्य मंत्री को ही शय्या कहा है^२। फलतः विश्वेश्वर और विजयवर्णी के विचार इस सम्बन्ध में समान ही हैं। इसमें निष्पत्ति यही निकलती है कि वण-समुदायात्मक पद परस्पर मिलते जुलते हैं। यह मिनना-जुलना ध्वनि की समानता ही होगी जिसमें पृथक् होने पर भी पद समान या अभिन्न प्रतीत हों। जैसे—

मैना मुनीनामपि मातनीयामात्वानुरूपा विधितोपमेये ।^३

यहाँ "म" और "न" ध्वनिया की समानता में जायति श्रुतिमुद्र प्रतीत होती है छेक, वृत्ति अनुप्रास और यमक का उपयोग इस शय्या के निर्माण में होगा है या कि नादविश्व की मृष्टि करत है। भवभूति को इस वाक्य में विशेष सफलता मिली है। जैसे—

अथ हि शिशुरेकक समरभारभूरिस्फुर-

त्कराल-करक दली-कलितशम्भ्रजालैबल ।

वयगतकनक-किङ्किणो जण अणायित स्य दनै —

रम दमददुहिनैद्विरदवारिदैरावृत ॥^४

१ च. च. ४५१

२ अशय्या कामकैली वा कृति-तीके न शोभते ।

तवस्ततो बुर्ध्वच्य शय्यासक्षणमुत्तमम् ॥

पदानामानुगुण्य वाऽथो यमिरत्वमुच्यते ।

यत् सा शय्या कलाशास्त्र-निर्णयविदुषा वरे ॥—शुच० ८, -२

३ कुम० १, १८

४ उ० च० १, ५

उत्तम ध्वनिया का परम्पर साम्य अन्धा प्रभावशाली मिथ्य है और यथा क दीप्ति का दृश्य मूल सा हो जाता है ।

यह विवेचन स्पष्ट करता है कि चमत्कार के मात्र के रूप में गिनाये गये इन तन्त्रों में आचार्य ने मनाभाव अथवा और उत्तम वाचक शब्द सीमा को समान रूप में महत्त्व प्रदान किया है । तब और प्रथम शब्द का काव्य का प्रयोग मानने का तात्पर्य यही है कि शब्द काव्य में चिन्तन में प्रतीति हानि बान चमत्कार के साथ ध्वनिमाम्य होने चमत्कार भी अपेक्षित है । किन्तु कवि ने समयकवि का उक्ति में यह अपेक्षा का है कि वह शब्दचरण मात्र में भी दृष्ट लग—

अविदित-गुणऽपि सत्कविभणिति कर्णेषु चमति मधुधाराम ।

अनधिगत-परिमनाऽपि हि हरति दृशं मालती-माला ॥^१

प्राचीनता तन्त्रक मनामें न ही काव्य के उत्तम गुण पर ध्यान दिया है और वह इस Oral enchantment का नाम देता है ।^२

वाग्मव में तब और जय का सामञ्जस्य ही जय का प्रयत्नकल्प बनाने में उद्देश्यक ज्ञाता है । यही कारण है कि गति गण एव वृत्त का रमा के साथ सम्बन्ध जाना गया । पाठ और शब्दा शाना की मान्यता रमा धारणा का पुष्टि करता है । शब्द जय का भावानुसंग सामञ्जस्य न ही ना वह भावावन गुम्फता मान^३ है । काव्य त्रिम्व तभा मशकन हाना है जब य काव्य के शरार घटक तन्त्र कथे में काव्य मित्ता एक ही पर्यायन का मिथ्य करें । जैसे विजया के निम्न पद्य में प्रत्यक्ष है—

विलास-भमृणोल्लस-मुसललोलदी कन्दली—

परस्पर-परिस्वन्ददत्रलय नि स्वतोदवन्धुरा ।

लसति कल ह्रुड कति प्रसभ-कम्पितोर स्थल—

मूढदगमकसङ्कुला कलमकण्डिनी गीतय ॥^४

१ माद० पृ० ३३०

२ काम० पृ० ८४

३ काव्य शब्दाथया मध्यग रचना गुम्फता म्मृता ।

—सर्ग० २, २३५

४ पा० वी० काणे—History of Sanskrit Poetics Introduction of Sahitya darpana p 131

—सर्ग० पृ० ६०२

अष्टम् परिच्छेद शब्दालङ्कार एव काव्य-विम्ब

काव्य के स्वरूप-घटक तत्त्व

काव्य-शाम्बिधा में कुछ शब्द और जय दाना का ता कुछ शब्द नो हो काव्य वा स्वरूप-घटक तत्त्व मानत रहे ह । दत्तम भामह ' वामन ' छट्ट, कुतक,^१ आनन्दवधन,^२ मम्मट, विद्यार^३ जादि मनी शब्द और जय का काव्य वा गरीर स्वीकार करत आय ह । नोज यद्यपि बहुत म विषया मे दण्डी का अनुसरण करते ह तथापि काव्यगरीर के विषय मे व भी शब्दाशुवादी है ।^४ दण्डी^५ और जगन्नाथ^६ केवल ऐम शब्द को जो कि अभीष्ट अर्थ का वाङ्मयी,

-
- १ शब्दाशुवा मतिता काव्यम् । - नासा०, १, १६
 - २ काव्यशब्दोऽय गुणानुत्कारमस्मृतयोश्शब्दाशुवाश्रितो नक्त्या तु शब्दाशु-
मात्रवचनो गृह्यते । -का० सू० व, १, १, १
 - ३ ननु शब्दाशु काव्यम् । -र० का०, २, १
 - ४ शब्दाशु मतिता वक्तु विद्यापात्रालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाहू तादकारिणि ॥ -वरी० १, ७
 - ५ शब्दाशु-शरीरन्तावत् काव्यम् । -छत्रया०, पृ० १६
तथा—शब्दाशु-शामनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यत । -वही १, ७
 - ६ तददोषी शब्दाशु मगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि ।—का० प्र० ना०, १, ४
 - ७ छानिप्रधान काव्य तु काता-समितमीरितम् ।
शब्दाशु गुणता नीत्वा व्यञ्जनप्रवण यत ॥ -एना०, १, ६
 - ८ शरोप गुणवत् एतेन काव्यलक्षणमपि कटाभितम् ।
यद्यपि काव्यशब्दो शोभाभावादिनिशिष्टाश्वेव शब्दाशु ब्रूते तथापि लक्षणया
शब्दाशुमात्रे प्रयुक्त । -रद० (सक०) पृ० ३
 - ९ शरीर तावदिष्टाशुव्यवच्छिन्ना पदावली । -काद०, १, १०
 - १० रमणीयाद्यप्रतिपादक शब्द काव्यम् । -रा० १

काव्य स्वीकार करते हैं। अग्निपुराण भी शब्द का ही काव्य स्वीकार करता है। विश्वनाथ कविराज ने रमारमरु वाक्य का काव्य माना है।^१ यद्यपि शब्दाथ-अभेदवादी वैयाकरणों की दृष्टि में वाक्य में पदसन्दर्भ के साथ अर्थ के भी अन्त-भक्त होने से विश्वनाथ स्पष्ट ही शब्दाथ का काव्य मानने वाला सिद्ध होता है तथापि कुछ विद्वान् उमका शब्दाथवाद का विरोधी स्वीकार करते हैं।^२ परन्तु विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्यदर्पण के जाद्वि में अन्त तक कहीं भी शब्दाथवाद का विरोध नहीं किया है। यहाँ तक कि रस, गुण दाप जनक रीतियों का काव्य में स्थान निर्धारण करने के प्रसंग में वह स्पष्ट शब्दों में शब्द और अर्थ का काव्य का अर्थ घोषित करता है। मम्मट के लक्षण में अदोष मगुण और अनलङ्घनीय पुनर्कथापि इन विशेषणों पर ही आपत्ति की परन्तु शब्दाथों तत् इतने अर्थ के काव्यत्व का कहीं चुनौती नहीं दी। 'मीन स्वीकार लक्षणम्' के अनुसार इन प्रश्नों पर भी नही रहना यही सूचित करता है कि विश्वनाथ का शब्द और अर्थ का सामूहिक काव्यत्व अस्तिमान है। पुनः वाक्य की जा परिभाषा विश्वनाथ कविराज ने दी है उममें आकांक्षा और योग्यता का स्पष्ट ही अर्थ का धर्म स्थापित किया है।^३ यदि कवयः पदसन्दर्भ का वाक्यत्व इष्ट होता तो अर्थ विज्ञान का प्रश्न ही उठता न मन्त्रवाक्य के प्रसङ्ग में वाक्या के स्वाभाविक अर्थ पश्चात् विश्रान्त हान की बात में कोई तुल्य हाना और न निरर्थक के चटपट आदि वर्णों के पदों के निराकरण में ही कोई औचित्य रहता। पुनः काव्य-सुख के जा अवयव उममें गिनाये हैं वे पूर्वपक्ष के रूप में न होकर बद्धमन्त्र के रूप में प्रस्तुत किये हैं। रीति और जनक के प्रसङ्ग में भाव ही स्थान पर शब्दाथवाद की स्वीकार करता है।^४ अतः उस वाक्य का काव्य मानने के कारण शब्दाथवाद का अस्वीकृत करने वाला समझना भ्रम है।

१ काव्य स्फुरदलनकार गणदूदापवर्जितम् । मक्षेपाद् वाक्यमिष्टाथ-
व्यवच्छिन्ना पदावती काव्यम् । --अणु० ३३७ १, ६

२ साद० १ ३

३ तु० परन्तु साहित्यदर्पणकार ने दण्डा का पक्ष पुनः प्रस्तुत किया ८००
वर्षों की उक्त भावुकता में हटाकर। रवा प्रनाद द्विविदी,

सामुसि० भू०, पृ० १४

४ उक्त हि-काव्यम् शब्दाथों शरीरम् । रमादिश्चात्मा । --साद० पृ० १६

५ वाक्य स्याद् भाष्यताकाभ्यामिति युक्तं पदोच्चयम् । --वही, २, १

६ तु० --शुनिदुष्टागुष्टाथत्वादयः काणत्वखञ्जत्वादय इव शब्दाथद्वारेण

चण्डीदाम् ने आम्बादजीवानु पदसदम को ही कहा है। सम्भवत उम दण्डी की परिभाषा में 'पदानली' का स्मरण ही आया। और यह जाणडू का ही मर्द कि एक पद तो काव्य ही ही नहीं सकता। परन्तु जगन्नाथ के लक्षण में एतद्वचनात् 'जद्व' दृष्टान्त में एक शब्दमान का काव्य मानने के अभिप्राय में नहीं है। जातिवाचक होने में जद्व-समुदाय का ही वाचक है। चण्डीदाम् के मत का खण्डन तो महर्षि मुद्राभिन्नुकार ने उसमें लक्षण का अस्पष्ट रह कर कर दिया है।^१

परन्तु साहित्य में गामिन्नुकार ने स्वयं अपने लक्षण का गाथ-माल करने कहा है। जद्वण्ड काव्यत्व को धारण कर व जद्व का काव्य स्वीकार करने में या जय का यह स्पष्ट नहीं कहा। वदानियों की भाँति जद्वण्ड वाक्यावयव में अर्थ का घृणक छूटा नहीं। फिर स्पष्ट जद्वाम जद्वथ का काव्य क्या नहीं कहें? उद्धाने भोज क—

अदोष गुणवत्काव्यमल्लकाररत्न-कृतम् ।

रमान्वित कवि कृषन कीर्ति प्रीति च विवति ॥^४

क देहदारेणैव धर्माचारिभावात् स्वजन्मवाच्यप्रादया मुख्यादय एव नाशान्ताव्यस्यात्मभूत रममपकपयन्त काव्यस्यापकपका इत्युच्यन्त ।

—वही, पृ० २१

ख रमादी गामर्यान्ध्रवाधजरीरम्य काव्यस्यात्मभूतानाम । —वही, पृ० २७०

ग यथा जट गदाद्य जरीरगामातिशायिन जरीरिणमुपकुवन्ति,

तथानुप्रासोपमाद्य शब्दाथगोभातिशायिना रमादरूपकारका ।

—वही पृ० २७३

१ मामुनि०, पृ० १३

२ तु—तनाम्बादजीवानु पदसदम काव्यमिति चण्डीदासप्रभृतय । तत्र । आम्बादवदर्थोपम्यापञ्चव पदोपस्थाप्याम्बादवदथ च वा काव्यत्वमिति विनिगमनाविगृहेणभयस्य काव्यत्वात् । —वही

३ वस्तुतस्तु अदोष गुणवत् काव्यमित्यादिवाक्य-प्रतिपादितस्वमविशेष-जनकताऽवच्छेदक काव्यत्वमल्लकार कथ्यते तत्र च तद्वै नक्षणमस्तु किमनवानुगतेन लक्षणैत इति चङ्ग मुष्पम् । —वही, पृ० १७

जायन् परमान्ता ब्रह्ममास्वादमहोदर । यस्य श्रवण-मात्रेण तद् वाक्य काव्यमुच्यते ॥ —वही, १, ४

४ सत्य यह है कि विश्वनाथदेव अपना लक्षण देकर भी पुन भोज के लक्षण का ही माह्य मानते हैं। पर रत्नेश्वर ने जो शब्दाथ का काव्य माना, उस पन्ने को उद्धाने गले में छुटाया नहीं।

इस लक्षण को ही अपन शब्दा में थोड़ा हेर-फेर करके स्वीकार कर लिया है। उन्होंने उसका पाठ 'कीर्ति स्वर्गं च विन्दति' कर दिया है। परन्तु प्राचीन आचार्य धामन आदि क शब्दा में कीर्ति जीर प्रीति का काव्य का प्रयोजन मानने में कीर्ति में स्वर्ग प्राप्ति का तात्पर्य दिया गया है, इस पर उनकी दृष्टि नहीं गई। 'कीर्ति स्वर्गप्राप्ताह' १ के अनुसार उसमें भी जब स्वर्ग प्राप्ति ही हागी है तो पुन स्वर्ग शब्द न उपादान की क्या आवश्यकता? यह तो पौनःपुन्य थाप हुआ। पुन स्वर्ग क मुख्याशय ज्ञान में आनन्द की प्राप्ति कवि का स्वर्ग में ही सम्भव हागी जीवनकात्र में क्या मिश्रण? सजगर ता वाटि स्वर्ग जायगा नहीं। फिर क्या शक्य है कि मघटाकार या अमरगतककार अपवाद बुद्धनीमों का रचयिता मरणात्तर स्वर्ग ही जायगा? अथवा कालिदास के नाम में प्रसिद्ध इस वचन का क्या अर—

यदि मयानि शास्त्राणि मुनीना वचनानि च ।

आवयो मत्त गमो वाले कुम्भीपाके भविष्यति ॥^२

क्याकि इसमें कवि न अपनी उश्या-धमन रूप पाप के कारण कुम्भीपाक नरक में जान की सम्भावना प्रकट की है। काई यह भी नहीं कह सकता कि कालिदास का कीर्ति का वाच ही कही हुआ जा कह स्वर्ग जाना। तब "अस्मिन्नति-विचित्र-काव्य-रम्परावाहिनिसमाग कानिदान-प्रभूनयो द्वित्रा पञ्चपा वा महाकवयः" ३ कवय कालिदासाद्या कवयो वयमप्यमो। पदत परमाणो च समानत्र प्रतिष्ठितम् । एव कालिदासादीनामिव यग' ४ आदि वचनों का क्या मूल्य हागा? हा अनुवादक महोदय के अनुसार स्वर्ग शब्द का पारलौकिक अर्थ न लेकर स्वर्ग शब्द की परिभाषा में प्रतिपादित-धम-बुद्ध क सम्पक ग मूल्य आनन्दतिरेक' ५ जिन अर्थ जाचायों क शब्दों में

१ मक०, १ ०

२ काव्य मद दृष्टादृष्टाय कीर्तिप्रीतिहेतुवात् । —का० सू०, १, १ ५

३ लो०, पृ० ४०

४ ध्वन्या०, पृ० ६३

५ का० प्र० प० ५

६ यन्न दुस्त्रन सम्भिन न च अस्तमनन्तरम् ।

अभिनापावनीन च तत्पद स्व पदास्पदम् ॥ —ध्वन्या० टि०, १, पृ० ४०

७ विषय प्रकार क स्वर्गीय आनन्दापम मुखविशेष के जनक

सा० सु० मि०, १७

“त्रिगणितवेद्यान्तर” कहा गया है, लिया जाय तो प्रकृत म वा सट गति किसी प्रकार ही जायेगी पर वामन आदि के वचनों को यह पौनःकृत्य दोष बाधित करता ही रहेगा। क्योंकि कीर्ति वा अथ स्वाग और उमका आशय आनन्दान्तरक लिया जाय तो पृथक् “प्रीति” शब्द के ग्रहण का कोई प्रयोजन न रहेगा।

अन्तु न विषवनाथ दव के लक्षण में और न भाज के लक्षण में तन्त्र या अथ का निर्देश है। तब वे किसका काव्य मानते हैं अष्टगुण वा प्रसिद्ध म करेंगे, यह कुछ भी स्पष्ट नहीं किया गया है। परन्तु रत्नोत्तर ने भोज क वचन का निष्कप शब्दावयुगल का काव्यत्व ही निकाला है। त्रिगवनाथदेव का क्या तात्पर्य रहा है, यह स्पष्ट नहीं।

हमारे विचार में पुराने आचार्यों की बात की खान खोजन की प्रवृत्ति ही इस शब्द और अथ के काव्यत्व-सम्बन्धी विवाद का मूल है। जयया त्रय मभा आचार्य आनन्द या आम्वाद में काव्य का प्रयोजन स्वीकार करते हैं तो इस बात को वे भी अस्वीकृत नहीं करते कि आनन्द या आम्वाद तब तक जब दोनो में आता है। बिना अथ के शब्द का कोई महत्व अपन आग म नहीं है। अन्तरा—र का च कि की पुनरेव कु रू तथैव का की पुनरेव क क ' आदि और 'अर्द्गव वम्बन-भाद्रुकाभ्या द्वारि स्थितौ गायति मद्रकाणि आदि का भी काव्य मानना होगा। क्योंकि शब्द तो यहाँ भी प्रयुक्त हुए हैं। अथ की इस अनिवायता को देखते हुए ही “इष्टाथव्यवच्छिन्ना” और “रमणीयाथ-प्रति पादम” के विशेषण पदावली या शब्द के साथ लगान पड़े। बिना शब्द के भी अथ क्या हवा में झूलता रहेगा? सारा नाकव्यवहार तो शब्द में होता है। अतः दोनो का चोली-दामन का साथ है। मले ही भाव्यालय वार-कारिका-कार ने शब्द और अथ का परस्पर सम्बन्ध बस्त्र और शरीर का सा आज बताया है पर उसका मङ्केत नागेश मृदु स्पष्ट तब्दी में पहले ही कर चुके हैं।^१ इसलिए दोनो ही अन्यो-याश्रित हैं परन्तु यह शेष नहीं, गुण ही है। जैसे

१ मक०, १ (उ०) ५०

२ सा० सु० सि०, मू० पृ० १४-१५

३ रमणीया अप्यर्थास्तुच्छशब्दनाभिदीयमाना न तथा चमरवासायेति भावः। यथा काञ्चनाञ्चलादि वस्त्रभुक्त्याप्येन तत्परिधात्री नायिकामप्युत्कथयति। न हि रमणीयाऽपि नायिका तुच्छवसनावगुणिताऽऽह्लादाय भवतीत्याह।

आत्मा बिना शरीर का आश्रय लिए कोई भी व्यापार नहीं कर सकता, भने ही मूढ़म शरीर धारण करके भूत-प्रेत की सजा रबीकार करे और बिना आत्मा के शरीर भी चानक हीन गान्धी के समान व्यथ और नेवन शव कहलाता है, इसी प्रकार शय के विना शब्द ता अव्यक्त ध्वनि मात्र रह जायेगा और स्वय अर्थ बिना वाचक या धोनक शब्द के चाहे वह वैखरी रूप हो या मछनमा, पशुती आदि रूप, किसी प्रकार बुद्धिगम्य नहीं होगा ।' किन्तु जैम व्यवहार-पक्ष में वेदान्तिया म वाक्य म पद-अदाय की कल्पना करने की आज्ञा की जाती है,^१ इसी प्रकार काठिन-जगत् म भी यह देखा जाता है कि काव्य का जीवातुभूत चमत्कार किस पर आश्रित है, शब्द पर या जय पर । यहा आश्रयता-सम्बन्ध जन्त्यामाधारणता का दृष्टि में रख कर माना जाता है । यह चमत्कार क्याकि कही पर ता शब्द मात्र पर आश्रित शता है । जैम--

म्वच्छदोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा—

मूछन्मोहमहृषिहर्षेविहितस्नानाहि नकाहूनाय व

भिद्यादुद्यद्दुदार-दुर्वरदरीदीर्घादरिद्रुम—

द्रोहोद्रेक-महोमिमेदुरमदा मन्दाकिनी मन्वताम् ॥^२

इस श्लोक म नाद-भाषुय का ही चमत्कार है, मन्दाकिनी-विषयक रति तो ध्वनिया के मोहजाल म लही दब कर रह गई है । यह अनुप्रास अतट्कार के द्वारा जा ध्वनिबिम्ब कवि ने प्रस्तुत किया है, श्रोता का ध्यान उसी तक सीमित रह जाता है । मन्दाकिनी-विषयक रतिभाव तक उसकी बुद्धि नहीं पहुँचती ।

शून्य वातगृह विलोक्य शयनादुरथाय किञ्चिच्छनै—

निद्राव्याजमुपागतस्य मुचिर निर्वण्य पत्यमु खम् ।

विलम्ब परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्यती

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता वाता चिर चुम्बिता ॥^३

१ चत्वारि वाक्यरिमिता पदानि तानि विदुर्नाह्मणा ये मनीषिणः ।

त्रीणि गुहा निहिता नेट मरन्ति सुरीया वाच प्रदुग्धः वदन्ति ॥

— ऋग्. १, १, ६४

२ येऽप्याविभक्त स्फोट वाक्य तदर्थे चाह नैरप्यविद्यापतितै मवैयमनुसरणौया प्रन्निपा ।

— लो०, पृ० ६७

३ का० प्र० का० १, ४ (उ०)

४ अमर० (८२) साद०, १, १६

इस पद्य में सम्भोग श्रुङ्गार का चमत्कार स्वीकार किया गया है। प्राचीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत “कमकौटिल्यानुल्वणतोरपत्तिघटनात्मा” श्लेष नामक अर्थ गुण है। यहाँ शब्दकृत चमत्कार नहीं है। जो उसे स्वीकार करते हों, उनका उत्तर पण्डितराज बाड़े शब्दों में दे चुके हैं।^१ इस प्रकार इस पद्य में केवल अर्थाश्रित चमत्कार है।

पूर्वोदाहृत “अथ हि जिष्णु” आदि पद्य में^२ अर्थ और शब्द दोनों मिलकर चमत्कृत करने वाले हैं। अथ में परिस्थिति आदि का चाक्षुष बिम्ब एव ध्वनियों में नादबिम्ब बनता है। दोनों परस्पर मिल कर एक दूसरे को पूर्ण करते हैं। अतः य उभयाश्रित चमत्कार का उत्तम उदाहरण है। इसी प्रकार वास्यार्थ के चमत्कार में रस की पुष्टि —

मनोरामस्तीर विपन्निव विसर्पत्यविरत
प्रमाथी निर्धूम ज्वलति विधुत पावक इव ।
हिनस्ति प्रत्यङ्ग ज्वर इव गरीयानित इतो
न भा प्रातु तात प्रभवति न चाम्बा न भवती ॥^३

मालती-माधव के इस पद्य में देखी जाती है। प्रसाद गुण में गुम्फित इस श्लोक में वाक्यार्थ को चमत्कारी बनाने के लिए उपमा एव काव्यलिङ्ग अलङ्कारों का सहारा लिया गया है। इसमें उपमेय मनोराम अमृत है जबकि विप और अग्नि मृत उपमान हैं। तृतीय चरण में ज्वर भी अमृत ही है। उनके विशेषणों के प्रभाव से मालती की अमिलाप-वृत विरह-वेदना की अनुभूति होती है जो कि विप्रलम्भ श्रुङ्गार के रूप में पुष्ट हुई है।^४

ये उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि काव्य उभयाश्रित है। जिस प्रकार मानव की मनोवृत्तियों में कभी सत्व गुण प्रबल हो जाता है तो कभी रजम् या तमम् तो उसने आधार पर ही उम (मानव) की चैष्टा और व्यवहार बदल जाते हैं। इसी प्रकार वही शब्द का चमत्कार अधिक जोर मारता है और अर्थ को वह पीछे छोड़ जाता है तो कभी अर्थ प्रबल होता है। कभी दोनों

१ द० अ० ७ टि०, ११६ (रग०, पृ० ७४)

२ (उ च० ५, ५) द० अ० ७ टि०, ३०४

३ (मामा०, २, १) का० प्र० का० (उ०) ८, ३४३

४ विशेष द० लेखक का शोष० काव्यशास्त्रे चमत्कारवाद ।

सामान्य प्रतीत होने हैं परन्तु रागात्मक वृत्ति ही वहाँ सबसे ऊपर रहती है, जैसे त्वामानिह्य आदि पद्य मे। इन स्थिति-विशेष को समझ रखकर शब्दार्थ-युगल को काव्य स्वीकृत किया गया था। इसी आधार पर भट्ट नायक ने भी कहा था—

शब्द-प्राधान्यमाश्रित्य तत्र शास्त्रं पृथग्विदुः ।

अर्थे तत्त्वेन युक्ते तु वदन्त्याह्वयानमेतयो ॥

द्वयोर्युगलत्वे व्यापारप्राधान्ये काव्यधोर्भवेत् १

अल ही व्यापार शब्द का इस उक्ति में प्रयोग करने का कारण अभिनव-गुप्त ने वेचारे भट्टनायक को घुड़क दिया पर उमन कहा तो यथाय ही था। अन्यथा मम्मट द्वारा शब्द का प्रभुसम्मिता, मुहुत्-सम्मिता और कान्तासम्मिता इन तीन श्रेणियों में विभक्त किये जान का क्या अर्थ ?^२

अलट्कार एवं समत्कार

पद्य और अर्थ में यह सम-काव्य का गुण कहा में जाता है? क्या प्रत्येक चना आकषक नहीं जानी? क्या सामान्य समची जान वाली कविता में शब्द और अर्थ का व्यापार नहीं रहना? क्या इन दोनों उक्तियों में अन्तर नहीं प्रतीत होता?

एक बात कही अनहोत्री। दादा ने व्याही पोती।

और—

ययो विमूरधोश्चदिसा पतिर्न स्वयन्नर बीक्षितधर्मशास्त्र ॥

व्यलोकिक लोके धृतिय स्मृती वा सम विवाह क्व पितामहेन ॥^३

पहली उक्ति उलट वार्सा है ता दूसरी आलट्कारिक उक्ति। दोनों में अन्तर यही है जहाँ पहली पाठक या श्रोता को चक्कर में डालने वाली है, वहाँ दूसरी एक आर तो हास्य का सबदन कराती है दूसरी ओर वातावरण को मूर्त बनाती है जिसमें बूढ़े पितामह की पत्नी दाड़ी मूढ़ में डका झुरिया वाला चेहरा पाठक को प्ररक्षकत्व हो जाता है। कवि ने इसीलिए जानबूझ कर ब्रह्मा के लिए

१ लो० पृ० ८७

२ प्रभुसम्मिताशब्द प्रघान-वेद दिशास्त्रेभ्य मुहुत्समितार्थतात्पर्यवत्पु रागादीति-हासभ्यश्च एव कान्तासमिततयोपदेशयुजे ।

और किसी शब्द का प्रयोग न करके "ऊर्ध्वदिश पति" किया है। ऊपर की दिशा को अधर या निराधार कहते हैं। निराधार या अधर में स्थित वस्तु कभी भी नीचे गिर सकती है। इसी भाव में बड़े आदमी के लिए "नदी के किनारे का वृक्ष" "एका आम" या "कब्र में पैर लटकाने" आदि व्यङ्ग्यात्मक वचन व्यवहार में आते हैं। जब प्रसङ्ग को देखते हैं तो पाठक या श्रोता समझ जाता है कि वचनार्थी को देखकर हसटुली तो बूढ़े ब्रह्मा के मन में भी उठी पर अपनी स्थिति देखकर मन ममोस कर रह गये।

इस पद्य में सबसे बड़ी शक्ति है अप्यविषय को प्रत्यक्षबल्य करने की। यह शक्ति उसे कहा में मिली? परिकर अलङ्कार से। ऊर्ध्वदिशा के पति' जो ठहरे। दूसरा अर्थान्तराप्याय का चमत्कार है उत्तरार्ध में।

अलङ्कार का स्वरूप

वस्तुतः काव्य एक चित्र है, उसमें रीति रेखाएँ हैं अलङ्कार रङ्ग हू जो कि रङ्गासौन्दर्य का उभाय देता है। गुण जीवन है अलङ्कार कुसुम और कुटुम्ब।^१ इस प्रकार काव्य में अलङ्कारों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। अलङ्कार का अर्थ ही है शब्द और अर्थ में प्रत्यक्षीकरण की सामर्थ्य करना। रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अलङ्कारों में स्थित अलंकार का तात्पर्य अतिशय उत्तम नियम है जिसका उपयोग यन्त्र वस्तु वा चित्र प्रस्तुत करना—यन्त्रों आदि का फोटो में प्रतिविम्बन करके मक्षेपीकरण में होता है।^२ अलङ्कार में यह सामर्थ्य चमत्कारी होने के कारण ही जाती है। इसी कारण अलङ्कार के लक्षण में किसी-न-किसी प्रकार उसका साथ चमत्कार का सम्बन्ध जोड़ा गया है। मम्मट^३ एवं विश्वनाथ^४ सदृश रसवादी आचार्यों के लक्षण अलङ्कारों के स्वरूप पर प्रमाण देने में अपेक्षा उनका महत्त्व निर्धारित करने पर अधिक बल देते हैं। उनकी अपेक्षा प्राचीन आचार्यों के अलङ्कार-लक्षण स्पष्टतर हैं—

वक्त्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृति ।^५

१ डा० रामचन्द्र द्विवेदी अलङ्कार-मीमांसा पृ० १०८

२ अस० (विमर्शिनी) भू० पृ० ५१

३ उपकुवन्ति त मन्त्र येऽङ्गद्वारेण जातुभित् ।

हारादिबदलङ्कारास्त्वनुप्रासोपमादयः ॥

—का० प्र० का०, ८, ६७

४ शब्दाद्ययोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः ।

रसादीनुपकुवन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥

—भाद०, १०, १

५ भाषा०, १, ३६

काव्यशोभाकारान् घर्मानिलङ्कारान् प्रचक्षते ।^१

काव्यशोभाया कर्तारो घर्मा गुणा ।

तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारा ।^२

उभावेतावस्तु कार्यो तयो पुनरलङ्कृति ॥

वक्रोक्तिरेव बद्धध्वजभङ्गो भणितिहन्पते ॥^३

जाचाय उदभट न अलङ्कार का कोई स्पष्ट नक्षण नहीं दिया है किंतु वक्तिकारक अनुमात्र शोभाधायकत्व की ही अलङ्कारत्व मानते प्रतीत होते हैं इन्होंने अलङ्कार और अलङ्कार्य के सम्बन्ध की चर्चा की है ।^४

भोज ने भी अलङ्कार का स्पष्ट नक्षण नहीं दिया है । रत्नेश्वर के शब्दों में कुछ संस्कृत अवश्य मिलता है मदिग्र्य व अलङ्कारत्व की मिथि क प्रमत्त ग म उमन निखा है—जहा कवि का तात्पर्य सदह म ही हो वहा मदिग्र्य भी रञ्जक हात म अलङ्कार पद पर आरुड हा जाता है । अन्वे अनुसार रञ्जकत्व म अलङ्कारत्व ही अलङ्कार का सामान्य स्वरूप वैठता है ।^५ अथ अन्वप्राम का अलङ्कार मानन का कारण वद की छाया वताया है ।^६ आनन्दवधन एव कु तक न छाया शब्द का प्रयोग शामा या चमत्कारक अथ म किया है अत उनकी दष्टि म वध का चमत्कारक घम ही अलङ्कार सिद्ध हाता है पुन अर्थान्तरकार का स्वरूप वतान हुए अथ की शोभा के साधक

१ काद० २ १

२ नामूव० ३ १ १०

३ वजी १ १०

४ परम्परमकल्पसाक्षिता रमाद्यभिष्यक्ति-अनुगुणचन वदो-कर्पा वर्णान्मि ममु दायवा शोभानिशयहेतुवेन काव्ये क्षिप्यमाणा अनुप्रासशब्देनावर्धनाभि धायते
—का० सं०स० ५०, २५४

५ तन्वेनमधसामर्थ्यविवयेन वयर्वेनावित पुनरुक्ताभाममत्र काव्यमलकाय निदिष्टम । पुनरुक्तावदाभासमान च पद तस्यालङ्कार ।

—वही प० २५१

यदा तु सदृश एव तात्पर्यमवधायत तदा स एव रञ्जकतयालङ्कार मारात्ताति कथन गणीभाव इति ।
—रद० प० १३०

६ पूर्वजानि प्रतिविम्बनन वधच्छामाथकृतयाऽनुप्रासाऽलङ्कारपदवी मध्यास्त । न च निर्निमित्तमव प्रतिविम्बनमन आह-नातिदूरानरस्थिता इति ।
—वही २२८

या चमत्कार को अलङ्कार कहा है। इस प्रयुक्त पद-समुदाय का यही निष्कप निकलना है कि चमत्कार का आधायक तत्त्व ही अलङ्कार होना है। वाच्य में वक्रता का आधान ही चमत्कार है और वही अलङ्कार है। इस प्रकार अलङ्कार्यतेजन इस व्युत्पत्ति से शोभाऽऽप्यक और वक्राक्ति, वक्रता, शोभा और चमत्कार को अलङ्कार मानने पर "अलङ्करणम् अलङ्कार" यह भावार्थिवा व्युत्पत्ति ही सिद्ध होनी है।

अलङ्कारों को काव्य का बाह्य धर्म मानने वाले रमवादिवा के अनुसार भी द्वार कटक आदि के समान रस के उपस्कारक धर्म अलङ्कार मान गये हैं। उपस्करण शब्द और अथ म चमत्कार में आधान से ही संभव है। अतः उनकी दृष्टि में शब्द और अथ के माध्यम से रस प्रतीति में सहायक धर्म अलङ्कार सिद्ध होते हैं।

शोभाकर चमत्कार की चर्चा न करता हुआ काव्य के अवबोध रूप धर्म-विशेष को अलङ्कार मानता है। संभवतः अलङ्कारों का इतना महत्त्व किसी भी आचार्य ने नहीं दिया है। क्योंकि स्वाभाविक या कवि के उक्ति-प्रकार विशेष से उत्पन्न होने वाले शान्ति रूप शब्द और अथगत धर्म का जब अलङ्कार स्वीकार करने से वह काव्य का अनिवाय्य धर्म ही माना जाता है। इस पर अनुसार क्योंकि शब्द और अथ काव्य के धटक तत्त्व सिद्ध होते हैं शब्दा-लङ्कार के द्वारा शब्द रूप काव्य का बाध अलङ्कारत्व होगा और जब का बोध रूप धर्म अलङ्कार होगा। वस्तुतः शोभाकर का लक्षण अपुष्टत्व दोष से दूषित है। क्योंकि जो लक्षण उसने दिया है, उसके अनुसार तो शब्दाथ-युगलात्मक बोध भी कृति काव्य ही जायेगी और चमत्कारी अथवा अचमत्कारी कोई भी बात अलङ्कार बन जायेगी। यदि कहें कि काव्य रूप मन्त्रा से ही उस का अमान्यत्व स्वतः सिद्ध है तो पहल काव्य का जो स्वरूप अलङ्कार को अभिमत है उसका निरूपण करना चाहिए। केवल मानव कहने मात्र से तो मानव से किसी को अपेक्षित धर्मों का बाध नहीं हो जाता। उसके द्विपद और शृङ्गपुच्छादि-रहितत्व का ही बोध होगा। अगर कहें कि अन्य शब्दकर्मों से पहले काव्य का स्वरूप निर्धारित किया हुआ है, उसकी

१ प्रथमप्रतिभातपदाथप्रतिनिधिपदार्थान्तरासंभवे मुकुमारतरापूर्वसम्पणनेन

नामपि नाव्यच्छायासुमीलयति कचय ।

—वजी०, १२

तथा—मुटया महाकविगिरामलङ् कृति-भूतामपि ।

प्रतीयमानच्छायैवा भूपा लज्जेव यापिताम ॥ छव० ३, ३७

आवश्यकता नहीं तो उहोंने तो अलङ्कारों का भी विवेचन किया हुआ है। तब तो ग्रन्थ का ही पौनःपुन्य ब मित्त होगा।

अन्तु, अथप्र ज्ञानाकर ने चमत्काराद्यायकता को अलङ्कार का धर्म स्वीकार किया है।^१ अन्तुत शोभाकर को अभिमत अलङ्कार का स्वरूप वाक्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ को ऐसा विशिष्टरूप प्रदान करना है जिसमें वाक्य की स्फुट प्रतीति पाठक या श्रोता को हा जाय। विशिष्टरूप प्रदान करना उसमें चमत्कार का जाधान कर देना है। उम चमत्कार क प्रताप से वाक्य का उत्कृष्ट रूप वा कवि का आशय भागमान हो जाता है। इन शब्दों से यह स्पष्ट प्रतीत हा जाता है कि अलङ्कार का प्रयोजन शब्द और अर्थ के माध्यम से वक्ष्यतया अभीष्ट पदाथ का प्रत्यय कराना है। वाक्याथ का प्रत्यय प्रतिभान के रूप में होता है जा कि अन्तु का साक्षात्कार है। कवि और सामाजिक के साधारणीकरण का यही परिणाम होता है कि समाधि क कवि ने जिस अर्थ का साक्षात्कार किया, उम हा सामाजिक भी रहे। अलङ्कार उम साक्षात्कार का साधन अथवा स्वयं साक्षात्कार रूप हुआ। क्योंकि प्रतीति का ही यदि अलङ्कार मानत है तो साधारण अलङ्कार एव चमत्कार में कोई अन्तर नहीं रह जाता।^२

साहित्यसुधामिन्धुकार क अलङ्कार-लक्षण में वामन और भाज के विचारों का प्रभाव लीखता ह।^३ क्योंकि इसमें भी गुणा का अलङ्कारों में अधिक महत्त्व दिया गया है।

आश्चर्य यह है कि अण्यदीशिन ने अलङ्कारवादी होत हुए भी अलङ्कार का सामान्य लक्षण न दकर चित्र का ही स्वरूप-प्रतिपादन किया है।^४ वे खड्गवधादि शब्दों के स्थान पर अर्थालङ्कारों को ही वास्तविक चित्र वाक्य मानते हैं। दूसरी बात यह है कि चित्र शब्द विलक्षण या असामान्य को भी कहते ह और प्रतिवृत्ति का भी। प्रतिवृत्ति उत्तम यही समझी जाती है जिसमें

१ मम्मामवत्र वाक्यस्य अन्तुत रवि-प्रतिपादनया वा मभयो वरिचत् प्रतीतिरूपा धर्मविशेष शब्दशक्तौऽथगतौ बालकपद्मना वाच्य। अर० २

२ तत्र रुढाया प्रयोजनरूपव्यङ्ग्यार्थाभावादभिधावद् वैचित्र्य-धारता-विरहान गहृदयहृदयाह् दादकारितया रम-गरिषोपकत्वमित्त बालकारता।

—वही, पृ० ३२

३ द्र० टि० २०

४ यद अत्यङ्ग्यमणि चाह तच्चित्रम।

—चिमी०, पृ० २७

चित्रित पदार्थ सजीव प्रतीत हो। इसीलिये चित्र में दृष्टियों और मुद्राओं का विधान किया गया है। चित्र काव्य में सजीवता आती है चित्रित विषय के प्रत्यक्षकल्प होने से। तभी तो वह अलौकिकमान्य होगा। चाहे यन्त्र या कल की सहायता से ही सही, पर जो खिलौने सचेष्ट होने हे, वे ही आवश्यक होते हे, दूसरे मिट्टी के खिलौने नहीं। अतः काव्य के शब्द व्यापारजन्य होने हुए भी उस में वर्णित पदार्थ प्रत्यक्षकल्प प्रतीत होत है। यह अलङ्कारो का ही प्रमाण है। रस-भावोदि भ व्यङ्ग्य या अङ्गुष्प में अलङ्कारो की योजना का सर्वथा परिहार दमोचित नहीं किया गया है।

जगन्नाथ का अलङ्कारलक्षण 'मुन्दरत्वे मत्पुष्कारकत्वमलङ्कार-सामान्यलक्षणम्' (सप्तप्रान्यवादी परम्परा) के अनुसार ही है।^१

अलङ्कार का प्राण भी चमत्कार ही है जो कि वस्तुवस्तु या धनता के कारण उगम आता है, चाहे वह वक्ता शब्द-विन्यास में हो अथवा भाव-प्रकाशन में। यह अलङ्कारसामान्य के परिष्कृतलक्षण में जा वरानन्द ने दिया है, स्पष्ट हो जाता है। जैसे—

रमादिभिल्ल-व्यङ्ग्यभिन्नत्व मति शब्दाधायतर-निष्ठा या विषयिता-सम्बन्धायच्छिन्ना चमत्कृतिजनन तावच्छेदरत्नम् ।^२

इस में अनुप्रास रस वस्तुगत-व्यङ्ग्यता के अनिश्चित जो चमत्कार जनन के साधन हैं वे अलङ्कार कहलाते हैं। इसमें गुणीभूत व्यङ्ग्य के वे प्रकार जिन में व्यङ्ग्य का स्पष्ट होने पर भी जटिल चमत्कार न हो, अलङ्कार की कोटि में आ जाते हैं। अनुप्रास जादि शब्दानुकारों में चमत्कार की अनुभूति उत्पन्न कराने वाले शब्दों का ज्ञान होने में अलङ्कारव धम रहता है। अर्थात् अलङ्कारों में चमत्कारजनक अर्थ का ज्ञान होने में चमत्कार का बोध होने का कारण अलङ्कारत्व रहता है।^३ काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ में उद के ज्ञान में चमत्कारोत्पादकता विषय अथवा विशेषण के रूप में रहती है।

१ द्र० अ० ६ दि० १ ५

२ रग० पृ ३१५

३ चिमी० टी० पृ० ४१

४ तु० तादृगव्यङ्ग्यत्वे मति शब्दविषयकगुणात्कारचमत्कृतिविशेष-
वत्त्वमाद्यम् (शब्दचित्रम्) । अर्थोपयोगिगुणात्कारचमत्कारवत्त्वे मति
तादृगव्यङ्ग्यत्व द्वितीयम् । उभयविषयकगुणात्कारचमत्कृतिमन्वे
मति तादृगव्यङ्ग्यत्व तृतीयम् । —वही पृ० ३५

वैद्यनाथ पायगुण्डन भी यही धरानन्द-वृत्त अनङ्कार-लक्षण देते हैं^१।

अलङ्कारों की चमत्कारकता मसृष्ट साहित्य में ही नहीं, अन्य भाषाओं के साहित्य में भी स्वीकृत है। पश्चिमी साहित्य में उग्रता और रूप-रस का महत्त्व विम्बनिर्माण के रूप में सर्वत्र स्वीकृत है। मानवीकरण और विशेषणविषयय अनिगद्यक्ति (Hyperbole) मद्दश अलङ्कार अंग्रेजी साहित्य में माय अलङ्कार हैं। हिन्दी साहित्य में तो इन विषय पर विपुल साहित्य है। आधुनिक समाशाशास्त्र में अनेक कारनिपक्षक विवचन बनी मात्रा में मिलता है। रीत-कालीन काव्य के अतिरिक्त आधुनिक विचारकों ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त अध्ययन किया है। प्रत्युत अनेक कारणों के जन्म में मूल प्रवृत्ति पर भाषा उन्हीं गहराई में विचार किया है। मनाविज्ञान की दृष्टि में अनङ्कारों का अध्ययन सूक्ष्म चिन्तन की प्रवृत्ति का द्योतक है^२। इन विद्वानों की अलङ्कार विषयक अध्ययन का यह मौलिक दान है।

अलङ्कार और काव्यविम्ब

यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि भाषा भाषा की अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा शब्दमय ही होती है। यद्यपि इतिहास विज्ञान गणित तथा गणित मय व शब्दात्मिका भाषा का ही प्रयोग होता है तथापि अनङ्कारों या चित्रमय भाषा का प्रयोग काव्य में ही होता है। उनका प्रयोजन यही है कि चमत्कार का उत्पादन करके वाचक विषय का मूल रूप दिया जाय। भाषा शब्दात्मिका होती है और शब्द का एक पक्ष ध्वनिमय है। श्रवणन्द्रिय में जब शब्द का प्रत्यक्ष होता है तो एक नादान्मक बाध होता है, दूसरा भाषात्मक। क्या-पि पहला बाध नाद के द्वारा श्रवणन्द्रिय के माध्यम में हृत्तन्त्री का झटका होता है दूसरा शब्द के भावात्मक पक्ष में अर्थवाचक के द्वारा बुद्धि और हृदय चेतना का प्रभावित करना है। अर्थ का बोध बुद्धि में होता है। वह चिन्तन और पर्यालोचन का विषय है। नाद का प्रभाव अत्यकालिक होता है, भावात्मक का चिरस्थायी। इमोलिप काव्य के अर्थ को विशेष महत्त्व दिया जाता है शब्द की तुलना में^३

१ कवल० पृ० २

२ इस दिशा में डा० नगन्द्र और उनका पश्चात् डा० आमप्रकाश शान्ती का काव्य उल्लेखनीय है।

३ तु० याज्ञिक सहृदयश्लाघ्य काव्यात्मनि व्यवस्थित ।

वाच्य प्रतीयमानाख्यो तस्य भदावुभौ स्मृतौ ॥

—ध्वन्या०, १, २

काव्य में भी तभी चमत्कार का अनुभव होता है जब कि पाठक या श्रोता नय या माक्षत् अनुभव करे। शब्द अपने अर्थ का बोध का विषय बना सके, इस लिये अलङ्कार का प्रयोग किया जाता है। कुछ विद्वान् अलङ्कारों का काम भावा का उद्दीप्त करना मानते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि हमारी प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया का मूल मनाभाव है। उनके प्रभाव से भाषा या स्वरूप भी परिवर्तित होना रहता है। जैसे अकरमात कोई वस्तु ऊपर में गिरने पर या सहसा कोई भड़कट या पड़ने में जीव भावावेश में एक अन्यत्र भी छवि मुख में निकलना है, इसी प्रकार भावोद्दीपन की अवस्था में वक्ता सामान्यतर भाषा का प्रयोग करता है। वही सामान्यतर भाषा आलङ्कारिक अथवा प्रतीकान्तर कही जाती है। उस स्थिति में काव्य-विम्बा का निर्माण होता है। इसलिये अलङ्कारों का सम्बन्ध मनोभावा एव कल्पना से जोड़ा जाता है^१।

अलङ्कारों में चमत्कारिता का नियम वस्त्रा अधक्षित होती है।^२ परन्तु बिना इस प्रकार की वक्रता ही भावप्रकाशन होता है और चमत्कार की मात्रा उसमें बनी रहती है, इस प्रकार के उक्तिविशेष का स्वभावोक्ति कहा गया है। उष्णी द्वारा वाङ्मय का वक्राक्ति और स्वभावोक्ति इन दो श्रेणियों में विभक्त किये जाने का यही आधार है।

वक्रता का सादृश्य अलङ्कार का सम्बन्ध जानने पर भी काव्य के वादात्मक और भावात्मक दोनों पक्ष दृष्टि में रखे गये हैं। भावात्मक रूप विवक्षित विषय का प्रकाशन में वक्रता का आधान करना है या वादात्मक श्रवणोद्दीप्य में उसे बोध योग्य बनाता है। इसमें हृदयावजन की सामर्थ्य पर विशेष धन दिया जाता है। सुकुमारभाषा के प्रकाशन के लिये समृद्ध वाच्य एव आनन्दी भाषा की अभिव्यक्ति के लिये अटिल बन्ध उपयुक्त रहता है। रचनीचिन्त्य एव बन्धीचिन्त्य का मान्य यह ही है कि विषय वस्त्रा और भाव का अनुसूय माधुय एव ओज की अभिव्यक्ति है। ममणता से केवल भाषा ही सुकुमारता नहीं, अपितु वक्ता के कण्ठ का माधुय भी अनुभूत होता है और वह भावावबोध में सहायक होता है। अटिलता से भाव के उद्दीप्त एव आनन्दी रूप, वक्रता का कण्ठ ही सम्भीरता

१ कु० ५१० ओमप्रकाश शास्त्री — रीतिकालीन अलङ्कार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन । पृ० ४७२

२ वाक्यस्व वक्रभावोऽयं भिद्यते प सत्सदा ।

यत्रालङ्कारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भवित्वात् ॥

—वर्जी०, १, २०

तथा भाषा०, १, ३६, वाद०, २, ३६३

सभी का अनुभव होता है । इसका वैपरीत्य के कारण ही दुर्योधन ने युधिष्ठिर के शान्ति प्रिय सन्निवचनो का "नारीमूढानि वचनानि" कह कर उपहाम किया था ।

शब्द के दौढ़िक एवं नादान्मक उभयविप्र रूप की ही भांति अक्षर-कारो के भी दोनो रूप हैं । उनमें नादान्मक रूप अनुकृति और सङ्गीत-भाषा और भाव का सामञ्जस्य आन्ममात् किये हैं । कवि नादान्मक अक्षर-कारा में वचना के कण्ठस्वर व भाव की सुकुमागता या ओजस्वी रूप की अनुकृति करता है । इसके अभाव में अक्षर-कार-प्रयोग निष्प्रयोजन ही होगा ।

नादान्मक अक्षर-कारा में अनुप्रास प्रमुख है । उस में नामायन अथ पर ध्यान नहीं दिया जाता यद्यपि चन्द्रानोककार ने अर्थानुप्रास की स्वीकृति में अनुप्रास का अथ के साथ सम्बन्ध सूचित किया है । यह अनुप्रास वर्णों या वर्णों की क्रम में या बिनाक्रम में एक बार जयवा जनेन बार आवृत्ति करके नादानु-कृति के निये प्रयुक्त होता है । जैसे—अणस्रणन् किला—रा, टट्टकार, हुट्टकार रणित धमद् धमद् आदि । अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की नादानुकृति की अरनामेटोपिया (Onomatopoeia) ही मजा दी गई है । याम्क ने शब्दानुकृति में "काक" सदृश शब्दों की चर्चा की है परन्तु उसका अनुप्रास या काव्यविश्व में कोई सम्बन्ध नहीं है ।

आचार्यों ने अनुप्रास के पाच भेद गिनाये हैं—

१ छेकानुप्रास, २ श्रुति, ३ वृत्ति, ४ अन्य, ५ लाट । अन्तिम पदानु-प्रास भी कहा जाता है । जयदेव ने इनमें स्पृष्टानुप्रास और अर्थानुप्रास और जोड़े हैं । भोजन तो इनका मजा बहुत बढ़ा दी है । कुछ के नाम बदले हैं तो कुछ नये हैं । जैसे श्रुति और वृत्ति तो प्राचीना द्वारा ही स्वीकृत हैं । वर्णानुप्रास वृत्त्यनुप्रास ही है ।* भोजन द्वारा निदिष्ट पदानुप्रास लाट में पृथक् है । इसमें अथ का विचार जिस विना पद या पदान की आवृत्ति होती है । लाट

१ भास इलवाक्य १. १३

२ उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इत्यने ।

—चन्द्रा०, ५, ६

३ "काक" इति शब्दानुकृति । तदिदं शकुनिषु बहुरम् । नि०, ६, १८

४ अथ वर्णानुप्रासाद् वृत्त्यनुप्रास इत्यथ ।

—रद०, पृ० २३८

५ समग्रमसमग्र वा यन्मिन्नावर्तत पदम् ।

पदाश्रयेण न प्रायः पदानुप्रास ॥

—सक०, २, ६३

अथ का अभेद रहता है। नामद्विचरयनुप्रास में नात्पय-भेद से शब्द को दोहराया जाता है।^१

छेकानुप्रास कुछ लोगों के अनुसार पक्षियों के शब्द का अनुकरण करने के कारण इस नाम से पुकारा जाता है।^२ इसमें नादानुहृति का भाव समाहृत हान में यह पक्ष से महत्वपूर्ण है। यह नादानुहृति दो प्रकार में होती है—
१ शब्द का अनुकरण। २ ध्वनियों का अनुकरण। पहला वण-समुदाय के द्वारा होता है ता दूगग बिखरी ध्वनियाँ से। पहले का गुंर उदाहरण गिम्ब-लिखित पद्य है—

जपत्पदभ्रविभ्रमद्भुजङ्गम-स्फुरद्-

धगद्-धगद्-विनिर्गमत्करालभालहृद्यवाट् ।

धिमिद्-धिमिद्ध्वन-मृदङ्ग-गुट्ट-गमङ्ग-गल-

ध्वनिक्रम प्रवर्तितप्रचण्डताण्डव शिव ॥^३

इसमें 'जमद्-धगद्' इस ध्वनि-समूह से धधकनी वाचनात्मि का नादानु-करण करते उनका विम्ब प्रस्तुत करता है। 'ज्वलकरालभालहृद्यवाट' उस अग्नि के स्वरूप का मूत करके उसका प्रभाव स्थायी कर देता है। उनराद्ध ग 'धिर्भिर्धिमि' इन वर्णों की आवृत्ति मृदङ्ग की ध्वनि का अनुकरण है। 'मृदङ्गगुट्ट-गमङ्ग-गल' में ध्व 'प्रचण्डताण्डव' में तत्प और उनमें बजते घुघराते शब्द का अनुकरण है। वृत्त भिन्नान्न साग वातावरण मूत हो जाता है।

यद्यपि छेक में वर्णावृत्ति एक बार ही कही गई है तथापि कहीं दो बार भी हो जाती है। इसी प्रकार—

मद मात्ततरललहरीश्वेलितरभिर्हन्ति तीरम,

छप् छपा छप् ध्वनिमूदार भूयसा ध्वनतीह नीरम् ।

मान-रोध-मात-समकाल बलितमृदुक्कलकल,

जलतरङ्गे बादिते मृदुमूलेनेषोच्चरति रे ॥^४

अमृत धारा बहति रे ।

१ स्वभावतश्च गौण्याच्च बीप्याऽऽभीष्ट्यादिनिश्चय सा ।

ताम्ना द्विरुक्तिभिर्वाक्य तदनुप्रास उच्यते ॥

—सक० २१६

२ छेकाश्चालयस्था पक्षिणन्त्या हि प्रायजो द्विर्भाषित भवति ।

—अर०, पृ० ३

३ शिता० स्तो० १० (वह० स्तो० १०, प० १५०)

४ अगमो० ३६

इन ध्वनियों में 'छपछपाछप्' यह रतील तट के लहरा के जाघात म टूट कर पानी में गिरन म होनी छ्वनि वा अनुकरण है। जन की लहरिया क मधुर शब्द का अनुकरण काल 'कवित ककलै' इन ध्वनिया म हाना है। जलतरङ्ग व्रजान म प्यादा का छ्वनि इमी प्रकार की ज्ञानी है। इस प्रकार इन छ्वनिया म नदी की लहरा एव जनतरङ्ग की छ्वनिया का मिश्र श्रव्य विम्ब प्रस्तुत होना है। मायुर्य गुण क मात्र सामञ्जस्य आगन्धानुभूति नी करता है।

ध्वनिचित्र का दूसरा प्रकार विखरी छ्वनिया म बनता है। उसका एक उदाहरण भारवि क पद्य म दिया जा चुका है।^१ अन्य कालिदास का निम्न पद्य है—

जोमूतस्तनितविशङ्किभिमयूरैरदश्रीर्वरनुरसितस्य पुष्करस्य ।

निर्हादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्या भायूरी मदयति भाजनं मनाति ॥^२

इसम निर्हादिन्युप० इतना अश मृदङ्ग की तानका और 'मा' म' मा म य ध्वनिया म मङ्ग की गमन का नादानुकरण प्रस्तुत करती हैं। इस क्रिय यह भी ज्ञानी ध्वनि चित्र है। भाजन इस प्रकार की ध्वनिया के द्वारा वष्य विषय का व्यञ्जित करने क कारण इस अनुवाद ध्वनि की मजा दी है। इसका उदाहरण—

शिलरणि ध्वनु नाम किचिच्चर किमभिधानभसावकरोत् तप ।

तरुणि येन तवाधर-पादत्त दशति विम्बकल शुक्-शावक ॥^३

इसम दशति दानिभा का विम्ब प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार प्रियतम प्रियतमा क अधर का दशमात्र करना है उस काटकर चवा नहीं लेना इमी प्रकार ताना भा विम्ब फल उस जग जग खल कर खाता है।

भाजन ध्वनि क प्रतिशब्द और अनुवाद का प्रकार गिनाय हैं। इनम प्रतिशब्द ध्वनि ना वाच्यमात्र म गुण की प्रतिध्वनि की भाँति पृथक् अथ का वाच्य कराता है जमा कि ऊपर उदाहृत पद्य म है। अनुवाद ध्वनि का उदाहरण उमम भक्ति-प्रह्लाद दात जादि पद्य दिया है जिसम कमल-मुकुल क विकास

१ द्र० अ० २ टि० ६१

२ मात्रवि० १ २१

३ एनच्च काव्यतालवदविच्छिन्नमव ध्वनन्ननुनादरूप प्रतीयत इत्यनुनाद-ध्वनि ।

के समय की 'चटचटा' ध्वनि का अनुकरण किया गया है।^१ इसका एक सुन्दर उदाहरण भोज ने ही उद्धृत किया है—

चटच्चटिति क्षमणि च्चिमिति चोचटलच्छोणिते
धगद्धगिति मेदसि स्फुट रचोऽस्त्रियषुष्टागिति ।
पुनातु भवतो हरेरमरवेरि-राजोरसि-
व्यणस्करज-पञ्जरकञ्च-कापजमानल ॥^२

इस पद्य में तमिऴ द्वारा किये गये हिरण्यकीर्णों के बज के समय उमरी खाल उबोड़ने में होने वाली चट-चट की ध्वनि का अनुकरण 'चट-चट' में किया है, छन व छनवन का गठानुकरण 'चिम' छन इन ध्वनियों से, चर्बी के उमड़ कर निव्वलन का अनुकरण 'धगद्-ग्' इन ध्वनियों में व हड्डी टूटने का अनुकरण 'म्डान' इस ध्वनि में किया गया है। इस प्रकार नादानुकृति के द्वारा किया जा विषय बतला है।

श्रुति अनुप्रास—श्रुति अनुप्रास में समस्थानीय वर्णों की आवृत्ति होती है।^३ इसमें प्रागुय अर्धव होता है। वग के अन्तिम वर्ण का प्रथम या तृतीय क कभी-कभी द्वितीय क साथ मयाग उस माधुय में वृद्धि कर देता है। यह भी नादानुकृति के द्वारा ध्वनि-चित्र के निर्माण में सहायक होता है। जैसे प्राङ्गणे रिङ्गन्' इतन जग म 'र' और 'ग' समान श्रुति वाली ध्वनियाँ हैं जो कि बच्चे

१ शब्द-ध्वनिरपि द्विजा-अनुनाद रूप प्रतिशब्दरूपश्च । प्रतिशब्द ध्वन
भ्वरूप तु य पुनरभिधीयमानवाक्यार्थान् पृथगभूत इव गुहादि प्रति-शब्द-
रूपम अर्थान्तर प्रयायमन प्रनिध्वनति म प्रतिशब्द ध्वनि । अनुवाचरूपा
यथा—

भक्तिप्रह्लाद दातु मुकुतपुटकुटीकोटरकोडनीना
लक्ष्मीमाकण्डुवामा इव कमलवनोद्घाटन कुवने य ।
लालाकाराधकाराऽऽनन-मत्तित-जगत्माध्वमध्वमकल्या
कापाण व क्रियायु कियानमहचपस्तस्करा भास्कररूप ॥

अत्र मुकुल पुट कुटी काटर कोडनीना' इति विशेषणे कमलमुकुलाद्घाटन
चटचटाध्व यनकारमिव प्रस्नुवति अर्थेन चाद्घाटनयाम्यता द्योतकरवरण
मह्वस्तु सूचयति ।

—सू००

२ वही, १, २०

३ उच्चार्थवाचकन स्थान तातु रदादिके ।

सादृश्य व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥

—साद०, १०, ५

के आगम मे घुटना के बल रोगन का अनुकरण प्रस्तुत करती हैं । इस अनुप्रास की विशेषता यह है कि वणावति उद्बेजक नही हानी । जैसे—

राजाधिराजश्चरित तवीय विज्ञाप सर्वं दन्तितात्तरात्मा ।
सर्वाधिकार लघु शासनस्य ततोऽधिजग्राह क्वाभिभूत ॥^१

इसमे ज श च य ज † य ध्वनिया तान्त्र हैं तो त त दी० स दलितान्त य मभा ऽय ध्वनिया है । अधिकार म धि और धिजग्राह म नी धि चतुर्थ एव मन्त्राण ध्वनि है । पूर्वार्ध की ध्वनिया राजाधिराज क हृदय की भावकता का अभिव्यञ्जित करती है ता उत्तरार्ध का ध्वनिया राय क कारण उत्पन्न उग्रता का अनुकरण ऽन्ता † और ऽन्ता का भाव विम्ब वचन म सन्तक है । इसा प्रकार—

निरस्त-दुरहं कृतिनतशिरा विवर्णाननो
निरीक्ष्य स महात्मन पद्मयुग ययाचे क्षमाभ ।
यतिस्तु चकितोऽब्रवीद विनयतस्तमुत्थापयन्
सख वपलज कय स्पृगमि नैप धम म्भूत ॥^२

इसमे नि मू तदु निनत्र नना नि म न द य मारा ध्वनिया दाय है ग्याच म नाना ध्वनिया तान्त्र † । शमाम म माम इतन वश म जाष्ठपवग का अति म वण आनुनासिकर ज्ञान म क्षमा गचना म मा क्षमत्व का ध्वनि-अनकृत प्रस्तुत ऽन्ता है ।

इसमे उद्देशाण गज्वरा † की भाति ध्वनि । का आवृत्ति का उग्र रूप नही हाना । वह वणकट हा जान म श्रुट मारादि कामन रमा की अनुभूति म बाधक हाना है । इसा निय आन्त्रवधन न टन् मारादि म उम वजित किया है ।^४ उमका हेतु यथा है कि आश्यामिक कवि प्रयत्न-पूर्वक अनुप्रास तान म दत्त चित्त होकर रस परिष्कार म अपना ध्यान बटा नना है । श्राना का भा ध्यान पद-अन्त कार तक सीमित ऽन् कर शम भाव तत्र नहा पहुँच पाना । परन्तु जहाँ ध्वनि और भाव का सामन्म्य हो वहा अनप्रास आपत्तिजनक नहा हाना । जैसे उपयक्त पद्या ॥

१ पणपदि ज्ञा— नपालमाम्राज्यान्व—११ १३

२ क्षमाराव पण्डिता— नकाराम परित ६ १७

३ साद०, १०, १७६

४ श्रुट मारम्याडि मनो यत्नादकरूपमनुबधवान ।

सर्वेष्वद प्रभेदेषु नानुप्रास प्रकाशक ॥

वृत्त्यानुप्रास—वृत्ति अनुप्रास में एक या अनेक ध्वनियों की अनेक बार आवृत्ति होती है। जैसे—'काकरीकलकलै' यहाँ 'क' और 'ल' की अनेक बार आवृत्ति है। अथवा—

मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसुतनुद्धि-समेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुर् मधुध्वनिभृता निभृताक्षरमुञ्जगे ॥^१

माघ के इस पद्य में मकार और प्रकार की निरन्तर आवृत्ति वसन्त के मादक वातावरण की ध्वनि से व्यञ्जना करती है।

अल्पानुप्रास—अल्पानुप्रास संस्कृत साहित्य में बहुत कम मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि इसमें अनुप्रास कविता का ही अधिक प्रचलन था। सनय पढ़ने कविराज विजयनाथ ने ही इसकी परिभाषा की है। वास्तव में पद्य में नाद-प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह विशेष उपयोगी है। क्योंकि उसकी गूज देर तक रहती है। हिन्दी, उर्दू में इस तुक और अंग्रेजी में राइम (Rhyme S beme) उल्लेख है। अने ही पढ़ने आचार्यों ने इसको स्वीकार न किया हो पर कवियां न जान अनजान इसका प्रयोग किया हैं। मानिनी में तो इसका विशेष चमत्कार होता है

इति धिरचितवान्निर्बन्दि-पुनर् कुमार

सपदि विगत निद्रस्तल्पमुञ्जाञ्चकार ॥^२

कानिदास के इस पद्य में 'आर' आर य अल्पानुप्रास निस्सन्देह मीन का प्रभाव उत्पन्न करती है। अक्षर के विस्तार में सहसा उठने का अनुकरण उच्चारण क्रिया की इन ध्वनियों से किया है। 'कुमार' में आरम्भ होकर 'चकार पर समाप्त यह ध्वनि की सद्भार क्रिया-सातन्त्र ही सूचित करती है। आधुनिक कवियां ने इस अनुप्रास का प्रयोग प्रयोग किया है। जैसे रमाकान्त शक्य की—

जाह्नवी चन्द्रभागाजलं पावित भानुजातमदाशीचिभिर्ललितम् ।

तुङ्गभद्रा विषाशादिभिर्भावित भूतले भाति मे नारत भारतम् ॥

विध्य-सह्याद्रि-मलयोद्रि-मालान्वित शुभ्रहेमाद्रिहासप्रभापूरितम् ।

अर्बुदारावलीश्रेणिसम्पूजित भूतले भाति मेऽनारत भारतम् ॥^३

य पद्य कविता इस अल्पानुप्रास के कारण कवि की देशभक्ति-भावना की

१ शिव० ६, २०

२ रव० १०६

३ मे भारतम् (द्विवाणी-परिपन्-मार्कवा २१, ३, ८०) ३-४

हुआ अनुप्रास महत्व भी रखता है। जब कभी अनुकरण के लिए उसकी योजना होती है, वह भी उपयोगी ही मित्र होता है। जैसे—

पि पि प्रिय स-स स्वयं मु मु मुष्ठासव देहि मे
त त त्यज दु दु हत भ भ-भ-भाजन काञ्चनम् ।
इति स्खलित-जल्पित मदवशात् कुरङ्गीदृश
प्रगे हसित हेतवे महवरीभिरर्घ्ययत ॥ १

उस पद्य में मदिग व वग में हुँट मु री के म्बलित वचनों का अनुकरण अञ्जनवाच्य-मादृशयोक्ति के नाम में किया गया है। यह उसके म्बलित वचना का अनुकरण जो अनाराम ही मानुप्रास बन गया है, मदावस्था की म्बलित अनुभूति करता है।

यह अनुप्रासों का विवरण देना अभीष्ट न होकर वाच्यविम्ब में उनकी उन्नोहिता दिखाना ही प्रमत्तानुमन या, द्रव्य मोरदि से अंगमन मनी अनुप्रासों के रूप में ही दिखाने हैं। परन्तु उद्युक्त विवेचन इस बात की पुष्टि करता है कि उनकी प्रनायाम योजना काव्यार्थों से पूर्ण बनान में मर्स्या उपयुक्त ज्ञानी है।

लाटानुप्रास—यद्यपि वाच्य की समान अर्थ की म्बिति में भी आवृत्ति होने पर लाटानुप्रास अनेक बार बनता है।^१ इसमें कभी-कभी एक ही अक्षर के परिवर्तन म वाच्यार्थ का भाव बदल जाता है। इसलिए यह भी वाच्य-विम्ब में महायुक्त होता है। विशेषकर जब अर्थान्तर-भेद क्रमिनवाच्य-ध्वनि का मर्ग होता है। जैसे—

ताला जाअन्वि गुणा जाला ते सहिअर्णहि छेल्पति ।
रद-किरणानुगहिआई होति कमलाई कमलाई ॥^२

यह “कमलाई” की आवृत्ति ध्वनि के स्वर्ग के कारण समतारक बन गई है। जब द्वितीय “रमलाई” का अर्थ सौमन्ध्यादि-गमन्त” प्रतीत होता है और विरामकृत शोभा एव सुगन्ध का अनिश्चय आदि भाव ध्वनित होता है तो

१ शृपु०, २, प० २१

२ शब्दार्थयो पौनरुक्त्य भेदे तान्त्रयमात्रत । लाटानुप्रास इत्युक्त ।

विकसित अवस्था में कमल का भव्य रूप पाठक या श्रोता की अन्तर्दृष्टि के समक्ष उपस्थित हो जाता है। कभी-कभी पूर्ण वाक्य ही दोहराया जाता है। जैसे—

यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिन-दीधितिस्तस्य ।

यस्य च सविधे दयिता दव-दहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ॥^१

यहां केवल “न” और “च” का अन्तर है। पर शब्दों की समानता भव्य होने के माध्यम-साथ भाव को मूर्त बनाती है।

यमक—यम जुड़वाँ को कहते हैं। जैसे दो जुड़वे बच्चे (Twins) गरीर, प्राण एव अन्ती दैनिक चेष्टाओं में पध-होरर भी आकृति में एक प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार जब का भेद होने पर भी वर्षों समुद्र की आवृत्ति में दो शब्द एक प्रतीति होने हैं, तब यमक होता है।^२ वर्षों की अभिन्ना ज्ञानों के कारण उमता श्रुतिमुखद होना तो निश्चित ही है परन्तु अर्थभेद के हान में इनमें अर्थविचार आवश्यक है जाता है। अगदवधन में श्रुट शारादि रमों में इसकी योजना व्रजित की है। उनका कारण यही है कि इस अलङ्कार क अन्तर्क भेद यत्नमाध्य होते हैं। यदि उनकी योजना करने में नीन होकर रम-भाव आदि को भूल जाता है। दूसरी बात यह है कि उनमें बौद्धिक व्यापार अधि-व होने पर भी सार कुछ नहीं निचलता। कवन कवि के पाण्डित्य का ज्ञान अवश्य होता है। इसलिये उनमें वर्जन में कुछ औचित्य जरूरत है। परन्तु जहां वे अनायाम आ जाते हैं और अर्थ-बाध में कोई कठिनाई नहीं होती, वहां वर्जन में कोई औचित्य नहीं। क्योंकि ऐसे स्थल में नादमागुय ता रहता ही है साथ में शब्द-चित्रों की श्रुट-खला बनी रहती है, उनमें बहुविधता आ जाती है। हा, जितने अर्थ में आवृत्ति निरर्थक होगी वहां चमत्कार सम्भव नहीं है। नगन्नाथ के ‘वेनामन्द’ आदि पद्य में “तेनेहा” की आवृत्ति में यमक है।^३ अथवा प्र में कोई

१ साद०, पृ० १७६

२ सत्यर्थे पृथगर्थयिः स्वरव्यञ्जनमहते ।

क्रमेण तेनैवावृत्तिप्रभव विनिगद्यते ॥ —वही, ११, ८

३ ध्वन्यात्मभूते श्रुट-गारे यमकादि-निबन्धनम् ।

शरणादपि प्रमादित्वं विप्रतन्मो विशेषतः ॥ —ध्वन्या०, २, १५

४ वेनामन्दमन्देदलवरचित्ते द्विनायनायिपत्त ।

कृटजे खलु “तेनेहा तेने हा” मगुकरेण कथम् ॥ —भाषि०, १, ६

वाठिय प्रतीत नही हाता । पाठक को पहना पदमुगत (गन + ईग) सहित हाने स एक स्वर म पटना होमा और दूनरे म न को लम्ब एव ह जो सव एव विस्मय वाचक है तन्मतर करना गगा । इनम अगबोध और भाव-वाध भा हो गाएमा ।

वही यमन पदाग म ही होता है । जने—

मूढोका रसिता सिता समक्षिता स्फीत च पीत पय
स्वर्यातन मुधाऽप्यघ्रायि कतिघा रम्भाधर क्षण्डित ।
सय द्रूहि मदीयचित्त भवता नूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णत्यक्षरयोरय मधुरिमोदगार क्वचित्तलक्षित ॥

पणितराज ऋ षम पद्य म सिता मित्ता और अगिता क शिता म इतन अशा नः आवर्त्तिते । तनाय म वण भः हान पर भा कविया गो मिली मुविधा या छट वा लाभ उठाया गया है । कथादि म और ण का उच्चारण स्थान भिन हान पर भा उच्चारण म दृष्ट्या व्यत्यय हा जाया करता ह । कई प्रता क वोग ऋ ण और इमक विपरीत उच्चारण करन हैं । र और ङ ना ण ध्वनि म बदल गी जान है इमन जय बोध म दाघा नहा जाता इमोत्रिण मुजता जडनामवनाजन षम स्थता म यमक का हानि नही माली गः है एम मुगम यमना का वजन नहा है । कान्दिताम आदि कविया न इमानि ए स्वन पदात यमक प्रयाग विया है । वह भी मगया आदि क प्रसङ्ग म या युद्धयात्रा न वणन क अवसर पर अघया नगी । कुरुण आदि रमा म भा यन्ति र्वाभाविक रूप म यह अन्त कार आ जाए और भाव गी हत्या न करे ता वह वजनीन नही । जैन—

रिपवो रिपवो घनाश्रवस त्वयि जाते वमुधापरागिणि
जनता जनन्तापनत त्वया व्ययिताचत क इवाऽत्र विस्मय ॥^३

इम पद्य म रिपवा रिपवो जनता जतना वतन अश म यमक

१ गग० प० १३३

२ यमनादौ भवेईक्य इता ववोलरास्तथा । इयादि

—साद० १० प० २५०

३ शिवप्रसाद भारद्वाज—हा हन्त अपरोष्य भारत वज्रप्रहार ।

—विश्व० म० पवरी० १६६६ प० १२१

अलङ्कार आया है परन्तु यह अर्थ प्रतीत अथवा भावानुभूति में बाधन न होने में शब्दों के परिपाक में सहायक ही है।

वक्रोक्ति—शब्द-बुद्धि अथ व श्लोक्ति अलङ्कारमात्र रह जाती है। परन्तु उसमें चमत्कार श्लेष के द्वारा ही आता है। श्लेष में कयो-दा अर्थ साथ साथ जुड़े रहते हैं, जो एक-दूसरे के मस्तिष्क में नो दूसरा धाता के मस्तिष्क में रहता है। प्रत्युत श्रोता चतुर्वक्ष करान्दक दू-प्रथक ज्ञाने का लाभ उठाता है। इस-का चित्र बनत है— १ शब्द का मुनन पर स्वभावतः जो अर्थ प्रतीत होता है, उसका विम्ब २ बाधा द्वारा निगमये अर्थ का विम्ब। जैसे—

अहो केनेदृशी बद्धिर्दारुणा तव निमिता ॥

त्रिरणा श्रूयते बद्धिन तु दाहमयी वदन्ति ॥^१

यहाँ 'दारुण' शब्द का अर्थ निकरन है। १ दारुण का स्त्रीलिङ्ग शब्द २ काष्ठवाचक 'दार' शब्द का तर्कान्तर रूप करण अर्थ में। वक्रता का बभाष्य अर्थ पहला है ता श्रुता उसका उपरान्त - 'तव निग' 'दारुणा निमिता' का मिलाकर 'दारुमयी' अर्थ लेता है। पहला चित्र भावात्मक हागा तो दूसरा बाधक।

यहाँ यह आपत्ति हो सकती है कि जब (दार) काष्ठ-निमित्त बुद्धि जाती ही नहीं तो उसका चित्र बँस बन्गा। उत्तर यह है कि इस प्रकार की बुद्धि का अस्तित्व या स्वयं स्वीकृत किया गया है। परन्तु दार्शनिक पद्धति में वस्तु का निरूपण करन के लिये भावात्मक और अभावात्मक दोनों पक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। अभावात्मक या अस्तित्वात्मक का भी प्रोच हाता है। जैसे ब्रह्म के निरूपण में अस्ति और नास्ति की दानों ही प्रक्रिया अपनाई जाती है। पुन काव्य

१ श्लेष मवामु पुष्पाति प्रायो वक्रोक्तिपु श्रियम। —काद० २ ३६३

२ का० प्र० ५०, ९, ३५३ (उ०)

३ तु० अत्राच्यते द्वयी मविद वस्तुना नूतनादित।

एका समृष्टविषया तन्मात्र-विषयाऽपरा ॥

तन्मात्र-विषया वाऽपि द्वयी माय निगद्यते।

प्रतिप्रीगिन्यदृश्ये च दश्ये च प्रतिवागिति ॥

प्रकरण-परिचय ६, ३७-३८ सदस्य पृ० ४३० पर उद्धृत

४ अत्र-नेद म भवति। अमद् ब्रह्मति वेद वेत्।

अस्ति ब्रह्मोति चेद् अद नतमेन तता विदुरिति ॥

—नैस्ति० २, ६

जगत म नाक मे अक्षिप्तमान पदाथ वा भी बणन होता ही है । आहार्यं ज्ञान के निय कुछ भी अनुचित नहीं है ।

वनोक्ति का उत्तम उदाहरण मुद्राराक्षस की नाट्यी म भिन्नता ह जिसम शिव और पावती का सवाद है ।^१ इसी प्रकार वनाक्तिपञ्चाशिका इस प्रकार के पद्या का संग्रह है । प्रायः इस अनङ्कार का प्रयोग परिहास व निय किया जाता है । जैम नक्षत्री जीर पार्वती व परम्पर सवाद म ।^२

श्लेष —वाच्य म वनता मान का सर्वम प्रमुख साधन श्लेष ह । किसी समय श्रवण का प्रयाग रवियों के उत्कण्ठ का सूचक समझा जाता था । वनाक्ति मे उमका उपयोगिता का दखन हुए उसका बोध म जभद कर दिया गया था । कविगज न बडे गव व साथ सुबधु वाण और स्वय को ही वनाक्ति मार्ग म निपुण कहा था ।^३ य तीना ही कवि श्लेष व प्रयाग म दक्ष थे । वाण ने कादम्बरी म उज्जयिनी व नागरिकी का वनोक्ति म निपुण बतनाया है ।^४ यद्यपि इस प्रसङ्ग म उमका अर्थ वाक्पातुय दिया जा सकता है परन्तु वनाक्ति की कादम्बरी के प्रति उक्ति म कवि ने श्रवण का प्रयाग करके वनोक्ति-निपुण्य प्रदर्शित किया है ।^५ यह भी समभव है कि अनुराग-प्रकाशन का नायिक

- १ धन्या केय स्थिता न शिरसि शशिकन्ता किन्तु नार्भतदस्या
नार्भवास्यास्तदतत परिचितमपि त विस्मृत कस्य हतो ?
नारी पृच्छामि नेन्दु कथयतु विजया न प्रमाण यदीन्दु
देव्या निहोतुमिच्छारिति मुरसरित शाठ्यमव्याप विभोव ॥ मुर० १ १
- २ भिन्नार्थी स क्व यात ? सुतनु बलिमखे ताण्डव कथाद्य भद्रे ?
मन्धे वन्दावनात क्व नु स मृगशिङ्गु नैव जाने पराहम ।
वात कच्चिन दृष्टा त्ररठ वृषपतिर्गोप ग्वास्य वेत्ता
नाना-मलाप इध जलनिधि हिमवत्कथयोत्त्रापता न ॥

—कुवल० पृ० १६२३

- ३ सुवधुर्वाणभट्टाश्च कविराज इतित्रय ।
वनोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यत न वा ॥ — राघव पाण्डवीय० १ ४१
- ४ वनोक्ति निपुणेनाप्यायिकाप्यानपरिचय-चतुरेण विलासिजनेनाधिष्ठिता ।
—का०, पृ० १०२
- ५ देवि जानामि कामरति निमित्तीकृत्य प्रवृत्ताऽयमविचरमतापतन्त्रा व्याधि ।
सुतनु साय न तथा त्वामेव व्यथयति यथाऽहमां । इच्छामि दहदानेनापि
स्वस्थामत्रभवती कतुम । उत्कम्पिनीमनुत्सम्मानस्य कुसुमेपुपीडया पतिता-

की गहोनयो मे छिपा कर रखने के लिये ही उस प्रसङ्ग में श्लेष का प्रयोग किया हो। परन्तु सबादो ने सवत्र नहीं तो बहुधा वह श्लेष का प्रयोग करता रहता है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

श्लेष शिल्प धातु में बना है, जिसका अर्थ जुड़ना है^१ यद्यपि भास ने इसका अर्थ मन को अच्छा लगना भी किया है।^२ एक में अधिक अर्थों के जुड़ा रहने में इसे श्लेष कहते हैं।^३ मभवत मघात नामक लक्षण ही इसके मूल में है। क्योंकि उमका स्वरूप भी इसी प्रकार का है।^४ प्राचीन आचार्यों को अभिमत श्लेष गुण भी इसमें काम करता है। क्यानि उमका स्वरूप भी अनेक पदा का एक पद की भांति प्रतीत होना ही है।^५ यह बात दूसरी है कि उममें अर्थ-विचार न होकर केवल सप्रियो में वर्णों को परस्पर मित्रा कर रखने पर बन दिया जाता है। दण्डी का लक्षण तो बन्ध में गाढ़ता लाने वाला ही है जा कि सामान में भी मभव है। पर उममें सन्देह नहीं कि श्लेष अनुकार के मूल में लक्षण और गुण दोनों उसी प्रकार काम कर रहे ह जिन प्रकार काव्य के परिभाषि* रमजब्द के मूल में आम्वाद और ध्वनि।^६

श्लेष को सामान्य रूप में दो प्रकार का माना जाता है—समष्टय और

मवेभमाणस्य पततीव म हृदयम् । अनट गदे तनुभूवे तं भुजलने गढसताप-
तपा च दृष्ट्या वेहमि म्थलकमलिनीमिव रक्ननामग्गाम् ।

—का०, पृ० ३८८

१ शिल्प आनिट् गने धापा० ११८६ । तथा—ममाशिलपञ्जतु वाष्ठम् ।

—सिकौ०, पृ० २४५

२ गुणवान् खल्वयमानाप , अपरिक्तान्तु न शिलप्यते मे मनसि ।

—स्ववा० १

३ शिल्पटं पदैग्नेकार्याभिधान श्लेष इष्यते ।

—साद० १०, ११

४ यत्रात्परक्षरं चित्तैर्विचित्रमुपवप्यते ।

तमप्यक्षरमघात विचाललक्षण-ममितम् ॥

—तथा० १६ ७

५ श्लेषा विघटमानात्र घटमानत्व-वपनम् ।

स तु शाब्द सजातीयं शब्दैर्वै०२ मुख्यावह ॥

—जद्रा० ४, १

तथा—प्लेगरे बहूना गदानामेकपदत्वाभासनात्मा ॥ —साद० ८ पृ० २६६

६ शिल्पटमस्पृष्टशैथिल्यम् ।

—साद० १, ४३

७ रम्यते इति रम तथा शब्द प्राहुभवि इति शब्दा रमा पठ्यन्ते इति ।

—अभि० भा० १, पृ० २६५ २६१

अभङ्ग । इनका स्वल्प समान क विन जतु शब्दव्याय और एकनृतगत फलद्वययाय इन दोनों भाषा का प्रयुक्त किया जाता है । क्योंकि अभङ्ग म अनक पद मित्ता ए एम रत्न जान है कि एक ही शब्द मालूम दता है परन्तु अथ कर्म समय वे तात्पर्य पृथक् पर दिव्य जान है ।^१ जैम एत वत्त मज वनन म रद्द तरता की प्रयोग किया जाता है पर व एम जान जात है कि एक ही फल प्रतीत होता है । जैम—

जात काकीदरो वन द्रो धाऽपि कृष्णात्मना ।

पूतनामारणरथात् स मेऽस्तु शरण प्रभ ॥^२

अम पद्य म श्रावण और गम शब्दों का एक साथ प्रायणा की गद है । गम क प म काक - अत्र पूतनामा रणरथात् एग प्रकार पद जानना है । अस्तु श्रावण क प म साकाद पद भवतानक ज्ञान म ज्या का या हा रथा । एसी प्रकार उत्तरार्ध म पूतना + मारण + अत्र इस प्रकार विष्ट करक एक समस्त पद जना ।

अभङ्ग श्लेष म शब्दों का जानना नदा पत्ता एक वृत्तगत फलद्वययाय म अम एक शब्द म रद्द अत्र नजिगत् रत्न है । जब अम अनङ्गार का प्रयोग करत हैं तो त्रिशब्द का साथ म प्रयोग करना जाना है । जैम—

पवत भवि पवित्र जत्र नरकस्य बहुमतड गहनम ।

हरिमिव हरिमिव हरिमिव मुरमरिदम्भ पतन नमन ॥^३

अम पद्य म तीन बार हरि शब्द जाय ^३ जा वि विष्णु इत्र और मिह का जानत है य तीनो की अंगान है अथ उपमय मुरमरिदम्भम है । इस लिय पूनाश्र क विशषण धारा का शक्ति म मगन जान है । इनम पत्तन तान अभङ्ग न हैं पर अथ बहुमत गहनम एव बहु + मत + ग + तनम इस प्रकार मनङ्ग है ।

काव्य विम्ब म श्लेष का प्रयोग पर्याप्त उपकारी होता है । जितन भा अर्थ निकलत है उनत ही विम्ब बदा पर बनत है । जैम उदाहृत पद्य म शब्दों का पहाडा क वाच न म हाकर निबन्धना उगना पावन्ता क कारण महत्ता व्यक्तिया का उमम स्तान रत्ना नरक क कारणभूत पाप जो नात करत म

१ माद० १ प० २८५

२ कुवत ५० ७४

३ माद० ७ प० २५४ मक० १२२

पावनता की भावना उसने तट पर सीट और जगाधता इनके मानसचित्र अत्र-
द्वोऽ के साथ साथ बनत है। उसी प्रकार दुन्द्र के पदता के पट्टे छ फाटन की
पटना, वज्र धारण करना, अमुग के साथ सट्ट ग्राम मद्दूश भावो के शब्द चित्र
बनत है। सिंह के पक्ष में भी पहाड़ पर चढ़न ग पट्टरो का तुडकाग और
हाथियों का भारने का मायात्मक चित्र मस्तिष्क में उभर जाता है। एक साथ
इन अनेक शब्दचित्रों का उभरने में एक पूर्ण चित्रजाता सी बन जाती है। तल-
चम्पू में त्रिविधम शब्दों को श्लेष से अच्छी सफनता मिलती है।

उपमा अनुङ्कार में शब्द-साम्य के लिये इस अनुङ्कार का प्रयोग विशेष
रूप में किया जाता है। वास्तविक समानता न रहने पर भी इसके द्वारा
समानता प्रकृत करने वाला विश्व बनता है परन्तु उसमें उपमेय का विश्व
बनने में विशेष सहायता नहीं मिलती। इस लिये उत्तम कवि इसका प्रयोग
बहुत कम मात्रा में करते हैं। प्राचीनक और कालिदास जैसे कवियों की
रचनाओं में श्लेष के बहुत छोट मित्त हैं। जैसे—

मुषीवस्य नदीनाञ्च प्रसादमनपालधन ।^१

इस पद्य में प्रसाद शब्द का अनुप्रास और निमनता बना अर्थ है। मुषीव
के पक्ष में अनुप्रास और नदी के पक्ष में जन की निमनता अर्थ लिया जाता है।
इसी प्रकार—

पयोधरीभूत चतुःसमुद्रा जगोप गोलपधराभिवोर्वीम ।^२

इस श्लोकार्थ - उपमान शाय और उपमान पृथ्वी दोनों के विषय में
सद्गति करने के लिये पयोधरीभूत-चतुःसमुद्रा पदक दो अर्थ निकलत हैं—

‘जगोपरा पयोपरा भूता चत्वारः समुद्रा यस्या सा’ अर्थात् चारा समुद्र
जिनके स्तन में बन गये हैं। और

पयसा अधरी भूताश्चत्वारः समुद्रा यस्या सा अर्थात् जिनके रूप में चारा
समुद्र भी बन पडे गये हैं।

इस प्रकार मरुत होन के कारण दोनों ही भावा के विश्व बनते हैं।

माध, भारवि, वाण और श्रीहृष आदि पञ्चाद्वर्ती कवियों ने इस श्लेष का
अतिशय मात्रा में प्रयोग किया है। इनके श्लेष उपमा, रूपक, विरोध आदि

१ वाग० ४, २७, ४४

२ रव० २ ३

अलङ्कारा के सहायक के रूप में आये हैं। कही कही स्वतन्त्र रूप में भी। यथा—

चेतो न लङ्कामयते मदीय नान्यत्र कत्राऽपि च साभिलापम् ।^१

यहाँ 'मदीय चेत लङ्का न अयत' 'मदीय चेत नल कामयते', मदीय चेत अलङ्कार कामयत, अन्यत्र कुत्र अपि साभिलाप न' और अन्यत्र कुत्रापि साभिलाप न इस प्रकार मभट्ट ग या भङ्ग्य श्लेष क द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। कुमारी क स्पष्ट अपन प्रियतम का निर्देश करने में कुमारी-जनाचित लज्जा की हत्या हान की सभावना में श्लेष के द्वारा आशय प्रकट कराया गया है। पञ्चनली में ता कवि न इस प्रवृत्ति को चरम शिखर पर पहुँचा दिया है। पर जहाँ यह दूमर अलङ्कार क महायक क रूप में आता है और सरल हाता है वहाँ अवश्य विम्बनिर्माण में सहायक हाता है। जैम—

विषमोऽपि विगाह्यते नय कृततीर्थं पयसामिवाशय ।

स तु तत्र विशेष दुर्लभ सदुपयस्यति कृत्यवर्त्न य ॥^२

यहाँ एक चित्र बौद्धिक है ता दूमरा चाक्षुष है। दुर्वोध नीतिमाग भी जिस पर चलन का प्रकार स्पष्ट हो अनाना सरल है परन्तु उसका सही-सही प्रयाग का प्रकार बनाने वाला व्यक्ति मिलना कठिन है यह बौद्धिक विम्ब है।

चाक्षुष—गहरे पानी वाल तालाब में सीढ़ी आदि बनी हा ता प्रवेश करना सरल होता है परन्तु यदि सीढ़िया न बनी हा या तालाब एम स्थान पर हो जहाँ का माग ही ज्ञात न हा ता वहाँ तक पहुँचना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार कवि के विवक्षित भाव समझन में यह श्लेष अलङ्कार सहायक ही बना है। इस लिय श्लेष का प्रयोग सत्रया वर्जित नहीं है पर अपक्षा यह की जाता है कि वह सरल हा और विम्ब बनन में बाधक न हा। रमादि न प्रसङ्ग में दुर्बुद्धता के कारण उसका प्रयाग भाव प्रतीति में बाधक बन जाता है। इसी लिये आनन्दवधन ने काने च ग्रहण त्यागो नानिनिर्वहणेपिता^३ की चतावनी दी है।

अन्य शब्दालङ्कार दुर्वोत्र होने क कारण पाठक या श्रोता क लिये पहली बन जात हैं। अत उनमें काव्य विम्ब बनन में सहायता नहीं मिलती।

१ नै० च० ३ ६७

२ किरा० २, ३

३ ध्वया० ७ १८

नवम परिच्छेद

साम्य-मूलक अलङ्कार व शब्दचित्र

अलङ्कारों में काव्यविम्व्या में महायक अलङ्कारों में सर्वाधिक उपकारी उपमा ही है। उसमें साम्य स्पष्ट रहने में सुवाच भी रहता है। उसी का घुमा फिरा कर रहने में अनेक उक्ति-प्रकार बन जाते हैं।^१ उसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का बणन होने में दो महानाल्पर पदार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। उपमान के प्रकाश में उपमेय का स्वरूप और निखर कर पाठक की दृष्टि के जागे उभरता है। उसके कारण दशो विदेशों में भी आलाचक विम्व्य विज्ञान में इसे उपयोगी स्वीकार करते हैं। प्राचीन आचार्यों में किसी न तो सभी अलङ्कारों का शिरामणि एवं काव्य-रत्नकार का जनिदाय मान्य मानते हुए उसे कविया की शाना ही घोषित किया था।^२ दूसरे आचार्य ने उसी तुलना नटी के साथ की है जो अकेली चिन्तन भूमिकाओं में आती है। इसी प्रकार उपमा बाडे से उक्तिभेद में अनेक अलङ्कारों को जन्म देती है। अप्ययदीक्षित न विस्तार से उन्हें गिनाया है।^३

- १ तथा हि— 'चन्द्र इव मुखं मुखमिव चन्द्र' इत्युपमेयोरमा 'मुखं मुखमिवे-'
 एतन्वचम् । "मुखमिव चन्द्र" इति प्रतीपम् । 'चन्द्र इष्ट्वा मुखं म्मरामि'
 इति स्मरणम् । 'मुखमेव चन्द्र' इति रूपवम् । 'मुखपद्रेण तापं ज्ञान्यति'
 इति परिणाम । किमिदं मुखमुताहा चन्द्र' इति मन्देह ।—'चन्द्र
 इति चकारास्त्व मुखमनुशाबन्ति' इति श्रानिमान् । 'चन्द्र इति चकोरा
 कमलमिति चञ्चरीकाम्बुधुले रज्यन्ति' इत्युल्लेख । 'चन्द्रोऽप्य न मुखम्'
 इत्यपहृत्य । 'नूनं चन्द्र' इत्युपेक्षा । 'चन्द्राश्चम्' इत्यतिशयोक्तिः ।

तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोगमा ज्ञानान् ।

ज्ञानं भवतीत्यादौ निरूप्यत निखिलभेदसहिता सा ॥ —चिर्मा०, पृ० ४३

- २ अलङ्कारशिरोरत्न मन्वचं काव्यमम्पूदाम् । अलङ्कार-शौचर-केगवमिथ्य,
 उपमा कविविज्ञास्य मानैवेति मतिमम ॥ —पृ० ३८ पर उदघृत

- ३ उपमेयं शैलूपी मम्प्राप्ता चित्र-भूमिका भेदान् ।

रञ्जयति काव्यरटं मे नृत्यन्तो तद्विदा चेत ॥ —चिर्मा० ४१ पृ०

उपमा जलङ्कार का मूल आधार है सादृश्य या सादृश्यम् । यह मुख्य रूप में दो प्रकार का होता है—रूप साम्य और प्रभावसाम्य । गुणक्रिया रूप सादृश्य होने पर प्रभाव साम्य होता है । रूप-साम्य के लिए उदात्त उपमय में विम्ब प्रतिविम्बभास की याचना का जाता है । तामरा साम्य शब्द नाम्य शब्द मात्र की सहायता से प्रतिपादित किया जाता है । उसमें क्याकि तांत्र विम्ब के निमाण अथवा विवर्धित जाणय के मूर्तीकरण में कर्त्त सहायता नहीं मिलता वह अन्तर को स्पष्ट नहीं करता । अतः जाचार्या में सभी ने उस स्वाकार नहीं किया । उसका सत्ता को प्रमाणित करने के लिए रुद्रट का सम्मति प्रस्तुत करना पड़ा । शब्द-साम्य बिना जल्प का सहायता के नहीं चलता । जैसा—

सकल कल पुरमेतज्जात सम्प्रति सुधाशु वम्बमिव ।^१

यस्य सकना रतायस्य और कनकनेन मह वतमानम इत विग्रहा म नगर एव चन्द्र विम्ब दाना का समानता समझ में आती है ।

यद्यपि नारा का मुख और चन्द्रमा दोनों में वास्तविक समानता कुछ नहीं है तथापि हृद्यता शीतलता प्रगल्भ आदि कुछ समानताओं का दृष्टि में रख कर यह तुलना की जाती है । सभी तुलनाओं में जातिक समानता का दृष्टि में रखकर की जाती है । क्याकि पूर्ण रूप में बिना की समता किमा के साथ सम्भव नहीं है ।^२

यह समानता उद्दिष्ट गुणवाचक साथ ही ना उसकी प्रकाश में प्रकृत का स्वरूप स्पष्ट होगा परन्तु गुण वाले के साथ ज्ञान पर यह उद्दिश्य मित्र न होगा । अत्रिक गुण वाचक मात्र समता में ही अनुपात का ध्यान रखना आवश्यक होता है । अथवा तत्र भी विम्ब न बनना या विवृत बनना । इस कारण जाचार्यों ने अन्तःकार दापा के प्रसंग में प्रगल्भतया उपमा के हा

१ स्फटमथान्तकारावतावपमा-ममुच्चयौ कित ।

आत्रिय शब्दमात्र सामायमिनापि सम्भवत ।

—रुद्रा० ४ ३२

२ साद० प० ८७

३ तु०—तनु पुरे सकना रतायस्य कनकनेन शब्दमाहित्यम सुधाशुविम्ब कला साकयम इति नको-नृगता गुणो दम्यत मदम श्रुत्य भित्तिकाऽभदाध्यव-सायमूत्रयाऽतिशयोक्त्या त्रम साधारण्यवाभात —विमा० पृ० ५५

४ भव सर्वेण सात्प्य नाम्नि वाक्स्य कस्यचित् ।

यथापत्ति कृतिभिरूपमा मुप्रयुज्यत ॥

—भावा० २ ४४

दाय गिनाय है। इस प्रकार के दो उदाहरण मानते हैं अनुसार पहले दिखाय पा चुके हैं।^१

उपमा के भेद आचार्यों ने बहुत गिनाये हैं परन्तु कुछ तो व्याकरण के अनुसार क्रिय क्यच् आदि प्रत्यया के आगार पर हैं। वे काव्य-विश्व की दृष्टि में महत्त्व नहीं रखते। अब यहाँ कवन उन पर विचार करने दिखने काव्य-विश्व का निर्माण करने में महायत्ना मिलती है।

इसमें प्रथम पूर्णोपमा है जिसमें उपमान, उपमेय सागरण ध्रम और वाचक शब्द चारों का उद्देश्य उपमादान होता है। इस भेद का लक्षण सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। उपमा भी श्रौती एव आर्यों के दो भेद किये हैं जिसका आधार वाचक और श्रोतव्य का भेद है। इस और उपा जववा इव के अर्थ में 'तत्र तस्यैव'^२ म विहित वति प्रत्यय के प्रयोग में श्रौती पूर्णोपमा स्वीकार की है और तुल्य कल्प वदृच् आदि प्रत्ययों के प्रयोग में श्रौती स्वीकार की है।^३ इस भेद का कारण भी यह बताया है कि इत्यादि शब्दों का मुनि या उपमानोपमेय भाव का बोध होना है। प्राय उपमान का ज्ञान इव के माध्यम से होता है जबकि तुल्य के प्रयोग में कभी उपमेय के अनुसार पदव्यय होना है तो कभी उपमान के अनुसार तो कभी उपमान एव उपमेय समविवक्षित होत है। परन्तु इसमें पाठक या श्रोता को पर्यायवाची करना पड़ता है कि यहाँ पदव्यय किसमें होता है।^४

इसका वास्तविक अर्थ क्या है? यही कि इत्यादि के द्वारा मादश्यभाव उत्पन्न प्रतीत हो जाता है और कथस्वरूप साधन्य के स्पष्ट हो जाने से शब्द चित्र बनने में सफलता रहती है जबकि वाचक प्रथमा के प्रयोग में मादश्य की कुछ विवक्ष्य में उपस्थिति रहती है। जब मादश्य का वाचक में होगा तो निश्चय ही शब्द चित्र नहीं बन पायगा। शास्त्रीय भाषा में प्रयुक्त शाब्दोपमा शब्द का तात्पर्य वाक्यार्थ में अन्वित सभी शब्दों के सामूहिक अर्थबोध में बोद्धा के मस्तिष्क में एक पूरा चित्र उत्पन्न होना ही है। जैसे—अरविन्द-मुदर वदनम् इत्यादि शब्दों द्वारा अरविन्द के द्वारा श्रोतव्य समानता के हतु मौन्दय

१ इ० ज० ३ टि० ५५-६०

२ पा०, ५, १ ११६

३ श्रौती यथेववा शब्दों द्वारा श्रौती वा वति यदि ।

आर्यों तुल्यमानावास्तुत्यार्यों यत्र वा वति ॥ —साद०, १० १६

४ वही, पृ० २६३

मे युक्त पदार्थ अरविन्द म यह मुख अभिन्न या एक रूप" है। इस प्रकार का धोष होने का कारण यह है कि जब "अरविन्दम् इव मुन्दर वदनम्" यह कहते हैं तो अरविन्द और वदन दाना उपमान उपमेय समान विभक्तिवत् हैं। पास्त्रीय सिद्धान्त है कि समान विभक्तिव्यापार्ययोरेभेदातिरिक्त सम्बन्धाऽव्युत्पन्न" अर्थात् दो समानाधिकरण प्रातिपदिका का परस्पर अभेदान्वय ही सम्भव है। परन्तु अभेदान्वय हागा कैम? जैम 'घट पटा न' यह वाक्य बुद्धि घट और पटा म अभेद ज्ञान नहीं ज्ञान देती इसी प्रकार अरविन्द और वदन दोनों भिन्न पदार्थों का अभेदान्वय वाग्य सम्भव नहीं हागा। इसलिए अरविन्दमिव का लक्षणा म 'अरविन्द क द्वारा वाग्य सादृश्य वा हतु यह अर्थ लिया जाता है। उसी अभेदान्वय मुन्दर क घम मौन्दय म हाता है। पुन उमता अभेद मसग उम मौन्दय म विजिष्ट वदन स।

इसका तात्पर्य यहा ह कि 'अरविन्दम इव मुन्दर वदनम्' म चारा पद अलग आप म स्वतंत्र हाकर पृथक्-पृथक् अर्थ का वाग्य कराने वाला है। तब तक इनका परस्पर सम्बन्ध नहीं जुटेगा, तब तक कोई वाक्यार्थ नहीं बनगा। जब तक वाक्यात् नही बनता तब तक कोई पद-चित्र नहीं बन पायगा या मुख और कमल का एक समन्वित प्रतिमा त्मार मानम-फलक पर नहीं उतर पायगी। यहा अरविन्द का उपमान का चनाह उमक पीछे उमम विहित वर्ण, सुगन्ध और विस्मय-व घम है जो कि मुन्दर-व क मूल है। मुख म इन सभी गुणा क अस्तित्व की भावता है और उसके परिमाण का अनुमान उपमान शत घमों क अनुगत म लगाया जा सकता है। क्योंकि सिद्धान्तत उदृष्ट गुण बाल क साथ ही समानता की जाती है तभी उपमेय की गुणवत्ता भासित हा सकती है।

यह पूर्वोक्ता कभी एक वाक्य म सीमित शर्ती है ता कभी दा न। इसी प्रकार कभी एक ही उपमान के साथ समानता की जाती है तो कभी एक म अधिक क साथ। पुन कभी एक ही साधारण घम का लेकर अलग क साथ तुलना की जाती है और कभी पृथक्-पृथक् घम का लेकर पृथक्-पृथक् उपमाना म। इनम सर्वप्रथम रूप साम्य का उदाहरण रघुवज का पाण्ड्योऽयम् आदि। पद्य है। इसम श्यामवर्ण क पाण्ड्य-नरेण की तुलना पर्वतराज हिमालय म की गई है। पर्वत का तम भाग जहाँ घाम आदि न जमा हो, बाला होता है। राजा का डील-बेल पर्वतराज के समान है। प्रभान काल म पड़ती सूर्य की

लाल लाल विष्णो का साम्य शरीर पर किये गये लाल चन्दन के अद्गराग में है। अद्गराग मारे शरीर पर लगाया जाता है, परन्तु बन्तों और आभूषणों के कारण तब तो उसका ढका हुआ है, केवल मस्तक पर दिखाई दे रहा है। इस लिए मानुदेश (उपन्यका) पर ही धूम्र की स्थिति दर्शित की है। गले पर पटे मोतियों के लम्बे हारकी तुलना निचर में की गई है। इस प्रकार राजा के शरीर जाकार, वर्षा, भूषा सबके समानान्तर उपमान रखन में यहा विम्ब और प्रतिविम्ब भाव बनाया गया है। इसमें पवन एक राजा का पूरा चित्र उभर आता है।

विम्ब-प्रतिविम्ब भाव

इस प्रसङ्ग में विम्ब प्रतिविम्बभाव के स्वरूप पर विवेचन करना उचित होगा। लाल म देखा जाता है कि मूय या चन्द्र का विम्ब दपण अथवा जल में प्रतिविम्बन होता है। इनमें मूय या चन्द्र व मण्डल की आकृति विम्ब कहनाती है या दपण या जलाशय में पड़ी छाया प्रतिविम्ब कहनाती है। प्रकृत में उपमेय की छाया और उपमान की छाया दोनों मवधा भिन्न पदाथ हैं। परन्तु जब दोनों को मात्र-मात्र रखा जाता है या अन्यविध समानता के कारण उभय परस्पर विम्ब और प्रतिविम्ब का सा सम्बन्ध दिखाई देता है। यह सम्बन्ध साधारण ऽम के कारण होता है।

वस्तुतो भिन्नयो प्रमयो परस्परमादश्यादभिनतनयाध्यवसिनयाद्विहरादन विम्ब-प्रतिविम्बभावः ।

इस लक्षण के अनुसार विम्ब-प्रतिविम्बभाव में पदार्थों की समानता का आधार स्वरूपमात्र न होकर तत्तद्गत धर्मों की समानता भी हानी है। यही कारण है कि दृष्टान्त अलङ्कार में उपमेय और उपमान दोनों का अपन-अपने समान धर्म के साथ प्रतिविम्बन होना है।^१ साहित्यदपणकार ने इसी बात को स्पष्ट करने के लिए लिखा था कि औपम्य में साधारण धर्म दो प्रकार में निरक्षित होता है।

- १ उपमेय और उपमान दोनों का गुण या साधारण धर्म एक ही हो और एक बार एक ही शब्द से कहा जाय।
- २ दोनों के साधारण धर्म का पूरक-पूरक कथन हो। परन्तु वह भी दो प्रकार में प्रस्तुत किया जाता है। यह तो मत्तमुत्त ही दोनों के धर्म पूरक

१ नृ —दृष्टान्तस्तु मधमस्य वस्तुन प्रतिविम्बनम् । —साद०, १०, ५१

पथक हा या वास्तव म एक हान पर भा दा वाक्य म पथक-पथक शब्द मे कह गये हा ।

वास्तव म एन गण क्रिया रूप धम न होन क कारण ही विम्ब प्रतिविम्ब भाव म उपमय और उपमान क धर्मो का निदान पथक-पथक क्रिया जाता है । कोर्न क्रिया या वाचक यदि दानो को परस्पर जान द ता उपमानकार बन जाता है और एसा न हा ता दण्डात् गता ३ उदाहरण न त्रिण पाण्ड्याऽयम म इव माधम्य का वाचक है । समापितनम्यपरित्व एव सन्तिपरागाएव धर्मो का निदान प्रतिनिदान ३ जा कि साम्य का मण्टि वगता है । वाचक इव ने उपमानोपमेय भाव का वाचक बनाया ३ और आभाति क्रिया न दानो म एकवाक्यता ना दी है । वास्तव म प्रहा आभाति भी क्रिया रूप धम है ही जोकि दानो म अनुगामी है । पर क्या क्या रम प्रकार की काइ क्रिया नही भी होती है । जम—

विद्युच्चन्त ललितवनिता मेघचाप सचित्रा
सगीताय प्रहृत मरजा म्निघणम्भीरघोषम ।
अतरतोय मणिमयभवस्तु गमभ्र लिहाप्रा
प्रासादास्वा तुलयितुमल यत्र तस्तविशय ३ ॥

मेघदूत क रम पद्य म यत्र धम विद्य कच और ललितवनिताव चद्र चाप सान्नि क और सचित्रव म्निघणम्भार घापव और प्रवृत्त मूरजव अत स्तोयवव और मणिमयभूमत्व तुत्र गत्र और अग्रनिहृतिखरव ३ जिन क द्वारा मेघ और प्रासादो की समानता मिद्ध गेना ३ साम्य का शाब्दिक प्रति पावन तुलयितु न गेना है रम प्रकार उन समानान्तर धर्मो म व्यतिरिक्त कोई अय एसा रम यत्र पर नहा है जा इम दानो का जाडता हा । तुलयित कहने म साम्य वाच्य हो गया है अदय गण्टान जवकार हाता । जयरथ न रसका स्पष्टाकरण करत हुए कहा है कि विद्युदवनिता आदि का धम क रूप म ही ग्रहण हुआ है जिस की सूचना विज्ञेय गद्व म दी है । सब धम अलग अलग कह गये है रस दिने उदरे अनुगामा धम भा ननी कह सकत परस्पर समानता विम्ब प्रतिविम्ब भाव क कारण हा है जिसम उन म अभद प्रतीति होती ३ ।^३

१ एकरूप कवचिन क्वापि भिन्न माधारणा गण ।

भिने विम्बानुविम्बव शब्दमात्र ण वा भिदा —माद० १० २३ २८

२ मद्रु २ १

३ एकस्यैव धमस्य सम्बन्धिभेदेन द्विरुपादान वस्तुप्रतिवस्तुभाव ।

गिनाय है जो कि साधारण धन की स्थिति क कारण बनत है।^१ यह धन कही पर ता उपमय और उपमान दाना म हा अचिन रहता है जम—

मञ्चारिणी दापाशखेव^२ आदि पद्य म पूत्राध और उतगध म दा पथक पथक उपमार्ये हैं। प्रथम म ददुमता का समानता मञ्चारिणी दापाशिखा म है। मञ्चारिणा पद दोना क साथ अन्विन है। उतराय म म म भूमिगान' उपमय है और नरेण मार्गाट्ट उपमान है। दोना का अनुगामी धम विवणव प्रपद है। य य और स स क निर्येण प्रतिनिर्देश न दाना का परस्पर सम्बद्ध कर क एक पूण विम्ब बना दिया है

जम कहा पर कबल विम्ब प्रतिविम्बभाव की स्थिति म पाया जाता है। जम पूवान्ताहत विद्युत्कान आदि पद्य म। कहा पर दाना हा प्रकार म रहता है। जम पाण्यचायम आदि पद्य म कही पर वस्तु प्रतिवस्तु भाव मे मिश्रित मे नर विम्ब प्रतिविम्बभाव का प्राप्न जाता है। कहा वह जम वस्तु न रहता जा नी उपचार म नाया जाता है ता जगे गल मात्र म स्थित रना है।

दोनो की एकत्र स्थिति—वस्तु प्रतिवस्तुभाव म साधम्य की स्थिति म प्रतिवस्तुभावा जेता है। इम म एह नी जम दा पथक शब्दो मे दा वाक्या म क्त जता है। पस्तु जमे उदात्तगण भी मिश्रन है जम कि वस्तु प्रातनस्तुभाव क द्वारा विम्ब प्रतिविम्बभाव बनाया जाना है और पुन उन को अनुगामा धम म नात जाता है। यना वस्तु प्रतिभावा और विम्बप्रतिविम्ब के सामानाधिकरण्य का बात परस्पर विरुद्ध और वेतुनी प्रतीत होती है। क्याकि दोना क स्वस्व भिन है। परंतु यह जम क प्रतिपादन का रात्रि पर निभर करता है। उदात्तगण क नियम मूच्छा म मुक्त हावी उवशा का नुतता ज प्रकार स कुछ २ रिक्त होता हूइ गनी म रात्रा क समय अधिकाश घए म विरहित अग्नि की ज्वाला म तथा किनारा टटन क कारण पल्ल गदनी हूइ किन्तु धीर रात्र निमन हावी गडशा का धारा स का ज्ञान म मालोसमा बनानी है^३ यहा मुपमाना' एव रिच्यमाना दाना

१ तत्र च क्वचिदनुगाम्यव जम । क्वचिच्च क्वल विम्बप्रतिविम्बभावापन । क्वचिदुभयम । क्वचित् वस्तुप्रातवस्तुभावन करस्थित विम्बप्रतिविम्बभावम । क्वचिच्च अमनप्युपचरित । क्वचिच्च क्ववशब्दात्मक । रग० २,१

२ द्र० अ० २ टि० ५०

३ जाविभन शशिति नमसा मुच्यमातव रात्रि-
नगस्याचिहनेमत्र इव चिन्तनभूयिष्ठपूमा ।
मान्नान्तवर्तनुरग्रि तथयत सुवनकला

गण गा रात्र —पतन कनुपा शणनाव प्रमादम ॥

विशेषण एव ही अर्थ को प्रकट करते हैं। "छिन्न-भूमिष्ठधूमा" और "प्रगाढ" गूह्णती" सर्वथा पृथक् धर्म है परन्तु धूम के त्यागन एव निर्मल हान में अवस्था के पौर्वापर्यमात्र का भेद होने से माम्भ है। यहाँ आविन्त्व को त्यागना नैमल्यग्रहण के माध्यम में प्रकट किया गया है। अतः इन दोनों में विम्ब-प्रतिविम्बभाव है। पुनः तमस् का त्याग एव छिन्न होने के कारण धूम का त्याग एव नैमल्यग्रहण के रूप में आविन्त्व का त्याग और मूर्च्छा से मुक्त होना इन मय के वस्तुतः एकार्थभाव के कारण वस्तु प्रतिवस्तुभाव है। इस प्रकार यहाँ इन दोनों सम्बन्धो-वस्तुप्रतिवस्तुभाव और विम्ब-प्रतिविम्बभाव का परस्पर साङ्ग्य है। "लक्ष्यत" इस त्रिया न इन सभी को परस्पर सम्बद्ध कर दिया है। वह सब का अनुगामी धर्म बन गया है। मालोपमा की दृष्टि में यह जनेकधर्म है, उपमा की दृष्टि में समान-धर्मा पर दोनों सम्बन्धा पर जाधित। जब इस के विम्ब पर दृष्टि डाले तो नीला उपमान विम्बों व प्रगाढ में उपमेय विम्ब 'मूर्च्छा' से मुक्त होती हुई वस्तुतः चमक उठता है। इस प्रकार यह बहुगुणी चित्र है। तिन में पृष्ठ भूमि में कई चित्रों की चमक है। जैसे प्रभात में पूव की अघकाराच्छन्न रात्री, रात्री में अग्नि की ज्वाला का धूम में जावन होना, विनारे के पतन में नदी-जल की आदिना इन का पूर्वाभास होगा। यह स्मृति के द्वारा प्रत्यक्ष होगा। इनके प्रकाश में अब नायिका के स्वरूप का चित्र देखा जाय तो झटपुटे के समय दीपप्रकाशोमुख रात्री तिमिर अग्निज्वाला एव स्वच्छप्राय गङ्गावन के तुल्य ही उवशी का स्वरूप मूर्च्छा की खिन्नता के कारण कुछ-कुछ मन्तित, स्वभावतः उज्ज्वल सागाजिक की दृष्टि के समक्ष उभर जाता है। एल्.एम्.० भण्डारे इस कलिदास की अद्भुत कल्पना की वन मानते हैं।

इस काव्य-विम्ब की विशेषता यह है कि इस में तक्षक के स्वरूप का ज्ञान लक्षणों के द्वारा होता है और कवि ने पाठक की रत्नना खगी का उद्धान का अवसर द दिया है कि इन अवस्थाओं में रात्री, ज्वाला एव गङ्गा की वाग का कैसा बन होगा है और उन की तुलना में उवशी का कैसा होगा। इस प्रकार के सश्लिष्ट विम्ब प्रायः बहुत कम मिलते हैं।

उपचरित धम—कही-२ यह धर्म उपचरित या जागपित होता है। जैसे -

- 1 This stanza is an effusion of the poetic imagination deeply stirred at the sight of Urvashi's gradually recovering her senses from a deep swoon undoubtedly written by Kalidasa in moments of his highest inspiration

शतकोटि कठिन चित्त सोऽह तस्या सुधकमय मूर्ते ।
यनाकारिणि मित्र स विकलहृदयो विद्विर्वाच्य ॥

राम की रम उभिन म अपन मन का वज्र क तुय बताया गया है । मन का कठिन अर्थ है और वज्र का अर्थ । दाना हा उपचार म एकीकरण किया गया है । कला पर साधारण रम गद्य भाव म विद्यमान होता है । जैम—

यत्र वसन्ति समनसि मनजपशौ च शीलवन्तः सबत्र समाना मत्रिणो मुनय इव^२
यज्ञा मुनिया का भाति मत्रिया का मज्जन व दुष्ट क प्रति समान वृत्ति बताई गत है । ऐस स्थान म विम्ब घूमिन हा रहेगा ।

वधम्यमूलक उपमा—कही-कही वैधम्य म भी काव्य विम्ब पाय जात है ।
जैम—

त्रियमाणव नश्यत्पुदके रेखव खल जने मत्री ।
सा पुन मुत्तन वृता अनघा पापाण रेखव ॥^३

यत्र पूवाध और उत्तराध म दा पथक-वर्गन उपमाए है । पूवाध म दुष्ट क साथ ही गद्य मित्रता उ भय है और पापा म खाधा गद्य रखा उपमान है । दाना का अनुगामा रम रत रत हा नष्ट हा जाना है । उत्तराध म सज्जन क साथ की गद्य मित्रता और पथक का लकार का उपभाषापमय भाव है । अनघाक साधारण रम है । अत य हा दाना उपमाका म स्थित वधम्य म अपनिरैकापमा की मण्टि जाता है । अत्र १२ म प्रकाश का भाति वैधम्य म साधम्य क स्पष्टतर हान में हा विम्ब समानांतर क्रिन्तु परस्पर सिद्ध बनत है । रमा प्रकर —

मृदघट इव मुक्व भद्यो दु मधानश्च दुजनो भवति ।
मुज्जतस्तु कनकघटवद दुर्भेद्यरक्षाश साधम^४ ॥

रम रम म पूर्वोक्त भाव दा परस्पर विरुद्ध उपमाका म प्रस्तुत किया गया है । फलत पूवाध और उत्तराध क पथक-व्ययक दा छण्णविम्ब बनत हैं । एक पक्ष बीडि-रक्ता है रम म प वा म अनर यह है कि आपातत उपमेय और

१ तथा माना विवाचितवन स्थापयता रामम्यास्ति । अत्र कठिन पापिवा
रमश्चिन्न उपवर्गित

२ उहा प १ ६

३ अ० प ८

४ अजात कत क मुक्व पित

उपमान मून प्रनीत होने है जब कि प्रथम में अमूर्त और मूर्त माना है। नती स्वयं अमूर्त है पर रेखा मूर्त है। एक ही उपमा में वैधर्म्य पर आश्रित तुलना निम्न पद्य में है—

न भवति भवति च न चिर भवति चिर चेत् कने विमवादि ।

कोप सत्पुरुषाणां तुल्य स्नेहेन नीचानाम् ॥^१

यहां राग की स्थायिता जीर अस्थायिता का नेकर मज्जन व दुजन में तुलना की गई है। नीच के प्रोत्र की तुलना में सज्जन के राग की अचिर-स्थायिता के कारण व्यतिरेक होने पर भी तुल्य शब्द का प्रयोग होने में उपमा वत गई है।

व्यतिरेक में इसका जंतर वही मानना होगा कि उत्तमो उपमय और उपमान के मध्य तागतम्य का भाव प्रधान रहता है जबकि इसमें वैधर्म्य पर आधारित औपम्य। साम्य व्यतिरेक में भी विवक्षित होता है पर प्राजाय्य म नहीं। अभी कारण वह आक्षाप्त भी रहता है। वस्तुतः वैधर्म्य की स्थिति में साम्य मभव ही नहीं है जैसे—अकनट्क मुख तस्या न कलङ्की त्रिपुण्या ।^२

इसमें मुख की तुलना चंद्रमा में की है। मुख की निष्कलङ्क हानि के कारण कलङ्की चंद्रमा में बढाकर कहा है। गोसांकर ने जब वैधर्म्य अलट पार पृथक् स्वीकार कर लिया तो इस पृथक् प्रकार का स्वीकार करने में इतना ही औचित्य हो सकता है कि व्यतिरेक में एक ही उपमा की युक्तता और आधिक्य स मता आधार मानी जाय और वैधर्म्य में विपरीत काय को। जैसे—

कुमुदघनमपधि धीमदम्भोजपण्ड

त्वजति मुदमुलूक प्रीतिनाश्चक्रवाय ।^३

उदयमहिभरशिम्पानि वास्तु हिमाशु—

रुतविधिततिताना हि विचित्रो विपाक ।^४

इसमें कुमुदों का मुकुलन और कमला का विकास परस्पर विरोधी उपमा एक काव्य-भावी के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। यहाँ इनकी प्रतिस्पर्धा का भाव विवक्षित नहीं है। प्रतिस्पर्धा में व्यतिरेक होता है।

१ अर०, ८

२ माद०, पृ०, २२४

३ उद्दिष्टम्य प्रतिपक्षतयानुनिर्देशो वैधर्म्यम् ।

—अ० २५

४ जिव०, ११ ६४ अर०, १०५ (उ०)

व्यतिरिक्त और वैशम्य अन्तःकारा म दो परस्पर समानांतर त्रिम्व वनत हैं जा नि विरुद्ध जयवा समान प्रम वाले हान हैं । ममान धर्म मे न्यूनताधिक्य म अन्तर जा जाता है । यद्यपि दा समानांतर त्रिम्व म एक पूण त्रिम्व नही बन पाता परन्तु तुलना क कारण उनमे जटिलता आ जाती है । जैम—

यात्येकतोऽस्तशिलर पतिरोपधीना—

माविष्कृतोऽहण-पुरस्सर एकतोऽर्कं ।

तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाम्या

शोको नियम्यत इवाऽस्य दशान्तरेषु ॥^१

यहाँ भी पमान वषण के प्रसङ्ग म मूय एव चन्द्र वा एक ही वान मे उदय और अस्तमन प्रस्तुत किया गया है । यहाँ प्रतिस्पर्धा का भाव न होकर स्थितिवैपम्य विवक्षित है । परन्तु इन दाना क समकालिक उदयास्तमन का सम्बन्ध ममान क उदयानपतन क साथ त्रिम्व प्रतिविम्वभाव म जात होने क कारण त्रिम्व आक्षुप न दौद्धिक म बदल गर हैं । उसकी प्रतिनियाम्बन्ध एक समवदना का मवदन और हाता है जा नि हृदय पर गहरा छाप टागता है । यहा मका वैशिष्ट्य है ।

कल्पित उपमान—कही पर इम त्रिम्व का विषय प्रभावशाली बनान के लिए नवीन उपमान का कल्पना करना पडती है । यह नया उपमान कभी ता भण्टि का पदार्थ ही नही जाना और कभी कविया द्वारा सर्वथा अप्रयुक्तपूर्व होना है पहन प्रकार का भी दा प्रकार म प्रस्तुत किया जाता है । एक म उम उपमान की तात्त्विक अविद्यमानता अभिहित हाती है ता डूमरी म गम्य । पहनी म 'यदि का प्रयाग हान क कारण आचार्यों न उम या तो अदभुतोपमा^२ या उत्पाद्योपमा^३ नाम दिया है अथवा अतिशयाक्ति के एक अवान्तर भेद क रूप म गिना है ।' जैम—

१ शानु० ४ २

२ तु० यदि किञ्चिद भवत्पद्य सुश्रु विज्ञातवोचनम् ।

तत्त मुख्याय प्रतामियमावदभनोपमा ॥ —काद०, २ २४

३ तु० उभी यदि व्याम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगट गापयम पनेताम ।

तदापमीयेत तमानता उमाभुवतालतमस्य वक्ष ॥ —(शिव० ३ ८)

अनोपमानायमुत्पाद्यापमयन प्रतीयमानमभिधीयमान च सादृश्यमभिहितमिति मयमुत्पाद्यापमा नाम विद्वत्पापनासु प्रपञ्चोपमाभक्ति ।

—सक० पृ० ४१३

४ यद्यथोक्तौ च कल्पनम् ।

—का० प्र० का० १०, १००

पुष्प प्रबालोपहित यदि स्यात् भुक्ताफल वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्तास्रोच्छपर्यन्त-एव हिमत्स्य ॥^१

इम पद्य में नव पत्तल पर रखा श्वेत पुसुम एव मूषे के ऊपर मोती ये सभावित है और श्लोक में उनकी स्थिति देखी जा सकती है। यहाँ पावनी के लान अङ्गों पर विखरी मुम्बान-मान का विम्ब कवि ने प्रस्तुत करना है। इमलिए उसका चित्रफन छाटा होने से चित्र भी छोटे-छोटे है। उपमान चित्र दा है ना उपमेय एक। फनस्वरूप बहुरंगी चित्र प्रस्तुत हुआ है। इसके विपरीत जहा चित्र-फनक बड़ा होता है और चित्रणीय भी अनुपात में बड़ा हो तो उम्मी प्रकार बड़ा चित्र प्रस्तुत किया जाता है। जैसे माध के "उभौयदि" आदि पद्य में उपमेय श्रीरूप का रक्ष स्थल है। प्रभावशाली पारूप चित्र प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है कि बक्ष स्थान विम्बीण वर्णन किया जाय। आन्तक में अङ्क विम्बत वस्तु क्या होगी? वर्ण के श्याम वर्ण में उसका भी वर्ण-नाम्य है। इस प्रकार दानों की आकार, आयाम एव वर्ण तीना प्रकार में समानता सिद्ध हो जाती है। पुन जाकाश-गङ्गा का प्रवाह दूज्या हाव में मोतियों के हार में वर्ण में समान कहा है। नदी का प्रवाह चौड़ा डाना है, इमलिए उसके प्रकाश में मोतियों का हार कई लडियों बाता सूचित होता है। दा समानांतर रेखाओं में गङ्गा के प्रवाह का प्रपात गले में पडे मोतियों के हार का चित्र ही प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यह विम्ब चित्रणीय पदार्थ के अनुपात के अनुरूप ही बडा है।

नाक में मभव होने पर भी अप्रयुक्त उपमान से बना चित्र—

सद्यो-भण्डित-मत्तहण-चिक्क-प्रस्पधि नारङ्गकम् ॥^२

इस पद्य में उपलब्ध होता है। हूण क्योंकि इम पृथ्वी पर वस्तुत विद्यमान जीव है। मदिग में उपरका एव स्वभावत रकावण किन्तु अनी-अमी किये गए और (Shave) के कारण और लान उसकी लुङ्डी इनी नाक की वस्तु है। पर कवियों की दृष्टि उजर न जान के कारण यह अयानि अर्थ ही रह गया है। इम उपमान की तुलना में उपमेय नारङ्गी का रङ्ग पाठक की अन्तर्दृष्टि को प्रत्यक्ष हो जाता है।

१ कुम० १, ४४। अस० में इमे अयम्बन्ध में मम्बन्ध रूपा अतिशयास्ति का उदाहरण माना है। पृ० २२

२ द्र ऊपर टि० ३८

३ माद०, ८, पृ० २६६

प्राचीन बाल म कवि रगा म स्वप्न स्पष्ट करन क लिए विविध उपमाना का प्रयोग करत थे । कविदाम ते दग्ग मदन पी भस्म को कपोत कबुर कह^१ कर उसका वण प्रत्यक्षत्व क्रिया है ना जाणा सो नी अस्ति श्याम^२ ककर उसके वण का भाव कराया है । किन्ही कवि न उदित हात मूष का वण कुड्ड बानर क रक्ततर कपोता क माभ्य म प्रदप्रय क्रिया ह^३ वाण रमान चवान पर एत उपमाना क द्वारा हा उमय म वण का प्रत्यक्षीकरण करान ह ।^४

रशनीपमा—उपमा का एक प्रकार रशनीपमा ह जिसम उपमयापमानभाव की शृङ्खला सो बँध जानी हे । उमर माभ्यम म यह शब्दचित्रा की एक गीत मा बतती है और उमर प्रका म उपमय का वैशिष्ट्य मूत हा जाता ह । उसका एक उदाहरण पाछे दिया जा चका ह । दूसरा वाल्मीकि रामायण क उत्तरकाण्ड म है । उसम दशरत आ और जसुरा क युद्ध का वणन है । जैसे—

शरमण यथा सिंहा^१ सिंहेन द्विरदा यथा ।
द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ।
द्वीपिनेव यथा श्वान शना मार्जारका यथा ।
मार्जरिण यथा सर्पा सर्पेण च यथाखव ॥
तथा ते राक्षसा सर्वे विष्णना प्रभविष्णना ।
इवति द्राविताश्चा य शयिताश्च महीतले ॥^२

शिलपटोपमा—शिल्पापमा जो शिल्प पर नी निभर करता है नी

१ कुमा० ४ ४७

२ वही ६ ३०

३ अयमुदयति मृदागच्छन् पद्मिनीनामुदयगिरिवनाला वानमदार-पुष्पम ।
विग्द्विधुरकोकद्वन्द्व-वृद्धिभिर्दहन कुपित गणिकपात काइतामन्नमासि ॥

—साद० पृ० २०२

४ तु० अस्तमुपयाति च प्रयकपयस्तमण्डल ला शक्ति स्तदक भदशक्तिपि
कमलिनीकामक कठार माग्मशिर पाण श्चिपि सावित्रे त्रयाभय तजसि
दहणनस्तमालश्यामन च मतिनयति व्याम व्यामव्यापिति तिमिर-मञ्जय ।

—हच० पृ० ७३

५ कथना रशनीपमा । यथावमुपमयस्य यदि स्यादुपदमानता ।

—साद० १० २५

६ द्र० ज० ७ पृ० ३०० टि० २६५

७ वा० रा० ७ ७ २० २२

दुहरे शब्दचित्रों की दृष्टि में बहुत महत्त्व रखती है। उसमें श्लेषरूपत चमत्कार भी रहता है। परन्तु यदि श्लेष दुर्बोद्ध हो तो चमत्कार की अनुभूति में रुकावट पड़ती है। वाण को शिष्टोत्तमा के विधान में सर्वाधिक सफरना मिली है। जैसे कादम्बरी के वणन में—

पूर्वावीमिव समुत्सार्गित-महाकुतुम्भुदव्यतिकरा शेषभागनिपण्णराम्, मनु
मानतश्चोमिवपटङ्गदरतनाबिह्वयमाणकृमुमरजा-वृमर-पादरगाम् शरदमिवापा-
दिनमानग-जम्भ-पक्षिर वापनीत-नीतकण्ठगदाम, गार्गीमिव श्वनाशुक्-रचितोत्तमा-
ट्गामरणाम उदग्निवेनाघनलेखामित मधुकरकुतनीतमालकाननाम् इन्दुमृति-
मिवाद्दाम-मामयाविताम गृहीतगुरकतत्राम ।

उन विशेषणा में कादम्बरी के अट गा का वणन करते हुए श्लेष के द्वारा उपमानों में सोष्ठव के प्रयोग में उनका अनिश्चय प्रस्तुत किया गया है।

पूण एव खण्ड द्विम्ब—यह उपमा यदि समस्तवस्तुविषया है तो उपमय का सर्वाट भूषणचित्र प्रस्तुत करती है। यदि एकदेशविवृतिनी है तो खण्ड द्विम्ब वक्षता है। समस्तवस्तुविषया पूर्णोत्तमा ही होती है। जैसे—

तन प्रतस्थे कौबेरी भास्वानिव रघुदिशम् ।
शररत्रैरिबोत्रीच्यानद्धरिष्यन् रसानिव ॥^१

इस पद्य में बाणा में उत्तर दिशा के राजाका का उद्गूलित करत हुए उत्तर प्रस्थान करत रघु की तुलना किरणा में भूमि का रस खींचते हुए उत्तरग-
यण का उमुल्ल म्य में की है। यहाँ उपमय जीव उपमान दाना के पूष चित्र प्रस्तुत किया गया है।

एकदाविवृतिनी उपमा में उपमा के किसी अङ्ग का साम्य आध होता है। जैसे—

नेत्रैरिवोत्पल पदममुत्तरिव सरश्चिप ।
पदे पदे दिभान्ति स्म चक्रबाके स्तनैरिव ॥^२

१ का० ३४३

२ ख०, ४ ६१ तु०—ओषम्यातवत्त्वाद् यत्र ह्यनक कारकमुपमानावभेयतया निदिष्ट तत्रानकपामपि प्रयाग । यथा तत इत्यादि ।

—मामुसि०, पृ० ४०३

३ एकदशविवृति-उपमा वाच्यत्वगम्यते ।

भवेता तत्र साम्यस्य ॥

—साद०, १०, २५-२६

तद वलाना यगपदुर्मिपितेन तावत
सद्य परस्परतलामधिरोहता द्वे ।
प्रस्पदमान परधतरतारमन्त—
श्चक्षस्तव प्रचलितभ्रमर च पदमम

यम पद्य म जन कं निद्रान्याग क कारण खनत नयना जीर सुयात्य क कारण विक्रमित हान कमन दाना का परस्पर तुलना का गदह प्रस्पदमानप रूपतरतारम और प्रचलित भ्रमर य दाना विशेषण उपमय और उपमान के साधारण धर्म ह तिनम दाना का विम्बप्रतिविम्बभाव बनता है । परस्परतुला क द्वारा ता इन दाना का परस्परिक जीपम्य प्रदान हाना । तब पर्याय म दाना क उपमानापमयभाव म उपमयोपमा स्वीकार करेंगे ता एम स्पष्ट म द स्पष्ट नहा योगी । समानिय जगनाथ न ता वाक्या म भा उपमयोपमा स्वीकार करने का जालाचना का है ३ एक वाक्य म भा याव दाना क विम्ब बन जात ह तो आवश्यक नहा ह कि ता वाक्या म हा यत्र अन्त कार हा यथाय म कवल म्ब्र कमनत सदश कमल मुवन वहन भात्र म काव्य का प्रयाजन सिद्ध नहा हो जाता तब तक कि वाङ्मय का साम्य का अनुभूति न हा जाय । अनुभूति हाने पर हा काव्य विम्ब बनगा समनिय—

कौमदीव भवती विभाति म कातराक्षि भवतीव कौमदी ।
अम्बजन तुलित विलोचन लोचनेन च तयाम्बज समम । ३

यम पद्य म तबत उपमानापमय भाव का चत्ता ह पर इतना कहन मात्र म स्पष्ट विम्ब नहा बनता समक विपरात—

सविता विधधति विधरपि सविभरति दिनति धामिन्य ।
धामिनरति दिनानि च मुल्लु दु ल वशीकृते मनसि ४ ।

यम पद्य म मुखदुःखवशीकृत मनसि यम कथन म सविता विधधति

१ ख० ५ ६६

२ तदवलगुना० तनि कालिदास पद्य प्रतिपाद्याधामुपमानापमययागु पदुपमेयोपमानभावाधामुपमेयोपमाया वाक्यभेदाभावादध्याप्नश्च ।

—ग० पृ० २०६

३ वही प० १६६

४ सविता० इति कथ्यचिद्व पद्य परस्परापमायामतिशय । न चय मुपमयापमेति शक्यत वक्तम । वही पृ० २०१

आदि वाक्यों में लक्षणा द्वारा सन्नापजनक पदार्थों का भी असन्नापजनक होना आदि धर्म अनुभूति के विषय बन जाने है और बौद्धिक विम्ब बन जाता है।

यद्यपि जगन्नाथ इस पद्य^१ परस्परोरमा मानते हैं उपमेयोपमा नहीं पर वस्तुतः परस्परोरमा पूर्वक मानन की आवश्यकता नहीं है अथ-याग का व्यङ्ग्यच्छेद इसमें भी सम्भव हो ही जाता है। केवल दुराग्रह छोड़ने की आवश्यकता है।

अन्त-चय—उस जल-वायु म-गुणानिरेक की अभिव्यक्ति के लिये उपमेय को ही उपमान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उसमें उपमेय सदृश मसार में अन्य कोई पदार्थ नहीं है यह सूचित किया जाता है। फलतः ऐम्ब विम्बि म विम्ब-प्रति-विम्ब भाव सम्भव नहीं है। परन्तु यदि वातावरण उस प्रकार का बना दिया जाय तो उसमें भी विम्ब-प्रति-विम्बभाव सम्भव होगा है। जैसे—

सागर चाम्बर प्रदम्बर सागरोपमम् ।

रामरावणयोयुद्ध रामरावणयोरिव ।^२

अप्ययदीक्षित ने इसका गूँठ शब्द भिन्न दिया है—

गगन गगनाकार सागर सागरोपम ।

राम रावणयोयुद्ध रामरावणयोरिव ॥^३

इसका कारण यह है कि पहले पद्य में सागर और जम्बर का परस्पर उपमानोपमेयभाव होने में उपमेयोरमा अलङ्कार है। हा, उत्तरार्ध में अनन्वय अलङ्कार है। क्योंकि युद्ध का ही उपमेय और उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया है। आकाश और सागर की विशालता और गहनता के प्रकाश में राम-रावण के युद्ध की भीषणता का व्यापक चित्र भासित हो उठता है।

इसी प्रकार 'जगति त्वमिदं न्य चिन्त्यमे'^४ इसमें पूर्व-वर्णित ग-गा को प्रभावुकता के प्रकाश में ग-गा के प्रभावतिशय की अनुभूति होती है।

हृदयक—रूपक अलङ्कार उपमा की ही भांति काव्यविम्ब के लिये महत्त्व-पूर्ण है। यद्यत्कि पश्चिमी आलोचकों ने उसे काव्यविम्ब से अभिन्न ही मान लिया है। लक्षणा के प्रभाव में उसमें विम्ब की स्वदेयता में आ जाती है। इस

१ उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वन्तवय ।

साद० १०, २६

२ वाग० ६ ११० २३-२४

३ कुवलय, पृ० १०

४ जगन्नाथ-महा-लहरी (पीयूष लहरी) १७

उपमा में दृष्टता ही अन्त है कि उपमान और उपमेय के अभेद का जाह्यार्थ ज्ञान जाना है। इस ही आशय या ताद्रूप्यप्रतीति कहते हैं। यद्यपि अप्ययदीक्षित ने ताद्रूप्य और अभेद या भेद किये हैं परन्तु यह उक्ति-वैधर्म्य ही है। “मुख ही चन्द्रमा है” यह शब्द अभेद है ता ‘मुख के रूप में चन्द्रमा है’ यह अर्थ अभेद है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत दाना की साथ-साथ रखने में दाना का सामूहिक विम्ब बनता है। परन्तु यदि समस्त-वस्तु विषयक परम्परित एव मात्र-रूपक में मञ्जिष्ट और सवात् शीघ्र शब्द चित्र बनना होता निरदृश्य एकदशिव। तब ‘मुख-कण्ठ रूप में मात्र में कवन मुख और कवन की अम्प्ट आकृति दृश्य शशी पर यदि मुख और कवन का समस्तवस्तुविषयक रूपक प्रस्तुत किया जायगा तो व्यापक चित्र बनगा। जैसे—

रावणावप्रह्वलान्तमिति वागमृतेन स ।

अभिवृष्य मरुत्तस्य कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥^१

यहाँ एक वस्तु चित्र प्रकृत जय का है नि रावण के सहाय देवताओं का इस प्रकार वाग्ना में सात्वता देकर विष्णु जन्तित ना गया। दूसरा अप्रकृत जय का है कि जनादृष्टि के कारण मृत में मुग्धमान नणादि का जन्तु की वर्णन सीधे कर मध अदृश्य हो गया। इस प्रकार यह गात्र गहनक पूर्ण विम्ब बनाना है। यहाँ दाना में चाक्षुष विम्ब है। जैसे शशी का चाक्षुष विम्ब सम्भव नहीं है और इस तरह में विष्णु के वचन ना नहीं है इसलिए रावण विम्ब भी नहीं बन सकता। परन्तु वस्तुतः ‘मृते’ कवि विष्णु के वचना का मध्य-प्रतिक्रिया जयनी टिप्पणी द्वारा प्रस्तुत कर रहा है। इसीलिए उक्त वचन में अमृत का आशय किया है ता कि मृत में पुनर्जीवन का सञ्चार करने वाला है। मुख की मारा वनस्पतिया का वषा से पाना पुनर्जीवन देकर रहता है। इसी प्रकार विष्णु द्वारा रावण का मार्ग का जाश्वामन दिया जाना देवताओं में हृदय में अपन राण का आज्ञा सञ्चारित हो उठी और उनके मुरन्नाय चेन्न खिन्न उठ। यही कवि का विवक्षित है। वागमृत के वषण की देवताओं पर प्रतिक्रिया कवन हृदय में अनुग्रह की वस्तु नहीं है प्रत्युत नरणा में दर्शा जाना जाता है। इसीलिए यह चाक्षुष विम्ब ही है पर उनके खिन्न

१ तच्च क्वचिप्रसिद्धविषयभेद पयवसित क्वचिदभेद प्रतीयमान एव नदाग्र-
प्रमाणमात्र पयवसितम् । —कृष्ण०, पृ० १६

२ पृ० १ ५०

न०—मथापि जयग्रहण कर्तात् सम्यग् अमृतन चरन जन्निवृत्त
निरादधति । —दृ० २७५

चेहरो से आशा का अनुभव यह भाव-नोक की वस्तु है। अतः यह भाव-बिम्ब बनता है।

श्लेष में करम्बित होकर यह रूपक सशिरष्ट बिम्ब प्रस्तुत करता है।
जैसे—

विकसितमुखीं रागासङ्गाद् पलतिमिरावृति
दिनकर-कररपृष्ठामन्द्रीं निरोक्ष्य दिशः पुर ।
जरठलवली-पाण्डुच्छाद्यो भृशः क्लृपान्तर
श्रयति हरित हृत् प्राचेतसीं हरिणद्युति ॥'

इस पद्य में प्रस्तुतार्थ प्रभाववर्णन है। कवि ने चन्द्रास्तमन एव सूर्योदय की समकालभाविता और उसमें होने वाले प्राकृतिक दृश्य का चित्र कई अलङ्कारों के रंगों से रंग कर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत चित्र है कि सूर्योदय निवृत्त होने ही पूर्व दिशा में छाया अन्धकार क्षीण हो गया। क्षितिज में कुछ आनोक छा गया। जलनिमा के प्रसार ने जँघेरा दूर कर दिया। जमण रवि-किरणों नक्षत्र होने लगी। परिणाम-स्वहृष चन्द्रमा का बिम्ब पकी हरफारेवडी के समान पीला या फीका पड़ गया, उसके अन्तर की श्यामच्छाया अत्यन्त मलिन दीखन लगी। और वह पश्चिम दिशा का आश्रय लेने लगा है।

इस पद्य में कवि ने कुछ शब्द जैसे "मुखी" "राग" "आवृति" "कर" "एन्द्री" "पुर" "क्लृपान्तर" "प्राचेतमी" श्लिष्ट प्रयुक्त किये हैं। पूर्वा के लिए "एन्द्री दिश" और पश्चिमा के लिए "प्राचेतमी" का प्रयोग नायिकाभाव का उद्बोधन कराने हैं ता दिनकर और हरिणद्युति अन्य शब्दों के मन्तिष्य से नायक के भाव का प्रत्यय कराने हैं। फलतः अब जय अथ का भान जाना है। चन्द्रमा रूपी नायक पहले पूर्वदिशा रूप किमी इन्द्र नामक व्यक्ति की पत्नी से काम श्रोता करता रहा। वह उस अनन्य प्रति ही अनुरक्त समझता था। परन्तु कुछ समय के पश्चात् उसने दग्धा कि दिनकर की किसी व्यक्ति ने हाथों में उसे लू लिया या पकड़ लिया। उनका हाथों का स्वयं पाकर उस एन्द्री का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा भावावेग में उसके शरीर से बस्त्र या उसका आचन भी नीचे खिसक गया। यह सब अनन्य दग्ध ही देखने जाना देखकर चन्द्रमा का मुँह उतर गया उसका रंग फीका पड़ गया, ईश्या और जवनाद में हृदय जोर मन्तिष्य हा गया और कोई और माग न देखकर वह प्रचेतनामक किसी व्यक्ति की पत्नी का आश्रय छोड़ने लगा।

इस प्रकार श्लेष जनक कार क द्वारा एक और तो प्राकृतिक दृश्य का सश्लिष्ट विम्व है। एन्द्रा दिश दिनकर' हरिण छुनि इन शब्दा म कोद आरोप नहीं किया गया है। विणपणा के कारण यद्यपि यहाँ ममामाक्ति घनता है परन्तु विश्वनाथ ने इस एकदाविवर्ति स्वरू हा माना है। उसके अनुमाय नायक और नयिका का जागर आथ होगा। उपरति वाता अर्थ शृंगारामाम को अनुमान कराना है। जरठनवती पाण्डुच्छाद्य यह उपमा औ गजव का रही है रण महा कमर हत इस निशान न निशान वा है, एक जार वह विस्मय का भाव ज मध्यक क रता है दूसरा जार खेद एवं सजानुभूति का।

इस प्रकार दृश्य और भावात्मक दाना श्री विम्व इस पद्य म है। परन्तु यदि जो प्रभाव और उत्साह का वातावरण प्रस्तुत करना चाहता है वह उपनिवृत्तान म मारा जाता है। क्या क यह परम्प्रीयन रति का वन हान म व्यभिचार का हा प्रभाव उत्पन्न करता है वा कि गिष्म समान क निए अलिकर है नन ही यथाशक्ती वाग उमन रम रें। नन यन निशान सजानुभूति क माय-माय उत्साह क भी मुखर हा म रता है। कसकि शृंगार का अनुकरण त्राम्य-जनक हाता है। ममाज म इस प्रकार अनाचार फैलान वाता क निए सजानुभूति नन हा म रती। जब इसी अने रः गमापण का निम्न पद्य-ममुदाय चातुप और मानस दाना प्रसार का मगजन विम्व प्रस्तुत करता है।

प्यान निदर राचन विनि श्व मतप्राप्तुना ॥

द्वैत-वाद्य सह स्य न शोकाभास विष्टुति श्रुणा ॥

प्रमोहानत-सहदेत सतापीदःश्रेणुना ।

आश्रातो दु ख शलेन महता ककेथी-सुत ॥^१

उसम भरत क हृदय पर पर दु ख र नाम को पवन म अ रापित किया है। ममम्वम्वमुदिपयक माय गम्वक क द्वारा जो व्यापक पूण विम्व बना है उसम भरत क मागमिक मनाप का अनुभूति जाता है। कवि का समवेदना का सबदन सामाजिक का भी जाता है। ममविष यह ममवेदन ममम्व विम्व है। पद्ये पद्य म इनप क कारण और विणपणा क प्रभाव म ममामाक्ति का मभावना रान पर भी प्रभाव क जराच्छनाय जेत म विश्वनाथ ने उसम एकदशविवर्ति स्वरू की स्वीकार किया है ममामाक्ति नन।

१ शृंगारानुद्धतिहास्य ।

२ वाग० २ ८४ १६ ४०

परम्परित रूपक भी बिम्ब के निर्माण में सहायक होता है। श्लेष के द्वारा उसे और स्पष्टता एवं रंगीनी मिलती है। जैसे—

बिद्वन्मानसहस्र वैरिकमला-सङ्घ कोचदीप्त-द्युते
 दुर्गामार्गणनीललोहित-समित्स्रवोकार वंशवानर ॥
 सत्यप्रीतिविधानदक्ष-विजयप्राग्भाव-भीम प्रभो !
 साम्राज्य वरवीर वत्सरगत वैरिञ्चमुच्चै त्रिषा ॥^१

यह मालाश्रित्यष्टपरम्परित रूपक का उदाहरण है। इसमें वण्य राजा म हस, सुय, शङ्कर अग्नि दक्ष और भीममन का आरोप श्लेष के द्वारा किया गया है। वस्तुतः इसमें साम्य शब्दवृत्त है जो कि श्लेष में उत्पन्न है। वास्तविक साम्य न होव में यह स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ता। विविध विशेषणा से सङ्केतित विभिन्न घटनाओं के परस्पर असम्बद्ध खण्ड बिम्ब बगने हैं। परन्तु सबके सम्मिलित होव में वण्य राजा के असाधारण प्रभाव का निष्पत्तय बिम्ब बनता है।

निरङ्ग रूपक भी खण्ड बिम्ब ही प्रस्तुत करता है। नैपुण्य ने इस वृत्ति को समतक ही तुर व परम्परित रूपक में इसमें पूरा बिम्ब अगने पत्र में रखा है—

निषीय यस्य क्षितिरक्षिण कपाम्बुवाद्रिने न यथा सुधरमपि ।
 नल सितच्छत्रिन-कीर्तिमण्डल स राशिरासी-मङ्गा महोज्ज्वल ॥^२

इसमें विमान कीर्ति-प्रसार में श्वेतच्छत्र का जागर निरट रूपक बनता है परन्तु आधार दण्ड आदि न होने से बिम्ब नहीं बनता। 'मण्डल' शब्द भी अकिञ्चित्कर हो गया है। अतः दूसरा पद्य प्रस्तुत किया है—

रस कथा यस्य मुधावधोरिणी नल स भूजानिरभूद् गुणाद्भुत ।
 सुवणदण्डैक सिततपत्रितज्ज्वलत्प्रतापावलिकातिमण्डल ॥^३

यहां "भूजानि" शब्द में समग्र भूमण्डल पर नव का अधिकार अभिव्यक्त होकर उत्तरार्थ में 'एन' शब्द को साधक कर रहा है। उसके अनुरूप अशेषशून्य-क्षयवृत्ति प्रताप को स्वणदण्ड एवं तदुत्पादित कीर्ति-राशि को अद्वितीय छत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार स्वणदण्डमण्डल विशाल श्वेतच्छत्र का

१ का० प्र० का० १० ४ ५ (उ)

२ नैच०, १, १

३ वही, १, २

चाक्षुष विम्ब उसमें मशिनष्ट धधकता अग्नि के सदृश उज्ज्वल प्रताप-मुञ्ज व चतुर्दिक् प्रमत्त यशाराशि का प्रभावात्मक विम्ब उभरता है ।

विश्वनाथ द्वारा उदाहृत निरड गम्पक व उदाहरण में भी^१ पुनकाड्कुर म कष्टकाग्र का आराध एकदेशी विम्ब ही बनाता है हल्की चुभन की सी ही अनुभूति होती है । इनमें चाटुका चगकार प्रधान है ।

उपमा की भाँति माधम्यमूलक होन पर भी कभी-कभी यह वैधर्म्यमूलक भी भिन्नता है । जैग—

सौजन्याम्बुमहस्थली शुद्धरितालेपयुभित्तिर्गुण—

ज्योत्सनाकृष्णचतुदशी सरसतायोगश्वपुच्छच्छटा ।

पंरेषाऽपि दुराशया कलिपुगे राजावली सेविता

तेषा शूलिनि भक्तिमात्र-सुलभे सेवा कियत्कौशलम् ॥^२

इसमें राजावली म सहजसुलभ दुगुणा को स्पष्ट करने के लिए वैधर्म्यमूलक मासापरम्परित रूप में बाधा गया है । सामान्य रूप से राजाओं को सौजन्य, आदि गुणा म रहित बताया जाता तो राजाओं की प्रकृति स्पष्ट नहीं होती । पर जब उन्हें मज्जनता रूपी जन के लिए महस्थल मदाचाररूप चित्र बनाने के लिए शून्य की दीवाल गुण रूपी चाँदनी के लिए कृष्ण पक्ष की चतुदशी एवं सीधेपन के लिए कुत्ते की पूछ बताया गया तो जन के स्वभाव अभाव से ग्रन्थ रेगिस्तान, विना आधार के चित्र बनाने की असफल चेष्टा, कृष्ण पक्ष की चतुदशी का अधकार एवं कुत्ते की पूछ का टट्टापन इनका विम्ब मास्तत्क म उतर आता है । उनके प्रकाश म राजाओं का इन गुणा म रहित हाना और उनके प्रति सर्वथा कुत्सा का भाव प्रतीति का विषय बन जाता है । उसके प्रकाश म भक्तिमात्र से सुलभता, यह शब्द कर का गुण स्वयं उनकी महत्ता की अनुभूति कराता है ।

अधिकारूढ वैशिष्ट्य रूपक

जब उपमेय में उपमान का आरोप करके हुए उपमान म कुछ ऐसा धम बताया जाता है जै कि सामान्य रूप म उपमेय में तो रहता है पर उपमान

१ दाम कृतागमि भवदुचित प्रभूणा

पावप्रहार इति मुर्दाग नाम दूने ।

उद्यत कठोर पुनकाड्कुर-कष्टकाग्र—

यद् भिद्यत मदु पद ननु सा व्यथाम ॥

—साद० १० पृ० ३०६

२ वहा पृ० २०७

मे दानो का अभेद सिद्ध करन के लिये आगोपित ही हो तो उसे आचार्यों ने अधिकारद्वैशिष्ट्य रूपक की मजा दी है ।^१ वामन ने उसे विगोपाकित स्वीकार किया है ।^२ इसका उद्देश्य भी विम्बनिर्माण ही है । क्योंकि विशेषण के द्वारा उस आधिक्यपादन का और क्या प्रयाजन हो सकता है ? उसे हाथ पैर वाले मानव का चार हाथ और मुख वाले व्यक्ति में साम्य अथवा अभेद कैसे हापा ? कैसे उनका एकाकारक विम्ब-प्रतिविम्बभाव होगा ? उदाहरण के लिये—

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरि ।

अभाल-लोचन शम्भुभगवान् वादरायण ॥^३

यहां वादरायण व्यास का ब्रह्मा त्रिष्णु और महान में ताद्रूप्य अथवा अभेद विवक्षित है परन्तु इन दोनों के चतुर्वदनत्वे चतुर्भुजत्व एव भालोचनत्व रूप कुछ असाधारण ज्ञम है नितक कारण वादरायण के साथ उनका ताद्रूप्याकारक विम्ब सम्भव नहीं है । अतः अचतुर्वदनत्व द्विभुजत्व एव अनाननाचनत्व रूप विशिष्ट धर्म में युक्त ब्रह्मादि का आगम किया है । फलतः इतर-मानवसामान्य के निरूपण में ब्रह्मादि के साथ एकत्व-बुद्धि सम्भव हो जाती है और उनका विम्ब बन जाता है । इसी प्रकार—

वेधा द्वेषा भ्रम चक्रे कातामु करकेषु च ।

तासु तेष्वप्यनासक्त साक्षाद्भर्गो नराकृति ॥^४

यहां किसी वष्य को मानव शरीर में स्वयं शिव बनाना अभीष्ट है परन्तु शिव के साथ उस वष्य की एकारमता ममान धर्म के बिना कैसे सम्भव होगी ? पुनः शिव तो कान्ता-मशिवपद्वत् होने में मानव-नामान्य में भेद रखते हैं । और उस अवस्था में प्रस्तुत का वैशिष्ट्य भी कैसे सिद्ध हापा ? अतः भ्रम या तामु तेष्वप्यनासक्त' के विशेषण भी साथ लगाया है । फलतः सामाजिक वैभव एवं विषय-भोग में अनाममित रूप सामान्य ज्ञम के कारण वर्ष्य और उपमान का ताद्रूप्याकारक विम्ब बन जाता है । कारिदास का—

१ अधिकारद्वैशिष्ट्यरूपक यत्तदेवतत ।

—साद० १०

२ एकगुणहानिकल्पनाया गुणसाम्यदाढर्षं विशेषाकित ।

—भा० सू० सू०, ४, ३ २३

३ अप्यदीक्षित ने 'वेधा द्वेषा' और 'अचतुर्वदनं' इन दोनों को क्रमशः अधिक्यभेदरूपक और न्यूनताद्रूप्य रूपक का उदाहरण माना है ।

—सुवत०, पृ० १७-१९

४ वही ।

अनाघ्रात पुष्प क्लिसलयमलून कररुहै-
रनाविद्ध रत्न मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्ड पुष्पाणा फलमिव च तद्रूपमनघ
न जाने भोक्तार क्मिह समुपस्थास्यति विधि ॥^१

यह पद्य भी इसी अधिकारबद्धवैशिष्ट्य का सुन्दर उदाहरण है। क्योंकि इस म श्रुतता क रूप म पुष्प त्रिमय रत्न मधु एव पुष्पकद का आराप किया है परन्तु अनाघ्राणव घनान के त्रिय अनाघ्रात आदि विशेषण इन उपमानों का अन्य पुष्पादि म अममायव सूचित करत है। फलत विम्बय की अनुभूति इन क साथ-साथ श्रुतता क रूप ना एक विलक्षण विम्ब बनता है। भण्डारे महाशय इस उक्ति म शान्तिदास का मानव-भौदर्य का जन्म-जन्मांतर क लक्ष का फल मानने वाला समझत हैं।^२

असमर्थ रूपक विम्ब नहीं—पर यह आगेप्य आरापित भाव उही पदार्थों का समव के त्रिनका विम्ब बन सकता है। उससे अभाव म आरोप का कोई अर्थ का नहीं है। उदाहरण क त्रिय—

मथ्नामि काव्य-शगिन प्रथितार्थरश्मिम् ।^३

इस रूपक का तीन्द्रिय। यहाँ काव्य का शशी क साथ विम्ब किसी भी प्रकार नहीं बन सकता, न तो यहा आनागराम्य है जो कि सर्वप्रथम भासित होता है न गुण त्रिया साम्य। चन्द्र शैत्यादि क अनुभव के कारण आह्लादक होता है ना काव्य भाव बाप क द्वारा आह्लादक होता है। इस प्रकार दोना म वैषम्य स्पष्ट है। विम्ब निर्माण की असामर्थ्य के कारण ही इसे आचार्यों ने रूपक का उदाहरण नहीं बताया है। कत्रि समय प्रसिद्धि म स्वीकृत उपमानों मे ही रूपक क अङ्गीकार का आशय भी यही है कि उनम तो सादृश्य की भावना परम्परा मे साग्रित है। परन्तु मनमाने उपमानों का आगेव करने मे उच्छृङ्खलता आन का भय है। समथ अवका अममय रूपक बनने म वह विम्ब का सिद्धि नहीं शक।

१ शाकु० २ १०

2 Kalidasa probab does not believe that human beauty is a freak of nature or capricious gift of God, but is the fruit or reward of capricious religious merit stored in many previous births
—Im of Kali p 43 44

३ माद० ६ प० ७५०

आचार्यों ने समस्त असमस्त, व्यस्त, व्यस्ताव्यस्त आदि अनेक भेद इस रूपक के लिये हैं। इसका तात्पर्य यही है कि व सभी प्रकार काव्य-विम्ब के निर्माण में सहायक हो सकत हैं। जहाँ अनुगामी धर्म होता है, वहाँ तो उसके आधार पर रूपक बनता है। उसके अभाव में श्लेषोत्पादित या उपचरित साम्य के द्वारा या आकारसाम्य में विम्बप्रतिविम्ब भाव प्रस्तुत किया जाता है। अनुगामी धर्म का उदाहरण 'अनाघ्रान' आदि पद्या में है तो शब्द-साम्योत्पादित धर्म 'विद्वन्मानसहस्र' आदि में है। उपचरित धर्म निम्न पद्य में पाया जाता है।

पयङ्को राजलक्ष्म्या हरितमणिमय पौरुषाब्धेस्तरङ्गो
भग्नप्रत्ययिवशोल्लङ्घविजयकरिस्त्यानदानाम्बुपट्ट ।
सङ्घामत्रासताम्यभ्रुरलपतियशोहस-नोलाम्बुदाह
पङ्क क्षमा-सौविदल्ल सनित्तिविजयते मालयाल्लङ्गलस्य ॥'

राजलक्ष्म्या पयङ्कशायिनी नदी हाती, अत उपचार में आश्रय अय लेना हाया। इसी प्रकार क्षमा में रानी का आराम शब्द में नली किया है, राजा के खड्ग का साविदल्ल या कञ्चुकी कहना तभी सगत हो सकता है जबकि पृथ्वी में रानी का आरोप होगा। इमलिय मालापरम्परित रूपक है।

परिणाम—परिणाम अलङ्कार का रूपक में जल्ल इतना है कि उपमान उपमद या काय-निर्वाहक होने से उपमेय में मन्था अभिन-प्राय बन जाता है। आगेप में ता दो पदार्थ पृथक् रहने में अमेद का आहाय ज्ञान ही हाता है। अथवा घट पट इन दोनो पदार्थों के समान मुख और चन्द्र के तात्त्विक भेद की बुद्धि तो रहती ही है। इसी लिये रूपक में लक्षणा स्वीकार करत है।^१ परिणाम में विषय और विषयी समान प्रयोजन-साक होने से सर्वथा अभिन्न बन जाते हैं। हाक अलङ्कार प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो के काव्य विम्ब साय-साय प्रस्तुत करता है किन्तु परिणाम दोनो का सम्मिलित है। उदाहरण के लिये—

१ अम० प० १२४

२ अत्र प्राञ्च 'विषयितावाचकपदेन विषयिवत्तिगुणवती लक्षणया सारापयोप-
स्थितौ विषये तस्याऽभेदेन सशर्णेण विशेषणतयात्रय । एवञ्च 'मुख चन्द्र'
इयञ्च चन्द्रवृत्तिगुणवदभिन्न मुखमिति धी । अत एवालङ्कारभाष्यकार
'लक्षणा परमार्थं यावता रूपकम्' उत्याह ।

वनेचराणा वनिता-सखाना दरीगृहोत्सङ्ग निपक्तभास ।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूरा सुरतप्रदोषा ॥^१

यम शनाग म हिमाचल की वनस्पतिया का अपनी आभा स वनधरा की दीपिका का प्रयोजन-साजन बनाया गया है जीर 'दरीगृहोत्सङ्ग निपक्तभाम' इसका इत प्रस्तुत किया गया है। यहाँ वनस्पतियों की दीप्ति मे गुफाएँ प्रकाशित होती हैं मान मे दीपक की भी जाति उमी प्रकार उभर जाती है। जम आनकल प्रचलित कृत्वा नामक पुष्प के पुष्पत्व एव कुत्ते की आकृति का समकान मे ही प्रत्यक्ष होता ह। तापय यह है कि जीपतिया क प्रयत्न क साथ मान दीपका भी प्रत्यक्ष जनदेन हाता है। इसी प्रकार भीना की कृशना का ममाचार नान पर अभिञ्चन राम का पुरस्कार क रूप मे किया गया हनुमान का आलिङ्गन^२ समकानिक और अभिन रूप म विम्ब प्रस्तुत करता है।

स्मरण—उपमान का दख मुन कर उपमय की स्मृति हा जाना स्मरण अनर कार कडा जाता है।^३ स्मृति नामन एक भाव भी है। दोना म भद्र यह माना गया है कि अलरकार मादृश्य पर आधारित रहता है किन्तु भाव सस्कार मात्र है और नामादि न श्रवण म या किसी अय कारण का दख नर उदबुद्ध हा सन्ता है।^४ जैम—

दिव्यानामपि कृतविस्मया पुरस्ता
वाभस्त स्फुरदरविन्दचारहस्ताम् ।
उदबोक्ष्य धियमित्र काञ्चिदुत्तरन्ती-
महभार्याञ्जलनिधिमन्यनस्य शौरि ॥^५

माघ क इस पद्य म स्मरण क आधार पर दा विम्बा की सृष्टि हाता है—

१ कमल हाथ म त्रिव किन्दलवम्बा सुन्दरी का सरावर म बाहर आना।

२ समुद्रमथन क समय कमल करा लक्ष्मी का समुद्र मे बाहर निकलना।

जतर वतना होगा कि दूसर विभव म १५ भूमि म विरमय मुग्ध कृष्ट दिव्य

१ कु०म० १ १०

२ एष सबस्य भूतस्तु परिष्वङ्गो हनुमत ।

मया कानमिम प्राप्य दत्तश्चास्तु महात्मन । —वा०रा०, ६, १, १४

३ सदृशानुभवाद् वस्तु-स्मृति स्मरणमुच्यते । —माद०, १०, २७

४ तु० नादृश्य-भूतकर्म्यैव स्मरणम्यालङ्कारनम् ।

अयस्य तु व्यञ्जितस्य भावत्वम् । —रग०, पृ० ७८

५ शिव०, ८, ६४

आवृत्तिया भी दी जाती है। यह स्मृति-विम्ब का अच्छा उदाहरण है। पद्य में लक्ष्मी की स्मृति के स्थान पर ममुद्र मयन की घटना का स्मरण वर्णित है। इस में लक्ष्मी की स्मृति व्यङ्ग्य होती पर 'श्रियमिब' कहन में वह पाठ्यायित हो गई है। 'जरविन्द' आदि पद्ये इगका अच्छा निदर्शन है।

विश्वनाथ ने राघवानन्द के मन में वैसादृश्य में भी स्मृति दिखाई है पर 'तु' निपात उनकी अद्वि निश्चित करता है। उदाहरण के लिये—

शरीरमृद्धी गिरिषु प्रपेदे यदा यदा दुःख-शतानि सीता ।

तदा तदाऽप्या सहनेषु सोरय लक्ष्मणि दृष्यौ गतदशु राम ॥^१

इस पद्य में वन के काटो की कृत्ना में राघवामाद के मुखो की स्मृति सीता के प्रति राम के मन में समझना जगती दिखाई गई है। इसे स्मृति भाव या प्रेमाङ्गत्कार ही मानना उचित है। 'गतदशु' निपात-विशेषण इसकी स्पष्टि करता है।

उल्लेख—अनेक व्यक्तिगत द्वारा एक व्यक्ति या वस्तु के अनेक प्रकार में देखे जाने तथा एक व्यक्ति या पदार्थ के एक ही व्यक्ति द्वारा विषय-भेद में अनेक रूप में देखे जाने के वर्णन में उल्लेख माना गया है।^२ इस प्रकार एक ही वस्तु के अनेक विम्बों की स्पष्टि होन में उनकी श्रुत खला धूमती फिल्मों की रील की भाँति प्रतीत होगी जिनके मध्य कण्ड खडा होगा। इस प्रकार यह अनेक कण्डविम्बा का सामूहिक रूप होगा। इसका उत्तम उदाहरण श्रीमद-भागवत का 'मल्लानामगनि' आदि प्रसिद्ध श्लोक है।^३ उसमें न केवल श्रीकृष्ण का विविध रूपों में वर्णन है जपित दशकों के भय आदि भावों में सम्बन्ध विम्बों की स्पष्टि भी है।

१ जरविन्दमिद वीक्ष्य सेन खञ्जनमञ्जुलम् ।

स्मरामि वदन तस्यां श्वाकचञ्चललीचनम् ॥ —साद० ३०३

० राघवानन्दमहापरास्तु वैसादृश्यात् स्मृतिमपि स्मरणालङ्कारमिच्छन्ति ।

तत्रादाहरण तेषामेव । यथा— 'शरीरमृद्धी' आदि । —वही, पृ० ३०३

३ क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतृणा विषयाणा तथा क्वचित् ।

एतस्यानैकधोलेखा य स उल्लेख इष्यत ॥ —वही, १० ३७

४ मल्लानामगनिनृणा स्मरन्त स्त्रीणा स्मरो मूर्तिमान्

गोपना स्वजनोऽयना क्षितिभृजा शास्ता स्वपित्रो शिशुः ।

मन्युर्भोजपते विराड्विदुषा तत्त्व पर यागिना

वृष्णीना परदेवनेति विदितो रग गत साग्रज ॥ —भाषु०, १०, ४३, १७

जब एक ही व्यक्ति एक वी अनक रूप में प्रस्तुत करता है तो व्यक्तित्व का साथ सम्बद्ध अनक घटनाओं का चित्र पृष्ठ भूमि में उभर आता है। उसका मूल में निहितभाव उनको परस्पर सम्बन्धित कर देता है। उदाहरण के लिये मरणान्त वाली का—

आव्रजन्तो ददर्शाथ पति निपतित भुवि ।
हन्तार दानवेन्द्राणा समरेष्वनिर्घतिनाम ॥
श्वेतार पर्वतेन्द्राणा वज्राणामिव वासवाम् ।
महावातसमाविष्ट महामेघौघनि स्वपाम् ॥
शत्रुतुल्य-पराक्रान्त वृष्टवेवोपरत धनम् ।
नन्दन नदता भोम शूर शूरेण पातितम् ॥
शार्दूलेनामिपस्यार्थे मृगराज यथा हृतम् ।
अचित्त सर्वलोकस्य सपताक सवेदिकम् ॥
नगहेतो सुपर्णो चैत्यमुमथित यथा ।

यह वचन उसका अन्तिम क पराक्रम-मूण शायी की चतुर्विधा पृष्ठ भूमि में उपस्थित करता हुआ उसका दुःख परत समाप्त प्राद व्यक्तित्व का शब्दचित्र प्रस्तुत करता है। कवि की उसका साथ सम्बद्धता नारा की विफलता चित्र को रगीन बनाती है। बीच-बीच में आई उपमाएँ उस चित्र की और स्पष्ट कर रही हैं। फलतः बाती और उसका आस-पास का एक बड़ा नावनामय वातावरण यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। कभी कभी एक व्यक्ति को अनक रूप में एक-दशकभेद में पथक-मृथक देखने के रूप में उसका व्यक्तित्व उभारा जाता है। यदि जय अलट कार का स्पष्ट उस भिन्न जाय तो उसमें और रगीनी आ जाती है। जैम—

विपुल नितम्ब विम्बे मध्येक्षाम समुन्नत कुचयो ।

अत्यायत नयनयोमम जीवितमेतदायाति ॥^१

इस पद्य में आती हुई मालविका का विभिन्न अंगों का वचन में सम्पष्ट चित्र उभारा है। इमानिय अंग अङ्गों का उल्लेख नहीं है। दूर से आते व्यक्ति पर स्थूल दृष्टि ही पड़ती है। इन्द्रिय वग आदि का प्रदर्शन शक्य नहीं है। एतद् मम जावितम' इस आगम में नायक की तद्विषयक रति, उत्सुकता रूप और आनुरता की भी अनुभव होता है। फलस्वरूप इन भावा का स्पष्ट में यह चित्र अत्यन्त सशक्त हो गया है।

१ वा०दा० × १६, २१-२५

२ मालवि० ३ ७

श्लेष के मश में यह अलङ्कार अधिक चमत्कार-गुण दर्शिलिये होता है कि उममें दुहरे विम्ब बनते हैं। (१) प्रस्तुत के गुणा का, (२) अप्रस्तुत का। अप्रस्तुत की महनीयता के प्रकार में प्रस्तुत का व्यक्तिव्व और उभर आता है। जैम वाणवृत्त पुष्पभूति के कणन प्रमट्ग में —

गुरुवंचसि, पृथुदरमि, विद्याला मनमि जनक तगमि, मुपात्र नेजमि, सुमन्त्रा र्हमि, बुध सदसि अर्जुनो यशमि भीष्मो वनुपि निषण्णो वपुपि, पन्धन समरे, गूर शूरमेतानमणे दक्ष प्रजा-रुमणि ।'

गुर में राजा की गरिमा का भी वाज होता है और बृहस्पति का भी। फलत बृहस्पति के समान उसकी वाक्पटता सूचित होती है। इसी प्रकार पथु शब्द में छानी की विस्तीर्णता और महाराज पथु का जैसा व्यक्तिव्व पुराणों में वर्णित है, वैसा ही महान व्यक्तिव्व पुष्पभूति का प्रतिभान होता है।

अप्रस्तुति

यह अलङ्कार रूपक से इनता ही सार्वत्र्य रखता है कि इसमें प्रस्तुत का निषेध भी होता है। जयथा आरार उमर भी जाना है।^१ प्रस्तुत का निषेध होने पर भी शब्दार्थ की सामर्थ्य में उमका विम्ब भी बनता है और अप्रस्तुत का भी। निषेध का यह अर्थ नहीं कि प्रस्तुत का बोध होना ही नहीं। या हो तो आर्थ निषेध में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों साथ साथ केंन रहे जायें। जैसे—

विराजति व्योम-वपु पयोधिस्तारामयास्तत्र च केनभङ्ग गा ।^२

यहा आकाश के शरीर में समुद्र और तारा के रूप में ज्ञान होने की बात कही गई है। साथ आरोप व्याज छन आदि शब्दों के प्रयोग में भी होता है। जैसे—

प्रियासु बालसु रतभमानु च द्विपत्रिन पल्लवित च विभ्रतम ।

स्मराजित रागमहोरहाड कुर सिवेण चञ्चवोऽचरणद्वयस्य च ॥^४

इस पद्य में हम को आनी चोच एवं पञ्जों की लानी के बहान अनुराग रूपी वृक्ष के दो पत्तियों वाले या किसलय रूप में बड़े हुए अकुर के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए पाठक का सबप्रथम उसकी ताज-नाल चोच और पञ्जा

१ हृष० २ पृ० २७१-७६

२ प्रकृत प्रतिविष्यान्य-स्थापन स्यादपह्नुति ।

—साद०, १०, ५६

३ वही, पृ० ३१३

४ नैच०, १, ११८

यह अर्थशेपानुप्राणित छेकापह्नुति है इसके द्वारा सबप्रथम वादिका की स्वाभाविक चेष्टा का विम्ब बनता है परन्तु निषेध करने और मक्षिका का नाम लेने पर उसकी भी इसी प्रकार की चेष्टाएँ होने से उसकी भारी हलचलें मूर्त हो उठती हैं।

उत्प्रेक्षा—जिस प्रकार काव्य-विम्ब की उपकारिका उपना है, उसी प्रकार उत्प्रेक्षा भी। काव्य विम्ब के प्रमुख उपकरण कल्पनास्व या चमत्कार इस अलङ्कार में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। जब दोनों में यह भेद किया जाना है कि लोकसिद्ध पदार्थ में तुलना करना उपमा का विषय है और लामा-सिद्ध पदार्थ के रूप में प्रस्तुत करना उत्प्रेक्षा का तो स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि इसमें नई उद्भावना होती है परन्तु वह अनिश्चयपयवभाषिणी होती है। जब यह अतिशयाक्ति में पृथक् हो जाती है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार के द्वारा बनने वाले विम्ब का एक उदाहरण प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है।^१ इन अलङ्कार के मूल में दो प्रवृत्तियाँ काम करती हैं—

- १ किसी वस्तु का दृष्टकर उसके सम्बन्ध में कौतूहल से तरह-तरह के विचार उठना। ये तक चितक, सदेह आदि कल्प में उत्पन्न होते हैं।
- २ देखी गई वस्तु की प्रतिक्रिया-स्वप्न उल्लाम या विपाद के अनुरूप उसको नया-नया रङ्ग देना।

परन्तु यह नया रङ्ग देने के लिए भी कोई आशय तो खोजना ही पड़ता है। वह आशय सादृश्य ही है। प्रस्तुत ही वस्तु-स्थिति का केवल अवास्तवत्व कल्पित कर देने में हममें प्रध्यवसान की भावना आती है। जब हम उस वर्ण को कल्पित वस्तु के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो उसका वास्तविक स्वरूप और मूर्त हो उठता है। जैसे चाँद जार छाई दूधिया चादनी का प्रकाश प्रत्यक्षगम्य बनाने के लिए दूध की धाराएँ पटने की कल्पना।^२ यद्यपि आकाश में दूध की धाराएँ का पतन संभव नहीं है तथापि उस प्रकार की सम्भावना का उद्देश्य

१ यदायमुपमानाशा नामत सिद्धिमच्छति । तदापमैव येनेवशब्द साधर्म्य-
वाचक । प्रदा पुनरप्य वाकादसिद्ध कविकल्पित । तदोत्प्रेक्षैव येनेवशब्द
संभावनापर ॥ —(चरवर्ती) सजीवनी, पृ०, ७२

२ इ० अ , , टि० ७७

३ विमिर-निकर-मद्ये रश्मयो यस्य योग मुतजल इव पट्टे क्षीरधारा
पतति । —मृच्छ०, १, ५७

यही है कि उस प्रकार का वातावरण निर्मित करके उसके परिवेश में वष्य को देखा जाय कि वह कंसा प्रनीत होगा। इस प्रकार नये रूप की सृष्टि की जाती है। वह जब तक पाठक या श्रोता को प्रत्यक्ष भासित न होगा, तब तक वष्य का आगम हृदयङ्गम होगा ही नहीं। उदाहरण के लिए—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वणतीवाञ्जन नभ ।
असत्पुहव-सेदेव दृष्टिविफलता यता ॥^१

यहां चारों ओर छाये अन्धकार की सघनता को स्पष्ट करने के लिए उसके द्वारा अङ्गों के लेपन और आवाज में काजल की वर्षा की मभावना की गई है। इसलिए इस उत्प्रेक्षा के द्वारा वह सघनता जितनी स्पष्ट प्रतीत हो रही है, उतनी बेचल अंधकार का नाम लेन में सम्भव नहीं थी। इसी प्रकार प्रतिक्षण बढ़ते अन्धकार के स्वप्न का प्रत्यक्षीकरण काजल की वर्षा की कल्पना में किया गया है।

इस उत्प्रेक्षा के द्वारा गेन्द्रिय और मानस या अमृत दोनों प्रकार के विष्व प्रस्तुत करने में वाण को असाधारण मफयता मिली है। पारिजातकुगुमगञ्जनी के गन्ध के वर्णन में कवि ने घ्राण-विष्व प्रस्तुत करत हुए—

अतिमुग्धभितयाऽनुलिम्बन्तमिव तपयन्तमिव, पूग्धतमिव घ्राणेन्द्रियम्^२ इन कल्पनाओं में गन्ध का प्रभाव स्फुट किया है। पुण्डरीक की अनुगाम-धर दृष्टि का स्पष्ट करने के लिए— 'रतिग्मन्ति स्पन्दमिव धरन्ती, अमृतमिव वर्षन्ती भद्रमुक्त्रितेव, बैदालमेव, तिद्राजडेव'^३ इन उत्प्रेक्षाओं में हृत् की वाग्ना की है। इन प्रसङ्ग में वाण न रस दृष्टि को सङ्कतित किया है। इनमें पहली सभावना में प्रसरत्, दूसरी में प्रेम तीमरी में मुकुटित, चतुर्थ में मज्जन्ती और पाचवी में स्थिरा दृष्टि सूचित की है। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

प्रसरत्-प्रेम्णा मुद्गर परिवल्लगडुवतम्
सप्रेम-स्यात् प्रेमगर्भं भवती ब्रवाप ।
मुकुल-सम्मील्पमानं मुकुलं वदन्ति
मज्जन्-नासाग्रनिष्ठं तु निमज्जितं स्यात्
स्थिरा स्थिरा विदूरा तरिताय-निष्ठाम ॥^४

१ काद. २, ३६२ (भास वाच०, १ १५, चारु० १, १६)

२ का०, पृ० २६३

३ वही, पृ० २७१

४ अलङ्कारसर्वस्व पर रेवाप्रसादवृत्त हिन्दी टीका, पृ० ५६६

इतम पट्टनी दा दृष्टि की भावगाम्भिरता एव महाश्वेतापर उमका प्रति-
क्रिया का प्रस्तुत करनी हैं दूमरी तीन मभावनाएँ दृष्टि क आकार क साथ-
साथ कारण की मभावना म सङ्घट्ट हैं, य अर्थ चरित्र की मानम स्थिति को
प्रत्यभाषित कर रनी हैं

तन्नूनभनामुत्पादयता विद्य करतत्र-परामञ्ज-क्लञ्जन य विगतिना नाघन
युगवाद्भुविन्दवस्तम्भ एतानि गति कुमुदकुवलय-मौगन्धिक-वनान्धुत्पन्नानि

उस वाक्य म कादम्बरी क संपातिगत्र का देखकर चन्द्रापीड क मन का
विस्मयातिरेक और अधिक मूत हो उठा है। ममार की कामल वस्तु कुमुद कुवलय
आदि जिन्ह देखकर लाग उल्लास का अनुभव करत है, जिसक ज्युविन्दु म
उत्पन्न हुए वह कितना सुन्दरी और कितनी सुकुमार हागा, यह मानम
प्रतिक्रिया इन उप्रेक्षा म भूनकला हा उठी है।

कभा-कभी उन अप्र-याशित मभावनाआ म मन्दहान^१ कार का भ्रम हान
भग जाता है—

रञ्जिता नु विविद्यास्तद-शैला नामित नु गगन स्यगित नु।

पूरिता नु विपमेपु धरित्री सहता नु ककुभस्तिमिरेण ॥^२

यहाँ अप्रकार क जतिशय म वृक्षा का कानिमा म रग दना आकाश का
भीच वका या दका हुआ सा लगना उर्वर-खाव^३ प्रदशा क मम दिखार दन म
उनका भरा जात और दिशाजा क अलखन का अप्रकार म मम क ककनित
कर दिया जाना मभावित है। इसम मारा अप्रकारमय वातावरण प्रत्यक्ष
हा उठा है। 'नु' निपात क आन म प्रश्नाय की प्रताति हान क कारण मन्दह
अल^४ कार का भ्रम हाता है पर वस्तुत उममकाटिकान हान पर ही मन्दह
हजा करता है। यहा दूमरी पक्ष ता ह ही नहीं। मभावित पर ही प्रबल है।

यह अनङ्कार वर्णना म अग्रिक जागानी हाता है और नई चलाना या
सभावना म या ता प्रस्तुत का रगीन बना दता है अथवा एक नउ ही मृष्टि
उत्पन्न कर दता है।

जगन्नाथ म सभावना क आग्रारभूत मादृश्य क आग्रार पर इमक कद नद
गिनाय है। उनम उह ता अय अन^५ कारा म मिश्रित रूप हा है। जैम रूपक
म मिश्रित हागा ता सन्काप्रेक्षा शतपाशुप्राणित हागी ना कितला प्रत्या गगा।
विम्ब प्रतिविम्ब भाव भा इमम स्वाकार किया है। मवका उद्देश्य यही है कि

१ जनङ्कार सवम्ब पर ख्याप्रमादृष्टे हिन्दी टाका पृ० २४४

२ साद०, पृ० ३२२

काव्य बिम्ब प्रस्तुत करना या मभावना के द्वारा प्रस्तुत की अप्रस्तुत के रूप में देखना । अप्रस्तुत के रूप में देखने पर भी बिम्ब-प्रतिबिम्ब-सम्बन्ध ही सामने आयेगा ।^१

सन्देह—उपमेय में उपमान का सन्देह उत्पन्न होने से ये अलङ्कार बनता है । इसमें भी उपमेय के साथ में उपमान को रखकर तद्रूपना का सन्देह चमत्कारी ढङ्ग से रखा जाता है । तुल्य का का उभयकाटिक ज्ञान होने में दोनों ही पदार्थों का बिम्ब उपस्थित किया जाता है । आचार्यों ने इसके तीन भेद स्वीकार किये हैं—शुद्ध सन्देह निश्चयगम निश्चयान्त ।^२ बिम्ब की दृष्टि से इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता । क्योंकि यह सन्देह भी वास्तविक न होकर आह्वय ही होता है । अन्तर इतना ही है कि प्रथम में आकाक्षा जित तन बनी रहती है, द्वितीय में मध्य-मध्य में निर्णय भी होता जाता है । तृतीय में तो आकाक्षा की निवृत्ति ही हो जाती है । बिम्ब पर प्रभाव पड़ेगा यदि उक्त सशय का भाव सादृश्य पर आधारित न हो एव चमत्कारी भी न हो । जैम—

अधिरोग्य हरस्य हन्त चाप परिताप प्रशमय्य बाधवानाम् ॥

परिणेष्यति वा न वा युवाय निरपाय मिथिलाधिराजपुत्रीम् ॥^३

इस पद्य में राम के मुकुमार शरीर का देखकर मिथिला-निवासिया का सीतावरण के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया है । यह सादृश्य पर आधारित न होने में न सन्देह अलङ्कार है न इसमें नीता या राम के शरीर का बिम्ब ही सम्भव है । इसी प्रकार—

मरकतमणि मेदिनीधरो वा तरुणतरस्तदरेष वा तमाल ।

रघुपतिमवलोक्य तल दूराद्दृष्टिनिक्करेरिति सशय प्रपेदे ॥^४

इस पद्य में यद्यपि श्यामवर्ण के कारण राम में मरकत मणि के पवन और तमाल वृक्ष का सन्देह प्रकट किया गया है परन्तु यहाँ सन्देह की वाटियाँ

१ द्वित्रिंशो हि तावद् धर्मोऽपि—स्वत एव साधारण साधारणीकरण-पायेनरसाधारणोऽपि साधारणीकृतश्च । स चौपाये क्वचिद्रूपक क्वचिच्छलेप, क्वचिदपह्नुति क्वचिद्विम्बप्रतिबिम्ब-भाव, क्वचिदुपचार, क्वचिदभेदा-ध्यवसायान्पोऽतिशय । —रग० पृ० ३०४

२ शुद्धो निश्चयगमर्भोऽथ निश्चयान्त इति त्रिधा । —साद०, १० ३६

३ रग०, पृ० २५६

४ वही, पृ० २५७

अप्रस्तुतों के ही सम्बन्ध में है जबकि 'स्थाणुर्वा पुरपो वा' की भाँति मन्देह प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के विषय में होना चाहिए। हा, व्यञ्जना में राम के श्याम वर्ण और शरीर के डोल-डोल का भान माना जाय तो एक विम्ब उसका और दो अप्रस्तुतों का विम्ब माना जा सकता है। अन्यथा विषय का भान न होने में भ्रान्ति का विषय बनता है।

साहित्य सुधा-सिन्धुकार के उदाहरण

द्विधाकृतात्मा किमपि दिवाकरो विधूम रोचि किमु वा हुताशन ।^१

इस पद्य में भी प्रस्तुत में अप्रस्तुत का सन्देह प्रकट करते हुए भी प्रस्तुत के स्वरूप की कोई स्पष्टता नहीं दी है। उन उभयकोटिक विम्ब की दृष्टि से यह भी उपयुक्त निदर्शन नहीं है। इसकी तुलना में—

इदं कर्णोत्पल चक्षुरिदं वेति विसासिनि ।

न निश्चिनोमि सततं किन्तु बोलायते मन ॥^२

इस पद्य में नयन में कर्णोत्पल का सन्देह तुल्यकोटिक होने में दोनों का खण्डविम्ब बनता है। माघ का—

गतं तिरश्चीनमनूहसारये प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविभुज ।

पतत्यग्रे घाम विसारि सवत किमेतदित्याकुनमोक्षिनं जनं ॥^३

इस श्लोक में भी विषय नारद का कोई वर्णन नहीं है। विमर्शनीकार इस ऋटि का नश्य करके एम स्थला में केवल विषयियों का सन्देह मानन हैं। उन का अनुसार सशय का उपयुक्त उदाहरण निम्न श्लोक है—

किं पटं कजं किमुसुधारकविम्बमेतत्

किं वा मूलं कलमहरं मदिरेक्षणाय ।

यदं दृश्यते मधुकराम-कुरडं गकान्ति

नेत्रद्वयानुकृतिं काण्ण्यममृष्य मध्ये ॥^४

१ भा० सु० सि० ८ (३०) ३०७

२ वही ८ (३०) ३०६

३ वही ८, ३०८ (३०)

४ तु०—अत्र (किं तारुण्यनरा० इत्यादी) प्रकृत्यास्तस्या सन्देहप्रतीति-
विषयस्वाभावाद् विषयिणा मञ्जर्यादीनामव सन्देहः । विषय विषयिणायथा-
किं पटं कजं इत्यादि ।

जगन्नाथ ने परगत सशय में अज्ञाहार्थ ज्ञान भागा है। परन्तु वहा भी यदि विषय का ज्ञान सशयता को नही होगा तो भ्रान्ति ही मानना होगा, सशय नही। यह सशय बिम्ब-प्रतिबिम्ब में भी हाता है। जैम—

सपस्तवा कि नृ विभक्ति बल्लरी सफुल्लपद्मा किमिष न पद्मिनो ।
समुल्लतत्पाणिपदा स्मितातनामितीक्ष्णार्ण समलम्भि सशय ॥^२

यहा पूर्वाध और उत्तराध में बिम्बप्रतिबिम्बभाव है।

भ्रान्तिमन्—विषय में विषयी के आहायज्ञान को भ्रान्ति या भ्रान्तिमान् कहा जाता है।^३

इस अलङ्कार में भी यदि प्रस्तुत के स्वप्न का वर्णन पहले करके तब पात्रों का उपमान की भ्रान्ति होने का वर्णन हा तो दोनों ही पक्षों का बिम्ब होने से पूण बिम्ब होगा। अबधा एन त्री पक्ष अर्थात् विषयी वा ही बिम्ब बन सकेगा, विषय का नही। उदाहरण के निम्न—

ओष्ठे बिम्बकलाशयालभलकेषु त्पावजम्बूधिया
कर्णालङ्कृतिभात्रि दाडिमफलभान्त्या च शोणे भणी ।
निष्पल्ल्या सकृदुरपलच्छब्दशामात्कलनाना मरी
राजन् पूजराज पञ्जर-शुके सद्यस्तथा मूर्च्छितम् ॥^४

यहाँ नाता का रानियों के हाथों में बिम्ब का, केजा में पके जामुन के फल का, भूपण में जडे लाल मणियों में अंगार के फल का उभन दिखाया है। यहा उपमेय और उपमान के धर्मा का उल्लेख नही किया गया है, वे प्रतीयमान ही हैं। इस कारण केवल बस्तुओं का आकृतिबिम्ब ही सम्भव है। पूण बिम्ब निम्न उदाहरण में दयेगा—

१ यत्र हि कविना परनिष्ठ सशयो निवृद्ध्यन प्रायःस्त्वज्ञानाहाय ।
—सं० प० २६४

२ अथ पल्लवफुल्लपद्मे पाणानिनयो प्रतिबिम्बकोद्भा पृथङ् निर्दिष्टे ।
—वही,

३ सवृक्ष धर्मिणि नाशान्मयन धर्म्यतरप्रकारका नाहार्यो निश्चयः सादुभ्रमप्रसो-
प्यश्चक्ष्मन्कानि प्रच्युते भ्रान्ति । सा च पशुपक्ष्यादितामसिमत वाक्सत्त्वमै-
वूथत स भ्रान्तिमान् ।
— सं०, पृ० २६६

४ अयं, पृ० १४१

अयमहिमरुचिभजन प्राचीर्चीं कुपियवलीमुखतुण्डताम्रविम्ब ।
जलनिघ्नमकरंरुद्रीक्ष्यते द्राड नवरुधिराहणमामपिण्ड लोभात् ॥^१

इसमें मय के मण्डल को वानर व ताल मुख के मदश वर्णित किया है । अत उसमें समुद्र स्थित जाका का मास-गण्ड का गभ लालिमा की समानता को लेकर हुआ है । इस कारण साधारण घम एक ही है ।

पुसिआ कण्णाहरण दणील किरणाहृआ ससिमऊहा ।
माणिणिवअणामि सक्ज्जलत्सुसड काए दहएण ॥^२

यहा कवि का विवक्षित है कि मानिनी प्रियतमा व उज्ज्वल कपोल पर पत्ती चन्द्रमा की किरणें कर्णाभरणरुचित इन्द्रनील मणि की किरणों से सस्पष्ट हाकर नील वण का लक्षित हुई । प्रियतम न अश्रु म प्रवाहित हाकर कपोल-स्थल तक आये उनको काजल की शड का मे पीछन व निमित्त छू लिया । यहाँ इन्द्रनाल मणि की किरण और चन्द्रकिरण का मणिदर्पण नुल्य कपाल पर कज्जल रखा का विम्ब प्रतिविम्बभाव है जिसत भ्रातिमान बनना है । फलत दोना पक्षा के विम्ब बनते है । ऐमे म्यना म ही पूण विम्ब बनते है ।

शोभाकर के अनुसार सदेह और भ्रान्ति विना सादश्य क भी हाने है ।^३ इसका उदाहरण उसने दृष्यरित स दिया है जिसम हृप राजनक्ष्मी को अभिशाप पथ्वी को महापाप और राजा को रोग मानता दिखाया गया है ।^४ पर भ्रान्तिमान तभी हाना है जब प्रत्येता को प्रस्तुत का ज्ञान ही न हो । यहा एसी स्थिति नहीं है । अवसाद व कारण ही श्री आदि म प्रतिकूल बुद्धि होन का

१ विम० पृ० १५३

२ अत्र सक्ज्जनवेन्द्रनील किरणाहतत्वयाविम्ब प्रतिविम्बभाव ।

—अस०, पृ० १५३

३ सदहमभावनप्रायथास्ति प्रतीति भव स्फुट एव तदवत ।

सादृश्य-हेत्वतरयाभ्रमपु न लशत क्वाऽपि विशय-बुद्धि ॥

प्रतीतिभेदेन विना न वाच्य कुत्राप्यलङ्कारगतश्च भेद ।

निमित्त भेदन च भिन्नताया प्रसज्ज्यत सा खलु सशयादी ॥

—जर० (परि० श्लो०) ५३

४ दैवमपि हृप तदवस्थ पितशोक विह वलीकृत श्रिय शाप इति मही
महापातकमिति राज्य राग इति भोगान भुङ्गा इति निन्दय निरय इति
मयमानम हच० पृ० ५६

वर्णन है, अज्ञानवश नहीं। अन्यथा "प्रामादीयति कुट्या भिक्षु" मद्भूज प्रयोगा में भी भ्रान्तिमान् मानना हागा।

तुल्ययोगिता व दीपक—इन दोनों ही जलङ्कारों में प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों के समानान्तर काव्य-विम्ब बनते हैं।^१ पहल में केवल प्रस्तुता जथा अप्रस्तुत का एक धम से सम्बन्ध होता है ता दूसर में दोनों का बहुधा प्रस्तुत एक ही होता है तो अप्रस्तुत अनेक होते हैं। यदि एक प्रस्तुत अनेक अप्रस्तुत होंगे तो उनके उतने ही पृथक्-पथक् विम्ब हाग, पश्चात प्रभाव-साम्य में एक सश्लिष्ट विम्ब बनता है। तुल्ययोगिता में दो प्रस्तुता के सश्लिष्ट विम्ब का उदाहरण निम्न पद्य है—

सञ्चारपूतानि विगन्तराणि कृत्वा विनाने निलमाय गन्तुम् ।

प्रचक्षमे पल्लव रागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य भुवेश्च धेनु ॥^२

इसमें सञ्चारा के समय गाय के आधम को लौटने का प्रसङ्ग होने व कारण सन्ध्या एवं नदिनी गौ दोनों ही प्रस्तुत हैं। इन्द्रिण समान वर्ण वाली हान में दोनों का ही सश्लिष्ट विम्ब दो समानान्तर विम्बा के मिलन में बनता है।

अप्रस्तुतों के एक ऽम में सम्बन्ध होने में विम्ब नीचे लिखे पद्य में मिलता है—

यञ्चति बाल्ये मुद्गा समुदञ्चति गण्डसीमिनि पाण्डमनि ।

मालिन्यमाविरासीध राकाधिफलवलि-वनशानरम् ॥^३

इस पद्य में राकाधिप, लवली और वनक (मुद्गा) तीनों उतमान होने में अप्रस्तुत हैं। इनका सम्बन्ध "मानिन्यम् आविरासीन्" ऽम ऽम में किया गया है। यद्वा मुद्गरी के कपोलो पर यौवन-सुलभ पाण्डिमा का एवं चन्द्रमा हरफा-रेवती और मुद्गा के रग के विम्ब प्रस्फुट हो जाते हैं।

दीपक से बने प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के सम्मिश्र विम्ब का निदर्शन निम्न पद्य है—

१ (अ) निपताना सहृद्म मा पुनस्तुल्ययोगिता ।

—का० प्र० का०, १०, १०४

(आ) प्रकृतानामप्रकृताना चैकमागारणधर्मावयो दीपकम् ।

—रग० पृ० ३२२

२ ख०, २, १५

३ रग०, ३१८

बलावलेषावधुनापि पूर्ववत्प्रवाचयते तेन जगज्जिगीषुषा ।

सती च मोषित्प्रवृत्ति मुनिश्चला पुमात्तमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥^१

यहा पत्त्रिता स्त्री और मानव का स्थिर प्रवृत्ति का विम्ब-प्रतिविम्बभाव प्रस्तुत किया गया है। विम्ब प्रतिविम्बभाव का यहा भी पारिभाषिक शब्द म नहीं बना चाहिए। वचन परम्पर साम्य मे तात्पर्य है। इसी प्रकार—

कृपणानां धन नागानां फणमणि केसराणि सिंहानाम् ॥

कुलबालिकानां स्तना कुत स्पृश्यन्ते अमृतानाम् ॥^२

यहा प्रस्तुत कुलबालिकानां स्तना और शय अप्रस्तुत हैं त्रिनका “अमृतानां कुत स्पृश्यन्ते इमं धम म मम्बन्ध किया गया”। परम्पर समान वस्तुत्व होने क कारण इनका विम्ब सरचना म बन जाता है।

प्रतिबन्तूपमा—बन्तु प्रतिबन्तुभाव पर आधारित यह अलङ्कार एक ही धर्म का दो भिन्न-भिन्न अंशों मे कहने म बनता है।^३ फलतः पूर्णोत्पत्ति की ही भाँति साम्य क स्पष्ट ज्ञान म विम्ब बनना सरल है। बन्तुप्रतिबन्तुभाव पर आधारित उपमा का एक उदाहरण उपमा के प्रसङ्ग मे दिया जा चुका है। अथ उदाहरण—

भानं सद्दुयुक्तं तुरटं ग एव रात्रिर्दिव गन्धर्वह प्रयाति ।

शेष सर्ववाहितं भूमिभारं पृष्ठाशवृत्तेरपिधर्म एव ॥^४

यहा सद्दुयुक्त-तुरटं ग अथवा घाटा एक बार ही आतना जोते कर खोना ही नहीं एव रात दिन चलता एक ही बात है निम्न पृथक्-पृथक् शब्दा मे कहा गया है। इस प्रकार एक ही साधारण धर्म ज्ञान मे दाना वाक्या की समानता के आधार पर विम्ब बनता है। विश्वनाथ न मानाप्रतिबन्तूपमा' एव

१ शिव० १७२

२ का० प्र० का० १० ४५७ (३०)

३ प्रतिबन्तूपमा सा स्याद वाक्यधर्मसाम्ययो ।

एकार्षि धम मामाया यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥ —साद० १०, ५०

४ शाकु० ५ ४

५ विमल एव रविर्विशद शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पण ।

शिवगिरि शिवहाम महाधर सहज-मुन्दर एव हि मज्जत ॥

वैशम्यमूलक प्रतिवस्तुपमा^१ के भी उदाहरण दिये हैं। उनका तात्पर्य भी यही है कि समान वाक्यार्थों के द्वारा अभिप्रेत आशय को मूर्तत्त्व किया जाय।

दृष्टान्त

बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव पर आधारित यह अलङ्कार स्पष्ट ही काव्यबिम्ब की धारणा लिए हुए है। इसमें वाचक शब्द का प्रयोग ता नहीं होता पर दो समानान्तर वाक्य मिलने-जुलने भाव होने से एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं। उपमेय-उपमानभाव वाच्य न होकर व्यङ्ग्य होता है। इसमें उपमा की भांति केवल उपमेय और उपमान का ही बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव नहीं होता अपितु घर्मों का भी होता है। इमीनिय यथा प्रम को मा प्रारण न बह वर समान ही बह जाना है। क्योंकि साधारण घम ता बह जाता ता दोना पक्षा म रहे। इसी निये विश्वनाथ ने 'सप्तमस्य वस्तुन'^२ और श्येक न "तस्यापि"^३ महत्तर समान घम का उद्धृते किया है। जैसे—

तपति तनुगानि भदनस्वात्मनिश भा पुनदहत्येष ।

म्लपयति यथा शशाङ्क न तथाहि कुमुदवती दिवस ।^४

इस पद्य में पूर्वाध और उत्तराध अथ म भिन्न ज्ञान पर भी भाव में समान हैं। इसलिये दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव होने से दृष्टान्त अलङ्कार बनता है।

निदर्शना—बिम्बप्रतिबिम्ब-भाव की दृष्टि में दृष्टान्त अलङ्कार की भांति यह भी काव्य-बिम्ब के निर्माण में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। 'सप्तमवद्-वस्तु सम्बन्धा निदर्शना' में तो बिम्बप्रतिबिम्बभाव समान व्यापार के कारण बाना ही है 'असम्भवद्वस्तुसम्बन्धा म भी वह अध विधान्त के निये अनिवाय होता है'। जैसे—

१ अर्थात् एव चतुराश्वद्विधाचामकमणि ।

विनाबन्तीन निपुणा गुह्यगो रतन्मार्ग ॥ वही

२ तु० दृष्टान्तस्तु सधमस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनम् ।

—वही, १०, ५१

३ तस्यापि बिम्बप्रतिबिम्बभावतया निदेशेदृष्टान्त । अतः २७

४ शकु० ३, १६

५ त्रिभयं स्व-स्व-कारणया सम्बन्धो च उपमा-परिकल्पकोऽवगम्यते सा अपरा निदर्शना ।

—सा सु सि० ८, २२३

६ असम्भव-वस्तुसम्बन्ध उपमारिकल्पक ।

—का० प्रा० का० १०, २७

कोऽत्र भूमिवलये जनान् मृधा तापयन् सुचिरमेति सम्पदम् ।
वैश्यन्निति दिनेन भानुमानाससाद चरमावल तत ॥

इस पद्य म दा वृत्तान्त प्रस्तुत है (१) व्यर्थ म सत्ता-मद म नागा को मनाकर अप्रिक दिन उन्नत न रू मकता (२) दिन भर वाक का नपाकर मूय का मायकाल क समय अन्त हा जाना —य दोना परस्पर समानता त्रिय है। इस समानता क जात्रा पर य विम्ब प्रतिविम्ब-भाव म मूर्त हो जाता है।

अमम्बवदवस्तुनिदर्शना म तो विम्ब प्रतिविम्ब-भाव क बिना वाक्याथ-विश्रान्ति ही नही हानी। जब विम्ब प्रतिविम्ब-म व हाना है तो काव्यविम्ब की सत्ता स्वय मिद्ध हो जाती है। विशेषकर वाक्यार्थवृत्ति निदर्शना म जहा दो सवथा परस्पर असम्बद्ध वाक्य माथ-माथ रख जात हैं, उमानानामेय नाव के द्वारा ही उनको परस्पर सम्बद्ध किया जाता है। जैम—

शुद्धान्तदुर्लभमेव वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृता खलु गुणैश्छानलता वनलताभि ॥^१

यहा राजावा क जन पुर की र निप्रा म दुर्लभ मी इयं क। तस्मिन्-श्रमाभा म ज्ञान और वन की नवात्रा द्वारा उद्यान की नवात्रा के निम्नतन किय जान म परस्पर कोड सम्बन्ध न होत क कारण उमानानामेय-भाव की कल्पना की जाती है। इसने विम्बप्रतिविम्ब की यात्रा होती है। इसम जसात्राण मी इय की छाया मस्तिष्क म मूम जाती है। तान एव क अनुभवा यहाँ प्रतिबस्तूपमा है^३। यह एव का प्रम हूयगे उन्मु म दखन क कारण भी होती है। जैम—

योऽनुभूत कुरडशाश्यास्तस्या मधुरिभाऽपरे ।
समास्वादि स मृद्धीका रसे रस विशारदं ॥^४

इस पद्य म कुरङ्गाणी क अत्र क। म मूय शर क रस म पान का वर्गेन आपानत मङ्गत प्रतीत नही होता। अब यहा उमानानामेयभाव की कल्पना हुई कि अत्र-रस मृद्धीका रस क तुल्य स्वादिष्ठ है। फलत दाना के विम्ब-प्रतिविम्ब-भाव म अत्र रस क स्वाद का अनुभव द्राक्षारस क अनुभव की तुलना

१ माद० पृ० ३३१

२ जाक० १ १७

३ अत्रान्त पुरेपूजानपु च वपुरो नवाना च दुर्लभ व समानो धर्मो वाक्यद्वय दुर्लभ दूरीकृता इति पृथगुपात्त । अर०, पृ० १८

४ साद० पृ० ३३३

से जाना है। तात्पर्य यह है कि यहाँ चाक्षुष या श्रावण विम्ब न बनकर रस-विम्ब बनता है। यद्यपि अलङ्कार-मन्त्रस्वकार द्वारा दिये गये वाक्यार्थवृत्ति निदर्शना के उदाहरण —

त्वत्पादनतरताना यदलक्षतकमार्जनम् ।

इदं श्रीखण्डलेपेन पाण्डुरीकरेण विधौ ॥^१

इस पद्य में लोभानर^२ और जगन्नाथ न वाक्याथ^३-रूपक स्वीकार किया है परन्तु इन दोनों वाक्यों के अर्थ में परस्पर कोई सम्बन्ध या मङ्गति न होने से उपमानोपमेय-भाव के बिना कोई गति नहीं है। रूपक के उदाहरणा मुखचन्द्र आदि में कोई विमङ्गति का अनुभव नहीं होता है।

ये मानारूप में भी पाई जाती हैं जैसे—

म खनु धमबुद्ध्या विपयता सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिशलता-
मानिङ्गति, कृष्णामुरुधूमलवेति कृष्णसपमवगूहति रत्नमिति ज्वलत्तममङ्गार-
मभि रगति, मृणालमिन बुष्टवारणदत्त मुगलपुन्मलधति मृदा विपयायभो-
गेष्वनिष्टानुबन्धिषु य सुखबुद्धिमारापयति ।^४

व्यतिरेक—उपमेय का उपमान में अधिक गुण वाला वर्णित करने से व्यतिरेक अलङ्कार बनता है।^५

विम्ब निर्माण में इसकी उपयोगिता तुलना की दृष्टि से है। एक पदार्थ विपक्ष गुण वाले अन्य पदार्थ की तुलना में अधिक स्पष्ट होता है। जैसे श्वेत चर्मे की वस्तु पर काला या अथ गहरा रङ्ग अधिक चिन्तता है। दीपक का प्रकाश जलप्रकार में उज्ज्वल होता है, प्रकाश में नहीं। अतः कम गुण वाले की तुलना में रखने से उपमेय का स्वरूप अधिक प्रकाश में आ जाता है। जैसे—

इत्युक्त्वा मृग शावाक्षीमलातसवशेक्षणा ।

अभ्यधावत्सुकुदा महोत्का रोहिणीमिव ॥

१ अलं., पृ० २७३

२ इत्यादी वाक्याथयो गमामङ्गिकरण-निर्देशाच्छैतारापमद्भावे न वाक्याथ-
रूपक बध्यते इति निदर्शनाबुद्धिम काया । अर०, पृ० २१

३ रग० पृ० ३४२-४३

४ का०, पृ० २५६

५ उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेक म एव स ।—का० प्र० का० १०, १०५

६ वारा० ३, १८, १७

यहा मृगशावाक्षी और अलातमदृशेक्षणा य दोना विज्ञेयण परस्पर विराधी नोन म मोता और शूर्पणखा न क्रमण सुन्दर एव भयङ्कर रूप को प्रयक्षवत करत हैं। इसी प्रकार महात्का और राक्षिणी य उपमय जोर उपमान वैधम्य लिय हुए शूर्पणखा क भीषण रूप की तनना म सीता की मुकुमारता वा अभिव्यक्त बग्न ह। यहाँ यह स्वल्प गत वैधम्य (Contrast) मोता की और शूर्पणखा का जाखे क परस्पर विराधी रूप का मूल करने म बहुत सफल रहा है। इसी प्रकार—

अकलङ्क क मुख तस्या न कलङ्क की विधुयथा ।

रम पक्ष म मुख के निष्कलङ्क कत्व एव चन्द्रमा क कलङ्क कत्व दुस वैधम्य म दोना का स्वल्प स्पष्ट हा जाता है ।

क्षीण क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिव्यक्त सत्यम् ।

विरम प्रसोद सुन्दर धीवनमतिर्विरित यान् मु^१ ॥

इसम चन्द्रमा का कृष्ण पक्ष म क्षाण होकर शुक्ल पक्ष म पुन वड जाना सबको प्रत्यक्ष है उसकी तनना म यौवन क अधिक जस्थिरता सबका प्रयक्ष सी हो जाती है । इस प्रकार विम्ब ग्रहण म व्यतिरेक का उपयोग स्पष्ट है ।

कुछ लोग उपमान म उपमय की यूनता प्रकाशन म भी व्यतिरेक स्वीकार बग्न हैं। विश्वनाथ ने उसका बहुत समर्थन किया है।^२ जहा तक उदाहरण की सन् गति का प्रश्न है विश्वनाथ का मत बहा सड गत हा जाता है परत विम्ब निमाण की दष्टि म वह इतना उपयोगी सिद्ध नहीं होता। सभवत अय आचार्यों ने इनालिये उस प्रकार की चर्चा नयी की या अस्वीकार ही कर दिया ।

प्रतीप

साम्य मूलक अलङ्कारो म एक प्रसिद्ध अलङ्कार प्रतीप भी है जिसम प्रसिद्ध उपमय को उपमान क रूप म प्रस्तुत किया जाता है। इससे उपमय का प्रतिविम्ब रूप म और उपमान का विम्ब रूप म प्रस्तुतीकरण हाता है। जैम—

एषा घम परिक्लिष्टा नवचारिपरिष्कृता ।

सीतय शोक-सतप्ता मही वाप्य विमुञ्चति ॥^३

१ साद० प० ३३४

२ वही ।

३ उपमानान्पुनतायवा । साद० १० ५२

हनूमदार्थं यशसा मया पुनर्द्विषा हर्षदूतपथ सितावृत्त । पृ० ३३२

४ वारा० ४ ५८७

यहाँ उत्तरार्द्ध में धूप में तपी और नव वर्षा में भाप छोड़ती पृथ्वी की तुलना शोक में सन्नत सीता में की है। वाष्प के भाप और जलू दोनों का वाचक होने में श्लेष यहाँ उपकारी मिश्र हो रहा है। यहाँ पृथ्वी और सीता का विम्ब प्रतिविम्बभाव भी बन रहा है। क्योंकि पृथ्वी धम-परिक्लिष्टा है जबकि सीता शोक-मन्तप्ता है।

परन्तु 'नववर्षारिपरिप्लुता' यह विशेषण पृथ्वी के साथ अधिक है। वाष्प-विमोचन दोनों में अनुगामी धम बन गया है। फलतः यहाँ दोनों का कव्य-विम्ब अच्छा है।

अप्ययदीक्षित ने प्रतीपअनङ्कार के पांच भेद गिनाए हैं^१। जिनमें मूल भाव प्रसिद्ध उपमेय का उपमान बनाना सुरक्षित रहता है। उसमें भी विम्ब निर्माण की क्षमता अच्छी है। जैसे—

अहमेव गुरु मुदाक्षणानामिति हालाहल^१ तात मा स्म दृष्य ।

ननु मन्ति भवादशानि भूयो भुवनेऽस्मिन् वचनानि दुजनानाम ॥^२

यहाँ दुजनों के वचन को शलाहन में भी कठार बताया है। हालाहल से बदन बताने में श्लेष वचन की तीक्ष्णता का अतिशय प्रयत्न सा अनुभूत होता है। कहीं उपमेय का निरस्कार करके उपमान के गुण का आधिक्य रही उपमान का निरस्कार करके उपमेय का आधिक्य वर्णित होता है। कहीं उपमान में उपमेय के औपम्य की ही असंगति कही जाती है तो कहीं उपमेय के रहते उपमानों का ध्वज चला दिया जाता है। य सभी भेद उपमेय और उपमान के स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण करके अलग-अलग उत्पन्न करते हैं। इस लिये विम्ब-निर्माण की दृष्टि से सभी उपयोगी हैं।

१ कुव्ल०, १२-१७

२ वही, १४ (उ०)

दशम परिच्छेद

काव्य-विम्ब एव सादृश्येतर-सम्बन्ध-मूलक अलङ्कार

पिछन अध्याय में हम देख चुके हैं कि साम्य-मूलक अलङ्कार सादृश्य सम्बन्ध के द्वारा शब्द चित्रा के निमाण में मन्वया मट एक हात हैं। पर सादृश्य में भिन्न सम्बन्धों पर जागरित अनट कार भा इम कार्य में कम उपयोगी नहीं होत। उनमें से कुछ गुणोभूतव्यंग्य के स्थान में ही चमत्कारी हात ह। एम अनट कार में मन्वप्रथम समामाक्ति अनट कार जाता है।

समासोक्ति— यह अनट कार नाम में अपन स्वल्प का इतना ही प्रकट करता है कि इसमें थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कहा जाता है। अस्तुत कार्य निरन्तर अथवा विशेषणा के प्रभाव में इसमें लक्ष्य में अवश्य के व्यवहार का आरोप हाता है। वष्य में शब्द का प्रयोग न हान पर भी विशेषणा के शिष्ट या अश्लिष्ट ज्ञान में अप्रस्तुत के व्यवहार की प्रतीति हाती ह। इसी कारण इसके नाम की अन्वयना में कि उन थोड़े से शब्दों में ही अप्रस्तुत का भी वाच्य हा जाना ह। अप्रस्तुत व्यंग्य हाता है परन्तु वाच्य के समान ही स्पष्ट हात या वाच्य के समान ही प्राप्ता हात में यह अनट कार की श्रेणी में आता ह।

मानवीकरण— पाश्चात्य काव्यशास्त्र सम्मन अलङ्कारों में एक मानवीकरण भी है। यह आभाषिक काव्य का अतिमहत्त्वपूर्ण अङ्ग ह। इसी के माध्यम में कवि प्राकृतिक उदाहरणों में मानवी भावनाओं के दर्शन करता है। शैल की कविता कदाउत एव ओट टु दि वैंस विड कीटम की 'जाट टु दि नाडलिंगन' इसका मजीव उदाहरण है। यह मानवीकरण की भावना भारत में वैदिक काव्य से लेकर जाधुनिकतम समृद्ध काव्य तक पुष्कल रूप में पाई जाती है। उपा मविता मूकता में यह प्रवृत्ति प्रत्यक्ष है। रामायण का 'चञ्चच्चन्द्रो', आदि पद्य पद्य उदाहरण हा चुका है।^१ समासोक्ति के मूल में भी यह

१ समामाक्ति मर्मयत्र काश्चिद्गुणविशेषणैः । व्यवहार-समारोप प्रस्तुत-
ऽयस्य वस्तुन ॥

—साद०, १०, ५६-५७

मानवीकरण की प्रवृत्ति ही है। उदाहरण में भी स्पष्ट हो जाएगा कि इन अलङ्कार में कितने गुन्वर काव्य-विम्ब बनते हैं।

कार्य-साम्य—प्रस्तुत के वाक्य अप्रस्तुत के लुप्त हान के कारण कभी प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप होता है। फल-सम्बन्ध प्रस्तुत की चेष्टाओं का विम्ब तो बनता ही है अप्रस्तुत की चेष्टाओं का भी बनता है यही अप्रस्तुत की चेष्टाओं का प्रत्यक्षीकरण उसके व्यवहार का आरोप कहलाता है। पीछे उदाहृत “विक्रान्तमुखी” आदि पद्य में चिन्पट विशेषणों के कारण में मूय और चन्द्र में परम्प्रीलम्पट व्यक्तियों के व्यवहार का आरोप देखा था। निम्न उदाहरण में धान के पीछे चावला के भर पूषमान सिर पर रखे पट्तिनबद्ध गौराङ्गी कन्याओं के रूप में देखे गये हैं—

स्रजूर-पुष्पाकृतिभि शिरोभि पूर्णतण्डुल ।

शोभन्ते किञ्चिदान्त्रा शालय कनक प्रभा ॥^१

यहां निद्रुग की समानता न होकर काय की समानता है। भारतीय परम्परा है कि विवाह आदि के अवसर पर नववधू के स्वागत के लिए अथवा किसी मान्य अतिथि के स्वागत के लिए सिर पर पूषकलश अथवा चावले से भरा पूर्णतान रखे कन्याएँ द्वार पर खड़ी की जाती हैं। यहाँ आथ श्लेष अलङ्कार का प्रयोग “शिराभि” में देखा जा सकता है। क्योंकि उसका अर्थ अग्रभाग एव सिर दोनों होते हैं। “शिराभि” के स्थान पर “मूर्धभि” बर दे ता भी अर्थ की प्रतीति की हानि न होगी। जब विचार कर देखें कि पद्य में विवक्षित यह आशय सूत होता है या नहीं।

निद्रुग-विशेषण के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ के व्यवहार का आरोप तो बहुधा देखा जाता है। निम्नलिखित पद्य इसका अच्छा निदर्शन है—

सेवमाने दद सूर्ये दिशमतक्सेविताम् ।

बिहीन-तिलकेव स्त्री नीतरा दिव-प्रकाशते ॥^२

यहाँ ‘दिशम्’ गब्द-स्त्री-लिङ्ग है और ‘अतक्’ शब्द पुलिङ्ग है। “उत्तरा दिव” भी स्त्री-लिङ्ग है। “सेवमाने” यह धर्म ऐसा है या कि मूय में आशय अर्थ में उपचरित है। मूय में अप्रस्तुत नायक का व्यवहार करने पर

१ द्र० अ० ८, टि०

२ वा० १०, ३, १६, १७

३ वही, ३, १६, ८

मवमान का अपना मुख्य जय भुञ्जान या उपभाग कुर्वाण हा गगा ।
 फलस्वरूप मय म गठ नायक क व्यवहार का आगप व दक्षिण दिशा म अतक
 जल म बोध्य परशु रूप न अभक्तपूव (परम्परा) क व्यवहार का आगप जाता
 है उत्तगतिक म खण्डिता या गतिता स्वकाया नायिका क व्यवहार का
 वाप जाता है । तम प्रकार मय न दक्षिणायन गान म उत्तरदिगा क शानवहन
 हान का प्रस्तन अथ विम्बन गाना ३ पुन अपन प्रिय न परम्परागामी हान म
 शृङ्गार विधान स्वकाया नायिका का विम्ब बनता है । गान गान मूयमण्ड
 का निवक म विम्ब प्रतिविम्ब भाव है जा कि अशुभ है । तम प्रकार एक पूण
 विम्ब तम दखन का भिन्नता ४ ।

निम्नलिखित गान ७ गगा म ता यका क व्यवहार क गान कि गय
 है—

त्रियामे याति यामो वीक्षमे कस्यागन बाले ? ।
 प्रिय कस्त शुभ त्व वीक्षमे यस्यागन बाले ? ॥
 शशी द्वारे चिगादास्ते प्रसादाथ तव श्रीमान ।
 अत प्रयानसौ का वीक्षम यस्या गन बाले ? ॥
 इद नीलाम्बर चित्र तथा रत्नावनी तारा ।
 मुमञ्जा कि तदय वीक्षमे यस्यागन बाले ? ॥
 किमथ शोभन मकरतमिल कशपाशोऽयम ? ।
 शठी यानोऽयत किंवाथम यस्यागन बाले ? ॥
 मखा त कौमदा मूका दधाना दीपितामुल्काम
 विचन कि गता त्व वाथस यस्या गन बाल ? ॥
 सुख तिद्रा रम भानस्तवोऽसत् न शिशुलोक ।
 त्रिनिता त्व वराकी वीक्षसे कस्यागन बाल ? ।
 किमथ शोभन श्याम मूष त भानस दूनम ?
 अलज्ज को गतस्त्व वीक्षमे कस्यागन बाले ? ॥^१

तम गजन म गगा म विभिन्न नायिकाजा क व्यवहार क दशन कि गय है
 जा अपन प्रिय का प्रता ता म रात भर जाग ग्या ३ । इम प्रकार यहा काय
 माम्य ३ ता त्रियामा म स्वानि ग जोर क प्रिय म पुनि ग
 नि गमाम्य ४ वान मन्वाशन तम म स्त का स्पश करा दता है द्वितीय
 चरण म चन्मा म प्रिय क व्यवहार का आगप ३ । प्रसाद शब्द म शय क

कारण नायिकात्व की पुष्टि होती है। चन्द्रमा में निशापतित्व की बुद्धि त्रिक-प्रसिद्ध है। अत आरोग्य की आवश्यकता नहीं है।

तृतीय चरण में नीलाम्बर में श्लेष-रत्नक और रत्नावली तारा" मध्यम रूपक है, "सुमङ्गा" शब्द के प्रयोग में नायिका का प्रतीयमान काम्य राज्यान्व अगले खण्ड में "केशपात्र" का अङ्कार में अध्यवसान नायिकाभाव का पोषक है जो कि त्रिपाभा में खण्डिता^१ और विप्रलब्धा^२ के व्यवहार का आरोप कराता है। कौमुदी में नायिका की सखी का आराधन उसी का पोषण है। चारों ओर फैले प्रकाश में जलाई मणाल का अध्यवसान नायक की खोज के व्यापार में महाप्रयत्न है पर इसको अङ्ग्य नहीं मान सकते। चादनी के दूर दूर तक फैलन में रात्री के प्रियतम का खोजन की सम्भावना की गई है।

इस प्रकार इस गीतिका में विशेषण, काम और विदग्ग तीनों का वैशिष्ट्य काम कर रहा है। श्लेष अलङ्कार का प्रयोग इस अलङ्कार को अधिक चमकृत और प्रत्यक्षायित कर देता है। इस वर्णन में त्रियामा पाठक का विविध रूप में प्रतीक्षा करती दुवती के रूप में दिखाई देती है।

विशेषण-साम्य

समान विशेषण के प्रयोग में भी अप्रमत्त के व्यवहार का दशन होत है। श्लेष अलङ्कार का प्रयोग इसमें विशेष सहायक हाता है। जंम—

नवा लता गंधवहेन चम्बिना करम्बिनाडगी मकरन्दशीकर ।

दशा नयेण स्मितशीभि-कुड्मला दरादराभ्या दरकम्पिनी पप ॥^३

इसमें भी गन्धवह में पुनिट ग और लता में स्त्रीविदग्ग नायक नायिका के व्यवहार का साधक है "चम्बिना" शीकरं करम्बिनाडगी 'य विज्ञापन स्पर्श के अतिरिक्त चम्बिन व स्वेद-रूप नास्तिक भाव का वाचक है। स्मितशीभि-कुड्मला" में उपमा-रूपक सह के कारण नया स्मित" का लक्षणा में विकल्पित जय लेन में तुल्य विशेषणत्व सिद्ध है। 'दर-कम्पिनी' में एवनदशान लता के स्वाभाविक तर्कित हान में वेपथु की सम्भावना लता में नायिका-भाव का

१ वाक्वमति प्रियो अन्वा अन्वसन्नेगविहि नव ।

मा खण्डिइति क्विता जीरगीष्पाकपायिता ॥ —साद०, ३, ३५

२ प्रिय कृत्वापि मडकेन यस्या पायानि मदिप्रिम ।

विप्रलब्धा तु सा श्लेषा निशान्तमवमानिता ॥ —वही, ३, ६३

३ नैव०, १, ६५

व्यवहार को दृढ़ करती है। इसीलिए 'दरादगम्या' का मान्निष्ठ्य अनुकूल बैठना है। इस नायक-नायिका-भाव के व्यवहार के आरोप में मानवीकरण की प्रक्रिया पूरा हो गई है और प्रकृति के व्यापार में उनकी प्रेम-नीला के प्रत्यक्षकल्प दर्शन होते हैं।

शोभाकर ने ममामोक्ति के प्रसङ्ग में बौद्धिक विम्बों के भी उदाहरण दिये हैं। शास्त्रीय विषयों में भी एक शास्त्र के विषय में दूसरे शास्त्र के व्यवहार के आरोप में भी यह अनङ्कार स्वीकार किया है। जैसे—

सत्पक्ष सङ्गतिरुपोयसपक्षसत्त्वो

दरीकृताखिलविपक्षगतिनरेन्द्र ।

बोधोज्झितस्वविषय प्रतिपक्षहोतु

साध्य विषेहि विदुषा धृतसाधुवाद^१ ॥

यहाँ लौकिक विषय में न्यायमम्मत अनुमानमम्बन्धी पञ्चलक्षण के व्यवहार को आरोपित किया गया है। परन्तु इस प्रकार के विम्बों में मानवीकरण का प्रयोजन मिथ्य नहीं होता।

अप्रस्तुत-प्रशंसा — ममामोक्ति में विरोध इस अनङ्कार में अप्रस्तुत में प्रस्तुत अथ की प्रतीति होती है।^२ इसमें पहले वाच्यार्थ का विम्ब बनता है, तदनन्तर व्यङ्ग्य अथ का। व्यङ्ग्य अथ प्रायः बौद्धिक होता है। उदाहरण के लिए—

तावत् कोकिल विरसान् घापय दिवसान् वनास्तरे निवसन् ।

यावन्मिलदलिमास कोऽपि रसाल समुल्लसति ॥^३

जगन्नाथ के इस पद्य में कायन को आम के विकार तब किमी वन में रहने का उपदेश दिया गया है। पक्षी को इस प्रकार का उपदेश दिया जाना सम्भव नहीं है। अतः किमी दुःख में पड़े मनुष्य को अनुकूल समय आने तक किमी परदेश में दिन काटने के परामर्श की प्रतीति होती है। इसमें वाच्यार्थ-बोध के साथ ही उमका विम्ब बनता है और बाद में प्रस्तुत का बौद्धिक विम्ब बनता है।

१ अथ लौकिके नैयायिकादि-प्रसिद्ध-पञ्चलक्षण-हेतुव्यवहारारोपः ।

—अ०, (३०) २२२

२ अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् मा यत्र प्रस्तुताश्रया ।

—बृ०, ६६

३ जगन्नाथ—भावि, १, ६

इस अलङ्कार के सामान्य से विशेष और विशेष से सामान्य की, कारण से कार्य और कार्य से कारण की एव समान अप्रस्तुत से समान प्रस्तुत की प्रतीति रूप पात्र भेद माने हैं। परन्तु सबका उद्देश्य विम्ब प्रस्तुत करना ही है, भले ही वह ऐन्द्रिय हो या बौद्धिक हो। पिछले उदाहरण में अप्रस्तुत विशेष से प्रस्तुत सामान्य के बोध का विम्ब दिखाया जा चुका है।

ये दान्त्यभ्युदये प्रीतिं नोज्जति व्यसनेषु च ।

ते बान्धवास्ते मुहुदो लोक स्वार्थमरोऽपर ॥^१

यहां अप्रस्तुत मित्र की उन्नति से प्रमत्त होने वाले ही वास्तविक बन्धु है शेष स्वार्थी हैं, यह कारण रूप वाच्याय है। इससे प्रस्तुत व्यङ्ग्य है कि मैं हित की बात कह रहा हूँ, दान्तापिर मित्र और शत्रु को पहचानो, मेरी बात पर विश्वास करो। यहाँ पहले वाच्य अर्थ का विम्ब बनता है, बाद में व्यङ्ग्य का।

उद्भेजनीयो भूताना नृणां पापकर्मकृत् ।

ब्रह्मणामपि लोकनामोऽश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥

कर्मलोकविहृष्ट तु बूर्वाण क्षणदाचर ।

तीक्ष्ण तत्वंजनो हन्ति सर्वं दुष्टमिवागतम् ॥

लोभात् पापानि नुर्वाण कामाद् वा यो न बुध्यते ।

दुष्टं पश्यति तस्यान्त ब्राह्मणीकरकादिव ॥

न चिरं पापकर्मण ऊरा लोक-जुगुप्सिता ।

ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमा ॥^२

राम के द्वारा खर के प्रति कहे गये इन पद्या में सामान्य अर्थ अप्रस्तुत में कहा गया है। इससे प्रस्तुत विशेष का बोध होता है कि तू सारे प्राणियों का सत्ता बाला निन्दयी और पापी है, बड़े-बड़े सामर्थ्यशाली भी ऐसा आचरण करके शीघ्र मिट जाते हैं, तू तो हाया ही कौन है। तेरे जैसे अत्याचारी का सभी लोग मारना चाहते हैं, मैं ही नहीं। तू न पाप तो किए पर यह नहीं सोचा कि उस का परिणाम क्या होगा। तुम्हारे जैसे निन्दनीय कर्म करने वाले व्यक्ति धन-वैभव पाकर अत्याचार करते हैं पर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार यह भाव इन पदिक्रमों में प्रकट किया गया बौद्धिक विम्ब का निर्माण करना है। बीच-बीच में 'सर्व दुष्टमिवागतम्' 'ब्राह्मणी करकादिव', 'शीर्णमूला इव

१ ला०, पृ०, ११५

२ वाग०, ३, २६, ३-५, ७

द्रुमा' म उपमाय भी इस प्रकाशित अभिप्राय को मूल बनाने म महायक हैं। इनसे पहन वीद्विक विम्व बनता है और तत्रश्चात ऐन्द्रिय विम्व। मप का मृत्यु वश की जन्म खाखरी होना आदि प्रत्यक्ष विम्व हैं। इसी प्रकार—

स्वगिय यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमत क्वचिद भवेदमृत वा विषमोश्वरेच्छया ॥^१

इस पद्य म उत्तराद्ध म विष का भी अमत बन जाना और अमृत का विष बन जाना जा कहा है यह दोक म देखने म नहीं आता। इसम प्रस्तुत नामाय घोषित होता है कि हाणिकारक वस्तु लाभकर और लाभकर वस्तु हाणिकार हो जाया करती है।

इन्दुलिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्भृंगीणाभिव
प्रमलानाखणिमेव विद्रुमदल श्यामेव हेमप्रभा ।
काकश्य कल्पया च कोकिलवध कण्ठद्विव प्रस्तुत
सीताया पुरतरच हत शिखिना बहा समर्हा इव^२ ॥

इस पद्य म अप्रस्तुत चन्द्रमा हिरणिया की आँखें मूगा सीता कोयल के शब्द और भाग के शब्द लोक म प्रत्यम् हाण वाली वस्तुएँ हैं। इनके द्वारा चाक्षुष और श्रावण विम्व बनते हैं। किन्तु य सभी उपमान कोटि में रम गये पदाय होने म अप्रस्तुत हैं। इनम सीता क मुख नत्र अत्र कलवर का वण कण्ठस्वर का माघय एव पुष्पचित्रित नील कुतन का असाधारण मीदय प्रय शब्द हो जाता है। उसका तह म छिपा सीदय की आकोत्सरना और उससे विम्वय एव आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार पहन चाक्षुष और श्रावण दूयरी तह में भी बड़ी, नतीय चतुर्थ स्तर पर मानस विम्व या भाव विम्व बनते हैं। महा चन्द्रमा का कान्त म पुन मा जान्य। हरणिय की दष्टि का पथराई सा लगना आदि काय हैं जो कि अप्रस्तुत ह कया क सहमा इन कायों या परिणामों की चर्चा अनाव भी चगती है। अा प्रस्तुत कारण क स्तर में सीता क मुख आदि की अनुपमता जो कि विवक्षित हान म प्रस्तुत है बोधित होती है। इस प्रकार अप्रस्तुत काय म प्रस्तुत कारण क बोध रूपा अप्रस्तुत प्रणसा है।

परायेंय पीडामनुभवति भङ्गेऽपि भवुरो
यदीय सर्वेषामिह खलु विकारोऽप्यभिमत ।

न सम्प्राप्तो वर्द्धि यदि स भूशमक्षेत्र पतित
किमिक्षोर्दोषोऽस्ती न पुनरगुणाय मरुभुव १ ॥

यहा अन्यन्त मधुर, पर-तृप्तिकारी और अपने विहृत रूप गुट, शकरा, खाड मिसरी आदि मे सबको प्रसन्न करने वाले ईश्व का अनुवंर भूमि में बोया जान पर न बढना यह सामान्य अथ अप्रस्तुत है, इमने किसी लोक प्रिय, अत्यन्त गुणवान् व विद्वान् व्यक्ति का किसी अगुणग्रही के आश्रय में जाकर उन्नति न कर पाना यह सामान्य अथ प्रस्तुतरूप मे बोधित हाना है। दोनो ही बातें तथ्य है। पुन कवि की टिप्पणी कि ईश्व क न बढन के लिये उस भूमि को ही दोपी ठहराना चाहिये स्वय ईश्व का नहीं, प्रस्तुत रूप मे उरा गुणवान् व्यक्ति की उन्नति न हान का निमित्त उस अगुणज्ञ को ही ठहराना चाहिये, यह आज्ञाय यहा प्रतीत हाना है। लाक-सभवी हाने स दोनो के ही विम्ब पाठक या श्रोता के मस्तिष्क मे बन जाते हैं।

विश्वनाथ ने श्लेषानुप्राणिता^१ एवम अमभवदवस्तु-मूला^२ ये दो भेद और म्बोकार किय ह, उनका भी सादृश्य के आधार पर दोनो प्रस्तुत और अप्रस्तुत के विम्ब प्रस्तुत करना ही पर्याजन है।

पर्यायोक्ति

इम अलङ्कार मे प्रतीयमान अथ को भी प्रकारान्तर मे अभिहित करके वाक्य बना दिया जाता है^३ इसकी विशेषता यही होनी है कि इममे दमना ही अथ प्रस्तुत होने हैं। इन दोनो ही अर्थों वा विम्ब इम अलङ्कार के द्वारा बनाया ह। जैसे—

न स सङ्कुचित पथा येन वाली हतो यत् ।

वचने तिरष्ठ मुषीव मा वालि-पथमवगा ४ ॥

१ (मश ५-) इत्या० २, पृ० १४५

२ तुल्ये प्रस्तुते तुल्यभिधान च द्विजा, प्रवेपमुना सादृश्यमात्रमुना च ।

—साद०, पृ० ३४३-४४

३ (वाचस्प्य) असमवे—कोकिलोऽङ्ग गगवान् काक समान् कालिभादयो ।

अतए कथविष्यन्ति काकनी—लोविदा पुन ॥

—वही, पृ०, ३४४

४ पर्यायान्त यदा भक्त्या गन्धमेवाभिप्रेयते ।

—वही, १०, ६१

५ वाग० ४, ३०, ८१

यहा विवक्षित अथ यही है कि जा बाग्नी को मार सकता है वह तुझे भा मार सकता है पर हम वान का घुमाकर कहा गया है । पहन अथ स राम द्वारा वाना क मारे जान क दशय का विम्बन होता है दूसर अथ म सुग्रीव की छानी पर भा वाण तना हुआ भावभावश दिखाड दता है । इसकी तह म राम क रोव की अनुभूति छिपी है । फलत पहन चाक्षुष विम्ब वाद म भाव विम्ब का निर्माण होता है । त्ता प्रकार—

अनेन पर्याप्तयताश्रु बिहून मुक्ताफलस्यूलतमान स्तनेषु ।
प्रयपिता शत्रुविलासिनीनामाक्षेपसूत्रेण विनव हारा ॥^१

इम श्लोक म शत्रुभा का विनाश रूप अथ उनकी म्रिया क वक्ष स्थन पर टप टप पत्नी अश्रुधारा क छन म विना धाग की मुक्ता माना पहनात के रूप में प्रस्तुत किया है । इम प्रकार पहन सिद्धयो क वक्ष स्थन पर पड मोटे माट अश्रुविदु अतदृष्टि म लिखाइ देन है तदनंतर शत्रुनाश का अवर्णित भाव भा दृश्यवद्द सा भासित होता है ।

परिकर—विशेषणा क साभिप्राय प्रयाग म परिकर अडकार बनता है^२ । उमका तात्पर्य यही है कि उन विशेषणा म अन्ननिहित आशय जो कि व्यग्न्य होता है श्राना या पाठक क मस्तिष्क म मुद्रित हा जाय । जैसे—

गणानुरक्तामनुरक्त साधन कुलाभिमानो कुलजा नराधिप ।
परस्त्वक्षय क इवापहारयन्मनोरमानात्मवधूमिव श्रियम ॥^३

यहां गणानुरक्ताम अनुरक्तसाधन कुलाभिमाना कुलजाम मनोरमाम य विशेषण साभिप्राय हैं । श्लेष क स्पश क कारण यद्यपि इसम और गम्भीरता आ गड है पर श्लेष का सम्बन्ध साधा उपमा स है जिसक कारण य विशेषण दोनो ओर सम्बद्ध हो गय हैं । पर यदि श्लेष न भी हातो भी इन विशेषणा म परिकर अडकार सुरभित है । कोई भी स्वाभिमानो जिसम पुष्पाक्ष जोड आमरुत्मान की भावना हागी गुणवती एव अपने प्रति अनुराग रखन वानी उच्च कुल म उत्पन्न एव सुन्दरी पत्नी को पराय हाथा म नही जान दता है । त्मी प्रकार अपने वंश की मान मर्यादा का विचार रखने वाला राजा एम वंश-परम्परागत राज्यधिकार का जिसम प्रजाजन और सार अधिकारी

१ रव० ६ २८

२ उक्त विशेषणा साभिप्राय परिकर मत्त ।

—भाद० १० ५७

३ कि० १ २१

स्वामीभक्त और अपने पक्ष में हा, अपने राज्य व भूमि को कभी शत्रुओं में नहीं छिनने देता है। जो ऐसा करता है, उसे धिक्कार है। उसे अपनी मान-मर्यादा का कोई विचार नहीं है। वह पौरुष-विहीन है। इस प्रकार की एटकार युधिष्ठिर का दी गई है। उन सारे विशेषण विशेष तात्पर्य में ग्ने गये हैं।

मम्मट व जयमथ के विचार में बैसे इसका प्रयोजन अपुष्टार्थ शेष के निराकरण सभी मिद्ध हो जाता है। तथापि अनेक विशेषण यदि इस प्रकार भाव गमित हो तो विशेष चमत्कार उत्पन्न होने में पूयक् अलङ्कार मानना उचित है।^१

कुछ आचार्यों ने इन्ने जाति, गुण, द्रव्य और क्रियागत वैशिष्ट्य को लेकर चार भागों में विभक्त किया है।^२ परन्तु हमसे विम्ब-निर्माण में कोई नई विशेषता न जान में हमने उनके उदाहरण नहीं दिये हैं।

इस अलङ्कार के लिये विशेष्य के उत्कृष्ट अथवा प्रसङ्गानुसार उस पर कटाक्ष करने के लिये विविध विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग किया जाता है। जैसे—

कर्ता द्यूतचञ्चलाना जतुमयशरपोद्दीपन तोऽभिमानो,
कृष्णाकेशोत्तरीय-व्यपनपन-पटु पाण्डवा यस्य दासा ।
राजा दुःशासनादे गुरु रनुजशतस्याङ्गराजस्य भिन्न
कथाऽऽस्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न सया द्रष्टुमन्यागतौ स्व^३ ॥

यह श्लोक महाभारत-गुह्य के प्रसङ्ग में आया है। दुर्योधन के ये विशेषण उसकी दण्डनीयता को सूचित करते हैं। इनमें दुर्योधन द्वारा किये गये सारे अपकार प्रत्यक्षवत् हो जाते हैं।

आचार्यों में कुछ यह विवाद उठा है कि परिकर एक विशेषण पर भी

१ यद्यप्यपुष्टाम्ब्य दोषनाऽभिधानात्तन्निराकरणेन पुष्टार्थपरबीकार कृत, तथाप्येकनिष्ठत्वेन बहूना विशेषणानामेवमुपन्यासे वैचित्र्यमित्यलङ्कार-मध्ये गणित ।

—का० प्र० वा०, पृ० १४१

विशेषणानां चात्र बहुत्वमेव विवक्षितम् । अत्रया ह्यपुष्टार्थस्य दोषत्वा-भिधानात् तन्निराकरणेन स्वीकृतस्य पुष्टार्थस्याय विषय स्यात् ।

एवविधानेन विशेषणोपन्यासद्वारेण वैचित्र्यप्राप्तिश्च भवतीत्यस्या-लङ्कारत्वम् ।

—विम०, पृ० ३४१

२ सा सु ति० ८ २१४

३ वेत्त० ५, २६

आधारित होता है अथवा अतः विशेषण ही इमक लिय आवश्यक हैं। मम्मट, विमर्शिनीकार आदि आचार्यों का विचार ऊपर दिया जा चुका है। जगन्नाथ का कथन है कि दोषाभाव और चमत्कार दोनों पृथक् धर्म हैं। परन्तु यदि एक स्थान पर दोनों बातें आ जाती हैं तो प्रसन्न होकर हानि नहीं है। इस प्रसन्न ग म एक विशेषण के प्रभावशाली हान का उद्धान निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

मत्र मौलितमौषध विरलित व्रस्त सुराणां गण
 व्रस्त सान्द्रमुधार सविदलित गारुत्मतप्रारवभि ।
 वीचिक्षालितकालियाहित पदे स्वर्लोकवल्लोत्तिनि
 त्व ताप शमयायुना मन भवन्वालावलीढात्मन ॥^१

इसमें गड गा का एकमात्र विशेषण 'वीचिक्षालित-कालियाहितपद' गड गा का सर्वातिशायिनी तापनाशकता का सूचित करना है। क्योंकि जिसने अपन चरणा के बल से अत्यन्त सविष कालिय नाग का भा निविष कर दिया उन विष्णु के चरणा को धोने में उत्पन्न नदी में उन चरणा में बह विषनाशकता निसर्गत आ गइ है। इसलिये जहां मात्र आदि काम नहीं आते वहां विष्णु चरणादभूत होने में वही भव विष-वृत्त ताप का शांत करने में समर्थ है। तात्पर्य यह है कि चिकित्सा राग के अनुमान होता है। मात्रादि सामान्य विषा को दूर कर सकते हैं ससार विष का नहीं। विष्णु-चरणादभूत हान के कारण उसकी औषध गड गा है। इस प्रकार एक ही विशेषण यहाँ समग्रश्लाक का चमत्कृत कर रहा है। अधिक विशेषणा से अधिक चमत्कार की उत्पत्ति होगी। जैसे ऊपर उद्धृत कर्ता आदि पद्य में। इस प्रकार—

एकतपत्र जगत प्रभुत्व नव वय कात्तमिद वपुश्च ।

अल्पस्य हेतोर्विद्वु हातुमिच्छन् विचारमूढ प्रतिभासि मेरुवम ॥^२

इसमें भा विशेषण विशेष्या का अनुपक्षायता प्रतिविम्बित करत हैं।

परिकराड कुर—वृष्ट आशय विशेष्या के सामिप्राय होने पर प्रस्तुता ड कुर अलंकार की स्थिति स्थापार करते हैं। जैन— चतुर्णां पुरुषायाना

१ तदसत । विशेषणानकत्व हि व्यंग्याधिक्याघायवत्वाद् वैचित्रय विशेषाघायकमस्त नाम । न तु प्रकृतालङ्कार शरीरभव तदिति शक्य वक्तम । वीचि-क्षालितकालियाहितपद' इति प्रायस्क एकस्यैव विशेषणस्य चमत्कारिताया अनपह्नवनीयत्वात् ।

दाता देवश्चतुर्भुज ।^१ यहाँ भगवान की चार भुजाएँ होना एक साथ चारों पुरुषार्थ प्रदान करने की सामर्थ्य सूचित करता है। रेवा प्रसाद द्विवेदी ने विमर्गिनी की हिन्दी व्याख्या में अलङ्कार कौस्तुभकार का मत उद्धृत करते हुए इसका अन्तर्भाव उसके भाई उद्योपति के जन्तुमार परिस्तर में ही माना है।^२ वैसे विशेष्य के साभिप्राय होने पर बरङ्गाय की समावना हाती है। जैसे "यमोऽस्मि सर्व महे" "जीवत्यहा रावण" आदि में, परन्तु यदि यह साभिप्रायता गुर्णाभूतन्यगद्य के रूप में हो तो निश्चय ही ऐसे स्थला में अलङ्कार ही स्वीकार करता होगा। जैम—

धर्मात्मजस्य यमयोश्च वथव नाऽस्ति,

माधे वक्रोदर-किरीटभृत्तोबलेन ।

एकोऽपि विस्फुरित-मण्डल चापचक्र

क सिन्धुराजमभिवेणमितु समर्थ ॥^३

इस पद्य में 'धर्मात्मजस्य 'यमयो' वक्रोदर-किरीटभृता' ये शब्द विशेष्य तात्पर्य के व्यञ्जक हैं। 'धर्मात्मजस्य' बुद्धिधर के लिये आया है जो कि उस को केवल धर्मज्ञान के आचरण में निरत और पराक्रमशून्य सूचित करता है। 'यमयो' नतुल-महदव के लिये आया है। वे दोनों जुड़वाँ ये। चिकित्सा-विज्ञान वाले कहते हैं कि इस प्रकार के बालक अथ यानका की तुलना में अन्यत्र कि जाने होते हैं। इस लिये उन दोनों में शक्ति की समावना ही नहीं हो सकती। रहे पाण्डवा में भीम और अर्जुन जो कि तीमभाग्वा बनते हैं पर उनमें 'वक्रोदर' तो केवल पट्ट है, ज्यादा खान वाला बलवान् नो होना नहीं, रहा अर्जुन, वह 'किरीटभृत्' है अपना मुकुट हीं सभालता है, नातरयं यह है कि वह तो शृङ्गारप्रिय छील है, योद्धा तो फौजन आदि से दूर हर समय मरन मारने के लिये खनड रहता है। उनकी तुलना में सिन्धुराज 'विस्फुरित-मण्डल चापचक्र' है, युद्ध में पराक्रम से नव धनुष को गोलाकार करके बाणवपा होगी तो य युद्ध में सामने खड़े भी नहीं रह सकत, लडना तो दूर की बात है। उपसुक्त विशेष्य यद्यपि इस प्रकार व्यञ्जक ह तथापि व्यव्म्य उत्तरार्द्ध के वाच्यार्थ की सिद्धि

१ साभिप्राये विशेष्ये तु भवन् परिस्तराट् कुर ।

चतुर्णा पुरुषाना दाता श्वश्चतुर्भुज ॥

—बृवल० ६३

२ विशेष्यविशेषणाभयनाभिप्रायत्वेऽपि परिस्तर एवेति त्पस्माक यविष्ट-
घातुदमापते पक्ष ।

—विम० पृ० ३४६

के अड ग बन गये हैं। अतः यहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्य होने में अलङ्कार ही है। ये विशेष्य अनन व्यङ्ग्य आशय म युधिष्ठिर आदि के उस स्वरूप को मूत कर देने में सक्षम है।

व्याजस्तुति

यहाँ व्याजेन स्तुति और व्याजरूपा स्तुति इन व्युत्पत्तिया में निन्दा म प्रशंसा एव प्रशंसा म निन्दा का भाव अभिव्यक्त होता है।^१ वह व्यङ्ग्यीभूत आशय मूत होकर चमकार उत्पन्न करता है। जैसे—

त्व तु द्वित्रपदानि गच्छसि महीमुल्लङ्घ्य यान्ति द्विप
त्व बाणान् दशपञ्च मुञ्चसि परे शत्रुणाण्यशेषाण्यपि ।
ते देवोपतयस्त्वदस्त्रनिहतास्त्व मानुषीणा पति
निन्दातपु क्य स्तुतिस्त्वपि क्य तत सुप्त निर्णोपताम ॥^२

इनमें आपातत वण्य राजा की निन्दा और शत्रुओं की प्रशंसा प्रतीत होती है कि राजा दो तीन ही कदम चल पाता है पर शत्रु पृथ्वी को नाप कर कहीं का कहीं पहुँच जात हैं। वह दस या पाँच बाण छोड़ पाता है जब कि वे सारे ही हथियार चला देते हैं वे देवाङ्गनाआ क पति है पर वह केवल मानवियों का भर्ता है। इस वाच्यार्थ में एक विम्ब इसी प्रकार का बनता है पर पार्यन्तिक व्यङ्ग्य म वण्य क दो तीन पैर बढ़ान ही शत्रु राज्य छोड़ कर भागते दिखाइ देत हैं उसके दस पाँच बाण छोड़ते ही बैरी माहम छोड़कर हार मानने दीखते हैं इस प्रकार व्यङ्ग्यार्थ में दूसरा विम्ब बनता है। फलस्वरूप यह भी काव्य विम्ब निमाण म महायक अलङ्कार है।

सूक्ष्म—चिह्ना द्वारा किसी वृत्तान्त की सूचना होने में यह अलङ्कार होता है।^३ यहाँ भी व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ का माधक होता है। जैसे—

१ यत्र स्तुतिरभिधीयमानापि प्रमाणांतराद् बाधितस्वरूपा निन्दाया पर्यवस्यति तत्रासत्परत्वाद् व्याजरूपा स्तुतिरित्यनुगमेन तावदेका व्याजस्तुति । यत्रापि निन्दा शब्देन प्रतिपाद्यमाना पूर्ववद् बाधितरूपा स्तुतो पर्यवसिता भवति सा द्वितीया व्याजस्तुति । व्याजेन निन्दामुखेन स्तुतिरिति वृत्त्वा ।

—अस०, पृ० ४१६

२ सामुच्चि० (उ) ३७४

३ मलक्षितस्तु सूक्ष्मोऽथ आकारेणोद्दिगन्त वा ।

कयापि सूच्यत भङ्ग्या यत्र सूक्ष्म तदुच्यते ॥

—माद० १० ६१ ६२

कृजित नूपुराणा घ काञ्चीना निनद तथा ।
स निशाम्य तत श्रीमान् सौमित्रिलजितोऽभवत् ॥^१

यहाँ नूपुरों के कृजित और काञ्ची की घण्टियों की शब्दों को सुनने मान से लक्ष्मण का लज्जित होना नूपुर आदि के शब्द से व्यक्त महलों में चल रही विपरीत रति से नङ्गत होता है। सूक्ष्म अलङ्कार इसी व्यञ्जना पर आधारित है। लज्जा का कारण—

नेक्षेताकं न नग्मा स्त्री न च ससष्ट-मैयुनाम^१ ।^२

यह स्मृतिवचन है। यह विपरीत रति का व्यङ्ग्यार्थ ही विम्ब बनता है। इसी प्रकार—

वपत्रस्यद्विस्वेद विन्दु-प्रवन्धेर्दृष्ट्या भिन्न बुद्धिभुक्त कापि कण्ठे ।
पुस्तक तन्व्या व्यञ्जयन्ती वपस्ता स्मित्वा पाणौ खड्गलेखालिले ॥^३

इस पद्य में मुख के स्वेद से बह कर गले तक आग केसर से तन्वी द्वारा किये गये विपरीत सुरत की अभिव्यक्ति सूक्ष्म अलङ्कार का मूल है। अतः उसके हाथ पर बनाई गई खड्गरेखा के एव स्वेद के साथ बहते केसर के चाक्षुष विम्ब में व्यङ्ग्य विपरीत रति का सूक्ष्म विम्ब बनता है। 'व्यञ्जयन्ती और 'स्मित्वा' दोनों पद व्यङ्ग्य को वाच्यार्थित कर रहे हैं।

समूच्चय—जले कपोतिवा न्याय में गुण और क्रिया का पैगपद्य, मदमद्-योग इन अलङ्कार के आधार हैं।^४ इस प्रकार इनमें कई खण्ड-चित्र बनने के पश्चात् एक सामूहिक चित्र बनता है। जैसे—

शशी दिवसधसरो गलितयौवना कामिनी
ससो विपतवारिज मुलमनक्षर स्वाकृते ।
प्रभुर्धनपरायण सतत-दुर्गत सञ्जनो
नृपाङ्गणगत खलो मनसि सप्त शल्पानि मे ॥^५

१ वारा० ४, ३३, २५

२ यास्मू० १, १३५

३ शाद०, पृ० ३६५

४ सगुञ्चयोऽयमेकस्मिन् सति कायस्य साधके ।

खले-कपोतिवा-न्यायात् तत्कर स्यात् परोऽपिचेत् ।

गुणी क्रिये वा युगपत् स्याता यद्वा गुणक्रिये ॥ —साद०, १०, ८४-८५

५ बही, पृ० ३६०

यहा मत और अगन का साथ-साथ याग बना क खण्डविम्ब प्रस्तुत करता है । जैसे चन्द्रमा गत है ता दिव्यम प्रगर्ता अगन है सरावण मन है ता वारिज हीनता अमन है । चतय चरण इन सबक कटप्रभाव का अनुभूतिविम्ब प्रस्तुत करता है । कवन सदयाग म बना विम्ब निम्न पद्य में देखा जा सकता है—

अर्थागमो नित्यनरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियत्रादिनी च ।

वश्यश्च पुत्रोऽथकरीष विद्या षड जीवलोकस्य सुखानि राजन ॥^१

यहा गिनाय गये छ जीवलाक के मुख मत है । उनक खण्ड विम्बा का सामूहिक अनुभूत्यात्मक विम्ब बनता है ।

गुण न्रियाआ के योगपद्य से बनन वाल काव्य विम्ब का मुदर उदाहरण अनर कार-सदस्व में दिया गया है—

न्यञ्चत कुञ्चितमु मुख हसितवत साकूतमाकेकर
व्यावत्त प्रसरत प्रसादि मुकुल सप्रेमकाय स्थिरम ।
उदभुभ्रातमपाड गवत्ति विक्रम मञ्जतरड गोत्तर
चक्षु साधु च वतत रसवशादेकैकमन्यक्रियम ॥^२

इस पद्य म नायिका की विभिन्न रम्यदृष्टिया योगपद्य म वर्णित ह । रम-वशान शब्द म उनका अनुभूतियों क साथ सम्बन्ध जोना गया है । दृष्टि-मूचक पद विशापण होने पर भी शतृ षिनि धिनुण जादि प्रयया क द्वारा दग व्यापारा की सूचना देत हैं । इनम नायिका की आंतरिक अवस्था का जा अनुभूति विम्ब बनता है वह पृथक है । सञ्जीवनाकार क आधार पर रेवा प्रसाद द्विवेदी ने इनका अच्छा स्पष्टीकरण किया है ।^३

१ मभा० ५ ३३ २२

२ अत्राकेकरादयो गुणशब्दा न्यञ्चदि पादय क्रिया शब्दा इति सामस्येन गुण क्रिया यागपद्यम । प्रसादि-मप्रेमेत्यादीना गमात्कृतद्वितपु सम्बन्धा भिधानमिति सम्बन्धस्य वाच्यत्वात् तस्य च सिद्धत्वात् न गुणवाद् गुण शब्दत्वेन गुणयोगपद्यम इति द्रष्टव्यम । —अनवृ० पृ० ५६७

३ यञ्चित—स्या यञ्चिन यञ्चदपाड गभागम ।

कुञ्चित—अगात्-ग-मड कोचि तु कुञ्चित स्यात् ।

उ मुख—उदञ्चित तूध्वमपा गमडि ग

हमित—निमेषशू योलनसित विज्ञामि ॥

साकूत—साकूतमाकाडि अतभावगमम

आकेकर—आकेकर तियगरानतागम ।

जमत्क्रियाओं का योग निम्न पद्य में पाया जाता है—

दासीकृतानपि नरान परिपीडयन्ति
 कारागृहेषु विनिपात्य विमदयन्ति ।
 अत्रत्यवित्तमपहृत्य बलादपोमे
 स्वीयेषु कोष-भवनेषु निपरातयन्ति ॥^१

यहां 'परिपीडयन्ति' विमदयन्ति' मद्गुण अमन्त्रिणाएँ एककालिक होत म समुच्चय की सृष्टि करती है। इनके खण्ड-विम्बा को मिलाकर मिश्र विम्ब बनाता है। जयदेव के निम्नगीत में क्रियाओं के योगपद्य में बना मिश्र-विम्ब परिणति में श्रुद्गार का अनुभूत्यात्मक विम्ब बनाता है—

पतति पतत्रे प्रचलति पत्रे शडि कत भवदुपयानम्
 रचयति शयन सचकितनयन पश्यति लव पथ्यानम् ।
 सुवरमधोर त्यज मञ्जीर रिपुमिव केलिमुसोलम्
 चल सखि कुञ्ज सतिमिरपुञ्ज शीलय नीलनिचोलम् ॥^२

इन पङ्क्तियों में 'रचयति', 'पश्यति', 'त्यज', 'चल', 'जीनय' आदि क्रियाओं का योग है। पतति, प्रचलति शडि कत-मद्गुण पद शत्रुत और कत प्रत्यय लिये होने से क्रियार्थाभित है।

व्यावृत्त—तियङ्निवृत्त बलिता विनाय

प्रसरत्—प्रेम्णा मुदर परिवल्गदुस्नम् ॥

प्रसादि—मञ्जू विलास स्मयते प्रसन्नम्

मुकुल—सम्मोल्पमान मुकुल वदति ।

सप्रेम—स्यात् प्रेमगर्भ मनसो द्रवाय

कम्प्र—उत्कम्प्रमुत्कम्पित-पद्मतारम् ॥

स्थिर—स्थिर विदूरान्तरिताथनिष्ठ

उदध्रु—उद्वतित तूध्रविकम्पित श्रु ।

आत—विभ्रातरक्त मद्गमन्थर स्यात्

अपाङ्गवृत्ति—विक्षेपि पार्श्वं यदपाङ्गवृत्ति ॥

विक्रच—विकामिदृश्ये सविशेषलक्ष

मञ्जत्—नासाग्रनिष्ठ तु निहचिल (मञ्जित) स्यात् ।

तरट् शोत्तर—तरटिगत यद् द्युतिरुर्मिथल्या

माल—उत्कण्ठित राग-निबद्ध-बाष्पम् ॥ —विम० हि० व्या०, पृ० ५६६

१ नैच० १३, १७

२ गी० गो० ५ ३-४

सम—विपम के विपरीत इस अनेक प्रकार म अनुरूप वस्तुआ का परस्पर समग चमत्कार का जनक होता है। अण्यदीक्षित न विपम की भाँति इसके भी ३ भेद माने हैं। व अनुरूप काय की उत्पत्ति इष्ट की प्राप्ति और अनुरूप वस्तुआ का परस्पर समग हैं।^१ इसमें समान गुणवान पदार्थों का विम्ब बनता है। जैम—

चित्र चित्र यतवत महच्चित्रमेतद् विचित्र
जातो दवाहुचित्त घटना-सविधाता विधाता ।
यनिम्बाना परिणतफल स्फीतिरास्वादनीया
जालस्तथा कवलनकलाकोविद काकलोक ॥^२

यहाँ अमल पदार्थों व मल स विम्ब बनता है। इसी प्रकार—

त्यमइता प्राग्रहर स्मृतोऽसिन
शकु-तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया ।
समानयन तुल्यगुण धधूवर
चिरस्य वाच्य न गत प्रजापति ॥^३

इसमें श्रेष्ठ पुरुष दुष्यन्त व अनुरूप सकार शकु-तला का मन उत्तम पदार्थों का समग बताया गया है। उत्पत्ति के स्पष्ट ने प्रभावकृता के आधान के साथ-साथ एक बौद्धिक विम्ब की योजना और कर दी है। इस प्रकार के विम्ब शशिनमुपगतेय सदृश पद्यों व रूप म बड़ा मात्रा म साहित्य म सुलभ हैं।

इसी प्रसंग म रेवाप्रसाद द्विवेदी ने अण्यदीक्षित व अनिष्टावाप्ति रूप विपम व निदर्शन—

नपुसकमिति ज्ञात्वा प्रियाय प्रेषित मन ।
तत्तु तत्रैव रमत हता पाणिनिना वयम ॥^४

१ सम स्याद् वणन यत्र द्वयोरप्यनुहृतयो ।

सारूप्यमपि कायस्य कारणत सम विदु

विनानिष्ट च तत्सिद्धिर्यमथ वतुमुद्यत ॥

—कुवल० ६१ ६२

२ वही पृ० ११०

३ शाकु० ५ १५

४ शशिनमुपगतेय कौमुदी मेघमुवत

जननिधिमनुरूप जहनुक्-यावतीर्णा ।

इति समगुणयोगप्रैतयस्तत्र पौरा

श्रवणवटु नृपगणामेकचावय विवन्तु ॥

—रव० ९ ८६

को इष्टावाप्ति-रूप मम का उदाहरण माना है।' उनका तर्क है कि मन का प्रिया मे रमण तो इष्ट ही है इसमें अनिष्ट क्या रहा ? परन्तु इस पक्ष को स्वीकार करने पर पद्य में आये 'तु' और 'हता पाणिनिता वयम्' में पद्य निरर्थक हो जाते हैं। स्वयं 'तु' निपात जापातिक अनिष्टावाप्ति का सूचक है। तब तो 'हता' के स्थान पर 'उपहृता' कहना चाहिये था। वास्तव में अलङ्कारत्व चमत्कार-नियन्त्रण है और चमत्कार अनिष्ट मानने में है इष्ट मानन म नहीं। अतः इसे विपम का ही उदाहरण मानना उचित है।

अनुरूप कारण मे काय की उत्पत्ति निम्न पङ्क्तिवत्तया म वर्णित है—

उदंशी—अमन खलु मे वचनम् । अथवा चन्द्रात् अमृतमिति किमारचयम्?²
यहाँ व्यङ्ग्याथ-सादृशी आकृति तादृश मधुर वचनम मम-पयवसायी है।

विरोधमूलक अनङ्कार—आपातन विरोध पर आग्रहित अलङ्कार का बने जटिल बिम्ब विरोधप्रभाम के रूप में पाये जाते हैं। श्लेष में वे स्पष्टतर और उज्ज्वल बन जाते हैं। विरोध कारण और काय के स्वरूप, देग और काल-गण वैषम्य के कारण प्रतीत होता है। इनम मवप्रथम विरोधप्रभाम आता है जिसमें आपातन विरोध प्रतीत होता है। विरोध में घूमिल और विराध का परिहार होन पर साश्लष्ट बिम्ब बनते हैं। शब्दाच्चारण से जानि गण क्रिया और द्रव्य की प्रतीति होने में तदगत विरोध का भाव होता है।³ 'अपि' आदि वाचक न रहने पर वह व्यङ्ग्य रहता है। इसमें विरुद्ध अर्थ का पहले और पश्चात् समाहित अथ का बिम्ब बनता है।

जहा विरोध व्यङ्ग्य होता है वहा पढ़ने अविरुद्ध वाच्य का, वाद में विरुद्ध व्यङ्ग्य का बिम्ब बनेगा। जैसे—

शानिरशानिश्च तमुच्चेतिहन्ति कुप्यसि नरेन्द्र यस्मे त्वम् ।

यस्मिन् प्रसोदसि पुन स भात्पुदारोऽनुदारश्च ॥⁴

इसमें वाच्यार्थ समुच्चयात्थक है कि राजा के कोप-यात्र को शनि जोर अगति (बज्र) दोना ही मारते हैं और प्रीतिपात्र उदार (महान आगम वाला)

१ विष्णु० व्या०, पृ० ४६४

२ विक्र०, पृ० २५

३ इत जान्यादीना चतुर्णां पदार्थानां प्रत्येक तमस्य एव सजातीयविजाती-
याभ्यां विरोधिभ्यां सम्बन्धे विरोध ।

—अत०, पृ० ४५२

४ का० प्र० का०, पृ० १३६

एव अनुकूल पानी वाला बन जाता है । निघनता की अवस्था में तो पानी आदि परस्पर नडत रहत हैं । जैसे—

अम्बा तुप्यति न भया न स्तुपया साऽपि नाऽम्बया न भया ।

अहमपि न तथा न तथा ब्रह्म राजन कस्य दोषोऽयम् ॥^१

इमम दारिद्र्य क भारण कवि क परिवारगत आतरिक कलह का बणन ह । वाच्याय की विश्रान्ति के पश्चात शनि और शनि का अभाव 'उदार और न । उदार अर्थात् कृपण यह विरोध प्रतीत होता है । उसम परस्पर विरोधी भी तुष प्रसन करन को काय करत हैं । यह व्यङ्ग्याय प्रतीत होता है ^२ अपि न हाकर यहा च है जिन्मे विरोध व्यङ्ग्य होता है । यहा विम्बो की शृङ्ग खला इम प्रकार है—

१ वाच्य अथ २ विरोधाभास ३ वस्तु ध्वनि ४ राज विषयक डाट ।

शाभाकर यहा अचिन्त्य अलङ्कार मानता है ।^३ जहा शनप क स्पश में ही विरोधाभास बनता ६ वहा श्लेष की सत्ता अवश्य माननी चाहिए ।^४ विरुद्ध जय पयत्त तक नहीं रहता यह कार् तक नहीं है । पयत्त तक न रहने से ही ८में विरोधाभास कहा जाता है । दखना ता यह है कि विना श्लेष के स्पश के विगत्र बनता है या नहीं । जैसे—

सन्तत-मुसलासड गाद बहुतरगहृक्मघटनया नृपते ।

द्विजपत्नीना कठिना सति भवति करा सरोज-मुकुमारा ॥^५

यहा विना ही श्लेष के विरोधाभास बनता है । परतु—

१ त्रिवेश्वर नाम रेड—राजा भाज प० १४६

२ अत्र प्रथमार्धे अनिरणनिश्चेयनेन विरुद्धावपि त्वदगुणतनायमेव काय करुत इति वस्तु ध्वयत । —का० प्र० का० पृ० १३६

अत्र सामानाधिकरण्याभावेन चस्य समुच्चयात्त्वादप्यर्थवाभावेन च विरोप्रस्याऽऽचाच्य वेऽपि व्यङ्ग्यवमस्येव । परत वस्तन एव राजोकय कतया प्राधायद वस्तध्वनि चैन व्यवहार ।

—का० प्र० ३० पृ० १३६ ८०

३ अविनक्षणाद विलक्षणकार्योपतिश्चाचित्यम । —अर० ५८

४ त० सनिहितवालाघकारा भास्वमूतिश्च इत्यादौ विरोधाभासऽपि विरुद्धाथस्य प्रतिभातमात्रस्य प्रगोहाभावान् श्लेष । —साद० प० २८७

५ साद० पृ० ३५३

ननिहितबालान्तरा भास्वभूतिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलावना च,
बालातपप्रभाधरा कुमुदहासिनी च ।^१

इन विशेषणों में भास्वभूति (भूयबिम्ब एव उज्ज्वल आकार वाली) पुण्डरीक-मुखी (सिंह के में मुख वाली और कमलवदना) ये स्पष्ट रूप में दो-दो अर्थ लिए हैं। 'समवाय इव विराजिता पदारथानाम' कहने से विरोध वाच्य हो गया है। "शनिरशनि" जदि में च भ्रमुच्चयायक होने से विरोध व्यक्त है। "गम्भीर च प्रान च आरा-जनम् च ग्गणीय च कौतुक-जनन च पुण्य च"^२ सदृश स्थलों में भी यही स्थिति होगी।

विभावना—विभावना और विशेषोक्ति अन्वङ्कार बिम्बयावह बिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

विशेषोक्ति—बिना कारण के काय का हाना और कारण होने पर भी कार्य का न होना^३ लौकिक कायकारण-भाव के विरुद्ध जाने के कारण बुद्धि को एक सटका सा देता है किन्तु काव्य क्षेत्र में बचिन्वावह ज्ञान के कारण चमत्कार की सृष्टि करता है। भावक कवि की उम कल्पना के साथ माशरणीकरण करने उसी प्रकार के बिम्ब का साक्षात्कार करता है। लोक में भले ही बिना कारण के काय संभव न हूँ पर काव्य में संभव है। जब वैदिक ऋषि ब्रह्म में अधवा आत्मा के लिए कहता है—

अपराणिशब्दो ज्वनो श्रुतीता पश्यत्यवक्षु स भृणोत्यकथ ।

स वेत्तिवेष न च तस्यास्ति वेत्ता तमाह्वरत्रय पुरुष महातम ॥^४

यहां पूर्वाध में बिना पाव शीघ्र गमन बिना हाथ के वस्तु को पकड़ना बिना नेत्र के दर्शन, बिना कानों श्रवण, ये सब बिना कारण के हान जाने व्यापार हैं। श्रुतीता इसी प्रकार न भव-कुछ हाता अन्वर्दृष्टि में देखता है। यही काव्य-बिम्ब पद्य में बिम्ब की सृष्टि करता है। इसी प्रकार—

तनोतु भूमि दहतादधानि सच्छ्लिनो लोचन पावको च ।

धूमनभित्तोऽपिरितेरजत्रमध्रमुते र्याऽजनि सूत्रधार ॥

१ हृद०, पृ० ७१

२ वही, पृ० २१०

३ विभावना बिना हनु कार्योत्पत्तियदुच्यत । —नाद०, १० ६२

४ विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच । —ना० प्र० ७१०, १०, १०८

५ श्वेता० उप०, ३, १६

६ अर० (३०) २७६

इस पद्य में बिना धुएँ के आसू उत्पन्न करने के लिए शट्कर के नयन-
रहन को उत्तरदायी ठहराया है। यहाँ करुणा में रति की अशुधारा का एव
शड्कर के तृतीय तन्त्र से अग्नि निकलने का विम्ब बनता है।

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चता ।

प्रभवोऽप्यप्रमत्ता खते महामहिमशालिन ॥^१

विशेषाक्ति के इस उदाहरण में महान् व्यक्तिता के विम्बभावह व्यक्तित्व
का अस्पष्ट बौद्धिक विम्ब प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषद परिपीता गीता च हन्त मति पथ नीता ।

तदपि न हा विधुबदना मानससदनाद् बहिर्याति ॥^२

यहाँ उपनिषद आदि का अनुशीलन रूत कारण रहने पर भी प्रिया का
अनुराग दूर होने रूप काय का अभाव दिखाया है। यहाँ निर्वेद रूप भाव की
अनुभूति का विम्ब बनता है।

विषम—इसमें कारण के गुण के विरुद्ध काय का गुण वर्णित होने अभीष्ट
सिद्धि न होने के साथ अनय प्राप्ति का विपाद एव दा विरूप पदार्थों की एकत्र
अवस्थिति बताना य तीना वार्ते विरोध का अनुभव कराती हैं।^३ इसकी
विशेषता यह है कि इसमें ऐन्द्रिय विम्ब की अपेक्षा प्रभाव का विम्ब अधिक
रउ गदार रहता है। जैम—

आनन्दममदमिष कुबलपदतलोचने ददाति स्वम् ।

विरहस्त्वर्थव जनितस्तापयतितरा शरीर मे ॥^४

इस पद्य में प्रेमिका के प्रति चाटु में उनके माक्षात्करण से आनन्द की
अनुभूति एव उसी के विरह से सताप के अनुभव में एक विलक्षण वैषम्य का
अनुभव होता है। अतः यह विम्ब अस्पष्ट है। सर्वाधिक विम्बग्राही विषय का
उदाहरण कालिदास का निम्न पद्य है—

१ साद०, पृ० ३५१

२ रग० पृ० ४३७

३ गुणो क्रिये वा चेत्याता विरुद्धे हेतुकायपो ।

भद्रा रघुस्य वैकल्पमनसस्य च समव ॥

विरुन्मादा सघटना या च तद विषम मतम् ॥ —साद० १०, ७० ७१

४ वही पृ० ३५३

न खलु न खलु बाण सनिपात्योऽयस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूल-राशाविवरग्नि ।
क्व वत हरिणकाना जीवित चातिलोल
क्व च निशित-निपाता वज्रसारा शरस्ते ॥^१

इसमें मृग क शरीर की मधुलता का भान तून राशि में, बाणों की कठोरता की वज्रसारत्व एव तूल राशि में अग्नि-प्रक्षेप में हाता है । इसमें मृग की सबथा प्रतीकाराक्षमता अभिव्यक्त की है । पुन ऋषियो की उम मृगशावक के प्रति करुणा और सहानुभूति का स्पश दस विम्ब को अधिक प्रभावशाली बना देता है ।

असङ्गति—कार्य और कारण के भिन्न-भिन्न स्थली में रहने से विरोध की प्रतीति कराने वाले^२ इस अलङ्कार में पहले स्थूल तथ्य का विम्ब और पश्चात् उसके प्रभाव से विम्बय आदि का विम्ब रहता है । यह भिन्नदेशिता जितनी स्पष्ट होगी, उतना ही सशक्त विम्ब भी होगा । जैसे—

अजस्रभारोहसि दूरदीर्घा सङ्कल्पसोपान-तति तदीयाम् ।

शवासान स वप्यधिक पुनपद् ध्यानात्तव त्वन्मयता तदाप्य ॥^३

इस पद्य में सोपानारोहण रूप कारण दमयन्ती में दिखाया गया है परन्तु धमजन्त्य शवामाधिक्य नल में वर्णित है जो कि असङ्गत प्रतीत होता है । इस लिए स्थूलविम्ब सोपानारोहण एव श्वाभ-मोचन के हाते है । किन्तु विप्रलम्भ-शृङ्गार की अनुभूति और कामावस्था के कारण उसमें भावना की तरलता आ गई है । इसलिए पार्यन्तिकविम्ब विप्रलम्भ शृङ्गार की सङ्कल्प, श्वास-विनोचन निरन्तर दमयन्ती-विषयक ध्यान आदि नलगत कामावस्थाआ का है ।

श्लेष के स्पर्श से इसमें अधिक चमत्कार आ जाता है । दीक्षित के उदाहरण में राज-विषयक चाटु के रूप वर्ण्य राजा की रानियों की करुण दश का श्लेष-ससृष्ट असङ्गति से किया है जा कि दीक्षित की दृष्टि स हम अलङ्कार का दूसरा प्रकार है^४—

१ शाकु०, १, १०

२ कायकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गति ।

—साद०, १०, ६६

३ नञ्च०, ३, १०६

४ अन्यत्र करणीयस्य तताज्यत्र कृतिश्च सा ।

—कुवल्०, ८६

त्वत्त्वङ्ग-खण्डित सपत्नविलासिनीना

भूया भवत्यभिनवा भुवनैकवीर ।

नेत्रेषु कट्कणमयोहपु पत्रवल्ली

चोत्रेन्द्रांसिह तिलक करपल्लवेपु ॥^१

यहा सट्कण (कम + ङण) पत्रवल्ली (पत्रयुता वल्ली) तिलक (ति + क) इन शब्दां में श्लेष है। अतः पहले वाच्य की सट्कण के लिए अभिप्रेय मत्ता के रूप में नयनां म कणन पैरो में पत्ररचना और हाथ में तिलक का विम्ब बनता है जा हास्य की मृष्टि करता है। किन्तु शीघ्र ही वास्तविक जय अश्रुविदु, पैरा में वेना के उलपन तथा हाथ की अञ्जलि में तिलमिश्रित जल लिए स्त्रिया की असहाय पूर्ण आकृति का विम्ब उभरता है। उनके प्रति ममवेदना राजविषयक चाटु में तिरोहित हो जाना है।

परिच्छिद्य ह्या—अथ सम्भावित अथ क व्यपाह पर आवागित इत अनङ्कार में वास्तविक विराग्य ली रहता। किन्तु किसी वस्तु या प्रश्न में उत्तर में सम्भावित विषय में बिना जय निरुल्लस या निश्चित करने में जो अन्गी सम्भावना को आघात सा लगता है यही विराग्य है।^१ मद्यपि इसमें सम्बन्ध जीर जाय न्यपोह वाक्योवाच्य-भूलक या बिना उमक, प्रत्यय पर आधारित या बिना श्लेष में इस प्रकार अनेक मद गिनाय गये^२ तथापि विम्ब की दृष्टि में उमका महत्त्व उम प्रकार है कि पहला विम्ब सम्भावित अथ का बनना है, पर उमका अवाह करण पर पयवमित अथ का। उदय क द्वारा भी इसी प्रकार दो विम्ब बनत हैं। अप्रचाशित अथ की स्यासना में विस्मय की अनुभूति उमम रगीनी लाती है। वैसे अधिक चमकार उमम प्रत्यय से ही आता है जिसमें वाग का अधिक सफरता मिती है। उदा रण के लिए—

यस्मिञ्च गान्नि गिरीणा विपक्षता प्र ययाना पस्त्वय दपणानामभि-
मुखावस्थानाम शूलगणि प्रतिमाना दुर्गाश्लय जलधराणा चाप धारणम् आदि।^३
इम मद्मम म विरुद्ध पय या विगोधि व शत्रुत्व विरोध में खडे ज्ञान का

१ कुवत पृ० १०३

२ प्रश्नादप्रश्नतावापि क्विप्ताद वस्तना भवेत् ।

तादृग्यदंशपात्स्वच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ।

परिसरुगा

—साद०, १०, ८१-८२

साहस, दुःख-सधरण, हाथ में धनुर्धारण-सदृश अन्य अर्थों का निषेध अर्थ से है, एव का भी प्रयोग न होने से वह व्युत्पन्न है ।

अथ तस्या कुमुमायुध एव स्वेदमजनयन, सम्भ्रमात्प्रान-यमो व्यपदशोऽ-
जनन । उरुलम्प एव गति हरोऽ, नूपुरखाङ्गुटहृगमण्डलमपयशो लेभे, नि श्वान-
प्रवर्तितेवाङ्क चल चकार चाभगनिलो निमित्तता ययौ ।^१

इत्यादि अंश में जगोह शब्द इ परन्तु न में नहीं, एव क प्रयोग के साथ-साथ व्यपदेशन अपयशो लाभ और निमित्तमात्र जादि शब्द क द्वारा किया गया है ।

न के प्रत्यक्ष प्रयोग में अगोह जाशान आश्रम के वणन में पाया जाता है ।
जैम—यत्र च मलिनता हविधू मेघ न चरितेषु मुखराग जुकेषु न कोपेषु,
तीक्ष्णता कुराग्रेषु न स्वभावपु, चञ्चलता बदलीदनेषु न मनसु आदि ।^२

यथा आपानत चरित की मलिनता का बौद्धिक शोऽ के कारण मुख के लान
शोन का चाक्षुष, स्वभाव की तीक्ष्णता व मन की चञ्चलता का अनुभूत्यात्मक
चित्त जनता है परन्तु निषेध के अन्तर मलिनता राग और चञ्चलता म
चाक्षुष किन्तु तीक्ष्णता म स्पर्श गुण का चित्र बनता इ ।

अन्य विरोऽमूलक अलङ्कारों में विचित्र विस्मय अधिर, विशेष,
व्याघात और प्रसनीय आत इ । ये सभी वाक्यांश न सीधे विम्ब निर्माण करते
इ । विचित्र म अभीष्ट-मिद्धि के लिए विरगीत काय किया जाता इ ।^३ जैम—

अक्षि-स्पृश्या भवति नगरो नाम वारुणसीप
दुराद घृतध्वज विततिभिमन्दिरलक्षणीया ।
यस्या लोका अमर पदवी लक्षुकामा च्छिद्यते
गतु चोच्चरनिमित्तपुतीवारि मञ्जन्ति सत ॥^४

यथा अमर होने क लिए उगके विरगीत काय मरत और ऊपर (स्वयं) जान
के लिए गङ्गा में डूबकी नगाने की चर्चा है । पूत्राऽ म पतावाओ म अलङ्कृत
मदिरा वाली कागी का विम्ब है उतगद में बहा शरीर त्यागन व गङ्गा
में स्नान करत लोगा क विम्ब बीखने है । यमन म विस्मय की अनुभूति होती
है ।

१ का०, प० ३४५

२ नहीं, पृ० ८१

३ विचित्र तद्विहृदस्य वतिरिष्ट-फलाय चेत ।

—साद०, १०, ७२

४ भास०, १, ८८

विशेष— इसका विषय एक वस्तु का एक साथ अनेकत्र होने, बिना आधार साधय के विद्यमान रहने, एवं अत्र कार्य करने हुए अस्मात् किसी कठिन काय के सम्मत् हो जाने का बणन है।^१ उद्देश्य इन गीति के तीना प्रकार के विम्ब उपस्थित करने प्रभावविशय उत्पन्न करना है। जैसे—

दिवमप्युपयातानान्नाकल्पमनल्प गुणयणा घोषाम् ।

रमयति जगति गिर कथमिव कवयो न ते वन्द्या ॥^२

इसमें कविया के दिग्भ्रम हो जान पर भी उनके काव्य की अश्रुता प्रतिपादित हुई है। यह बौद्धिक विम्ब है।

प्रासादे सा पथि पथि च सा पृच्छत सा पुर सा

पर्यङ्के सा विशिदिति च सा तद्विद्योगानुरस्य ।

ह हो चेत प्रकृतिरपरा नाऽस्ति ते काऽपि सा सा

सा सा सा सा जगति सक्ते कोऽयमर्द्धतवाद ॥^३

इसमें भावभावश एक प्रेमिका के सर्वत्र दृष्टिगत होना का बणन है। पाठक की भावना का साधारणीकरण कवि की भावना के साथ होने पर उसे भी प्रेमिका नवत्र दिखाई देती। तृतीय प्रकार का विम्ब निम्न गथा में देखा जा सकता है—

श्रीय-रताऽकुलिते पुत्रि प्रिय हरिष्यसीति किं चोद्यम् ॥

व्रजन्ती मुखज्योत्स्नाभरंस्तिभिरुभवि नोत्सवति ॥^४

इसमें प्रिय का हृदय हरन के साथ गान माग के अन्वेषण का निवारण भी सम्भव दशा है। इसमें समतायुत अभिसारिका के साथ माग में प्रकाश एवं कल्पना में नायिका की असाधारण मौन्दय का विम्ब भी वक्षता है।

व्याघात— इस अलङ्कार का स्वरूप अथ द्वारा अपनाये गये उपाय या साधन में उनमें विरुद्ध कार्य का विम्बन है।^५ जैसा—

१ यदाधेयमनाधारमेक चानकगाचरम् ।

किञ्चिन्नुकुर्वन् कावमगकस्येतरस्य वा ॥

कायस्य करण ईवाद् विशेषमिन्निविप्रस्तन ॥ —साद०, १० ७३-७४

२ वही, पृ० ३५५

३ अम०, पृ० ५०२

४ अर०, (उ०) ३४७

५ व्याघात स तु केनाऽपि वस्तु यत् यथाकृतम् ।

तेनैव चेदुपायेन कुर्यादस्तद्वन्द्या ॥

—साद०, १० ७५

दृशा दग्ध मनसिज जीवयगित दृशीव या ॥

विद्ययाक्षस्य जयिनीस्ता स्तुमो घामलोचना ॥^१

इस पद्य म शिव के नेत्र की अग्नि स दग्ध काम क सुन्दरिया द्वारा नयन स ही पुनर्जीवित कर दिये जान का वर्णन है। यहा शिव क नयन स कामदहन का मिथिक विम्ब और करुणा स सुन्दरी क नयन म कामोजीवन की अनुभूतिमय विम्ब बनन ह।

प्रत्यनीक—शत्रु का प्रत्यणकार न कर सकन पर उसक सम्बन्धी का अपकार वर्णित करने पर यह अलङ्कार होता है।^२ इसका उदाहरण नैपथ्य क निम्न पद्य म देखा जा सकता है—

जितस्तवास्येन विधु स्मर श्रिया कृतप्रतिशो मन तौ वधे कुत ।

तवेति कुत्वा यदि तस्मिन्मया न मोघसङ्कल्पधरा विलासरा ॥^३

यहाँ चद्र और काम द्वारा नय क वीर का बदला दमयन्ती से लेन की बात विरोध का अनुभव कराता है। नय का अप्रतिम सौन्दर्य एव दमयन्ती क अनुराग का प्रतिभात विम्ब-निमाण क मूत्र ह।

सामर्थ्य-समर्थनभाव-मूलक अलङ्कार

कुछ अलङ्कार जिनम समर्थ्य समर्थन-भाव काम करता है, समानान्तर दो वाक्या द्वारा विम्ब की सृष्टि करते है। उनम प्रमुख अर्थान्तरन्यास है। इसम सामान्य म विशेष का और विशेष म सामान्य का समर्थन किया जाता ह। विश्वनाथ के मत म कार्य मे कारण एव कारण म कार्य का समर्थन भी होता है।^४ फलत दो समानांतर विम्ब बनते ह। जैसे—

सा सन्यस्ताभरणमवला पेशल धार्यती

शाम्योत्सङ्घे निहितमसकृद दु खदु खन गात्रम् ॥

त्वामप्यस्य नचजलमय मोक्षयिष्य यवस्य

प्रायस्तर्वा भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥^५

१ साद०, १०, ७५ पृ० ३५

२ वही, १०, ८६-८७

३ नैच०, ६, १४५

४ सामान्य वा विशेषेण विशेषमनन वा यदि ।

कार्य च कारणेनेद कार्येण च समर्थ्यत ।

साधार्येणेतरेणार्थांतरन्यासोऽप्युच्यते ॥

—साद०, १०, ६३

५ मेदू०, २ ३२

मेघान् ५ इस पद्य में पूर्वाध में विन्हिणी यक्षिणी का अपस्त्रुत वेप, विम्बर पर पदा भीण शरीर, वृष्टि-विन्दु एव पश्चात् अश्रुण के भावाचित्र बनते हैं। बाद में वादिक विम्ब और उसकी तह में गमवेदना का अनुभूत्यात्मक विम्ब उभरता है।

सोकोत्तर चरितमययति प्रतिरठा
पसा कुल नहि निमित्तमुदासताया ।
वातापितापनमुने क्लेशात् प्रवृत्ति—
लीलायित पुनरमुद्रसमुद्रपानम् ॥^१

यहाँ पूर्वाध में समाय टा जब बौद्धिक विम्ब का निर्माण करता है और अयत्न्य द्वारा समुद्रपानका विशेष में जिसने पूर्वाध के अर्थ की पुष्टि की गई है, स्मृति द्वारा चाक्षुष विम्ब की वृष्टि होती है।

सहसा विदायोत् न क्रियाभिवेक परमापदा पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिण गुणतुब्धा स्वयमेव सम्पद ॥^२

यस पद्य में पूजाय में सत्माकाय न करना रूप कार्य कर्मित है जिसका बौद्धिक विम्ब बनता है, उक्ताद्ध में विमृश्यकारी का सम्पत्तियो द्वारा स्वय-वर्ण-रूप कारण-रूप में प्रस्तुत अथ उसका समर्थन करता है। इस प्रकार लोकसाय होने के कारण उसका चाक्षुष विम्ब बनता है। इसी प्रकार विमृश्य-कारिण रूप कारण का सम्पद्वर्ण-रूप काय में समर्थन है। सहसाकारित्व के निमित्त रूप काय का समर्थन अतिवेक की निप-मूर्तता रूप कारण से किया गया है। निपेय का विधि में समर्थन होने से यहाँ समर्थक वैधर्म्यमूत्रक है।

पृथिव स्थिरा भव भुजङ्गम् धारयना
एव कूर्मराज तदेव द्वितय दधीया ॥
दिवकुञ्जरा कुहन तत्रितये दिधीया
देव करोति हरकामुक्त्वात्ततयम् ॥^३

यहाँ कुछ ही क्षणों में होने वाली अनुपरोपण-क्रिया-रूप कारण में प्रथम तीन चरणों में प्रतीति-कार्य का समर्थन किया है। वाक्य का आशय स्पष्ट होने के साथ ही मञ्च पर खड़े लक्ष्मण की आनन्विनी मूर्ति भाव दृष्टि के समक्ष प्रत्यक्ष हो जाती है। यही उसका चमत्कार है।

१ अम- पृ० ४००

२ किरा०, २, ३०

३ हनु- ना०, १, २१

काव्यलिङ्ग—कारण रूप पदार्थ या वाक्याथ म काय का समर्थन करने से निष्पन्न^१ इस अलङ्कार म निर्हेतु दाप का निर्गकरण करक वाक्य म विम्ब ग्राहिका शक्ति आ जाता है । जैम—

त्वामातिरय प्रणयकुपिता धातुरागं शिलाया—

मात्मान त चरण-भतित यावदिच्छामि कर्तुम् ॥

अखेर ताव-मुद्गरुपचितेदृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गम तो वृत्तान्त ॥^२

यहा कारण रूत पहन तीन चरणा म चतुर्थ की सङ्गति हानी है । वाक्याय के लक्षण ही जान पर चिन्निखिना यक्षिणी क पैरा म झुन यक्ष का रूप मूल ही जाना है ।

अर्थापत्ति—दण्डापूर्विका मा कौमुतिक न्याय पर आधारित यह अलङ्कार^३ एक अथ म अथ जय की स्वत सिद्धि बाधित करक उसकी प्रताति म बाधक ग्रथि का दूर करक विम्ब निर्माण म सहायक हाता है । जैम—

तव प्रसादात् कुमुमायुधोऽपि सहायमेक मयमेव लब्ध्वा ।

कुर्या हरस्यापि पिनाकपाण धैर्यच्युति के मम धन्विनोऽग्नये ॥^४

यहा कुमुमायुध क साथ और पिनाकपाणि के साथ अपि का प्रयोग एक बार काम क अथत दुत्रल अस्त्र दूसरी बार शङ्क कर की दुषपता को अभिव्यक्त करता है । कुमुम-मदृश सुकमार अस्त्र वाना होकर भी हर का धैर्य भङ्ग कर सकता हूँ प्रवन अस्त्र हान पर ता कटना ही क्या ? तथा पिनाकपाणि का भी धैर्य भङ्ग कर सकता हूँ औरा का तो करना कठिन ही क्या है । इसमे काम की अकल्प्य शक्ति सूचित होती है ।

कही कही बिना 'अपि' क भी यह अलङ्कार होता है । जैम—

निविशते यदि शुक्शिला पदे सृजति साक्षिपतीमिव न व्ययाम् ॥

भुङ्कुतनो वितनोतु कथ न तामवनिमृत्तु निविश्य हृदि स्थित ॥^५

१ हेतोवाक्यमन्वयत्वे काव्यलिङ्ग निरूपित ।

—साद०, १०, ६४

२ मद्र० २, ४४

३ दण्डापूर्विका-यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यत ।

—साद० १०, ८३

४ कु०स० ३, १०

५ नैच० ४, ११

यहा श्री आदि की नीरु के पाव मे चुभने मे उदन्न व्यथा मे पवत के अन्दर प्रवेश के कारण वदना की स्वतन्त्र-सम्भविता सिद्ध होती है । पहले शूक शिखा के चुभने से उत्पन्न व्यथा का उलटना से अनुभव करना होगा । उसकी तुलना मे पर्वत के प्रवेश मे उन्वित पीटा की गम्भीरता का अनुभूति-बिम्ब कल्पना मे बनता है ।

अनुमान—हेतु मे अन्य अथ की अनुमिति पर आधारित इस अलङ्कार मे एक वाक्याथ मे अन्य नकारार्थ का बिम्ब बनता है । यह अनुमान व्याप्तिज्ञान पर आधारित न होकर कायकारण भाव पर आश्रित है । जैसे—

ध्रुवमधोतक्षतीपमधीरता बभिल-वत्-पतदगतवेगत ।

स्थिति-विरोधकरीं द्रवणुकोदरी तदुदित स ह्यो यदन्तर ॥^१

यहा हम मे भेट होन के पश्चात दमयन्ती के विक्रम होने रूप लिङ्ग मे हस की गति की शीघ्रता मे दमयन्ती के अजीरता सीखने का अनुमान किया गया है । ध्रुव के उन्मैशा-वाचक हान पर भी^२ उभमे बाधा नहीं पत्ती । निड गतिर्निङ्ग भाव बना ही रहता है ।

हेतु—भारण और काय का अभेद मानन की भावना पर आधारित हेतु अलङ्कार^३ शाना के पर्यायमम का तुल्य करके अभेदात्मक बिम्ब का निर्माण करता है । भामह-मदृश आचार्य इसका जाड कार ही नहीं मानते हैं तो^४ अन्य भाष्यानिङ्ग मे जमिद स्वीकार करन है ।^५ किन्तु जिन प्रकार कारण-काय की महभाविता मे अकामातिशयकिन् नामक पृथक् भेद माना गया है ।^६ इसी प्रकार दानो के अभेदमूलक चमत्कार को दृष्टि मे रखते हुए इसे पृथक् अलङ्कार मानना ही उचित है । जैसे—

१ अनुमान तु विचिञ्जत्या ज्ञान साध्यस्य माज्ञात । —साद०, १०, ६३

२ नैच०, ४

३ मन्ये शट्ठं ध्रुव प्राया नूनमित्येवमादय ।

उन्मैशा व्ययन्त शब्दं वि शब्दोऽपि तादृश ॥ —वाद०, २, २३४

४ अभेदेनाभिज्ञा हेतु हेतुहेतुमत्ता सह । —साद०, १०, ६४

५ हेतुश्च मूलमोनेशोऽत्र नालङ्कारतया गत । —भाषा०, २, ८६

६ इदं काव्यानिङ्गम् इति, हेत्वन्तं कार इति केचिद् व्याजहु ।

—कवन०, पृ० १२८

७ अदमातिशयोक्ति स्यात् सदृशे हेतु-काययो ।

—वही, पृ० ४.

भाग्यास्तमयाभिवाशणो हृदयस्य महोत्सवावसानमिव,
द्वारविधानमिव धृतेर्मन्ये तस्यास्तिरस्करणम् ॥

इस पद्य म मालविका के नत्रा मे जाझल होने का नायक एतत् सौभाग्य का फिर जाना मानता है। वस्तुतः नायिका का अदशन नत्रा क दुर्देव का कारण है। परन्तु कवि की शिक्षा का प्राधान्य होने क कारण कार्य-कारण क अभेद की संभावना की गई है। इव उत्प्रेक्षावाचक है जत उत्प्रेक्षा एव हतु का समाप्त है। यही स्थिति हृदय क महासव का जत तथा घय का द्वार वद ज्ञान की कल्पना की है। उनम भी नायकाण्य के अभेद की कल्पना है। यहां मालविका का अदशन का चाक्षुष प्रक्ष क अभाव की त्रिगा है जा भूतले घटो नास्ति इम ज्ञान क तुन्य है। किन्तु नत्रा क भाग्य का अस्तमन, हृदय क उमव का अन्त प्रतिनिजगतमक अनुभूति क विषय है। फलतः पहले सौभाग्य और हय का अनुभव ज्ञान क पश्चात् मन को जो पूरता और अघकार का अनुभव हाता है, यहां भी नायका क कारण वसा ही अनुत्प नायक का मालविका के अदशन म होना है। उस अनुभूति का विम्ब घनन पर नायक के साथ दशक या पाठक का साधारणीकरण मभव है और तभी इसका वाक्याववाध हाता है।

ललित—अप्यग्दीप्तित्व द्वारा विपचित गृह धनङ्कार सामान्य रूप म अप्रमृत्त प्रणया म मिलना-गुलता होकर भी विम्ब निमाण की दृष्टि म महत्व पूण है। इसमे वण्य वस्तु क प्रतिविम्ब का प्रतिपादन किया जाता है। वण्य जब प्रस्तुत होता उसका प्रतिविम्ब अप्रस्तुत हागा। प्रस्तुत विम्ब रगा। वण्य के प्रतिविम्ब का बोध होने पर उसके प्रसाग म विम्ब का बोध अनिवाय है। अत्रया वाक्याथ विश्रान्ति मभव नत्री है। जैत—

निर्गन्ते नीर सेतुमेवा चिकीषति ।

यहां वण्य अथवा विम्ब है कि अवसर चीतन पर न करणा। तावय यह है कि नायक क अनुराध का ठुकरा कर पहल उर त्याग दिया। अब मनाना चाहती है। इस प्रकार प्रमत्त का बोध अप्रस्तुत म ही होता है। दोनों अर्थों का विम्ब प्रतिविम्बभाव स्पष्ट है इसी प्रकार —

१ मालवि० २, ११

२ वण्य स्याद् वण्यवृत्तान्त प्रतिविम्बस्य वणनम् । ललितम् ।

अयसु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग
 लोल विनोदय मन सुमनोवतासु ।
 बालामजातरजस कलिकामकाये
 व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकाया ॥

इस पद्य में किसी बालिका को मजाग व लिए छेत्त कामुक का इग अनुचित कार्य में वर्जित करके तम्षी में प्रेम करने को कहा गया है। इसमें दीक्षित ने प्रस्तुताट्कुर माना है जो प्रस्तुत में प्रस्तुत के ही घातन में होता है। यहाँ स्पष्ट ही अचेतन भृङ्ग का वृत्तांत अप्रमत्त प्रतीत होता है। किन्तु दीक्षित के अनुसार वाटिका में मोंटरान भ्रमर की ही लक्ष्य करके यह वचन कहा गया है। अब भृङ्ग भी प्रमत्त है। पर प्रश्न यह है कि क्या भृङ्ग दीक्षित की भाषा को समझता है या वजन को मान लगा। अब सन्निधि में इस प्रकार की बात कहने पर काइ मङ्केत न होता जयशक्ति मृत ध्वनि मानी गई है और मङ्केत में व्यङ्ग्य के स्पष्ट कर दिया जाने पर अलङ्कार^१। "किं भृङ्ग मत्या मानया जनक्या कण्ठकेद्धया" और "जणामु तावद्" आदि पद्य में एसा कोई मङ्केत नहीं है। किन्तु व्यङ्ग्य की अपेक्षा वाक्याव सुन्दर होने से गुणीभूतघट रहे है अब अप्रमत्तप्रशमा अलङ्कार माना ही स्वर्तो में मानना उचित है।

लोकोक्ति—इसी प्रकार का अन्य अलङ्कार लोकोक्ति है।^२ उसमें ता

१ कुवन्०, पृ० ८५, इसमें प्रसिद्ध हिन्दी कवि विहारी दाल के—

नहि पराग नहि मधुरमधु नहि विकास इहि माल ।

अनी कनी ही सो बघी आग नीन हवार ॥

विहारी सनमई १० इस दाहे का भावनाम्य है।

२ प्रमत्तवत् प्रमत्तवत्स्य घातने प्रस्तुताट्कुर । —कुवन्० १७

३ तु० शब्दाशयकनयाक्षिप्तोर्ध्वि व्यङ्ग्यस्य कश्चिदा पुन ।

यदाविच्छिद्यते स्वाक्या साऽयंनानन्दकृतिध्वनि ॥

—ध्वन्या० २, २३

इसमें ध्वनि और अलङ्कार में स्पष्ट अंतर दिखाया है। "वन्म मा गा विपाद् आदि श्लोक में "विगाद्" "श्वसन" "ऊध्वप्रवृत्त" आदि अनेकार्थ शब्दा से हीने वाले व्यङ्ग्य की "प्रयास्यान सुराणामिति भय-शमनच्छद्मना कारयित्वा" इस मङ्केत से बाध्य कर दिया गया है।

४ तु० वीर-प्रयादानुवृत्ति लोकोक्तिरिति मथ्यते ।

भृङ्ग एव जानीते भृङ्गचरण सखे ॥

—कुवन्० १५७

विम्ब-द्राहिका अग्नि म्वय है ही । वधाकि परम्पराप्राप्त भाव रहत म उनके मूल मे आद्य विम्ब काम करता है । उदाहरण क त्रिए—

शापान्तो मे भुजगशयनादुस्थिते शाङ्ग पाणौ
शेषान् मरान गमय चतुरौ लोचने मीलयित्वा ।^१

इन पद किनया का त्रें । 'लाचन मीलयित्वा' यह स्पष्ट ही विम्बामक करन है । जैसे आख वन्द करन पर कुछ भी दियाइ नहीं दना, इसी प्रकार आख मीचकर अर्थात् चपचाप सत्र कुछ महने यह भाव निकलता ह ।

मिथ्याध्यवसिति—यह अलट बाग किसी वात का अमभव मिद्ध करते क लिए मिथ्याध्यवमान करन म निष्पन्न हाता है ।^२ वस्तुत यह असभवद्वन्त-सम्बन्धा निदर्शना म दूर नहीं है । वधाकि उमम भी किसी कार्य की अमभवना सूचित करन क त्रिए समानान्तर असभव व्यापार प्रस्तुत किय जाने हैं । दीनित न जन उदाहरण म मिथ्याध्यवमिति क माय-माय निदर्शना का अस्तित्व भी स्वीकार किया है^३ । जैसे—

अस्य क्षोणिपने परार्धपत्न्या लक्षीकृता सत्यया
प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणवधिर ध्याया किलाकीर्तय ।
गीघत्ते स्वरमष्टम कलयता जातेन वध्योदरा-
न्मूकाना प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि^४ ॥

इसम परार्ध म आग की मन्था जटा म द्रष्टव्य व वहरो म सुनी जाना अष्टम स्वर, वाय क पुत्र मूक द्वारा गान, कच्छनी क दूध मे दना समुद्र सभी ममार म अमभव पदाथ ह । वष्य क अपयज का सवथा अभाव दिखान के त्रिए यह माग जाना जाना फौनाया गया है । परन्तु काव्य का विषय बना देन म यह भा ध्याता क वाग्र का विषय बनन म विम्बित हाता है । किसी हुए काय दुष्करता बनान क त्रिए भी इस प्रकार की अमभव कल्पना की जाती है । जैसे—

१ मद्रू० २, ५०

२ त्रिन्विन्मिथ्यावमिदध्यय मिथ्याथान्तर उत्तनम् ।

मिथ्याध्यवमितिर्वैश्या वशयत् स्वसत्र वहन् ॥

—कुधर० १२७

३ अनाथादाहरण निदर्शनागमम् । वही

४ नैच० १२, १०६

केनोस्तुङ्ग-शिखा-स्ताप-जटिलो बद्ध पटान्ते शिखी
पाशै केन सदागतेरगतिता सद्य समासादिता ।
केनानेकपदानयासित-सट सिंहोऽपित पञ्जरे
भीम केन न नैकनकमकरो दोभ्या प्रतीर्षोऽणव ॥^१

इस पद्य में राक्षस के पकड़े जाने पर विस्मय प्रकट करता चाणक्य इस कार्य की तुलना इन असंभव कार्यों में करता है। इसमें स्पष्ट ही निदर्शना है।

गूढोक्ति—अय की लक्ष्य करके कहने वाली बात यदि अय की सम्बन्धि न करके कही जाय, वहा अप्ययदीप्तिय ने गूढोक्ति मानी है। उदाहरण दिया है—

वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षक^२ ।

यह परस्त्री में समागत करत व्यक्ति की उध्य करके कहा गया वचन है। वास्तव में "वृष" और "क्षेत्र" शब्द के श्लिष्ट होने में ही इस अलङ्कार का अवसर बनता है। जयथा यह रूपकानिश्चयान्वित या अप्रस्तुतप्रशसा का ही उदाहरण है। जो आचार्य अप्रस्तुतप्रशसा को श्लिष्ट विणेषण और श्लिष्ट विशेष्य पर आधारित स्वीकार करते हैं, उनके अनुसार यह अप्रस्तुतप्रशसा ही है।^३ इसमें भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के विम्ब-प्रतिविम्बभाव का ग्रहण होता है। इसी प्रकार शाकुन्तल का—

चक्रवाकवधु मन्वामत्रयस्व सहचर समुपस्थिता रजनी^४ ।^४

यह वचन गीतमी की उपस्थिति का सङ्केत करता हुआ शकुन्तला की दुष्प्रति का विदा करने का सङ्केत देता है। इस अयमनिश्चि-वैशिष्ट्य के आधार पर अर्थशक्तिमूल ध्वनि का स्पष्ट माना जा सकता है और नायक-नायिका के विद्यतन का हेतु हान से गीतमी में रजनी के अध्यवसान से रूपकानिश्चयान्वित का अवसर बनता है। श्लेष न हान में गूढोक्ति का अवसर नहीं है पर विम्बग्राहिका इसमें भी है।

१ मुरा० ७, ६

२ गूढोक्तिरन्वोद्देश्य चेद् यद् य प्रति कथ्यते ।

—कुवलय १५४

३ तु० श्लेषमूलापि समासोक्तिवद् विशेष्यमात्र-श्लेषे श्लेषवद् विशेष्य-स्यापि भवतीति द्विग ।

—साद०, पृ० ३४४

४ शाकु० (अ० ७०) पृ० ६८

इसी प्रकार विवृतोक्ति एवं युक्ति अलङ्कार विम्ब की दृष्टि में उपयुक्त है । जानदवर्धन,दि के अनुसार विवृतोक्ति श्लेष में और युक्ति सूक्ष्म में अभिन्न है ।

उपरिगत विवेचन उदाहरणों से यह सिद्ध करता है कि आचार्यों को य अलङ्कार उनकी विम्बप्राकृतता के कारण ही अभिन्न था । उनमें उपन्यक्त अलङ्कार विवक्षित अर्थ का विम्ब ही उपस्थित करता है । इसके अनिश्चित उनका और कोई प्रयोजन नहीं है ।

१ विवृतोक्ति शिष्टगुण कविनाविष्कृतयदि ।

वृषापेहि परश्वेत्त्रादिति वक्ति समूचनम् ॥

युक्ति परातिशयान् न्रिययाममगुप्तये ।

त्वामालिखन्ती दृष्टवाच्य धनु पौष्य करेऽलिखत ॥

—कुवलय १५५

—वही १५६

ग्यारहवाँ परिच्छेद

प्रतीकात्मक व साध्यवमानविम्ब तथा अनिशयोक्ति

प्रतीक का स्वरूप — काव्य में भावाभिव्यक्ति के साधनों में प्रतीक भी एक है। यह परिभाषित या सादृशतिक अर्थ होता है जो अपने अन्तर्गम बहव मा भाव समेट रहा है। जैसे यौन सम्बन्ध की दृष्टि का वाचक काम शब्द सब प्रकार के विषय-सुखों की कामना का सूचक बन गया है।

प्रतीक का अर्थ स्पष्ट करने के लिये अनेक विद्वानों और विचारकों ने उन की विभिन्न व्युत्पत्तियाँ दी हैं और विस्तृत विवेचन किया है जिसका मार निम्न प्रकार से है—

- १ प्रतीक : कन प्रथम - प्रत्येति प्रतीयते वाडेन—वाचस्पत्यम्^१
- २ प्रतीक + इण् + कन् अथवा प्रति + ईकन् — शब्दकलाद्रुम^२, अन्वाधत्तित्त-मणि^३
- ३ प्रतीक + जञ्च — प्रत्यङ् जञ्चति प्रतिरूप वा—मोनियर विनियमस-वाप^४ अमरनाथ
- ४ अङ्ग —
- ५ अङ्ग, अवयव, प्रतिकूल, चिन्ताम, प्रतीक—शब्दाध-चिन्तामणि
- ६ अङ्ग, प्रतिरूप, बिलोप, शब्द या वाक्य के अंग प्रतिमा, चिह्न (Symbol)—प्रेदिनी काव्य वाचस्पत्यम्

१ भाग० ३, पृ० ४४१७ स्वम्भ १

२ भा० ३ पृ० २६८, स्त० २

३ अङ्ग अवयव त्रि। प्रतिकूल, प्रतीक, चिन्ताम, प्रतिगता ईलक्ष्मीय धन वा, नद्युत्तरेति कप। प्रत्यति प्रतीयते वा। इण् गता। अल्मीकादयश्चति साधुर्वा०। भा० ३, पृ० २४६, स्त० २

४ मोवि० स० इ० डि० पृ० ६७५, स्त० १

है। प्रतीकात्मक प्रयोग म किसी शिवा के मून म निहित परोक्षीकरण प्रयत्न प्रभाव क रूप म मानसिक स्थिति, मनार्त्रज्ञानिक कारणों म उत्पन्न दैहिक परिवर्तन अतनिहित है। काव्य म वर्णित इस प्रकार क परिवर्तना को भारतीय काव्यशास्त्र म अनुभाव कहा गया है।

प्रतीकात्मक प्रयोग साहित्य म बहुत प्राचीन है। कान्तिचन्द्र पाण्डेय न इस सम्बन्ध म लिखा है कि कला क क्षेत्र म प्रतीकात्मक प्रयोग बहुत प्राचीन है। बौद्धकला म पवित्रचक्र महात्मावद्ध द्वारा साक्षात्कृत शाश्वत मृत्यु का तब शिखर कला म भगवान शक्य के का तृतीय नर संहारशक्ति का प्रतीक समझा जाता है।¹

पश्चिम म साहित्य म प्रतीकवाद क आधुनिक आन्दोलन क मूल म आवश्यकता डिवगारा म टी० ई० ह्यूम नामक अंग्रेज अमूर्तिक साहित्यकार एड्वा पाउण्ट और एमा वावन का इसका प्रवर्तन का श्रेय दिया गया है।²

वास्तव म वास्तविकता का संकेत करन और अविश्वस्यक धनान क लिय उसम सत्कृतिकता जानी पड़ती है। मसार क अनन्त पदार्थों को पृथक शब्दा म गिनाना कठिन है। पर एक सांस्कृतिक शब्द म बहुता का वास्तविकता संभव हो जाता है। जैसे विभिन्न शिखा क सम्पर्क म उनका विषय क ग्रहण को एक परिभाषिक शब्द प्रयत्न म अभिहित करत हैं।

इस प्रकार स्मृति ध्यान चिन्तन आदि म उत्पन्न ज्ञान क लिय प्रतिमान शब्द का प्रयोग करन म सबका एक माप बोध हो जाता है। यह भी कथन अनुचित नहा है कि यह उपमान प्रतीक बन जात है। उदाहरण क लिय प्राचीन साहित्य म पृथ्वी की तुलना गाय म होती रही है।³ इसका परिणाम यह हुआ

1 Western Aesth p 552

2 Imagist School of Poetry had its philosopher the English man T E Hulme for its prophet the cosmopolite American Ezra Pound and for its expounder the American Poetess Amy Lowell All the IS according to their temperament, sought to act upon Hulme Theory, that the chief aim was to attain accurate and definite description and that it was essential to prove that beauty might be found in small common place things

—OX Dict Vol 10 pp 1577

३ पद्याप्रतीभूतवन्तु समुद्रा जुषीपमान्पद्मराभिवाचीम । ख २ ३

इ कि गी जब्द पृथ्वी-वाचक ही बन गया^१। सत्कार की तुलना जश्वत्थ(अश्व स्य) में प्राचीन साहित्य में होनी रही है^२। जगते बनकर अश्वत्थ शब्द प्रतीक ही बन गया है। परन्तु एक दो बातें विचारणीय हैं। क्या प्रतीक अश्वत्थ में विम्ब में सबका विम्ब है या उसे विम्ब में आग की स्थिति माना जाता है? यदि वह विम्ब के बाद की वस्तु है तो उसका विम्ब-निर्माण में कोई उपयोग होना ही नहीं चाहिये। क्योंकि अश्वत्थाभेद हो गया। दूसरी बात यह है कि क्या प्रतीक के प्रयोग के मूल में सादृश्य का ज्ञान निहित नहीं रहता, यदि सादृश्य नहीं रहता तो एक शब्द अन्य वस्तु का प्रयायन किस आधार पर बनता है? पुनः जिस अर्थ का उसमें सङ्केत लेने हैं उसी का बोझ क्या कराता है और का बोझ नहीं कराता? जब एक उपमाना को प्रतीक मजा दी जाती है तो सादृश्य उतने लुप्त कैसे हो गया? या ना उह उपमान न कर जब उपमान के रूप में उह पहचानने ह ता कुछ न कुछ सादृश्य मूल में स्वीकार करना होगा। उदाहरण के लिये आगकल ज्ञान्ति के लिये लाल कनर शब्द का प्रयोग किया जाता है, उस का आधार है? यद्वे ही इतिहास जीव परम्परा में उसका सम्बन्ध हो पर मूल सम्बन्ध को भुला तो नहीं दिया गया। ज्ञान्ति में हान जाने रक्तापात के रक्त वण का सादृश्य क्या उस लाल कनर में निहित नहीं है? निरुद्ध में पत्थी में पाय जान वाले तीन रट्ग जो समृद्धि, मैत्री और जलिवान का भाव चानित करत हैं, राष्ट्रीय हस्त में जा जगत्-चक्र का चिह्न मैत्री ज्ञान्ति आदि का ज्ञान चोतित करता है, क्या मूल में उसके सादृश्य नहीं छिपा है। ये सब नाक्षत्रिक प्रयाग हैं जीव लक्षणा बिना सम्बन्ध के बनती ही नहीं। यह ठीक है कि सभी प्रतीकात्मक प्रयोगों के मूल में सादृश्य नहीं होता परन्तु अधिकतर प्रतीक इसी पर आधारित होते हैं। अन्य सम्बन्ध आश्रय-आश्रयिभाव तादृश्य, कायकारण-भाव आदि भी उभयक मूल में हैं। जैसे "कुर्सी का मलाम" यह प्रयोग किया जाता है, इसमें कुर्सी अधिवार का प्रतीक है क्योंकि कुर्सी पर बैठने वाला अधिकारी सत्ता रखता है।

वस्तुतः प्रतीक को विम्ब की एक विधा मानकर प्रतीकात्मक विम्ब कहना ही उचित है। क्योंकि विम्बन का भावना प्रतीक का प्रत्यायक भाव में ज्ञान निहित है। यदि वह विम्बन नहीं करता तो वह प्रतीक कहला ही नहीं सकता।

१ इ० निषण्ड ११ गीरिति पृथिव्या नामधेयम्, नि० २, ५

२ उष्वमूलोऽवाक्-शाख एषोऽश्वत्थ मनातन् । कठो०, ६, १

उष्वमूलमवाक्-शाखमश्वत्थ प्राहुरभ्ययम् । गीता १५, ७

३ विश्व कवि टीगोर का नाटक 'लाल कनर' उदाहरण है।

जिसन रूपक मे प्रतीक का सम्बन्ध जोना है वह सत्य क अधिक निकट ह । क्याकि प्रतीक म विम्बन की सामर्थ्य है और रस म भी । जैसा हम पहन कहे चक है कि प्रतीक क मूल म लक्षणा है और रूपक के मूल म भी लक्षणा ह । लक्षणा यदि गौणी होना ता रूपक और अतिशयोक्ति अन्तःकार हात ह । इसम बन प्रतीक मादृश्यगम हात । जिनका कुछ आलोचक साध्यवमानविम्ब पुकारत है ' वे रूपकालिशयोक्ति क ही रूप हैं । अथ प्रतीक भी भेद म अभेद र अतिशयोक्ति मूल म लिय हुए है ।

वस्तुतः जब कवि या साहित्यकार अपनी भावना या विचारा का प्रकट करन क लिय साठ केलि भाषा का प्रयोग करता है तब वह प्रतीकात्मक बन जाती है । पीछे कुछ शब्द लावण्य और मण्य की चर्चा का जा चकी ह । हम गम्भीरता म विचार करें ता उन शब्दा का प्रयोग करन पर हात वाली मूलन क्रिया समन म आ जायगी । अथवा हम उस भाव को ही नहीं समर्थेंगे । जैसा वाच्य का वाच्य अथ नम तीतान है । किमी खाद्य पदार्थ म नमक यदि अधिक पत्र जाय तो जिल्हा और कण्ठ म खराग डगन हाती है जा कि उसम निहित क्षार गुण का घम है । क्षार क उस तीखन का दशन जब हम मीठय म करता हैं ता तीख नख शिख का व्यवहार हाता है । इस व्यवहार क मूल म नमक की ती गता का अनुभव यदि स्वीकार करत है ता विम्ब की मत्ता हमन स्वयं स्वाकार कर ला । प्रतीका म वाच्यय क स्थान पर व्यङ्ग्य अथ प्रबन तो रत्ता है पर जब व्यङ्ग्य अथ का वाध प्रतीक म स्वाकार करत ह तो विम्ब तो स्वयं मान लिया । क्याकि जा अथ प्रतीक हागा वह विम्ब हाता रहगा । इसलिय प्रतीक को विम्ब न मन्थया पथक नहा किया जा सकता । यही कारण है कि लबिस महाशय मज क साथ साथ सिम्बन शब्द का प्रयोग भी करत हैं ।

१ अखीरी काव्यात्मक विम्ब २०

- 2 Have I no harvest but a thorn
To let me bleed and not restore
What I lost with coral fruit ?
Sure there was wine,
Before my sighs did dry it
There was Corn
Before my tears did drown it

The images are still conventional symbols only, but notice how cleverly the temple has used these Christian symbols Thorn and blood bread and wine for his nefarious purpose

इस प्रसंग में रमारञ्जन मुखर्जी के विचार भी सहायक सिद्ध होंगे। उनका कहना है कि कवि प्रलेना तक अपना अनुभव उममें उत्पन्न होने वाले आनन्द के माध ही सम्प्रेषित करता है। यह काय यह पूर्ण विम्ब के द्वारा ही सम्भन कर सकता है। इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का इस निमित्त सम्पूर्ण सम्बद्ध अंगों को एकत्रित करके एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना होता है। इस सम्प्रेषण के लिये कवि का सामाजिक की कल्पना-शक्ति को इस प्रकार नियन्त्रित करना होता है कि वह कवि के अनुभव का अपने अनुभव व तुल्य ही मान सके। यह तभी संभव है कि कवि ऐसे शब्दों का प्रयोग कर जो नि उनके अनुभव के प्रतीक बन जाय या वह इन परिप्रेक्ष्य में प्रतीकों का महत्त्व समझे। इसलिये कविता इस प्रकार के प्रतीकात्मक शब्दों की एक शृङ्खला कही जा सकती है, इस दृष्टि से कि यह सामाजिक व अपने आम्पादात्मक अनुभव का प्रतीकात्मक रूप में सङ्क्रान्त करती है। पर इसके लिये आवश्यक है कि सामाजिक में उन प्रतीकों को समझने और ग्रहण करने की सामर्थ्य हो।

बन्तुत जब प्रतीक-सम्बन्धी विवेचन पश्चिमी साहित्य के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में लिया जाता है तो निश्चित ही वहां के वातावरण और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना पड़ता है। इसलिये आधुनिक समीक्षकों ने प्रतीक-सम्बन्धी चिन्तन पश्चिम में विशेष कर फ्रांस में हुए प्रतीकवादी आन्दोलन के आधार पर ही किया है। उस हम संस्कृत-साहित्य या काव्यशास्त्र में भी खोजने का यत्न करें तो यह हठधर्मी ही होगी। पश्चात्य साहित्य की अपनी परम्परा है और उसके मूल में वहां की साम्प्रतिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियां रही हैं। फलतः यहाँ का साहित्यशास्त्र और पश्चिम का काव्य-शास्त्र दोनों स्वतन्त्र रूप में फले-फूले हैं। बहुत सी बातें यदि दोनों में समान रूप से मिलती ह तो आनुषङ्गिक रूप में। हा, वर्तमान युग में कुछ पश्चिमी साहित्य भी प्रवृत्तियां सन्वृत साहित्य में आ गई हैं, उनका विवेचन भावी काव्य-शास्त्री करेंगे। यह भी मानन में हमें सङ्कोच नहीं है कि प्रस्तुत प्रबंध में विम्ब और प्रतीक-सम्बन्धी अध्ययन पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के कारण ही करना पड़ रहा है। अन्यथा संस्कृत-काव्यशास्त्र में विद्यमान विम्ब और प्रतीक-सम्बन्धी चिन्तन की ओर आधुनिक चिन्तकों की दृष्टि ही नहीं गई थी।

अस्तु, संस्कृत-काव्य-शास्त्र में प्रतीक-सम्बन्धी चिन्तन उसी दृष्टि से नहीं

दृशा है जिससे पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र म पाया जाता है। यहाँ प्रतीक साम्यिक वक्रता ऋद्धिवक्रता क अतर्निमित्त हैं या फिर अप्रस्तुतप्रशसा या अतिशयाक्ति अनन् कार क रूप मे।

जब सादृश्य का लकर प्रताक का प्रयाग किया जाता है तब रूपवर्गि शयाक्ति अनन् कार या अप्रस्तुतप्रशसा का तुय अप्रस्तान म तुय प्रस्तुत का वाधरूप प्रकार प्रयुक्त होता है। वैदिक साहित्य म लकर पश्चादवर्ती संस्कृत साहित्य तक म इस प्रकार क प्रताक मिलत ह जा अपनी अभिव्यञ्जना शक्ति स अपन साथ सम्पन्न सम्पूर्ण अर्थ को समाहृत किय रहत है। इस व्यञ्जकता क कारण व उसक साथ सम्बद्ध सम्पूर्ण वातावरण को विम्बित करत हैं। उदा हरण क लिय हठयोग म तिस विन्दु क नाम म पुकारत है उम ही वैदिक साहित्य म ऊच्चाबुध्न श्रवत या उध्वबुध्न अवाग विन्' नाम दिया गया है। कवीर न उम औधा घडा नाम दिया। उपनिषद म ब्रह्म का उध्वमून अश्वथ कहा ता गीता म उम ममार क लिय प्रयुक्त किया। हस तो उपनिषदा एव पुराणा म जाव और ब्रह्म क निय प्रयुक्त दृशा ही है^१। श्रीमद भागवत म पुरञ्जन की कथा भारी ही प्रतीकात्मक है तिस अशरार क लिय पुत्र शब्द का जीवात्मा के लिय पुरञ्जन बुद्धि क त्रिय पुरञ्जना का प्रयाग दृशा है। श्री प्रकार शरीर म रहत वाली वायु प्राण अफान व्यान ममान उदान इन पाच भेदा क कारण पाच सिर वाल नाम क नाम म मन् कतिन है। बृद्धावस्था का कान-कथा क नाम स और दिना को गद्यथ मना म व मृत्यु को यवनरान नाम म निर्दिष्ट किया है^२। यहा सादृश्य सम्बद्ध हान म रूपकातिशयाक्ति तो नहीं मान सकत पर भेद अभेद रूपा अतिशयाक्ति माना जा सकती है।

धमशाम्ना मात्र और ताना म इस प्रकार क प्रतीका की भरमार है। भू भव स्व मह जन तप मत्यम य व्याहृतियाँ प्रतीक नहीं ता कथा हैं^३ शरीर क अतवतिनी सात चतना की धाराया तिनहें शीषण्य प्राण भी कहा गया है^४ का रेथ नाम से पुकारा है^५। हिरण्यगम्ब्रह्मा को कहत है^६। ब्रह्मा क

१ तु० कठो० ५ २
भाषु० ४२८ ५४

२ वही, ४ २६

३ सप्त वै शीर्षण्या प्राणा जत० ब्रा० १३ ७ २

४ यत्न वाच पदवीयमायन तामर्वादिन ऋषिपु प्रविष्टाम।

तामाभत्या व्यदधु पुष्टाता सप्तरेशा अभिसनवत्ते ॥—ऋग० १० ७१, ३

५ हिरण्यगम्बो लोकेशो विरिञ्चिश्चतुरानन । अको० स्व० व० १ १ ११

आधिदैविक स्वरूप को भुला दिया जाय ता हिरण्यगभ ब्राह्मण्ड नहीं तो क्या है ? अण्डे को तोड़ो तो बीच में से पीला पीला पदार्थ निकलता है, वही हिरण्य है। 'हिरण्य गर्भेज्य' इस व्युत्पत्ति से हिरण्यगभ शब्द अण्डे का ही वाचक सिद्ध होता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की स्तुति करने हुए ब्रह्मा अपने इस भौतिक रूप का ही परिचय देते हैं।^१ ऐ० ह्री, कनी, ह्रा, ह्री, ह्रू, धीपद्, वीपद्, वपट् आदि सभी प्रतीकामक शब्द हैं जो गम्भीर अथ आत्मसात् किये हुए हैं। एन अक्षर को भी सामिप्राथ मान लेने पर^२ उनमें से वट्ट से बीज मात्र या प्रतीक बन गये हैं। ज्यातिष, छन्द आदि शास्त्रों में द्रव्य-वाचक शब्द मर्या के रूप में प्रतीक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं।^३ ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र को इस दृष्टि में नें—

आसो वृक्स्य वर्तिकामभीके युव नरा नासत्या मुमुक्षतम् ।

उतो काव्य पुरभुजा युव ह कृपमाणमकृणत विवक्षे ॥^४

अश्विनी-सूक्त में अग्ये इस मन्त्र को शब्दार्थ की दृष्टि से लेता यहाँ लौकिक क्या ही लगती है कि नामत्या ने भेड़िये के मुख में बटर को छुड़ाया जो कि एक बुद्धिवादी व्यक्ति की समझ में नहीं आ सकती। परन्तु यास्क द्वारा दिये गये व्याख्यान को देखें तो सब स्पष्ट हो जाता है और प्राकृतिक व्यापार दृष्टिगोचर होता है। उसके अनुसार वृक सूत्र है और वर्तिका रात्री है। नामत्या प्रमातृकाल में दिखाई देने वाले कोई नक्षत्र है। उनके उदित होने पर दिन निकलने का समय निकट आ जाता है। इसी प्रकार प्रमाण में चेतना की वाराए

१ ऋग्वेद तमोमहदहमचरान्निवार्भू सवष्टिताण्डघटसप्तवितन्तिकाय ।

त्रेदृग्विधा विगणिताणु-पराणुचर्या । वाताध्वराम-विवरस्य च त महित्वम्

—भासु० १०, १४, ११

२ तु० अकार प्रीतिदायी स्थान्निषेधेज्य विषयय ।

आकारो हर्षदरुणापि त्राधातर्यादिषु नाचिन ॥

—च० च० १ १६

३ गिव शशी दिनेश्वरस्मुरेशेष-सज्ञावा

वहिस्ररोगघातगौ कनिश्च चन्द्रमा प्रमात् ।

धुनास्य-धर्मनामकौ च शालिपूवक कर

प्रकीर्तिता फणीश-पिङ्गदेन पटक्लेडभिघा ॥

—दुखभञ्जन वाग्बल्लभ—१, २२

४ ऋग्वे० १, ११६, १४

फूटती है। उनर कवे की अन्तर्दृष्टि नाना स मा का दर्शन करन के लिय समर्थ
हा जानी है।

उपनिषदा म मन्त ऋषियो क नाम म गीर की ज त्रेना का ही ग्रहण
हुआ है। इमका अर्थ यह है कि गौतम, भरद्वाज अ दि नाम प्रतीक ही हैं।^१
पुराणा म आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि म प्रतीक का प्रयोग पुरज्ज न के प्रसङ्ग म
दख चुक है। कायन्मक पक्ष म इम प्रयोग का सबसे उत्तम निदर्शन भ्रमरगीत
है। नोक म भ्रमर प्रेम माग पर खरा न उनरने के लिये बदनाम हैं। जा पुरुष
निय विभिन्न स्त्रियो म अरना प्रेम बदलता रहता है, उम भ्रमरवृत्ति कटा जाना
है। गानिदा श्रीकृष्ण ने मधुन रन जान उखव का दखनर और उन्ह श्रीकृष्ण का
प्रतिनिधि जान कर उन्ह अस्थिर प्रेम क लिये ताना देतो हैं। इमी प्रसङ्ग मे
मधुकर को सम्बोधित करके जा उपात्तम दिया जाता है उसम भ्रमर अस्थिर
प्रेम वाले पुरुष का प्रतीक है। उमका मधुवन भागवतकार ने स्वय कर दिया
है परन्तु वही नह उखव का मधुकर का प्रतीक बनाना है। क्योंकि श्रीकृष्ण क
रन और वेप क समान प्रकृति भी समान होगी, एमी कल्पना की है। परन्तु इन
पद्या म मधुपति आदि शब्द हान मे प्रतीका मक रन सर्वत्रा प्रत्यक्ष हो गया है।
जैम—

मधुर कितव वयो मा स्पृशाच्छिद्र सप्तया
कुचविलुलितमाला-कुड्मलसमधुभिर्न ।
वद्वतु मधुपतिस्तन्मानिनीना प्रसाद
यदु-सदसि विडम्ब्य मय्य दूतस्त्वमीदृक् ॥^२

इस भ्रमरगीत म प्रेरणा लकर लिखे गये उत्तरवर्ती भ्रमर-गीता म यह
प्रतीकात्मकता अधिष्ठ निभाई गई है—

१ इमावेव गौतमभरद्वाजावयमेन गौतमोप्य भरद्वाज इमावेव विश्वामित्र-
जमदग्नी अयमेव विश्वासित्रोऽथ जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमव
वसिष्ठोऽथ कश्यपा वागेवात्रि वाचा ह्ययन्मद्यनेऽर्तिर्हि वे नामर्तद्
यदात्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान् भवति य एव वेद ।

—बृह० २, २, ४

२ काचि मधुनर दृष्टवाध्यायन्ती कृष्ण-सङ्गमम् ।

प्रिय-प्रस्थापित दून कलयित्वेदमन्नदीत् ॥

—भापु० १०, ४७

३ वही, १०, ४७, १२

जा जा रे भौरा दूर दूर ।

रग रूप औ एक हि मूरति मेरो मन कियो दूर दूर ॥

जौलौं गरज निबट तीं रे है काज सरं पै रहैं धूर ।

सुरस्याम अपनी गरजन को कलियन रस लैं धूर धूर ॥^१

इसमें अप्रस्तुत व्यापार का ही प्रत्यक्ष स्पष्ट गया है ।

कालिदास ने भी इसी अम्बिवर प्रेम की वृत्ति व वारण दुष्यन्त को मधुकर नाम में सम्बोधित कराया है—

अभिनव-मधुलोलुपस्तथ तथा परिचुम्ब्यक्षूतमञ्जरीम् ।

कमल-वसति-भात्र विवृतो विस्मृतोऽस्येना कथम् ॥^२

यहाँ मधुकर शब्द का प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है । इस प्रकार प्रथम अङ्क में शकुन्तला के मुख के चारों ओर मँडगते मधुकर का कर-दीकर के विचार के अनुसार^३ दुष्यन्त के प्रतीक के रूप में देखे तो 'चलापाट्ठा'^४ आदि उराकी उचितया सब उस प्रतीक में जन्वित हो जाती है । अब यहाँ देखा जाय कि इन प्रतीकात्मक प्रयोगों के साथ भावादि का विम्बन होता है या नहीं ।

इसी प्रकार अपने विशिष्ट धर्मों के लिये कुछ प्राणी पदार्थ या धर्म प्रतीक ही बन गये हैं । उदाहरण के लिये कुत्ता जन्मी दीन वृत्ति और चापलूनी के लिये बदनाम है । कुठिनता के लिये उसकी पृष्ठ प्रसिद्ध है । पौरुष के लिये सिंह प्रतीक बन गया है । रक्त-न्योनूपता के लिये और क्रूरता के लिये भेड़िया और दयागान्धता एवं ऋजुता के लिये गाय प्रतीक बन गये हैं । जब इनका प्रतीक के रूप में प्रयोग होता है तो इनके व्यापार साथ साथ प्रतिविम्बित होते हैं । जैसे—

लाङ्गूल-चालनमधश्चरणावपात

भूमौ निपत्य वदनोदर-दशन च ।

शवा पिण्डवस्य क्रुहते, गजपुङ्गवस्तु-

घोर विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥^५

१ मूर भ्रमरगीतमार (रामचन्द्र शुक्ल सम्पादित) पृ० ३५२

२ शाकु० ५, १

३ अशोका के कालिदास पृ० २२३-२४

४ शाकु० १, १३

५ नीश० ३७

इस श्लोक म सा टक्=। क निय तरह तरह की चापलूमा करन वाल मवक और स्वाभिमानी व्यक्ति क प्रतीक क रूप म क्रमश कुत्त और हाथी का व्यक्तिव प्रस्तुत किया गया है। इसम दोना की चपटा का कवि न पूणविम्ब प्रत्यक्ष कर दिया है। इसी प्रकार कुत्ते की पूँछ को खल का प्रकृति का प्रतीक बना कर बणन करत हुए—

स्वेदितो नर्दितरघैव रज्जुभि परिवेष्टित ।

मुक्तो द्वादशभिर्वर्षे श्वपुच्छ प्रकृति गत ॥

इस श्लोक म उसका पूरा शब्द चित्र प्रस्तुत किया गया है। हम शब्द शास्त्रा ग आत्मा एव परमात्मा दोना क लिय प्रयुक्त हाता रहा है वह नार-क्षार क विवेचन क लिय भा प्रतीक बन गया है। अत उपनिषद् म हम का प्रयाग ब्रह्म या आत्मा क लिय है तो सरस्वती का वाहन हस का मानना भा प्रताकामक भावना ही है। वेणीसहार म द्रौपदी से गौ का व्यवहार कराया गया है।^१

इस प्रकार क प्रयाग म भल्लट कवि का बहुत सफलता मिला ह। उनक पद्या म प्रतीक रूप म प्रस्तुत पदार्थों या व्यक्तिगा क पूण व्यापार प्रतिदिम्बिन हात ह। उदाहरण क निय उनका एक पद्य एसा प्रभावजात्रा है कि हिंदी के कविया न भी उसका प्रतीक और रूपक क रूप म प्रयाग किया है—

विशाल शाल्यस्तानयन-सुभग वीक्ष्य कुमुम
शुक्स्थासीद बुद्धि फलमपि नवेदस्य सदृशम् ।
इति ध्यात्वोपास्त फलमपि च देवात् परिणतम्
विपाके तूलोऽत सपदि मदता सोऽप्यपहत ॥^२

इसम बसार समार का प्रतीक समल का फूल बनाया गया है। उसक आकषण पर मुग्ध होन वान मानव का प्रताक तान का बनाया है। इसा प्रताक का हम कबीर क दोह म ज्या वा त्या दखत है—

सेमर सुवना सेइया बुझ दही की आस ।

दही फूटि चटाक द सुअना चला निरास ॥

१ तु० श्रीरक्षीरविवेके हसालस्य त्वमेव कुरूपे चन ।

दिश्वस्मिन्नधुनाय कृलन्नत पानयिष्यतिक ॥ —भावि० १ १२

२ हस्ताकृष्टविलीनकजवसना द्रु शामनेनाया

पाञ्चाली मम राज-चक्रपुरती गौगौरिति व्याहृता ॥ —वेस० २ २५

३ भल्ल० श० १०७

भक्त सूरदास ने इस भाव को स्पष्ट बाज़ कर कहा है परन्तु भागे माग भाव प्रतीकार्थक रूप में ही रहने दिया है। उनके शब्द इस प्रकार हैं—

यह तसार फूल सेमर को सुन्दर देखि तुभायो ।

बालन लाग्यो रुई उड गई हाय कछु नहि आयौ ॥

इन उदाहरणों को देखने हुए कोई यह नहीं कह सकता कि प्रतीकों में विम्बन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। विम्बन के बिना इनका आशय ही स्पष्ट नहीं होगा। प्रतीक प्रयोग का एक अत्यप्रभावपूर्ण उदाहरण निम्न प्रकार में है—

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे

पीनस्कन्धे सुतदृश-महामूलपर्यङ्कवन्धे ।

दग्धे देवात् सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माड् कुरेऽस्मि-

न्ताशाबंध कमपि कुरतेच्छामदार्यो जनोऽयम् ॥

चार्वाक राज्ञस द्वारा भ्रम उत्पन्न कर दिये जान पर भीम की दुर्पोजन के हाथों निहत्त जान कर एक गदा-भुद्ध में अनिपुण अजुन की मृत्यु की सभावना करके मुमुर्षुं युधिष्ठिर उत्तरा के गंध में मभावित वातक से तपण श्राद्ध की आशा करती द्रोपदी के वचना पर कटाक्ष कर रहा है। यहाँ पाण्डवकुल एक विशालवृक्ष की स्थूल समानता होने पर भी तपण पिण्डदान की आशा और छाया की कामना दोनों में कोई साम्य नहीं है। पुन 'दृग्' सवनाम जो कि सन्निकृष्ट पदार्थ का बोधक होता है स्पष्ट ही द्रोपदी की आर मट्केत कर रहा है। इस प्रकार प्रस्तुत के शब्द से कथन व कारण यहाँ अतिशयोक्ति तो मभव है ही नहीं, अप्रस्तुतप्रशंसा का अपकाश भी हरा गया प्रतीत होता है। चिन्तु 'अयं जन' का विशेष द्रोपदी का वाचक न मानकर जन-सामान्य या मानवमात्र का वाचक मान ले तो स्पष्ट ही अप्रस्तुतप्रशंसा सा बन जाता है। यहाँ 'तरौ' 'सूक्ष्माड् कुरे' और 'छाययाऽर्यो' ये शब्द स्फुट प्रतीक हैं और 'आ' में प्रसिद्ध 'बास के वाम डूब गये वहाँ पोरिया का क्या पगना' इस आभाणक की स्मृति कराता है। गदा बद्धमूल विशालवृक्ष के वनाग्नि में दग्ध हो जाने पर नये अट्कुर से छाया की आशा रखना एक पूर्ण चाक्षुष विम्ब उत्पन्न कर परचात् प्रसङ्ग से बद्धमूल, पराक्रमी पाण्डव-बुन के विनाश, मन में धोर निराशा ममार की मृगतृष्णा-परता के कारण उपहामनीयता का भाव विम्ब प्रस्तुत होता है। यह एक स्पष्ट सन्निकृष्ट विम्ब है।

जब कवि किसी आध्यात्मिक यौगिक अथवा अन्य विषय का प्रतिपादन करना चाहता है तो उसी विषय के प्रतीकों का प्रयोग करता है। ये प्रतीक वास्तव में उम विषय के पारिभाषिक शब्दों की ओर मड़केत करते हैं। उनके साथ जुटा हुआ सारा भाव उन शब्दों के द्वारा मृत हो उठता है। उदाहरण के लिये—

हित्वा तस्मिन् भुजगबलय शम्भुना दत्त हस्ता
कीडारंते यदि च बिहरेरेपाव-चारेण गौरी ।
भड गो भक्त्या विरचितवपु स्तम्भितात्तजंलोध
सोपानत्व कुरु मणितटाऽऽरोहणायाप्रयायौ ॥^१

यहां सर्पावृत्ति का कुण्डलिनी नाडी के लिये भुजगबलय स्वयम्भू त्रिङ्ग के लिये शम्भुना ब्रह्मरन्ध्र के लिये 'तीन शैल' उमी के मध्य स्थित मणिपीठ के लिये 'मणितट' का प्रयोग है। शिव की इच्छा ज्ञान-क्रियात्मिका शक्ति के लिये गौरी पद प्रयुक्त हुआ है।^२ परन्तु योग और तन्त्र से सम्बद्ध रहस्य को गर्भित किये इन शब्दों का आशय वही समझ सकता है जो कि उस विषय का जाना हो। अर्थ के लिये यह सब दुर्बोध हो जायगा और दुर्बोध होने पर बिम्ब नहीं बनगा। इस कारण आचार्यों में एक स्थान में अप्रतीत दोष की स्थिति मानी और^३ तद्विषयक ज्ञान की दृष्टि में इन गुण माना है।^४ इसी प्रकार कई लौकिक व्यापार न्याया के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। जैसे अपनी दुःख-गाथा व्यथ में मुनान के लिये अरण्य-रोदन शब्द का प्रयोग होता है। धनवान परन्तु शरीर से शान्त-मटोल व्यक्ति के लिये 'रम कर्म' शब्द का प्रयोग प्रतीक ही है जो कि अपने साथ सम्पुक्त समूचा अर्थ समेट हुए है। ऐसे प्रतीकात्मक प्रयोग कवि अलट कारों के द्वारा करता है जिससे वे पाठक या श्रोता के लिये उद्वेजक न हो जायें। क्योंकि चमत्कार के रूप में वक्तव्य का प्रत्यक्षीकरण ही अपक्षित प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। यह अलङ्कार जब व्यङ्ग्य रूप में रहता है, तब

१ मैट्रू० १ ६४

२ विशेष के लिये—

रञ्जनामूरि देय—मेघदूत एक अनुषिन्तन, पृ० ११०

३ उपनीतमिदं प्राहु केवल शास्त्रभाषितम् । —सा०सु०सि० ५, ६३

४ प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोर्ज्ञत्वे सत्यप्रतीतत्व गुण ।

—का०प्र०का०, पृ० ३५७

५ चतुर्भाषी—दश्वर दत्त वृत्त धृतविटमवाद, पृ० ७

प्रतीक अधिक प्रभावशाली सिद्ध हीता है। क्योंकि उसकी व्यञ्जक शक्ति विशेष रमणीयता लिये प्रकाशित होती है। जैसे—

नेत्रा नीता सतत-गतिना यच्छिमानाण-भूमि-
रालेष्ट्याया स्वजल-कणिका-दोषमुत्पाद्य सद्य ।
शङ्कास्पृष्टा इव जलनुचस्त्वादृशो जालभाग-
धूमोद्गाराऽनुकृति-निपुणा जर्जरा निष्पतति ॥^१

यहाँ सामान्यरूप में नेत्रा, सततगति, आलेष्ट्य, दाप, शङ्का, जालभाग, जर्जर ये शब्द क्रमशः ले जाने वाला, पवन, चित्र, विकार, छटका, झरोखर और कणश इत वाच्यार्थों में प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु ननु-शब्द नायकत्व का प्रतीक है, सततगति अविरतता का, आलेष्ट्य उत्तम एवं प्रयत्न रक्षणीय वस्तु का, दोष तोड़ फोड़, व्यभिचार आदि का, शङ्का मन में अपन ही अपराध में उत्पन्न दण्डनीयता के अथवा जलभाग छन-रूप, अनुचित उनाय, वा जर्जर छपड़ छण्ट-भाव का। अतः वाच्यार्थ में तो स्वभावोक्ति एक उपलेशा अलङ्कार ही है परन्तु इन प्रतीकात्मक शब्दों में तत्काल कम के निवेदन नगर में घूमते रहने वाले नायक द्वारा सीढ़ी आदि द्वारा भवन की ऊँची मजिना में सुरक्षित उत्तम वस्तुओं को खगव करके पुनः पकड़े जाने का डर का अग्रव्यक्षणाग छिपकी आदि में कूद कर हाथ पैर तुड़वाने वाले आगगियों का व्यवहार जागेपित होने में समानोक्ति व्यङ्ग्य है। इनके अतिरिक्त 'सकृत्' स्थान में ले जाने वाले सूक्ष्म के द्वारा रममहन की ऊँची मजिना या चन्द्रशालाआ में गुप्तमार्ग से ले जाये गये चौप-कामुक अदभुत रूप वाली सुन्दरिया का साथ व्यभिचार-दोष उत्पन्न करके पकड़े जाने का डर में जाने लड़ाई जोड़ कर गुप्त मार्ग या छिपकी आदि में निकलता है यह अर्थ व्यङ्ग्य अर्थ निकलता है। यहाँ इस व्यञ्जकता-शक्ति के कारण जानाचना में प्रतीयमान अर्थ की छाया हान में लावण्य नामक गुण ही गता स्वीकार की है।^१ आनन्दधन ने वाच्य में स्थित इस प्रतीयमान की तुलना स्त्रियाँ के शरीर में अङ्ग में पृथक मानित हान वाले लावण्य में की है।^२ लावण्य ही परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

मृताफलेषुच्छायापास्तरेत्सद्विधान्तरा ।
प्रतिभाति वदतु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥^३

१ मध० २, ६

२ इ० रञ्जत मूरिदन—मध० १११ अतुचिल्लन पृ० ४३

३ प्रतीयमान पुनरव्ययन उल्लेखित वाणीयु महकविनाम ।

यत्प्रमिद्वानययातिरिक्त विभाति लावण्यमिवाङ्गनामु ।—ध्व० पा० १, ४

४ मद्र० १११ अनु०, पृ० ४३

कुन्तक के अनुसार लावण्य पदा क यथोचित मनिवेश से शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्ग क यथाचित सट गठन क उत्पन्न मौन्दर्य है जो कि प्रत्येक का भासित होता है ।^१ इमार विचार में यह आनन्दवर्धन क तात्पर्य क विषगीत है । प्रतीप मान जय प्रत्येक को प्रतीत न हाकर जवन काव्यमर्मज्ञ व्यक्तिना का ही भासित होता है ऐसा कुन्तक भी स्वीकार करता है । अब कुन्तक का अभिमत लावण्य आनन्दवधन का अभिमत लावण्य क पृथक् स्वीकार करना होगा । हा, व्यङ्ग्य अर्थ क द्वारा उत्पन्न चारिमा और वाच्य-मौन्दर्य में उत्पन्न चमत्कार के लिये दोना ही छाया शब्द का प्रयोग करत है ।^२

जस्तु यहाँ व्यङ्ग्य समामासित जनक का क द्वारा अधिक चमत्कार आने क प्रतीक का वास्तविक चमत्कार प्रत्यक्ष हो जाता है । माय ही इन व्यङ्ग्यार्थों की विम्बान्मकता भी स्पष्ट है । अब प्रतीका का विम्ब क पृथक न मान कर प्रतीकान्मक विम्ब की मज्ञा दनी अधिक उचित है ।

वहूधा सूक्ष्म अलङ्कार क गूढ अत्र की अभिव्यक्ति प्रतीका क द्वारा ही की जाती है । उदाहरण के त्रिय किम्बी सुन्दरी क पुरुषायित की भूचना उनके हाथ पर खड्ग की रेखा क इसी कारण मभव जाती है कि खड्ग पौरुष का प्रतीक है । 'पोम्प' शब्द क यह सब मान जा जाता है ।^३

अतिशयोक्ति

प्रतीका का एक रूप जब वह गोपी लक्षणा पर आधारित होता है,

१ दणवियामत्रिच्छित्तिपदमधान-मम्पदा ।

स्वल्पया दधत्तौदय तन्नावण्यमिहाच्यत ॥ —वज्री० १, ३०

लावण्य पुनस्तासांभव स्त्वविगिरामिब सौन्दर्य सफल-नोकगाचर-तामायानि । प्रतीपमान पुन काव्यपरमाथज्ञानामवानुभवगाचरता प्रति-पद्यत । वही, पृ० ५२

२ तु० शरीरीकरण यथा वाच्यत्वं न व्यवस्थितम् ।

तदनङ्कारा परा छाया याति ध्वन्यङ्गतागता ॥

—ध्वन्या० २ २८

माधुयादिगुणप्रामा वृत्तिमाश्रिय मयमास ।

यत्र कामपि पुष्पाति वाच्यच्छायातिरिक्ताम ॥ वही, १ ५०

३ तु० वक्रम्वदि-स्वेद विदु प्रवर्धदृष्टवाभिन्न कुटु कुम कापि कण्ठ ।

पुस्त्व तच्चा व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गलेखा निलख ॥

—साद० १० पृ० ३६४

अतिशयोक्ति अलङ्कार के रूप में प्रयोग में आता है।^१ जब उपमान में उपमेय का सर्वथा निगमण हो जाता है, वाक्य में केवल उपमान का ही प्रयोग होगा है। तब अतिशयोक्ति अलङ्कार आता है। यह चमत्कार की परासाक्षा है। क्योंकि उपमानोपमेय भाव का यह उरमा/एवम्/उत्प्रेक्षा/अतिशयोक्ति या भेद/भेदाभेद/अभेदाभास/अभेद इस प्रकार चतुर्थ सोपान है। उपमा में उपमेय और उपमान का भेद स्पष्ट रहता है। रूपक में पद्यवि दोता में तादत्तव्य-कथन व द्वारा अभेद का आरोप किया जाता है तथापि दोनों के अन्ततः कथन में भेद भी स्पष्ट है। जैसे घट पट-मद्गुण' इस कथन में दोनों का स्पष्ट भेद स्थित है। घट पटों में ऐसा रहने में भी दोनों का पारस्पर्य स्पष्ट है। परन्तु घट पट एव' कह तो दोनों का तात्त्विक भेद तो उनके आदृष्टिभेद में स्पष्ट ही है। अभेद केवल आरोपित है। उत्प्रेक्षा में यह अभेद साध्य या अनिश्चित ज्ञान में अभेदाभासमात्र होता है। जैसे—'घट पट मन्थे इमं मन्थनम्। परं जत्र इमं घट का संख्या निगमण करने के लिये पट का ग्रहण करेगा तो दोनों में संख्या एकत्व-बुद्धि होगी। यद्यपि दोनों में एकत्व की यह बुद्धि प्राप्ति में भी स्थानी है परन्तु उभयों के अर्थ का एक का तो ज्ञान ही नहीं रहता। जैसे—

पलाश मुकुलभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतयति ।

सोऽपि जम्बूफलभ्रात्या तामिह धर्तुमिच्छति ॥^२

इस पद्य में श्रमर का ताल की चांच में जगत् व पुष्प का धम दियाया है और शुक की श्रमर में जामुन व पत्र का। यही न श्रमर का शकत्वं का भाव है और न शुक की श्रमर की उम्मुक्ति का। उपर्युक्त अतिशयोक्ति में ज्ञान बूझ कर प्रस्तुत का ज्ञान में उपमान व अर्थ निगमण किया जाता है। प्रतीक का प्रयोग भी प्रस्तुत व स्थान पर होता है। जैसे—

विप्रोषितकुमार तद राज्यमन्तपितेश्वरम् ।

रुद्राक्षेपण दक्षणा द्वियामामिपना धर्मो ॥^३

यहां प्रयुक्त जामिण शब्द मृतन नाम से जाना है। परन्तु प्रकृत में यह अर्थ मरण नहीं बैठता। पतन का प्रसिद्ध का शिवाय अर्थ शिवाय का शक्ति हास व प्रतीक का अर्थ है। अपना मृत अर्थ संख्या छान किया है। जो यह उक्त राज्य का शिवाय व नियम उच्छेद अर्थ का ही पारम्परिक प्रतीक है।

१ निम्नोक्त उदाहरणों में अतिशयोक्ति का प्रयोग है।

—मा० १०, १

२ कुव०, १० - १

३ रव १०, १

का अवगमन कराता है। उममे विम्बित होती है गिद्धा की या कुत्ता का माम के टुकड़ क लिये होती छीना-अपटी और उसके प्रकाश म रघुकुन के राज्य का हृदियान क निय प्रतिस्पर्धा। यहा अतिशयोक्ति तो नहा है परंतु प्रतीक क मून अय को छोडने का उदाहरण है।

अतिशयानि क मून म अतिशय की भावना छिगी है। आतशय का म्बन्ना भरत ने सबसाधारण म पाय तान वान गुणा का कीतन करक कुछ जाधिक्य बताना कहा है।^१ उमका सार यही है कि जिमा वस्तु का बडा चडा कर कहना ही अतिशयानि है। इसमे अधिक बडा कर कहना क्या हागा कि एन वस्तु का अस्तिव ही दूसरे पदाय म अतमुक्त हो जाय ? इसका सुन्दर उदाहरण है—

मुधावद्धप्रासरपवनचकौररनुसूता

किरञ्ज्योस्नामच्छा लवलफलपाव प्रणयितीम ।

उपप्राकाराय प्रहिणु नयने तकय मनाग

अनाकारा कोज्य गलित हरिण शीत किरण ॥^२

यहा पर प्राकार क अग्रभाग के ममीय खिडकी म दिखाई देत किमी सुदरी के मुख का गलितहरित शीतकिरण म अध्यवमान बिया गया है। पूर्वाध और उत्तराध म प्रतिपादित विशेषण प्रधान रूप म शीत किरण को ही विशिष्ट करत हैं लक्षणा सं ज्योस्ना द्वारा वाध्य जय मुख का कान्ति एव गलित हरिण शान किरण म बोध्य मुख विचार म हा प्रतात ज्ञान है। यहा विम्ब का ग्रहण स्पष्ट है पहन चन्द्रमा का पश्चात सुदरी क मुख का। उपमान चन्द्र की जय ता मुख का वैशिष्ट्य गलित हरिण म वाध्य निष्कल - कस्व उममे सयथा उज्ज्वलत्व बोधित होता है जिसन व्यक्त्य व्यतिरेकान् कार की छाया भासित होती है। उमका तह म नायक का विस्मय अम्भुन की व्यञ्जना कराना है और उमक भी मून म नायक की नायिका विषय म रति अना आभा लिय है। इम अनुभूति मे सम्पूकन हाने क कारण यह एक सीमित परन्तु पूण विम्ब है। यहाँ प्रस्तुत एव अत्रस्तुत का मवधा अभद हो गया है, अत यह अमेदामक विम्ब है। योगशास्त्र म प्रसिद्ध —

१ बहन गुणान कीतमित्वा सामान्य जनसमयान ।

विशेष कीयते यस्तु नय सोऽतिप्रयो बुधै ॥

—नागा० १६ २०

गोमास भक्षयेन्नित्य पिबेदमरुधारुणीम् ।^१

इस वचन में सादृश्य की भावना नहीं है, अतः ये अतिशयोक्ति का भी विषय नहीं है। इसी प्रकार उपनिषदों में हृदयाकाश के लिये प्रयुक्त वहर पुण्डरीक सादृश्य-मूलक न होने से अतिशयोक्ति अलङ्कार का विषय नहीं है। इसके विपरीत—

या निशा सर्वं भूताना तस्या जागति सयमी ।

यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने^२ ॥

इसमें "निशा" शब्द सामान्य रूप में रात्री का बोध कराता है परन्तु लक्षणा से वह सुषुप्ति का बोधक है। व्यङ्ग्य में सासारिक सुषुप्ति की परिणामिक असारता का भुलाकर विषय-भोगों में आमग्न रहना, यह अर्थ बोध का विषय बनता है। वहाँ पापान्तिक व्यङ्ग्य को लेकर तो यह ध्वनि है परन्तु वाच्यार्थ में अतिशयोक्ति अलङ्कार का विषय है। प्रस्तुत क निगमण के साथ अप्रस्तुत का आरोप होने में अप्ययदीक्षित आदि ने अतिशयोक्ति के इस प्रकार का रूपकतिशयोक्ति सजा दी है^३ और बाधुनिता समीक्षक इस साध्यवसान-विम्ब से पुकारते हैं। इस अलङ्कार की विम्ब-प्राप्तिता उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। इसी प्रकार—

स्मृताऽपि तरुणात्प करुणया हरन्ती नृणा-

मभङ्गुस्तनुत्विया क्लमिता शतविद्युताम् ।

कलिन्दगिरिदिनोत्तसुरद्रुमानम्बिनी

मदीयमत्तिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी^४ ॥

इस पद्य में कादम्बिनी का श्यामवर्ण के सादृश्य से श्रीकृष्ण में अध्यवसान किया गया है, स्मरण मात्र में ही आलस को दूर करने से सामान्य कादम्बिनी से इसका व्यतिरेक है। करुणया में चेतन धर्म का अध्यवसान है। "विद्युता" से चारों ओर छटी गोपिकाओं का अध्यवसान हुआ है। इसी प्रकार वृंदावन के यमुनातीरस्थित कदम्ब वृक्ष में सुरद्रुम का अध्यवसान किया गया है। इस प्रकार पहला विम्ब मेघमाला का है जो अपनी छाया में धूल को राकती है, बिजलियाँ चमकती लगती हैं। उसके पश्चात् गोपिकाओं ने धिरे श्रीकृष्ण का

१ ह्योप्र० ३, ४७

२ गीता २, ६६

३ रूपकतिशयोक्ति स्याग्निमीर्षाध्यवसानत ।

—कुवल०, ३६

४ रग, १, १

विम्ब बनता है। विद्युत् की आभा के प्रकाश में गोपिकाआ क बनबोज्ज्वल गौरवर्ण का भाव होता है। पर यहाँ एक वैपम्य है जो कि इस शब्दचित्र को खण्डित कर देता है। वह वैपम्य यह है कि यदि यह चित्र वृक्ष पर जाण्ड श्रीकृष्ण का ही ना गापिकाएँ तो वृक्ष पर नहीं होगी व ता पृथ्वी पर हागी। विद्युत् मघ क बीच म चमकती है इपर उपर नहीं। यदि कदम्ब क नीचे खड़े श्रीकृष्ण का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया हा ता भी मगति नहीं बैठती। मघ वृक्ष क नीचे नहीं होता, ऊपर रहता है। पुन पर्वत गिखर पर ता मघ की स्थिति वर्णित हानी है पर वक्ष क नीचे नहीं। जत तृतीय चरण का विम्ब ठीक नहीं बनता। यदि जगन्नाथ क अनुसार ऐसी स्थिति की उत्पत्ता की जाय तो दूसरी बात है। इमरु विवरीन--

कमलमनम्भासि कमले च कुचलये तानि वनकलतिकायाम् ।

सा च सुकुमार मुभगेत्पुपातपरम्परा केयम ॥^१

यहा नायिका के मुख म कमल ता नरना म कुचलय का काञ्चनवर्गा गानर्गष्टि म सुवर्ण रतिका का पुन उमम मौकुमाय एव मुभगत्व क दशन एव उमक जवनेकन म हृदय पर जान वाली प्रतिक्रिया का उदानपरम्परा से व्यञ्जन विम्बर भाव की व्यञ्जना करवा हुआ नायिका का एक अद्भुत एव पूणशब्दचित्र प्रस्तुत करता है अमम वर्गयता की रागवृत्ति का म्भश प्राण-वृत्ति का आशान कर रहा है। इम उदाहरण म पाई जान वाली बनता चमत्कार का मून है। इमी बनता क कारण भामह न इम वनीकिन नाम दिया था^२ एव जान दरघन न भी इसी चम कारिता म्भ अतिशय का प्राह्य रूप म स्त्रीकार किया।^३ उनक अनुमार अतिशयोक्ति जिग किगी भी अनड कार म रहती है उमी में चमकार का आविर्बन हो जाता है। लाचनकार के अनुमार अतिशयोक्त म पाई जान वाली बनता लाकोतर रूप म स्थिति ही है औ वही जानोत्तरता जगत् कारता है। इम अतिशयोक्ति क प्रभाव म

१ का० प्र० का० १० (३०) ४४६

२ सैषा मन्त्रे वनेकेतनयार्थो विभाव्यत ।

यत्नाऽप्या कविना वाय जोऽनड काराऽनया धिता ॥

—भासा०, २ ९५

३ तत्रातिशयादिनयमत्र कार्गमधितिच्छति कविप्रतिभावशास्त्रम्य चाहत्वा-
तिशययागाऽदस्य त्वनत् कार्गमात्रता ।

विवक्षित अथ नवीन रूप मे वैचित्र्य धारणा करता है। उसमे वर्णित स्त्री आदि विभाव बना दिये है।^१

अतिशय का एक प्रकार प्रस्तुत का निगरण था तो हमारा प्रकार अमम्बन्ध मे मम्बन्ध का प्रतिपादन है। इसका चमत्कार नैपथ्य मे देखा जा सकता है जहाँ कि दमयन्ती के नगर के भवन स्वयं का छूने वाले दिखाये गये हैं। वहाँ के श्रीशरदत्त १२ जडे मरुत्तमणि की निर्णय ब्रह्माण्ड के ऊपरी भाग मे टकरा कर नीचे की ओर मुड़े जाती है, तामवेतु जसनी गदग ऊँची करके उन किरणा की घास समथ कर चाटनी है। इस प्रकार वहाँ नित्य ही गोघ्रास देन का व्रत बना करता है।^२ वास्तव मे भामहू द्वारा प्रयुक्त "विभाव्यत" क्रिया का अर्थ विनोद रूप मे मम्कार रूप मे प्रत्यक्षीकरण के योग्य किया जाता है, यही समझना चाहिये। भरत ने भाव का स्वरूप प्रतिपादन करने हुए "भावित-नामित" यह कहा भी है। इस प्रकार वचनामयी अतिशयोक्ति के द्वारा प्रतिपादन अथ वा प्रत्यक्षीकरण होता है, यही फलितया निवृत्तता है। अतिशय न प्रमदोद्यानादि-विभावना नीयत" के माद-माद "विशेषेण च भाव्यते समधीक्रियत" यत्र स्वप्तीकरण क्रिया है।^३ पहले बताये प्रकार म रम का भाव्याकार भी प्रत्यक्षीकरण से ही होता है। इसलिये इसका निष्कर्ष भी वही निवृत्तता है। इस उदाहरण मे दिम्ब ना ग्रहण होता है या नहीं इसका निश्चय बहुदम ही कर सकते हैं।

१ शब्दस्य हि वज्रता अभिधेयस्य च वचना नामान्तीर्णेन कृपणावस्थावमित्य-ममेवामादिलट कारम्यातल कारभाव, नोक्तेत्तरत्वे चालिशय, तनाति-गयाचित सर्वातल कार-माभायम्। तथाहि-जनया अतिशयोक्तया, अथ मकरजनापभोगपुगाणीकृताऽपि विचिनतया भाव्यत तथा प्रमदोद्यानादि विभावता नीयत।

—दो० प० ४६७

२ वदर्थो-वे विशेषे मरुत्तमशिखगादुन्वितैरमुदर्थै—

ब्रह्माण्डाधान मरुत्तमदजमदनया ह्यीभृतावाङ्मुख-वै।

कस्या नोन्मानगाया दिवि सुस्मुरभोगम्य-देशे गतायै—

यदगायास-प्रदानव्रत-मुकृतमविश्रान्तिमुज्जुम्मत स्म।

—नैव० २, १०१

३ भू इति करणै धातुस्तथा च भावित वामित कृतमित्यनयान्तरम्। लाङ्गि च प्रसिद्धम्। अहा इ यनेन गद्वेन रसन वा मरुगेव भावितमिति तन्च व्याख्ययम्।

—नाण०, पृ० २६१

जतिशय का तीसरा प्रकार सम्बन्ध म असम्बन्ध है । यह भी चारुनाप्रकथ का जनक हान स प्रतिपादित अर्थ का मूतन करता है । जब पुरुरवा उवशी को देखकर नारायण को उमका निर्माता मानने को तैयार नहीं होता तो इसम उम रूप का जमाधारणत्व और उसमे अद्भुत विस्मय का भाव अनुभूति का विषय है ।^१

जतिशययक्ति का एक प्रकार यदि के द्वारा नवीन दृश्य की सभावना करना है । इसक उदाहरण पूर्वोद्धृत पद्य 'पुण्य प्रवालोलोप०'^२ और 'उभो यदि०'^३ ह । पहले म सभावित उपमान का म सभवी पदार्थ है तो द्वितीय म जन्मभवी ।

जहाँ इस प्रकार जराकार प्रयोग म कोई विम्ब न बनगा वहाँ बट असमर्थ ही रहगा । जैसे—

यदि त्रिलोकी गणना परा स्यात् तस्या समाप्ति र्यदि नाऽऽयुष स्यात् ।
पारे परार्द्धं गणित यदि स्यात् गणयन्ति शेषगुणोऽपि स स्यात् ।^४

इस पद्य म कोई विम्ब प्रस्तुत नहीं किया गया है । इसी प्रकार—

अल्प निर्मितमाकाशमनालोच्यव वेधसा ।

इदमेवविध भाषि भत्रस्या स्तनजूस्रभणम ॥^५

इस पद्य म आकाश और स्तना क बीच क जवकाश म अनुपात का ध्यान नहा रखा गया है । इस त्रिय यहा भी काइ विम्ब नहीं बनता ।

जरा म भेद रूपा जतिशययक्ति म विस्मय क उदय के कारण भावविम्ब की सृष्टि शक्य है । जैसे—

अयदेवाड गलावण्यमया सौरभसम्पद ।

तस्या पद्मपलाशाक्ष्या सरसत्वमलौकिकम ॥^६

१ अम्या समविगी प्रजापतिरमूर्च्छद्रानु कातिप्रदा
धरगारेक रम स्वय नु मदनो मामो नु पुण्याकर ।
वदाभ्यास-जरा कथ नु विषय-व्यावृत्त-कौतूहलो
निर्मानु प्रभवमनोहरमिद रूप पुगणा मुनि ॥ --विक्र० १ १०

२ द्र० अ० ६ टि० ३६

३ द्र० अ० ६ टि० ३७

४ नीच० ३ ४०

५ वाद० १ ६१

६ साद० १० पृ० ३२४

इसमें सुन्दरी या अङ्ग-भावण्य आदि लोक-नामान्य होने पर भी जसामाय वतान से कल्पना से उसके अमाधारण मीन्दय का बिम्ब बनता है। इस उदाहरण में चाक्षुष, स्पश और घ्राण मीना के बिम्ब ह। उनमें एक सम्मिलित व्यापक बिम्ब की मृष्टि हाती ह। भेद में अभेद का कथन तो रणकातिशयोक्ति में ही ही गया है।

अतिशयोक्ति का एक प्रकार कायकारण-भाव का विषय-कथन है। इस के तीन प्रकार होने हैं—१ कार्यकारण की पूर्वापरभाविता में विपरीतस्थिति। अर्थात् सामान्य नियम के विरुद्ध कारण में काय की पूर्ववर्तता का प्रतिपादन। द्वितीय में दोनों की महभाविता तृतीय में कारण की चर्चा-मात्र से कार्य की उत्पत्ति का कथन। जैम—

उदेति पूर्वं कुसुम तत फल
धनोदय प्राक् तदनन्तर पय ।
निमित्तर्नमित्तिकयोरय क्रम—
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पद ॥^१

इस पद्य में मूर्त्ति मारीच के प्रसाद में पूर्व ही शकुन्तला एक पुत्र की उपलब्धि-रूप सम्पत्ति-प्राप्ति की चर्चा है। कारण मारीच की कृपा है और फल-प्राप्ति कार्य है। इस प्रकार काय-कारण के क्रम में विषय को स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ दो बिम्ब पूर्वाधि के हैं, उनके प्रकाश में यह तृतीय बिम्ब अधिष शशक्त बन जाता है। इसमें पुत्र-सहित पत्नी की प्राप्ति, इस अर्थ को शब्द में न कहकर व्यंग्य रखा है। सम्पत्ति-रूप प्रतीक में उसका सङ्केत कराया है। व्यञ्जना-प्रिय कवि ने यह कार्य सामाजिक के लिए छोड़ दिया है कि वह हृदय में अनुभव करे कि सम्पत्ति के लिए तरमने वाले को इस प्राप्ति के होने से किन्तना हर्ष होता है। उसके प्रकाश में दुष्कृत के उन्नास का अनुमान किया जा सकता है। अब पहले चाक्षुष बिम्बों का बोध होना है, तत्परचात् भाव-बिम्ब का।

इसी प्रकार कायकारण के सहभाव का बिम्ब—

१ कार्यकारणयोर्विषयश्च द्विधा भवति। कारणत् प्रथम कार्यस्य भावे,
द्वयो समकालत्वे च। चरानतिशयोक्तिस्तु कार्य हेतुप्रसक्तिजे।

साव०, पृ० ३२५

—कुवलय०, ४२

२ शाकु०, ७, ३०

अविरलविलोल जलद कुटजार्जुननीय-मुरभिवन वात ।

अपमाघात कालो हत^१ हता पथिकगेहिन्य ॥

एत पद्य म है । यहा वर्षा नृतु क अगमनरूप कारण और प्रोपितभत काआ की विपप्राप्तिरूप वायु दाना की समकालभावता लिखाद गई है । एम म मघा का चाक्षुष सुरभिवनवात क घ्राण और स्पश क विम्ब एव प्रापित भतृ काआ की विरहव्यथा का भाव विम्ब समकालभावा ह ।

सहोक्ति

काय और कारण क एक साथ हान का वणन जब सह या मदवाचक शब्दा क साहचर्य स होना है वहा सहाक्ति अन्त कार माना जाता है । इमक मूत्र म अतिशयाक्ति अलङ्कार रहा करता है । यही इसक^२ चमत्कार का कारण होता है । यदि श्लेष भी हा ता चमत्कार अधिक बढ जाता ह । नैम—

सहाधरदलेनास्या यौवने रागभाक् प्रिय ।^३

यहा राग शब्द अनुराग एव रक्तिमा का वाचक हान म झिल्ल्ट है । अग्रम म यौवन-नृत लालिमा से प्रियतम क मन म अनुराग का उदय हान म जा कायकारण म कालभद चाहिए था बह यहा नहा रखा गया है । यहा अति शयोक्ति है । सह का प्रयाग हान स सहाक्ति बनती है । महा अधरदन की लानिमा का चाक्षुष विम्ब हान क भाव-साथ अनुरागादय का अनुभूति विम्ब भी बनता है ।

यामोषधिमिवायप्मनवेद्यसि महावने ।

सा देवी मम च प्राणा रावणनोभय हृतम^४ ॥

यहा पर भी सहोक्ति हा है पर व्यग्य है । क्याकि आपात म सीता एव जटायु क प्राण दोना ही प्रस्तुत हान एव दोना का हृतम से सम्बध हान के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार ही है । परन्तु जटायु के प्राणहरण और सीता क हरण म कायकारण भाव का पौवापय है । अत अतिशयाक्ति बनती है पर दोनो क एक साथ होन का भाव व्यग्य होने स सहाक्ति ध्वनित है । एम म विशेष चमत्कार उपमा के कारण है । क्याकि औपधि भी यदि घन

१ अल० २२८

२ माद०, ५५

३ बही पृ० ३२५

४ वारा० ३ ६७ १५

जगत में खोजी जाय तो बहुत छानबीन और सूक्ष्म दृष्टि में देखती होती है । इसी प्रकार सीता की खोजने की मुद्रा विम्बित होती है । उत्तरार्ध में सीता-हरण का जटाशु बाण की क्रिया विम्बित होती है । यहाँ देवी शब्द सीता के उज्ज्वल रूप के साथ-साथ औपनि के दीप्ति-युक्त होने का भान कराता है । इसी प्रकार यह मिथित विम्ब बनता है ।

अलङ्कारमर्मस्वरकार द्वारा स्वीकृत द्वितीय अतिशयोक्ति काय-कारण-भान के विपर्यय-रूप अतिशयाक्ति-भेद से अभिन ही है ।

जतिशयोक्ति-मूलक होने के कारण सहाक्ति भी विम्ब निर्मायक अलङ्कार है । पण्डित राज जगन्नाथ ने उमरा अन्तर्भाव भेदे अभेद-रूपा अतिशयाक्ति म करना चाहा है ।^१ पर वह मुक्ति-सङ्गत नहीं बैठता । क्योंकि अतिशयोक्ति में अव्यवसान ही अपक्षित है, सहाक्ति में सहभाव भी विपक्षित होता है । जैसे—

माययमाप गमन सह शंशवेन
रक्त तथैव मनसाऽधर-विम्बमासीत् ।
किञ्चाभवत् मूर्गाकशोरदृशो नितम्ब
सर्वाधिको गुरुरय सह मन्मथेन ॥^२

इन पद्य में सबथा पृथक् गमन और शंशव के मान्थय में अभेदाध्यवसान के कारण अतिशयोक्ति है परन्तु दोनों की सहाकित्वा वर्णित होने से सहाक्ति भी है । यदि सहोक्ति का अन्तर्भाव करता ही हो तो कायकारण की समकाल भाविता रूप अतिशयोक्ति में करना चाहिये न कि भेदे अभेद-रूपा में । जगन्नाथ के अपन उदाहरण—

केशवधूनामथ सव कोपं प्राणेश सारक प्रतिभूपतीनाम् ।
रथया रणे निष्कपणेन राजश्चापस्य जीवा चकृपे गुणेन^३ ॥

१ कार्यकारणयो समकालत्वे पौर्वापर्येचातिशयोक्ति । —अस०, पृ० ४६३

२ किञ्चिद् वेनक्षणमात्रेणैवालङ्कारभेद वचनभट्टगीतामरन्यादलङ्कारानन्वयप्रसङ्गादिति सत्य, गुण-प्रधान-भावाऽऽलिङ्गितस्य महभावस्यालङ्कारांतराद् विच्छिन्ति विशेषमनुभवत प्राप्तेना एव सहोक्ते-पृथगलङ्काराया प्रमाणम् । —रस०, पृ० ३६२

३ यही पृ० ३६३

४ वही, पृ० ३७८

इस पद्य में वशा वाय प्राण एव धनुष की डाली का आकषण सबका पृथक् हान पर भी सहभाव के द्वारा अभिदाध्यवसान किया गया है। वायु कारण के विम्ब साय-माय बनने से इसमें चमत्कार आ जाता है। इस प्रकार अतिशयाक्ति और मन्त्राक्ति प्रतीकामक एवं साधवसानावम्ब के निमाण में अयत्न उपकारक होती है।

बारहवाँ परिच्छेद

काव्यात्मक वर्णन एवं स्वभावोक्ति आदि अलङ्कार

आचार्यों ने यदि काव्य की पुरुष के रूप में कल्पना की^१ तो कविता की कामिनी के रूप में^२ उनका पूरा व्यवित्तव उभारने के लिए उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का भी रूपक बाँधा है।^३ इसका कारण यही है कि जिस प्रकार एक मात्र हाथ या पैर अथवा मुख का वर्णन करना में किसी प्राणी का पूरा व्यक्तित्व प्रकाश में नहीं आता इसी प्रकार किसी वस्तु के एक-पक्ष-मात्र को प्रस्तुत करने से उसका पूरा स्वरूप सामाजिक को स्पष्ट नहीं हो सकता। किसी मनोभाव का प्रकाशन करना में पूरा उसकी परिस्थिति भी बतानी होगी जो कि उस भाव के उदय का मूल है। इसी प्रकार भाव का उदय बताने मात्र से भी काम नहीं चलेगा। दूसरे पक्ष में उसकी प्रतिक्रिया और परिणाम बताना भी अनिवार्य है। कभी यह सब एक ही पक्ष में था जाता है और कभी इसमें किए अनेक वाक्यों की रचना करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए एक वाक्य में—

हे रोहिणि त्वमसि रात्रिकरस्य भार्या

एन निवारय पति सखि दुर्विनीतम् ।

जालान्तरेण मम वासगृहं प्रविश्य

श्रोणीतटं स्पृशति किं कुलधर्म एष ॥^४

इस पद्य में कवि का विवक्षित भाव आ गया है। ऐसी स्थल में परिस्थिति आदि का अनुमान करने का नार सामाजिक पर छोड़ दिया जाता है। अनेक

१ यदेतद् वाङ्मय विश्वमर्थमूर्त्या विव्रतते ।

सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वदेय तावका ॥

—कामी०, १, ३

२ नेपा नैपा वयस्य कविताकामिनी कौतुकाय ।

—प्रता०, १, प्रस्ता० २२

३ जब्दार्थौ ते शरीरम्, संस्कृतं मुखम्, प्रवृत्तं बाहु, जघनमपश्च न, पंशाच पादौ, उरगे मिश्रम् ।

—कामी०, १, ५० १६

४ कालि० श्रुति०, २६

वाक्या के लिए समायण जादि प्रवन्त्र उदाहरण है। उन काव्य के मुक्त एव प्रवन्त्र का भेद मान गये हैं। प्रवन्त्र के भी नामगो एव विवक्षित विषय के आधार पर महाकाव्य खण्डकाव्य आदि भेद बनाये गये हैं। दूसरी तरफ किसी रस की अतिव्यक्ति के लिए विभाव, अनुभाव, मञ्चाभिभाव और गथाधि-भाव की आवश्यकता बनाई गई है। विभाव के भी आनम्बव और उद्दीपन का भेद किया है। अनुभावा दो यत्नज अयत्नज दो रूपा में विभक्त करने अयत्नज का मान्दिक मजा दी गई है। उद्दीपन विभाव के लिए दश और कान के अतिरिक्त आनम्बव के रूप गुण, आधार चैत्य प्रवृत्ति स्वभाव आदि एव उन्धान-यत्नन उसके महावागी के विराटा इन सबका आम्बव बाधा जाना है। यह सब अनेक वाक्या में आन में उन सबका एक सूत्र में बाधने के निमित्त सबका मिनात्र महावाक्य स्वीकार किया गया। इस प्रकार काव्य-पुरुष का पूरा व्यक्तित्व बनना है। आचार्यों ने इन निमित्त महाकाव्य में नगर, ग्रामाद, चरितनायक की दिनचर्या, विभिन्न शौजाएँ जन्मविहार उद्यानभ्रमण, मन्त्रणा, प्रस्थान मन्त्रि, विग्रह दूत-सम्प्रेषण प्रभात, दिन मन्त्र्या, मृगया, मधुपान नदी, समुद्र आदि जनाशय विभिन्न ऋतु, तपय यह नि जीवन और भाव में सम्बद्ध सभी बातों का पूरा विवरण देना आवश्यक बनाया है। इन वषणों को चमत्कारी या आकर्षक बनाने के लिए कुछ काव्यकृतियों एव मान्यनाएँ स्थापित की गई हैं। जिनका उल्लेख काव्य में वैरम्य का उल्पादक होत स टाप मान

१ रसानुकूलविवृतिभाव न द्विविधा मन ।

जान्तगन्तव्य शारीर इतीह सबगम्भनम् ॥

शरीरगतपि द्विधा मान्दिकानुभावविभदन ।

स्वयगन्प्रतर प्राप्न-सुख-दुःखादि-भावनम् ॥

तत्र यदन्त करण मन्त्र तद्बलतया तथा ।

अयत्नज दहप्रमं सात्त्विका भाव उच्यत ॥

—यमव०, पृ० ६७

२ नगरणवशैतत्तत्र द्राकोदयवणत उद्यानमन्त्रितरीणमधुपानरतामवै ।

विप्रतन्मैविवहैश्च कुमारादय-त्राणं । मन्त्रदूतप्रयाणाग्निनायकाभ्युदयरपि ।

—काद०, १, १६-१७

३ मान्दिय व्योम्नि पाप यशसि धवतना वष्यत हामकीर्यो

रक्तौ च त्रापरागो सरिदुदप्रिगत पङ्क्वजेन्दीवरादि ।

तायाधारप्रखितेपि प्रसरति च मरानादिक पक्षिसट् घो

ज्योत्स्ना पया चकारेज नधरसमये मानम यान्ति ह्यसा ॥

लिया गया है ।^१ यदि चमस्कारक हो तो इस प्रसिद्धि का उलङ्घन क्षम्य ही नहीं, गुण भी मान लिया गया है ।^२ इन वर्णना में भी औचित्य का निर्वाह अपेक्षित है ।^३ कवि वर्णन की भाँक में आदमी के पेट में दात दिखाने लग पा सड़क पर कमल खिलाने लग तो यह हास्यास्पद स्थिति होगी । इमीतिग देशमान कृत औचित्य का निर्वाह अनिवार्य है ।^४

इसके अतिरिक्त वष्य पदार्थों का स्वरूप स्पष्ट करन के लिए उनके रङ्ग रूप आदि की कुछ कल्पनाएँ की गई हैं । अरिनिह ने इस प्रकार की प्रसिद्धिना को तीन प्रकार की गिनाया है—१ अविद्यमान वस्तु का वर्णन, २ विद्यमान वस्तु का भी वर्णन न करना, ३ किसी पदार्थ, जाति आदि का एक निश्चित देश या काल में होना ।^५ माहित्य-वर्णनार एव वैश्व मिश्र ने^६ भी इस प्रकार की प्रसिद्धि या कविरूटिया का परिगणन किया है । इनके आधार पर कवियों ने अपने-अपने वाक्या में नगर, याम, नदी, तालाब, सुषोदय, चन्द्रादय, मधुपान, सुरत, वन-विहार और नलविहार आदि के वर्णन किये हैं ।

पादाघातादशोको विकसित वकुला वापितामान्यमल्ल-
 पूनामङ्गेषु हारा स्फुटति च हृदय विप्रयोगम्य तापै ।
 मौर्वीरोनम्बमाना धनुरथ त्रिगिखा वीसुमा पुष्पवेता-
 भिन स्यादम्य बाणैर्युद्धजनहृदय स्त्री-कटाक्षेण तद्वन ॥

—साद०, ७, २१-२४

१ तु० पादाघातादशोक्ते सजाताट कुरकण्ट ॥

अत्र पादाघातादशोकेषु पुष्पमेव तापत इति प्रसिद्ध न न्वड कुर इति
 कविममयध्यातिविरुद्धता ।

—वही वृ० २४६

२ कवीना ममये द्याते गुण स्यातविरुद्धता ।

—वही, ७, २२

३ वाच्याना वाचकाना च यदौचित्येन याजनम् ।

—ध्वया०, ३, ३२

४ तु० विरुद्ध नाम तद् यत्र विराजस्त्रिविधा भवेत् ।

प्रत्यक्षेणानुगामेन तद्बदागमवत्मना ॥

यो दशकाल लोकादि प्रतीप काऽपि दृश्यते ।

तमामनन्ति प्रत्यक्षविरोध शुद्धबुद्धय ॥

—मत्र०, १, ५४-५५

५ अमगोऽपि निवन्धेनानिवन्धेन सतोऽपि च ।

नियमेन च जात्यादे कवीना समग्रस्त्रिधा ॥

—वाकवृ०, १, ५, ६४

६ द्र० ऊपर टि० ७

७ अलङ्कार, ६, २ (पृ० ५६-६८) चौ० प्र०

भोज ने अनेक प्रकार की कीटाजो एव दिनचर्याका परिगणन किया है।^१ कुछ वर्णन ऐसे हैं जो प्रमट्ग के अनुसार कवि स्वयं उद्भावित करना है। जैसे वाल्मीकि रामायण और नहुषभारत में दशरथ^२, राम^३ व युधिष्ठिर^४ के यज्ञों का विस्तृत वर्णन, शिशुपाल वध में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का वर्णन^५, नैपथ्य में दमयन्ती के विवाह में वरातियों का भोजन^६ और परिवेषिकाजो के साथ उनका परिहास।^७ ये वर्णन कवि की झग्न पूरी करने के लिए न होकर नायक के चरित-वर्णन को सर्वाङ्गीण बनाने के लिए किये जाते हैं। इसलिए उनका वाच्य के प्रकृत कथानक का अविच्छेद्य अङ्ग एव यथास्थान निवेश अनिवार्य है।^८ आनन्दवधन ने इसीलिए ऐसे वर्णनों के प्रमट्ग में कवि को सावधान रहने का निर्देश किया है कि रम-परिपाक की दृष्टि में ही वर्णन होने चाहिये केवल शास्त्र

१ अष्टमीचन्द्रक कुन्दचतुर्थी सुवसन्तक ।

आन्दोलन-चतुर्थ्यैक-शाल्मली-मदनोन्सव ॥

उदकश्वेडिकाशोकोत्तसिका चूतभञ्जिका ।

पुष्पावचायिका चूतलतिका भूतमातृका ॥

कदम्बयुद्धानि नव-पत्रिका विसरवादिवा ।

शक्रार्चा कौमुदी यक्षरान्निरभ्यूप-खादिका ॥

नवेक्षु-भक्षिका तीयत्रीडा प्रेक्षादि-दशनम् ।

धूतानि मधुपान च प्रकीर्णानीति जानते ॥

—सक०, ५, ६२-६६

२ वारा०, १, १२-१६

३ वही, ७, ६१-८२

४ म०भा०, २, ६, ११

५ गिर०, १५

६ यदादि हेतु सुरभि समुद्भवे भवेद् यदाज्य सुरभिर्धुव तत ।

वधुभिरेभ्य प्रवितीय पायस तदोष कृत्या तट-संकेत कृतम् ॥

—नैच०, १६, ७०

७ वही, १८, ४५-१०४

८ सु० ऋतुरगिरिदिश्वेन्दुदयस्तमय-कीर्तने ।

काल काव्यस्य सम्पन्नो रसवृष्टिं नियच्छति ॥

राजकन्या-कुमारस्त्री-सेना-सेनाङ्ग-भङ्गि-गभि ।

पात्राणां वर्णन वाच्ये रम-स्रोतोऽर्धतिष्ठति ॥

—सक०, ५, १३१-३२

प्रतिपादित खानापूरी के लिए नहीं।^१ इमो औचित्य को दृष्टि में रखकर वाल्मीकि-रामायण में अयोध्या काण्ड में अपने शाप के वर्णन-प्रसङ्ग में दशरथ के मुख में वर्षा ऋतु का वर्णन कराया गया है।^२ अरण्यकाण्ड में पञ्चवटी-निवासकाल में प्रसङ्गागत हेमन्त ऋतु का वर्णन है।^३ वह भी कुछ श्लोकों में सीमित है। किष्किन्धाकाण्ड में वर्षा ऋतु^४ और शरद् का वर्णन आता है। वहीं भी वाली की मृत्यु के उपरांत सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य मिल जाने पर भी वर्षा ऋतु में मीता की खोज सम्भव न होने से इतने समय तक राम के लिए प्रतीक्षा करना अनिवाय था।^५ इस अशुकाश को भरते के लिए वह वर्णन आया है। कालिदास न दशरथ की मृगया के प्रसङ्ग में वसन्त ऋतु^६, रघु की द्विविजय-यात्रा के प्रसङ्ग में शरद्^७ और वृष के जल-विहार के प्रसङ्ग में शीत ऋतु का वर्णन^८ किया है। इन सभी वर्णना का प्रामाण्यक अनुकूलता उह कथानक का अविच्छेद्य अङ्ग बना देती है।

इसी प्रकार कादम्बरी के महाश्वेतावर्णन^९ और दशकुमारचरित में अवन्ति-सुन्दरी वराजवाहन के प्रथम वर्णन के प्रकरण में भी^{१०} वसन्त ऋतु का वर्णन अवसर प्राप्त होने से खटनत्ता नहीं है हर्षचरित में आपे शीतलऋतु के वर्णन का^{११} भी औचित्य है। परन्तु भारवि के किरातार्जुनीयम्^{१२} एवं माघ के जिज्ञुपालवध^{१३}

१ इतिवृत्तवर्णनायता कर्थाञ्चद् रणाननुमुष्ठा स्थिति त्यक्त्वा पुनस्तप्रेक्ष्या-
प्यन्तराभीष्टरमोचितकथोन्मयो विधेय यथा कालिदासप्रसङ्गेषु।

—ध्वया०, ३३५ पृ०

२ वारा०, २, ६३, १४-१६

३ वही, २, १९, १-२६

४ वही, ४, २८, १-५४

५ वही, ४, ३०, २२-६२

६ प्रवृत्ता मौम्य चत्वारो मासा वापिक-मल्लिता ।

वायमुद्योग-समप्र प्रविश त्व पुरी शुभाम् ॥

—वही, ४, २६, १४

७ रघु०, ६, २५-५६

८ वही, ४, १५-२६

९ वही, १६, ४३-५३

१० पृ० २६०-२६२

११ पू०पी०, ५ उच्छ्वा

१२ ह्व० २, पृ० ११६-१ ३

१३ किरा०, १०, १८-३७

१४ शिव०, ६

में ये वर्णन भरती के होने में कथावस्तु के अङ्ग नहीं प्रतीत होते। यात्रा के प्रमत्त में एक ही वार में छ ऋतुओं का वर्णन युक्ति-सङ्गत नहीं लगता। द्वारका से इन्द्रप्रस्थ जाने तक प्राचीनकाल की सी यात्रा में १-२ ऋतु बीत जाना तो सम्भव था। परन्तु एक ही पर्वत पर निव्रजन करते हुए छाने ऋतुओं की लना सम्भव नहीं।

पारचात्य समीक्षकों के मन की असंरता—संस्कृत काव्या में पाय जाने जाने, विशेष कर कादम्बरी के वर्णनों को देखकर पश्चिमी आलोचका न कहा है कि इन कविया को वर्णन करन की अख मी है जिसके कारण वे प्रकृति के मौन्दय का अवनोवन नहीं करन देते^१। परन्तु वे यह भूल जान है कि जब सम्पूर्ण मानव जीवन का वृत्त प्रस्तुत किया जाता है तो इस प्रकार क वर्णन जायग हा। क्या उनक काव्या में नदी पर्वत नगर आदि के वर्णन नहीं अत ? नाटका उदयनामा यहा तक कि लघु कथाआ में भी बाजार, रेस्तरा, कब थियटर वन माग हाटन आदि क व परटिया क वर्णन आत हैं। टामस हाडी क मयर जाव कास्टर बिज म माग, रेस्तरा, टी-स्टाल, चाय पार्सि हाटन, अनान की मण्डी नगर-परिसर (Sub urban) क खना आदि क विस्तृत वर्णन ह पर व कोई बुरे नहा नगत।^२ बल्कि उनक अभाव में एक रिक्तता ही प्रतीत हानी है दोष तभी है जब व अनुशात में अधिक हाया अप्रामटिगक हा।

वर्णनों की प्रत्यक्ष-कल्पता—यह सबविदित तथ्य है कि काव्य काव्य है, इतिहास या भौगोलिक सर्वेक्षण का विवरण (Report) नहीं। अत उममें पाय जान वान वर्णन सजीव प्रत्यक्ष दृश्य में हान चाहिये वृत्तान्त मात्र नहीं। इस दिग् कवि चार वाना का ध्यान रखना है—

- १ वर्णन उद्दीपन विभाव या पृष्ठ भूमि क रूप में रागवृत्ति में सम्पृक्त हा।
- २ वर्णना में दश कान, प्रकृति आदि क औचित्य का निर्वाह हो।
- ३ क कल्पना के स्पष्ट में राक्षक हो।
- ४ वर्णन सजीव एवं यथाथ प्रतीत हान चाहिये।

१ कीथ संस्कृत ० सा० इतिहास (मड गनदेव-कृत अनुवाद) पृ० १४१

२ तु० पृ० ११ १३ १३ २२ ३६ ३७ ४३-३१३

पृ० ४० पर माइत्रव हैञ्चाड क और पृ० ३२३-२४ पर एलिजाबेथ जेन क शरीर एवं आकृति का वर्णन भी द्रष्टव्य हैं। श्रमिक विहटल की थापटी का वर्णन (पृ० ३२४) भी तुलनीय है।

इतने पहले का निर्वाह बारभीरु रामायण कुमारसम्भव, रघुवश, मौन्दर-नन्द-मदुश काव्यो में मिलता है। राम रूपा के आरम्भ में दृष्ट्वाकु-वशी क्षत्रियो का प्रभाव वर्णित हुआ है।^१ कुमार-सम्भव के आरम्भ में हिमालय के त्रिविध महत्त्व के निरूपण के^२ पश्चात् कथा का प्रारम्भ होता है। रघुवश में वण्य सूर्यवशी राजाजा के उदात्त गुणो की नींव पर^३ कथानक प्रभृत होता है। सौन्दर्यव के आरम्भ में अरवचाप ने दृष्ट्वाकुवशी क्षत्रियो द्वारा कपिनयन बगाने की विस्तृत चर्चा की है^४।

कथा के विकास के लिए भी कवि मध्य में कर्तु आदि का वर्णन करता है जो राम परिपाक और स्वयंसेवक को नया माट देने में सहायक होता है। रामायण में राम के द्वियोग में अथा या का वर्णन चित्रकट में राम-सीता-विहाय युद्ध-काण्ड के आरम्भ में समुद्र का तिमिरवर्ण वर्णन^५ कुमार-सम्भव के तृतीय सर्ग में आशक्ति वसन्तोदय,^६ पार्वती का वर्णन रघुवश में स्वयंसेवक^७, वसन्तोदय^८ व प्रीति का वर्णन^९ शिजपात्रज में द्वारका^{१०} एवं रैवतक पर्वत का वर्णन^{११} इसी प्रकार के हैं। वे प्रसङ्ग के अनुसार जाय हान में असामयिक नहीं लगते। राम-विद्या में जयाप्या की जयस्था का वर्णन प्रवृत्त राम करुण का पापक है। कुमार-सम्भव का वसन्तोदय मदनदाह की भूमिका होने में अस्मर के अनुकूल है। कादम्बरी में महाश्वना-वृत्तान्त में प्रसन्न कर्तु-वर्णन, कादम्बरी के प्रासाद की अनुल समृद्धि चन्द्रापीठ के गुरुकुल में नौटन पर नगर की स्त्रिया की चतुर्वाची सब प्रागडि गक ही है।

-
- १ वारा० १, १-६
 - २ कुम० १ १-१६
 - ३ रघु० १ १-६
 - ४ मौन १
 - ५ वारा० २, ११८
 - ६ वही - ६१
 - ७ वही - ४
 - ८ कुम० ३ २४-३६
 - ९ वही, ३ ५२-६६
 - १० रघु० ५
 - ११ कुम०, १, २५-३८
 - १२ वही १६ ५८-५२
 - १३ शिव ३
 - १४ वही ४

द्वितीय नियम वर्णनों को अनुचित, अस्वाभाविक वर्णन से रोकने के लिये है। जो वस्तु जिस प्रदेश में होती है और जिस ऋतु में, उसमें उनका वर्णन उचित और यथार्थ प्रतीत होता है। इसी प्रकार जिस श्रेणि या स्थिति व सामर्थ्य के व्यक्ति जो काय कर सकते हैं, उन्हीं का वह काम करता दिखाया जाय तो वर्णन सच्चा और मूल लगता। अन्यथा अनुचित या कागरी गप्प लगती। इस कारण आचार्यों ने काव्य में उत्तम मध्यम और अग्रम प्रकृतियाँ वर्णित की हैं। प्राचीन महापुरुषों से लोकात्तर वम कराया गया लोकान्तर-गमन की सामर्थ्य उनकी दिखाई। इसक लिये उनका व्यक्तित्व उतना ही महान् वर्णित किया। यही कारण है कि भाग्य न किसी गँवार को पट्टाशुभ यस्त्र पहन रणनी रुमाल से पत्नी से पसीना पालतु दिखाया जाय बताया है।^१ कालिदास जयदेव आदि द्वारा जिव-भावर्ता व राधाकृष्ण की मभोग-लीला व वर्णन की कटु आलोचना हुई है।^२ भामह ने मय, पवन, चंद्रमा आदि का दूरे वनान की प्रवृत्ति^३ यन्त्रगज क छल से उदयन को बड़ा वनान की क्या^४, देश्या के लिये राजा का किसी सज्जन पुरुष को सतारना^५ आदि क्या प्रसङ्गों की

१ द्र०ज० ७ टि० ३१ (मक० उ०) १, ७०

२ भावीचिन्त्य तु प्रवृत्त्यौचित्यात् । प्रकृतिर्द्युत्तम-मध्यमाद्यमभावेन दिव्यमानुष भावेन च विशदिना । तथा च क्वलमानुषस्य राजादेवणन सप्ताणव लङ्घनादिनक्षणा व्यापारा उपनिबध्यमाना सौष्ठव भृतोऽपि नीरस्ता एव नियमेन भवति, तत्र त्वनौचित्यमेव हतु । —ध्वन्या० पृ० ३३०

तथाहि महाकवीनमप्युत्तमदवताविषयप्रमिद्धमभोग-शृङ्गार-निवन्धानाद्य-नौचिन्य शक्तिरिच्छतत्वात् श्राम्यत्वन न प्रतिभासत । यथा कुमारसम्भव देवी-सभोग-वर्णनम् । —वही, पृ० ३१८

३ अयुक्तिमद्यथा दूता जलभु माहगन्दव ।

तथा झमरहागीतचक्रवानशुकादय ॥

जवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेश विद्याग्नि ।

कथ दूत्य प्रपद्ये रनिति युक्त्या न युज्यत ॥ —भाका० १, ४२-४३

४ अन्तर्पोष-शताकीर्णं सालङ्कायननेतृकम् ।

तथात्रिघ गजच्छदम नाज्ञासीत् स स्व-भूगतम ॥

सचेततो वनमत्य चमणा निमित्तस्य च ।

विशेष वेद बालोऽपि कष्ट किं नु कथं नु तत । —वही, ४, ४०, ४, ६

५ अभार्योडेन सस्कारम तरेण द्विजन्मना ।

नरवाहनदत्तेन देश्यावान् निशि पीडित ॥

—वही ४, ४६

आलोचना की है। काव्य में अतिरञ्जन होता है पर उसकी सीमा होती है। हाथियों के मदजल से व घोड़ों के मुख के साग से नदी बहने की बातें किसकी यथार्थ जैनेगी ?^१

इसका तात्पर्य यही है कि कल्पना का प्रसार सीमा तक चाहिये जो यथार्थ प्रतीत होगा रहे, शास्त्र, दर्शन, इतिहास, पुराण एवं तथ्या के विरुद्ध न हो। तभी वर्णन मूल हो सके हैं।

काव्य के प्रमुख तत्त्वा में वस्तु, नेता और रस की गणना होती है। इनमें वर्णन का विषय नेता सर्वप्रथम है जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का वर्णन आलम्बन के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार नायिका के रूप और मुख-शिख का वर्णन भी काव्य का महत्त्वपूर्ण विषय चला आया है। वाल्मीकि-रामायण में राम का अङ्ग-प्रत्यङ्ग सामुद्रिक सिद्धान्त के आधार पर वर्णित है।^२ कालिदाससदृश पश्चाद्वर्ती महाकवियों ने भी इस परम्परा का पालन किया है।

वर्णन में उपयोगी अलङ्कार

काव्य के वर्णन प्रेस-रिपोर्टर के से न होकर प्रत्यक्ष दृष्ट में होते हैं। इसके लिये कवि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग करता है। रद्रट ने अर्थान्द्वारा का वर्णिकरण करते हुए उन्हें वास्तव, अतिशय, औपम्य और श्लेष इन चार श्रेणियों में बाटा है। वास्तव का सम्बन्ध वस्तुवर्णन से है जिसमें अतिरञ्जन आदि का स्पष्ट नहीं रहता।^३ इससे वर्णन का यथाथ स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। सञ्जीवनीकार के अनुसार वस्तु के अतगत जाति, गुण, त्रिया, आदि सभी वस्तुएं आती हैं। कवि-कृत कल्पना के वैचित्र्य में वही वस्तु-वर्णन अलङ्कार बन जाता है।^४ यह तभी सम्भव है जब कि वस्तु के वर्णन के लिये प्रयुक्त सभी विशेषण साधक हो।

१ तेषा कटतटभ्रष्टैर्गजाना मदब्जिदुभि ।

प्रावर्तन नदीधोरा हृस्त्यश्वरथ-वर्हिनी ॥

—वही, ४, ३६

२ इ० लेखक वा शो०प० 'सौन्दर्योपमानेषु सामुद्रिक-प्रभाव' ।

Ind Studies Delhi University, Vol No 1, Dec 1972, pp 75 80

३ अर्थस्यालङ्कारा वास्तवमौपम्यमतिशय श्लेष ।

एषानेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निश्लेषा ॥

वास्तवमिति तज्ज्ञेय त्रियने वस्तु स्वरूपवर्णन यत् ।

पुष्ट्याथमविपरीत निह्यनमततिशयश्लेषम ॥

—हर्ता० ७ ६-१०

४ यद्वि धाम्बदस्ति जातिगुणक्रियात्मक पदाथजात सबमेवेतद् वस्तु कथ्यते । तदेव कविकल्पितविच्छित्तिसध्रीचीनमलङ्कार । —सञ्जीवनी, पृ० १६

वास्तव श्रेणि में रुद्रट द्वारा परिगणित अत्रट्कार निम्नलिखित है—

सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथामस्य, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिवृत्ति, परिस्वर, परिसह्या, हनु कारणमाता, व्यतिरेक, अयान्य उत्तर, सूक्ष्म लग, अवसर, मीलित, एकावली ।^१

पर यह वर्गीकरण उचित नहीं है। क्योंकि महाकवि अतिशयाक्तिमूला होने में इतना आ ही नहीं सकती। दीपक और व्यतिरेक में औरम्य व्यट्श्य रहता है। परिसह्या में श्लेष का स्पर्श स्पष्ट मिनता है। भाव का मन्वघ वस्तु के म्यान पर मनोवृत्ति में है। विषम विराधमूतक अत्रट्कार है। पुन इन अत्रट्कारों का कार्य वस्तु के स्वरूप पर प्रकाश डालने की अपेक्षा प्रभाव जादि बढ़ाना है। इनके स्थान पर तदगुण, सामान्य अत्रदगुण पूर्वम्प, नाविक, उन्मीलित प्रौढाग्नि भी वर्ण्य के विम्ब निर्माण में सहायक हान हैं।

जाति—वास्तव श्रेणी के अत्रट्कारों में वर्ण्य के विम्ब-निर्माण में उपयोगिता की दृष्टि में सर्वाधिक उपयोगी जाति है जिसे स्वभावाक्ति के नाम में भी पुकारा जाता है। उसकी परिभाषा ही यह स्पष्ट करती है कि उसका कार्य वर्णनीय पदार्थ या वस्तु की जाति को अविकल एवं यथाथ रूप में प्रस्तुत करना है। साम्य या अनिश्चय में प्रकृत का वास्तविक स्वरूप अवच्छादित हो जाता है। इस नियम उनमें पदार्थ का स्वरूप या तो उलटना के रंग में रचित करने की प्रवृत्ति है अथवा दूषण में दृश्य प्रतिविम्ब के द्वारा तुलनात्मक रूप में विम्ब का प्रस्तुत करने की। प्रतिविम्ब क्योंकि मूल पदार्थ की छाया होता है, इसलिए वास्तविक नहीं होता। इसके व्यतिरेक जोरमें जोर अनिश्चय में वृष्टा जोर वर्णयिता की मानमें प्रतिनिधा का रंग ना रहता है। वस्तुस्वरूप-कथन ही जय अत्रट्कारों में इतना अत्रट्कार स्पष्ट करता है।

दृष्टा में वाट मय को स्वभावाक्ति और वक्राग्नि इन दो श्रेणियों में विभक्त करने हुए जाति को प्रथम अत्रट्कार धारित किया है जोर उनका कार्य विभिन्न अवस्थाओं में वर्ण्य पदार्थों का यथावथरूप प्रकाशित करना बताया है।^२

प्राचीन जाधाय इस प्रशस्ति के लिए अवतरक्ति नामक गुण का मानने

१ रत्ना० ७ ११-१०

२ नानावस्थ पदार्थानां च साक्षाद् विदुष्वती ।

स्वभावाक्तिश्च जानिश्चेयाया सा नट्कृतिमता ॥

थे ।^१ परन्तु ध्वनिवादियों ने स्वभावोक्ति अलङ्कार से उसकी गतायता मान ली और उसकी पृथक् सत्ता सर्वथा अन्वीकृत कर दी ।^२

उद्भट ने स्वभावोक्ति का अमामान्य रूप में पदाथ-स्वरूप व्यक्त करने से अनङ्कार माना है ।^३ संभवतः इसका आशय यही है कि औपम्य में अतिरञ्जन रहता है, दूसरे रूपमाम्य होने पर भी पूरा व्यक्तित्व का जैसा चित्र स्वभावोक्ति में बनता है वैसा उपमादि में नहीं बनता । जैसे—

भक्त्यापवर्जितं स्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलेपंहीम् ।

तस्तार सरथा व्याप्तं स शौद्रपटलेरिव ॥^४

इस पद्य में त्रिम्व-प्रतिविम्ब-भाव के द्वारा कम्बोजों के दाढ़ी वाले मुखों एवं शहद की मक्खियों में भरे उलक छत्रों की परस्पर तुलना से आकृतिसाम्य प्रस्तुत किया गया है । पर इसमें मुख का मिर में लेकर ठुड्डी तक का नैसा रूप था इसका ज्ञान नहीं होता । वस्तुतः त्रिम्व प्रतिविम्ब-भाव में वस्तु का रूप दपण में देखे की भाँति प्रतीत होता है जब कि स्वभावोक्ति में प्रत्यक्षदृष्टता । उसमें प्रतिकल्प परिचलित गति का भी त्रिम्व होता है ।

उद्भट के कथनानुसार प्रत्यक्षोक्त स्वरूप व्यङ्ग्य होता है पर स्फोट सिद्धान्त के अनुसार वाच्यार्थ बोध के साथ-साथ पदाथ की जाति स्पष्ट हो जाने में वह वाच्य ही रहा, व्यङ्ग्य कहा ?

वस्तुतः स्वभावोक्ति में वस्तु का वास्तविक स्वरूप बिना किसी अतिरञ्जन के प्रस्तुत किया जाता है । यदि बड़े प्रत्यक्षदर्श भासित हो तब तो स्वभावोक्ति

१ वस्तुस्वभावस्फुटस्वमप्रवर्धित ।

—कालमू० ७ १४

२ अथव्यक्ति स्वभावोक्त्यान्ङकारेण तत्रा पुन । अङ्गीकृत इति सम्बन्ध ।

—माद० ८ १५

३ त्रियाया सम्प्रवत्तस्य ह्वानाता निद्वयनम् ।

परस्वपिन भगतिम्भादे स्वभावोक्तिरुदाहृता ॥

—सायान० ३ ५

मृगशालादि स्वसमुच्चिते व्यापार प्रवत्तस्य य द्वैवाका स्वजात्यानु-
हृष्यणाभिनवशविशेषास्तदुपनिबन्धा स्वभावोक्ति । तस्याश्चानङ्कार
स्वमसाधारणपदाथस्वरूप-व्यनतता । पृ ३४८

४ रव० ४, ६६

५ तस्मात् वण-परिचयिता वैरवर्थादिवादनहित-वणाभिव्यङ्ग्य अक्षर-
स्फटिकादिवत् पर-रूपग्राही व्यापक मनोमान-वाह्य स्फोट अङ्गीक्रियत ।

—भाप्रवशास्त्र-मण्डारिकृत स्फोटविमर्शनी, पृ० ८

हे अथवा नहीं। आपुनिक सौन्दर्य प्रतिपादिताया म प्रतिपादिताया की भानि या मालविकाग्निमित्र म मानविका और इरावती जैसे विरल नपथ्या रङ्ग मञ्च पर आती है वह स्थिति स्वभावोक्ति म वण्य वस्तु का है।^१ किन्तु वस्तु को अनन्त शर की धमोटी मानने वाले भामह और कुन्तक जैसे आचार्य इम स्वभावाम्बान मात्र के कारण स्वभावोक्ति को अनन्त कार नहीं मानत। भामह ने अपना अम्वारस्य केचिन स सूचित किया है।^२

वस्तुत स्वभावोक्ति का काय वण्य का मजीव चित्र प्रस्तुत करना है जा कि अय अनन्त कारा म सम्भव नहीं। हा चमत्कारिना की अानवायता सभी को इष्ट है।

राममूर्ति न स्वभावोक्ति की कुष्ठ विशेषताएँ गिनाई है। जैसे—उमह प्रयोग म किसी वस्तु (चेतन या जन्मानव शिशु या पशु) का हूवहू उपस्थापन हो उपस्थापन म अवयवा का मशनप हा। मशिनष्ट उपस्थापन मे वस्तु की सभा असाधारण विशेषताएँ जैसे उभर कर आ गई हा।

इम उपस्थापन म कवि की प्रतिभा का आकषक सस्पश हा पढन म जा सूक्ष्म व्यौर पाठक की प्रतिभ चक्षुआ क ममश आवें उनम अदाज लगा सर्वे कि कवि की श्राहिना प्रतिभा म कितनी मूढम विशेषताओं को पकन की क्षमता है।^३

इस कथन म भी उपयुक्त तथ्य की ही पुष्टि होता है। इमलिय वण्य का यह स्वभावाम्बान चमत्कार पूण हागा तभी अलङ्कार हागा जयथा नहीं।

१ परिद्राजिका-निणयाधिहारे द्वीमि सर्वाङ्ग-मोष्ठप्राभिव्यक्तये विरल नेपथ्ययो पात्रयो प्रवेशोऽस्तु ।
—मालवि० पृ० २६

२ स्वभावोक्तिरलङ्कार इति कथित प्रचलन ।
अथस्य तदवस्थरव स्वभावोक्तिहित यथा ॥
—भावा० २ ६३

अलङ्कारवृत्ता यथा स्वभावोक्तिरनङ्कृति ।
अदडवायतया तया किमपदवतिष्ठते ॥
स्वभावव्यतिरेकेण वक्तुमव न युज्यत ।

वस्तु तद्रहित यस्मान्तिरूपाप्य प्रसज्यत ॥

शरीर चैददङ्कार किमदङ्कुरुत परम ।

आमेव नात्मन म्कथ क्वचिदप्यधिरोहति ॥
—वजी० १ ११ १३

३ कामास० भू० पृ० १५७ १६०

इमीलिये 'कविमात्रवेद्य रूप और क्रिया का वर्णन' उनका विषय माना गया है। जैसे—

चल वृष चल वृष चल बीरेस
हर सर नय वह चल धर्मेश
चक्र परिभ्रमति नैमि शन नंदति,
किङ्किणी नि स्वनति वजयती स्फुरति ।
हृष्टोऽसि बीरेश तुष्टोऽसि धर्मेश
प्रसरति प्रवहण प्रस्थिता वयमहो^१ ॥

इन पद्य-विषयो में लौकिक बला का हाँकना प्रत्यक्ष सा दिव्य है देता है।

व्यक्तिविवेककार ने स्वभावोक्ति को कवि-प्रतिभा के उत्कर्ष और भगवान् के ततीय नेत्र का स्थान दिया है। विशेषण का प्रज्ञान गुण वे मानने ह वस्तु की प्रत्यक्ष कल्प करने की क्षमता। इसमें अभाव में वह केवल वृत्तपूर्ण होता है।^१ वर्णन का स्वरूप स्पष्ट करने में समय विशेषण ही वस्तुतः स्वभावोक्ति अलङ्कार को तपन बनाता है। उन्होंने इसी प्रसङ्ग में मुक्तक द्वारा स्वभावोक्ति पर उदाहरण दी आग्नि का उत्तर दार्शनिक रूप में दिया है। उनके अनुसार वष्य वस्तु के दो रूप होत हैं—सामान्य और विशिष्ट। इनमें उसका जो विशिष्ट रूप होता है, उसे कवि की ही दृष्टि देखती है। जब कवि रसानुभूति के अनुकूल शब्दाय के चिन्तन में लीन रहता है, उनकी तबनचोभेय क्षारिणी बुद्धि त्रैलोक्य के पदार्थों को देखती है। यही वष्य वस्तुओं के स्वभाव या प्रकृति का साक्षात्कार कहलाता है, उसे उपयुक्त शब्दा में प्रत्यक्षवत् उपस्थित करना इस स्वभावोक्ति का कर्तव्य है।

वास्तव में यह कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति है जिसके कारण कवि वास्तव-द्रष्टा कहलाता है और भुवन भर के पदार्थ उसके लिये करतलस्थित-वदरवत् हा

१ दुर्हयो कविमात्रवेद्यपर्येयस्य डिम्भाद् स्वयोस्तदेकाश्रययाश्चेष्टा-

स्वरूपयो ।—साद०, पृ० ३६५

२ वी० आर० शास्त्री—विक्रान्तभारतम् । पृ० ३३

३ यम्बुवृत्तानुवादेऽङ्गुलं फल्गु विशेषणम् ।

अप्रत्यक्षायमाणार्थं स्मृतमप्रतिशोदभवत् ॥

तदवाच्यमिति ज्ञेयं वचनं तस्य दृश्यम् ।

तद् दृष्टानुपस्थितं न कश्चिदायं पश्यति ॥

—दृष्टिः २, १११-११२

जात है। सप्रपण या साधारणाकरण क द्वारा पाठक भी उनका साक्षात्कार करता है। इस प्रकार स्वभावाक्ति काव्य विम्ब क निर्माण म अमाधारण रूप म सहायक होती है।^१ उपयुक्त विशेषणो क प्रयोग पर एग्ना पाउण्ड ने भी बल दिया है।^२

राधवन के अनुसार भागद न स्वभावोक्ति का खण्डन नहा किया है। इमक साथ ही वे स्वभावाक्ति म वक्रता का स्पष्ट भा मानत है।^३ उन्हात जपन मन क समयन म ताताचाय का प्रमाण दिया है जो कि स्वभावाक्ति म वक्रता क अस्तित्व क लिये भामहू की—

युक्त वक्रस्वभावोक्त्यासबभेवतद्विपत्ते ।^४

इम पड कि को उद्धृत करत है। मम्मवत ताताचार्य इसका विग्रह वक्रया च स्वभावावया करते हैं पर यह युक्ति-सत् गत नही है। इसका पूर्वांश है—

अनिबद्ध पुनर्पाथालोक-मात्रादियत्त पुन ।

यह दसम पूव चल रह कथा आदि गद्य काव्या क विवेचन की सुरता म मुक्तक रचनाआ क प्रसङ्ग म कहा गया है। अन इसका वास्तविक तात्पर्य वक्रया वा स्वभावानुगतया वा उक्तया है ना कि उन मुक्तक कृतिया क वक्रा कित और स्वभावाक्ति दाना प्रकारा का समाहार कर लता है। इमक अनुसार इस प्रकार का रचनाआ की काव्यत्व म गणनामात्र विवक्षित सिद्ध हाती है स्वभावाक्ति म वक्रता नही।

माहित्यसुधासिंघुकार न वक्रोक्ति का अर्थ चमत्कार-पूण उक्ति ही किया है।

वक्रोक्तिरत्र चमत्कारिष्युक्ति ।^५

१ व्यवि० २ ११३ ११८, १२०

२ Use no superfluous word, no adjective which does not reveal something Don't use such an expressions as dim lands of peace It dulls the Image

—David Lodge's Twentieth Century Literary Criticism, pp 60

३ For Bhamaha Vakrokti is Alankara and Svabhavkti also which has got its own degree of Vakratamaking it off from Varta is comprised in Vakrokti —SC AS p 102 3

४ भावा० १, ३०

५ सासुसि० पृ० २१

इम स्थिति के विषय में अलङ्कारसर्वस्वकार,^१ मम्मट,^२ भोज, शोभाकर सभी के विचार मिलते-जुलते हैं। पहला जहाँ सबसामान्य व्यवच्छेद के लिये "सूक्ष्म" और "यथावत्" इन शब्दों का प्रयोग करता है वहाँ दूसरा "तेदेकाश्रययो" के द्वारा वण्यमान में पाई जाने वाली स्वभाव स्थिति का निर्देश करता है। शोभाकर कविमान-वेश्म सूक्ष्म स्वभाव को अलङ्कार का विषय मानता है^३ तो विश्वनाथ भी उसका ही समर्थन करता है^४। हेमचन्द्र भी उस अवस्था को कविमान का अनुभवंकगोचर मानते हैं^५। नरेन्द्रप्रभ सूरि स्वभावोक्ति के विषय में वण्य की शारीरिक बनापट, आकृति चैष्टा एव मुद्रा को भी लेते हैं और कुमार सभय में शर-प्रहारोद्यत काम की मुद्रा को यथाथ स्थिति मानते हैं। इस प्रकार सारी विशेषताओं का देखते हुए—

“गौरपत्य बदीवर्दस्तणमतिमल्लेन स ।”

यह वचन हर किमी वदन का स्वभाव होने में स्वभावोक्ति का विषय नहीं बन सकता। किन्तु—

१ सूक्ष्म वस्तु-स्वभावयथावद्वर्णन स्वभावोक्ति । जम०, पृ० ६६४

२ स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे स्वत्रिया-रूप-वर्णनम् ।

स्वयोस्तदेका श्रययो । रूप वर्ण सस्वान च ।—जा० प्र० का० १०, १११

३ द्विविधो वस्तु स्वभाव स्थूल सूक्ष्मश्च । तत्र कविमित्मानगोचर स्थूल । तस्य वर्णने न कश्चिदलङ्कार । सर्वस्य वाक्यस्य स्वभावोक्ति-प्रथङ्गात् । सम्यग् वप्यमानस्तु स्वभाव सूक्ष्म न तु महानविगाचर ।

—अर०, पृ० १८४

४ स्वभावोक्तिर्दुम्हाथस्वत्रियारूपवर्णनम् । माद०, १० ६३

५ अर्यम्य तादवम्यमिति । मानुभवंकगोचरा अवस्था यस्य सातस्य भाव-

रनादरस्थमिति । जयमथ—कवि प्रतिभया निर्विकल्पक-प्रत्यक्ष-कल्पया विषयीकृता वस्तु स्वभावा यत्र वण्यन्ते ।

—कानुवि० पृ० ३७६-८०

६ सूक्ष्म कविमाना (त्र) गोचरो यो वस्तु सन् विद्यमाना भाव परिस्पन्द-विशेषस्तस्य वर्णन मुधा-भोदरया गिरा प्रकाशन सा स्वभावोक्ति । इय च सस्वानावस्वानवपस्थापागादिभि स्वस्वैर्मुग्धाङ्गता-डिम्भनियङ्गीचादि-भिराश्रयैर्देवतानसक्तिमाधनादिभिश्च हतुभि रनेक्या भिद्यते । सदक्षिणा-पाट्म (कुम० ३, ७०)

अत्र धनुधरसन्धानमीदृशैव स्यादिति । अमहो०, ८, ८२, १० ३२५

तुपार-सधातशिला खुराप्रं समुल्लिखम् दर्पकल ककुद्मान ।
दृष्ट कयञ्चिद् गमयैविविर्नरसोढ-सिंह-ध्वनिहृन्मनाद ॥^१

तथा—

मदोदथा ककुद्मन्त सरिता कूलमुद्रजा ।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोभास्तस्य विरमम् ॥^२

इस दोना पद्यों में शिव के नन्दी तथा माटी की यथाथ प्रकृति चित्रित हुई है ।

अर्थव्यक्ति व स्वभावोक्ति में अन्तर

गोल ने अर्थव्यक्ति का जा तर्क दिया है उसके अनुसार स्वभावोक्ति में उमने कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता^३ । इस कारण विश्वनाथ ने स्वप्न रूप से उसकी स्वभावोक्ति में छुनायता मान ली है^४ । परन्तु भोज ने दोनों में अन्तर यह माना है कि अर्थव्यक्ति में वस्तु के स्थायी गुण और स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण होता है जब कि स्वभावोक्ति में परिवर्तित स्थिति का एक चैष्टाओ का भी^५ जहा तक काव्य-विम्ब की निद्रि का प्रयग है, दोनों ही इस प्रयोजन के साधक हैं ।

स्वभावोक्ति में अन्य अलङ्कार का स्पर्श नहीं होता । यह पक्ष राघवन्

१ कु० म० १, ५६

२ ख० ४, २४

३ गु० अर्थव्यक्ति स्वरूपस्य साक्षात्कथनमुच्यते । —सक०, १, १८
स्वरूप स्वमनाधारण कवि-प्रतिर्यङ्गोचर चमत्कारिरूप तस्य साक्षात्-
कथनमु कविभाक्ति-वशात् साक्षात्कारसोदर-प्रतीतिजत्कपदवत्त्व सदभस्यार्थ-
व्यक्तिनामा गुण अर्थो यथोक्तस्तास्य व्यक्ति प्रत्यक्षायमाणता ।

—रद०, ७६ पृ०

नानावस्थासु जायन्ते यानि रुपाणि वस्तुन ।

स्वैम्य स्वैम्योनिर्गम्यस्तानि जातिं प्रवक्षते ॥ सक०, २, ४

४ अर्थव्यक्ति स्वभावाकनया नङ्कारेण । अङ्गीकृत इति सम्भव ।

—साद०, पृ० २६८

५ अर्थव्यक्तोरिय भेदमियता प्रतिपद्यते ।

जायमानप्रिय वक्तिरूप सा सार्वकालिकम् ॥

—सक० २, ५

का है^१। मभवत उनका आधार यह मन्य है कि अन्य अलङ्कार वक्रतामूलक हैं, उनका फुट होने पर स्वभावाख्यान नहीं रहेगा। परन्तु ऐसा मानना तथ्य का अपक्षाय होगा। महाकवियों के अनेक स्वभावोक्ति-प्रयोग ऐसे हैं जहाँ कि अन्य अलङ्कारों का फुट स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरण के लिये मत्प्रथम बाल्मीकि-रामायण के निम्न पद्या को लें—

सिंहोरस्क महाबाहु पद्म-पत्र निभेक्षणम् ।

आजानुबाहु दीप्तास्यमतोव प्रियदर्शनम् ॥

गजविक्रातगमन जटामण्डलधारिणम् ।

सुकुमार महासत्त्व पार्थिव-ध्यञ्जनोचितम् ॥

राममिदीवरश्याम कन्दपसदृशप्रभम् ।

बभूवेन्द्रोपम दृष्ट्वा राक्षसो काममोहिता^२ ॥

स्वभावोक्ति के लक्षण के अनुसार राम के अवयवादि का यथायवणन होने से यह स्वभावोक्ति का विषय है। परन्तु इन पद्या में 'सिंहोरस्क', 'पद्मपत्रनिभेक्षणम्' 'गजविक्रातगमन' 'इदीवरश्यामम्' 'कन्दपसदृश-प्रभम्' सदृश विशेषण उपमालङ्कार माथ में लिये हैं जो कि स्वभावोक्ति को अनुप्राणित कर रहा है। स्वभावोक्ति का काय वर्णन या चन्द्रचित्र प्रस्तुत करना जाना है, वह काय पहा भी हो रहा है। राम के वर्ण अङ्गरचना, गुण, रूपा, प्रभा इनका ही यहाँ चित्रण है। इसी प्रकार—

सुमुख दुर्मुखी राम वृत्तमध्य महोदरी ।

विशालाक्ष विरुपाक्षी सुकेश ताम्रमूषजा ॥

प्रियरूप विरुपा सा सुस्वर भरवस्वरा ।

तरुण दारुणा वृद्धा दक्षिण वामभाषिणी ॥

न्याययुक्त सुदुवृत्ता प्रियमाप्रियदर्शना^३ ।

इन पङ्क्तियों में राम और श्रूषणखा के अङ्ग, रूप, चेष्टा, गुण, आदि का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतः यहाँ स्वभावोक्ति भी है परन्तु

1 The Word 'Sakshad' implies that no artificial aid of a figurative flourish shall be used in this Poetic figure

—SC AS p 103

मभवत उनका अनेक छंद के निरूपण आदि विशेषणों की अंग है जो वास्तव के है।

—देखो रूका० ६ १०

२ वारा० ३ १७, ७-६

३ वही, ३, १७, १०-१२

वैपथ्य स्पष्ट होने में विषय अन्तःकार व्यक्त है। वाण भद्र के अनेक वणन स्वभावोक्ति के साथ साथ उपेक्षा आदि अनेककारों की छटा मध्य में लिये हुए हैं। जैसे—

इन्दुद्वपपरिवर्तितदेहत्या पृष्ठभागनिपतिर्नैमदनदहन विह्वलवदहृदय
 न्यस्तन्यस्तनख मयूखच्छवन छिद्रितमिव शणिकिरण उच्छाक-शाण्डुरया स्व
 विनगात्पातात्पनया मन्त्र चन्द्रकनयव चन्द्रनलेखिकया रचितललाटिकम
 ईषणाशय परिबन्तारग्वेषानवरत राग्न-नाम्नेण प्राणा-मर्गेऽपि जाताधुक्षयतया
 रुद्रिगमिव क्षरणा मदनशर गल्पवेदनाङ्गुणित्त्रिभागन नातिनिमात्रितन लाघत
 युगवन मत्ताऽतिप्रियतरस्तवापरो जना ज्ञान' इति कुपितर्नैव आबिनन परि
 यक्तनम ममथव्यथया महैतानमून स्वयमिदामज्य निश्चननता-मुखमनुभवतम
 रचितचन्दननाटिकात्रिपुण्डकम घतसरमविस्रमूत्रयज्ञापवानम अमावसकन
 कदनागभ-पत्र चारु चीरम एकावनी विशालाश्वमालम अविरतामनकपू रक्षाद
 मम्मथवनम आवद्धमृगालरक्षाप्रतिमर मनोहरम मनाभवत्तत्रपमास्थाय मममा
 गममन्त्रमिव माघयन्तम ।^१

वस वणन में कवि ने मृत् पुष्पगीक जिस मुद्रा में बटा हुआ था जमा
 उमर के वेप था मृत्यु में पथराकर जैसा उमरी आखों में रखा था सबका
 यथा—वत शब्दचित्र प्रस्तुत किया है। बीच बीच में उपेक्षा महाक्ति परिणाम
 अन्तःकारों का पुट है। इस काद यह नहीं कह सकता कि यथा स्वभावोक्ति
 महा है।^२

ऋतु-वणन भा यदि प्राकृतिक व्यापार का राही चित्र प्रस्तुत करना हा तो
 स्वभावोक्ति का सुंदर उदाहरण मिद्ध होता है। रामायण में उन्घत ह्रन्त
 एव वर्षा व शरद के वणन इसमें जीवित प्रमाण हैं। ऋतुमहार में प्राप्ति ऋतु
 के प्रसङ्ग में सतप्त प्राणियों की चेष्टाएँ सबथा चित्रमय हैं। यथा—

तृषा महत्या हतविक्रमोद्यम
 श्वसन मुहुदू रविकारितानन ।
 न हृत्पदूरेपि गजान मृगेश्वरो
 विचोल जिह्वशचलिताप्रकेसर ॥^३

१ का० पृ० ३०६

२ विशेष के लिए द्र०

Bhardwaj Role of Svabhavokti in Poetic Image The
 Vedic Path (Hardwar) Dec 1980

३ ऋतु० १ १४

इस पद्य में गर्मी के कारण सत्पन मिट्ट का यथाथचित्र प्रस्तुत किया गया है।

ध्वलति पवनवृद्ध पर्वताना दरीषु
स्फुरति पट्टनिनादैः शुष्क-पशस्यलीषु ।
प्रसरति तृणमण्ये लब्धवृद्धि क्षणेन
क्षपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्नि ॥^१

यह पद्य वन के एक भाग में लगी भीषण अग्नि का प्रचण्ड रूप प्रस्तुत करता है। साथ में फूटती चिनारियां की पट-पट ध्वनि का अनुकरण "स्फुरति पट्टनिनादैः" इन टकार-बहुल ध्वनिया में होने के कारण ध्वनिचित्र है। भवभूति का—

निष्कूजस्तिमिता बबचित् क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वना
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रबोधाग्नय ।
सीमान प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाग्निमास्वय
तृप्यद्भिः प्रतिसूषकरजगरस्वेदद्रव पीयते ॥^२

इस प्रकार काव्य-शास्त्र में स्वभावोक्ति अलङ्कार की मायता का उद्देश्य वण्य वस्तु को प्रत्यक्षवत् उपस्थित करना ही है।

नादिक— सामान्य अलङ्कारों में स एव भाविक भी है जिसका स्वरूप भी स्वभावोक्ति की ही भांति वण्य वस्तु का प्रयत्नीकरण है। स्वभावोक्ति से इसकी यह विशेषता है कि जहाँ उसमें प्रकृत में वर्णनीय वस्तु का यथाथ वर्णन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है, भाविक में भूत और भविष्य में होने वाली घटना को वर्तमान की भांति प्रत्यक्ष किया जाता है।

इस अलङ्कार की मायता तो प्राचीन कवीन सभी आचार्यों ने दी है पर बण्डों और भागह दोना का मत अन्य से भिन्न है। वे दोना इसे प्रबन्धव्यापी गुण मानते हैं। विषय का प्रत्यक्षीकरण उह भी माय है। भामह ने इसके लिए तीन बातें आवश्यक गिनाई है—१ विलक्षण उदात्त एवं विस्मयकारक वधावस्तु हा, तथा वा लगी प्रकार अभिव्यक्त किया जाय शब्द असन्दिग्ध हो।^३

१ ऋतु० १ २५

२ उच०, २ १६

३ भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्धविषय गुणम् ।

प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यान्त्राया भूतभाविन ॥

चित्रोदात्ताद्भूतार्थत्वज्ञाया स्वभिनीतता ।

शब्दानाकुलता चेति तस्य हेतु प्रचक्षते ॥

—भाका०, ३, ५३-५४

श्रव्य काव्य के प्रसङ्ग म अभिनय म भामह का आशय स्पष्ट नहीं है । मभवत कथानक म वर्णित व्यापार का अनुस्यू चेष्टाआ म सश्रिय किया जाय यदि यही उनका आशय है तो निश्चय ही आधुनिक विम्बवाद की धारणा क विचार स उनका मत भी मित जाता है । क्योंकि शब्दचित्र म गायामकता आवश्यक मानी गई है और गत्यात्मकता क्रिया म ही आती है । कुछ वानें दण्डी न भी दूसर शब्दा म भाविक क त्रिए अपक्षित मानी हैं—१ विभिन्न कथाएँ परस्पर एक दूसरी की पीपक हा । २ विशेषण साभिप्राय हा, ३ वण्य का अवसरानुरूप वर्णन ।

गम्भीर विषय भी उपयुक्त क्रम स अभिहित होन से स्पष्ट हो जाय ।^१

दण्डी के मत म विषय के प्रत्यक्षवत जवभासन पर बल नहीं दिया गया है । उनकी अपेक्षा उदभट द्वारा दिये गय लक्षण म शब्द याचना की प्रासादिकता से भूत और भविष्य क वक्त का प्रत्यक्षीकरण अपेक्षित माना गया है ।^२ प्रतिहारेदुराज ने इमक त्रिए भाव म सम्बद्ध आवश्यक बताया है । उनके अनुसार शृङ्ग गारादि रमा ने सम्बद्ध चारा वर्गों की सिद्धि का उपाय भूत कवि का आशय श्रोता या सामानिक का उसकी भावना क अनुसार काव्य के प्रतिविम्ब के रूप म प्रत्यक्ष हो जाता है ।^३ यहा प्रतिविम्ब के निर्देश से विम्ब की भावना की स्वीकृति स्वम हो गई । क्योंकि विम्ब क अभाव म प्रतिविम्ब ही सम्भव नहीं है ।

अलङ्कारसर्वस्वकार,^४ सञ्जीवनीकार^५ योगियो की भाति कवियो को

१ भाविकत्वमिति प्राहु पवधविषय गुणम ।

भाव कवेरभिप्राय काव्येष्वासिद्धि सस्थित ॥

परस्वरोपचारित्व सर्वेषा वम्नुपवणाम ।

विश्रयणाना व्यर्षानामत्रियर स्थानवणना ॥

व्यवित्तसक्तिरुम ववाद गम्भीरम्यापि वरतुन ॥ —कीद० २ ३६४ ६६

२ प्रयक्षा इव यात्रार्थी दृश्यन्त भूतभाविन ।

अत्यदभुना स्यात्तद वाचामनाकुल्येन भाविकम ॥—कासास० ६ ६ (७३)

३ कास सदृ० पृ० ४०७ ४०८

४ जस०, पृ० ६०१-७६

५ लाक्यानाया लौकिकाय प्रत्यक्षीकरणे देशकालादि-अवधानादतीन्द्रियैर्ध्वं योगिनाम् ऐकाग्रयात्मक भावनारूप । साक्षात्करण-समिप्री काव्यायसाक्षात्करण काव्यतत्त्वविदामपि भावना स्वभावेव । —मजी० पृ० २०४ ५

भी भावना से यस्तु वह प्रत्यक्षीकरण मालने है। स्वभावोक्ति में वस्तु-सवाद होने से हेतु-सवाद पर आश्रित भाविक उसमें सवधा पृथक् है। मम्मट के स्पष्टीकरण में नामेश ने भी भाविक में भावना को मुख्य माना है।^१ विश्वनाथ के अनुसार भाविक में अद्भुत पदार्थों का ही प्रत्यक्षीकरण होता है।^२ विश्वनाथ देव गूढ आशय को अभिव्यक्ति में भाविक मानने हुए भोज से महमत है।^३ शोभाकर के अनुसार भाविक में शब्दप्रयोग से भी प्रत्यक्षीकरण सम्भव है पर इसके ध्वन्य की विलक्षणता, पदों की प्राप्तादिकता एव वाच्य में अव्यवहितता, कवि से विषय-प्रतिपादन-नैपुण्य अपेक्षित है।^४ अजितमेन भी भावना पर ही बल देता है।^५ इस प्रकार यह मनोविज्ञान में सम्बद्ध अलङ्कार है जो कि अलङ्कार-क्षेत्र में भी भावना के साधारणीकरण को आवश्यक मानता है। अलङ्कार-मणिहार में भी यही बात दोहराई गई है।^६

१ अभिप्रायो लौकिक-प्रत्यक्षविषयत्वेन प्रतिपादनेच्छा । न चैव स्वभावोक्ति । तत्र वस्तु-प्रमो वैचित्र्याघायक । इह तु कवेर्मग्नि बद्धम्य नाङ्गिप्राय इति विमेषात् ।

—१।० प्र० ३०, पृ० ५०६

२ माद०, पृ० ३६५

३ केचित्तु अतिगूढम्य बन्तुनो भावोक्तिर्भाविकम् ।

—सामुद्रि०, पृ० ४८५

तु०—स्वाभिप्रायस्य कथन यदि वाञ्छय-भावना ।

अपारवेशे वा यस्तु त्रिषध भाविक विदु ॥ —सक०, ४, ८६

रक्षण क्विचिद्वदक विवन्धक दीहर तुपरिणाहम् ।

होइ धरे साहीण मुसल धणाण महिलाणम् ॥ —वही, (उ०) २३३

अत्र मेद्राभिप्रायेण मुसलतोक्तेरयभावना ॥ —रव०, पृ० ५४६

४ अर०, पृ० १८६-८७

५ तथा च प्रत्यक्षायमाणत्व भावनाया पौन पुन्येन चेतसि निदग्नाद् घटत एव । यथा—

पिहिते कारागारे तमसि च मूलीमुखत्रि निसेद ।

मयि च निमीलित-नयने तदापि कान्तानन व्यक्तम् ॥

इ याद्यद्दृश्यमानार्थोर्षप प्रत्यक्षायमाणत्व-सम्भवात् ॥ —अचि०, ४, ३०४

६ तथा च भावनाया प्रकर्षेण घटत एव प्रत्यक्षायमाणत्व भूत-भाविनोर-प्यथमो ।

—अमहा० भा० ३, पृ० ३१८

तद्गुण—किसी वस्तु के अरुता गुण छोड़कर अरु वस्तु के उत्कृष्ट गुण अपनाते के वर्णन म तद्गुण बनता है ।^१ इसके विम्ब मशिल्लष्ट हमा । पहले वस्तु का प्राकृतिक वर्ण आदि दिखाई देगा पश्चात् परिवर्तित । जैसे शिशुपालवध म नखा की कांति म मुक्तामाला का रक्तवर्ण हा जाना वर्णन है ।^२

पूर्वरूप—वस्तु क अन्य गुण छोड़कर सहज गुण पुन अपना लेने के वर्णन मे बना पूर्वरूप भी वर्णन का दुहरा विम्ब प्रस्तुत करता है ।^३ पहला परिवर्तित रूप का होगा, दूसरा सहज का । जैसे अरुण की लालिमा मे बदले रंग वाले सूर्य के छोटा का इन्द्रनील मणिया क प्रकाश म पुन हरा हो जाना का वर्णन ।^४

उन्मीलित—अन्य गुण म निमीलित वस्तु क पुन उद्भिन्न हो जाने की चर्चा म उन्मीलित बनता है ।^५ यह भी परिवर्तित एव सहज दोनो रूपो के मिश्रविम्ब प्रस्तुत करता है । जैसे—पक्षिया क घासल म बैठन, कमला क मुस्तान क मानती क खिलन म छिपे सूर्य का भान होना । जाकाश म मेघ होने से अतद्य सूर्य का इम प्रकार उन्मीलन दिखाया गया है ।

अतद्गुण—अपन उत्कृष्ट गुणो के कारण कोई वस्तु यदि अन्य का गुण ग्रहण करती न दिखाई जाय ता अतद्गुण अनङ्कार बनता है ।^६ जैसे हस क रङ्ग मे गङ्गा या यमुना म नहाने मे किसी प्रकार के न्यूनाधिक्य न होने क वर्णन म ।^७

१ तद् गुणा स्वगुणयागादयुक्त्वा-गुणग्रह । —साद०, १० ६०

२ अजस्रमास्फुरितवल्लकी-गुणस्फुटक्षताट्-गुप्टनखाशु भिन्नया ।

पुर प्रवालरिवपूरिताक्षया विभान्तमच्छस्फुत्तिकाक्षमालया ।

—शिव०, १ ६

३ पुन स्वगुणमप्राप्ति पूर्वंचमुदाहृतम् ।

—कुवल० १४२

४ विभिन्नवर्णा गहटाग्रजेन मूर्यस्य रथ्या परित स्फुरत्या ।

रत्नं पुनर्यत्र रत्ना रुच स्वामानिन्यिरे वशवरीरनीलं ॥

—वही, पृ० १४६

५ भेदस्य स्फुतावुन्मीलितम् ।

—कुवल० १४८

६ निलीयमानैविहगैनिमीतदिभश्च पङ्कजं ।

विषगन्त्या च मान्त्या गतोऽन्त ज्ञायन रवि ॥ —वारा० ४ २८, ५२

७ तद्रूपाननुहारस्तु हती सत्यप्यतद्गुण ।

—साद० १०, ६१

८ गाट्-गमम्बु सितमम्बु यामुन वज्रलाभमुभयत्र मञ्जत ।

राजहस तव सैव शुभ्रना चीयनेन च न चापचीयत ॥ वही

प्रौढोक्ति—यह सर्वथा कल्पना-रूप अलङ्कार होता है। किसी उत्कृष्ट गुण वा कारण न होने पर भी किसी वस्तु में कारणता की कल्पना करने में इसकी स्थिति होती है। जैसे तमालवृक्षो की नीलिमा का कारण यमुना के तट पर उत्पत्ति को बनाना।^१ इसमें दृग् प्रकार की कल्पना में कार्य का बिम्ब बनता है।

यथासङ्ख्य—यह बिम्ब पदार्थों का पूर्वनिर्दिष्टक्रम के अनुसार रखने से बनता है।^२ एक निश्चित क्रम के कारण इसमें बिम्ब-योजना अच्छी रहती है। जैसे—

प्रियासु बालासु रतक्षमासु च द्विपत्रित पल्लवित च विभ्रतम् ।

स्मरार्जित रागमहोच्छाङ्कुर म्रियेण चञ्चोरचरणद्वयस्य च ॥^३

यहा बाला और रतक्षमा ने अनु रूप राग को द्विपत्रित एव पल्लवित कहा है। चञ्चूपुट और पङ्जो में भी वही क्रम निभाया है। राग में अङ्कुर का आरोप करने से यह मशिलप्ट बिम्ब बन गया है।

शृङ्खलामूलक अलङ्कार

शृङ्खलामूलक अलङ्कार यद्यपि वर्ण्य का पूर्ण बिम्ब वा प्रस्तुत नहीं करते परन्तु अस्पष्ट चित्रा की एक माला सी अवश्य निर्मित करते हैं। पाठक या श्रोता की स्मृति द्वारा उन पदार्थों के रूप की कल्पना करनी पड़ती है, तब स्पष्ट बिम्ब स्फुरित होता है। इस प्रकार धूमिल छण्ड-बिम्बों की शृङ्खला बन जाती है।

पर्याय—इस श्रेणी में पहला अलङ्कार पर्याय है जिसमें एक वस्तु का क्रमशः अनेक स्थानों में धूमना या अनेक का क्रम से एक में होने का वर्णन होता है।^४ इस प्रकार दृग् अलङ्कार का बिम्ब गत्यात्मक होता है। जैसे—

नन्वाश्रय-स्थितिरिय तव काल-कूट
केवोत्तरोत्तर-विशिष्ट-पदोपदिष्टा ।

१ प्रौढोक्तिरुत्कृष्टतौ तद्भेदुत्व-प्रकल्पनम् ।

कच्चा कलिन्दजातीरतमानस्तोममेघका ।

—युवलय० १२५

२ यथासङ्ख्यमनुदेश क्रमिकाणा क्रमेण यत् । वही ।

३ नैब० १, ११८

४ क्वचिदेकगनेकस्मिन्ननेक नैबग क्रमात् ।

भवति क्रियते वा चेतदा पर्याय इष्यते ।

—साद० १०, ८०

प्रागर्णवस्य हृदये वृषलक्ष्मणोऽय

कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुन खलानाम्^१ ॥

इसमें वाक्यार्थबोध में समुद्र-मन्थन, विष के उदय से देवामुरी की विकलता, शिव का विषपान, उनके कण्ठ का काला पडना, ये स्मृति एव पुराण कथा आदि में स्मृति-विम्ब और आद्यविम्ब बनते हैं। अन्त में दुर्जनों के वचनों का श्रव्य विम्ब, सबको मिलाकर भाव-विम्ब बनता है।

एकावली—इसमें शाब्द या आर्थ व्यपोह से पदार्थों का उत्तरोत्तर विशेष्य विशेषण-भाव बणित होना है।^२ इस प्रकार उत्तरोत्तर विम्बों की शृङ्खला बनती है। जैसे—

पुराणि यस्या सवराड्गनानि वराड्गनारूप परिष्कृताङ्ग्य ।

रूप समुन्मीलित-सद्विलासमस्त्र विलासा कुसुमायुधस्य।^३

कारणमाला—इसमें कारण उत्तरात्तर शृङ्खला रूप में काय रूप में बदलता जाता है।^४ कारण का कार्य रूप में बदलना बौद्धिक व्यापार है। अतः उसमें बौद्धिक विम्ब ही संभव है। जैसे—

दारिद्र्याद् ह्यपमेति ह्यी-परिगत सत्त्वात् परिभ्रश्यते

निःमत्त्व परिभ्रूयते परिभवानिर्वेदभाषयते ।

निर्विण्ण शुचमेति शोक-निहतो बुदध्या परित्यज्यते

निर्वुद्धि क्षयमेत्यहो निघनता सर्वापदामास्पदम्^५ ॥

माला-दीपक—इसमें शृङ्खला क्रम से प्रकृत और अप्रकृतों का एक धर्म में सम्बन्ध दिखाया जाता है।^६ सम्बन्ध पदार्थों के स्थूल होने से उनका विम्ब ऐन्द्रिय होना है। किन्तु प्रतिक्रिया बौद्धिक होती है। जैसे—

सङ्ग्रामाङ्गणमागनेन भवता चापे समारोपिते

देवाकर्णय येन येन सहसा यद् घन समासादितम् ।

कोदण्डेन शरा शरैरिशिरस्तेनाऽपि भूमण्डल

तेन त्व भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम्।^७

१ वा०प्र०का० (उ०) ११३

२ मयापूर्व परम्य विशेषणनया स्थापनागोहने एकावली । —अम०, पृ० ५२८

३ वही

४ पूर्वपूर्वस्यात्तरान्तं हनुन्वे कारणमाला ।

—वही, पृ० ५२३

५ मूच्छ० १, १८

६ पूर्वपूर्वस्यात्तरान्तं गनुणावहृत्वे मालादीपकम् ।

—अम०, पृ० ५३०

७ वही, पृ० ५३१

सार—इसमें पदार्थों को उत्तरोत्तर उत्कृष्ट बताया जाता है ।^१ इस प्रकार कई खण्ड बिम्बों से एक सम्मिलित प्रभावात्मक बिम्ब बनता है ।
जैसे—

राज्ये सार बहुधा वसुधायामपि पुर पुरे सौधम् ।
सौधे तल्प तल्पे वराङ्गनाऽनङ्ग-सर्वस्वम् ॥^२

गूढार्थ-प्रतीति-मूलक—इस श्रेणी के अलङ्कार मनोविज्ञान-मूलक अधिक हैं । इसलिये वाक्याथ का बिम्ब बनने के पश्चात् प्रतिन्रियात्मक संवेदन का प्रभावशाली मानस बिम्ब बनता है । जैसे समाधि से चिन्तन के साथ ही काय-मिद्धि वर्णित होती है ।^३ इसमें पहले वाक्याथ का बिम्ब और पश्चात् हर्षानुभूति का भावबिम्ब बनता है । जैसे दण्डरथ के पुत्र के अनुरूप वधू पाने की इच्छा होते ही इस प्रकार की सूचना दिये ब्राह्मण का पहुँचना ब्राह्म की अपेक्षा मानस व्यापार की ही प्रधानता रखता है ।^४ पुत्रवधू प्राप्ति की इच्छा एव सूचना पाने में हर्षानुभूति दानर ही मानस है । इस अलङ्कार का विपरीत विपादन है जिसका आधार अभीष्ट के विरुद्ध काय होना है ।^५ जैसे छमर के प्रभात में कमल वन के विक्रम की प्रतीक्षा के विरुद्ध वधू गज का वनन की वन को ही उखाड़ फेंकना विपाद का मूल है ।^६ प्रहसन बिना ही यत्न के अभीष्ट सिद्धि के वणन में होता है ।^७ उमम भी हर्षानुभूति ही हार्ता है । अवज्ञा लेग अनादर मदेश अलङ्कार इसी प्रकार के मानसिक अवस्था का जातिव्यक्त करने हैं । आक्षेप भी आपातत विराज की भावना लिये होने पर भी विशेष की विवक्षा में जालनिक अनुभूति पर ही प्रकाश डालता है ।

- १ उत्तरोत्तरभुक्त्वर्षो वस्तुन सार उच्यते । —साद० १०, ७६
- २ वही, पृ ३१६
- ३ समाधि मुक्ते कार्ये देवाद् वस्त्वतरागमात् । —वही, १० ८६
- ४ अविषेप मदृगी म च स्तुषा प्राप संनमनुक्लवाग द्विज । —रव० ११ ५०
- ५ इष्यमाण विरुद्धाथ-सम्प्राप्तिभ्यु विपादात् । —कुव० १३२
- ६ गर्जितमित्यपि भविष्यति सुप्रभात
भास्वानुदेत्यपि हमित्यपि वड कजश्री ।
इत्थ विचिन्तयति वापयत द्विरेके
टा हत हन्त नलिनी गज उज्जहार ॥ —वही, पृ० १४१
- ७ उन्मिष्ठनाथममिद्धिविना या प्रहसनम् ।
तथा —वाञ्छितार्थप्रदायस्य ममिद्धिष्व प्रहसनम् ॥ —वही, १३०-३१

रसवत्, प्रेय, ऊजस्वी, समाहित ये सभी रस, भाव, रसाभास, भावाभास, एव भावोदय आदि भावानुभूति पर आश्रित अलङ्कार ही हैं। भले ही अङ्गत्व प्राप्त करके वे अलङ्कार बन जायें, उनका अनुभूयात्मक रूप तो तब भी सुरक्षित रहता ही है। इसलिये उनके स्थूल विम्ब संभव नहीं हैं।

श्रीभास्कर आदि आचार्यों ने अनेक नये अलङ्कारों की कल्पना की है जिन में अचिन्त्य, बंधम्यं सदृश की चर्चा यथास्थान ही की है। अन्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत अलङ्कारों से पृथक् किये गये नये अलङ्कारों में विम्ब-मिद्धि मूल अलङ्कारों में ही सम्पन्न समझ लेनी चाहिए। क्योंकि सभी के उदाहरण देने में ग्रन्थ का कलेवर बहुत विस्तृत हो जायेगा।

तेरहवां परिच्छेद

छन्द और सङ्गीत का काव्य-विम्ब में योग

पद्य काव्य—रचना-प्रकार की दृष्टि में किये गए काव्य भेदा में गद्य, पद्य और मिश्र इन तीन की गणना जानी है।^१ उनमें छन्दोबद्ध रचना पद्य कहलाती है।^२ गन्धक गद् धातु^३ में व्युत्पन्न होने के कारण पद्य का सम्बन्ध सङ्गीत और लय में है। क्योंकि उसमें आराढ़, जबगोह और नय रहती है। वनन या वर्ण व्यापार के कारण बनी गन्धात्मक रचना वृत्त कही जाती है। वृत्त का ही अन्य नाम छन्द है। छन्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से की जाती है जिसके अन्वय में अनेक रूप हैं। वे निम्न प्रकार से हैं—

१ “छदामि छादनात्”^४ यास्क ने अपवारणार्थक^५ छद् धातु में व्युत्पत्ति की है।

२ गवरणार्थ छद् धातु में भी की जा सकती है। छद् या लपताल में रचना की दृष्टि को लका जा सकता है। वेद-मन्त्रों के उच्चारण में वर्णों की न्यूनता द्वारा करने के लिये विधान किया गया है कि यण् आदि सन्धि के स्थान पर इयञ् आदि वर्णों से पूर्ण की जा सकती है। इस प्रक्रिया का व्यूह कहा जाता है।^६ जैसे ‘वरेण्य’ को ‘वरणिय’ ‘वीर्याणि’ को ‘वीर्याणि’ ‘त्र्यम्बक’ को ‘त्रिपम्बकम्’ आदि।

१ पद्य गद्य च मिश्र च ।

—सूक्त० २, १८

२ छन्दोबद्ध-नद पद्यम् ।

—साद० ६, ३१४

३ पाघा० ११६६

४ छदामिच्छादनात् ।

—यानि० ७ १२

५ छद अपवारणे पात्रा० १८३४

६ छदि स्वर्णे पाघा० १२७७

७ व्यूहेदेकाक्षरोभावान् पादेयूनेषु सम्पद ।

क्षौप्रवर्णाश्च सयोगान् द्व्येयान् सदृशीं स्वरैः ॥

क्षौप्रवर्णाश्च सयोगान् सान्त स्थान् सयोगान् इत्यर्थः । द्व्येयान्

व्यवधानं कुर्यादित्यर्थः । सदृशीं समानैः स्वरैः ।

—ऋक्प्रा० उ० भा० १७, उ० भा० २२-२३

३ अभिनव गुप्त ह लादनाथक छद धातु से छन्द शब्द की निष्पत्ति मानत हैं। इसके अनुसार आन-दा-मक रसोदबोध म छद सहायक सिद्ध होना है। इसस काव्य विम्ब के निर्माण म उसकी उपयोगिता स्वत सिद्ध हो जाती है।

४ ऊजनाथक छद् धातु म छद्^३ की निष्पत्ति स्वीकार करें ता उससे काव्य म चमत्कार-वृद्धि की उपलब्धि होती है। इसके अनुसार छद स रचना प्राणवती या बनवती हो जाती है।

छन्दो का महत्त्व

भरत ने छद को काव्य का शरीर घोषित करत^३ हुए सूचित किया है कि शब्द-योजना करने पर भी छद क बिना काव्य म सौष्ठव नष्ट आता। नाट्य शास्त्र वा विषय दृश्यकाव्य तक सीमित होने पर भी नाटकाद्येषु काव्येषु^४ इन शब्दो म आद्य शब्द के द्वारा श्रव्य वा समाहार भी कर हा दिया है। वस्तुतः काव्य को श्रव्य बना कर भाव विशेष की अभिव्यक्ति ही छद का प्रयोजन है। अथवा रस या भाव विशेष म किता निश्चित छद के ही प्रयोग का^५ निर्देश देने का क्या प्रयोजन हो सकता था ?

अखीरी ब्रजनन्दन प्रसाद का विचार है कि आरम्भ म लिपि का आविर्भाव न होने से कृति को स्मरणीय बनाने के लिये छद का प्रयोग किया गया था। क्योंकि छदोबद्ध रचना को कण्ठस्थ करना गद्यबद्ध रचना की अपेक्षा सरल हाता है। ग्रीक काव्य होमर भी इन्हीं दृष्टि स लिखा गया था और भारत म वेदा एव रामायण महाभारत की रचना भी कण्ठस्थ करन म सरलता के कारण छदो बद्ध हुई। सङ्गीत नृत्य और छदोबद्ध पदो की मिलाकर काव्य का जन्म हुआ। ऋग्वेद और सामवेद चदोबद्ध होने स सङ्गीत प्रधान है। बाद म भी यह प्रवृत्ति बनी ही रही है।^६

१ स्हादनाथस्य च्छ (च्छदेश्छ) द इति स्मरत सौकुमार्य-गुणयोग।

—अभिभा० ४ पृ० २६१

२ पाषा० ८१२

३ छदोयुक्त समाप्तन निबद्ध वृत्तमिष्यते।

नाना-वक्ष विनिष्पन्ता शब्दस्यैषा तन् स्मृता ॥

—नाशा० १४ ३६

४ एवमेतानि वृत्तानि समाप्ति विषयानि च।

नाटकाद्येषु काव्येषु प्रयोक्तव्यानि सूरिभि ॥

—वही १५ १४६

५ क्षमेद् सुवृत्त० ३

६ काव्या० विम्ब० पृ० १४५ ४७

इस कथन में कोई अतिरञ्जन नहीं है। वेदों के लिये श्रुति शब्द का प्रयोग, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचिन्त, कम्प आदि स्वरो, तार, मद्र मध्यम इन आवाजों का वैशिष्ट्य सङ्गीत की भाँति वेदों में भी महत्त्व रखता है। भरत ने श्रुङ्गार आदि रसों के लिये उदात्तादि निश्चित स्वरो का विधान किया है।^१ रामवेद में नाट्य के लिये सङ्गीत का ग्रहण भी इसकी पुष्टि करता है।^२

रामायण में उसका श्रुङ्गारादि रसों से युक्त होकर तन्त्री, लय आदि सङ्गीताद्युक्तों में समन्वित बताया जाना उसके सङ्गीतात्मक होने की पुष्टि करता है।^३ किशोरीदत्त बाजपेयी ने रामायण की आरम्भिक रचना नाट्यात्मक मानी^४ पर इसका प्रमाण नहीं दिया है।

किन्तु चित्र और वास्तुकला में भी नाद और लय की सत्ता मानना अतिवाद से अधिक कुछ नहीं। क्योंकि नाद अव्यक्त ध्वनि से उत्पन्न होता है। यह ध्वनि श्रवणेंद्रिय-ग्राह्य है, चक्षुरिन्द्रिय या बुद्धि से नहीं। मूर्तिकला चित्रकला और वास्तुकला तीनों में व्यञ्जनाग्रहण करने में बिम्ब-ग्राहिता मानी जा सकती है पर नादात्मक ध्वनि नहीं। प्रासाद आदि के निर्माण और मूर्तियाँ उठाने में हथौड़े व छेनी की ध्वनि में नाद एक नय का भान भान भी लिया जाय पर चित्रकला में इनकी स्थिति माननी कठिन है।

छन्दों की बिम्ब-ग्राहिता

अन्त, छन्दों का नाट्य और काव्य में महत्त्व स्वीकार करने का प्रयोजन काव्य-बिम्ब के निर्माण में उनका उपयोग है। रस और भाव के अभिव्यञ्जक

१ तत्र हास्यश्रुङ्गारयो स्वरितोदात्तैर्वीर-रोद्राद्भूतेषु उदात्तकम्पितं कर्षण-वा मलय-भयानकेष्वनुदात्त-स्वरित-कम्पितैर्वर्णै पाठ्यमुपपादयेत् ।

—नाशा०, पृ० २८१

२ जथाह पाठ्यमूवेदान् सामभ्यो गीतमेव च ।

—वही, १, १७

३ पाठये नेये च मयुर प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ।

जार्जनि सप्तभिर्वद्ध तन्त्रीलय समन्वितम् ॥

४ श्रुङ्गार-कर्षण-हास्य-रोद्र-भयानकै ।

वीरादिभिश्च मयुक्त काव्यमेतदगायताम् ॥ —वारा० १, ४, ८-१०

४ किशोरीदत्त बाजपेयी—रामचरित के तीन गायक और उनकी काव्य-कृतियाँ। जोध-भारती (जनवरी १९७४) पृ० २

५ काव्या-बिम्ब, पृ० १४७

मानने म उनकी जिम्ब ग्राहिता स्वत सिद्ध है। कुछ आचार्यों न गण विषय का व्यञ्जक कुछ नियत छंदा को ही स्वीकार किया है और उही का प्रयोग उन स्थला मे करन का निर्देश दिया है। हेमचन्द्र इसकी उपयोगिता अ भ्यासिक कवि क लिये हा मानने हैं। सिद्धकवि अथवा किसी भी छंद म किसी भी रस या भाव की सफर अभिव्यक्ति कर सकत ह। वस्तुत यह ममण या गाड बंध पर निर्भर करता ह। ममण बंध माधुय की और गाड जोर की अभिव्यक्ति करता है। अत अ न दवघन न अल्प मयामा और तीधन्ममामा मयटनाया क आधार पर गुणा का नियम जमाय घोपित किया है।^१ वास्तव म यह कवि पर निर्भर है कि यह सफरता म किन छंद म अच्छी रचना कर सकता है। काव्यमन न वमनातनका छंद का नायका वणन क लिये अच्छा बताया।^२ चौरपञ्चांगका म नायिका र हावभाव का वगन उमम किया ना गया है पर वणीमहार म भीम का प्रतिना^३ एव नैपथ्य म शेष प्रधान पञ्चनली-वणन उम म वणी सफरता म जायोजत किये हैं। छंदा म काव्य म विम्ब निमाण का एक वरा पमाण ऋक्सानिशतुर म गायत्री आदि छंदा के वर्णों का निरूपण

१ छंदा विज्ञय निदग्धा गुणमन्तिरिति कचित । तथाहि स्रग्धरा दिप्वोज ।
 चन्द्रस्रापद्रवस्रादिषु प्रनाद मदानानादिषु माधुयम शालादिषु
 समता । विपमवृत्तप्वीणयम । साऽयमनवर्गास्तप्रयोगाणा विभागक्रम ।
 तथाहि-स्रग्धरादिप्वाजोऽपि ।

—वास्तुवि० पृ० २५७ ६६

२ अभ्युपगत वा वाक्योऽत्र गत्वे रमान्तीना न नियता काचिन मघटना तथा
 माथपव प्रनिनद्यत ह्यनिमत्त राघटना तन्दा एव गुणाना व्यङ्ग्य
 विशेषानुगता आधया । तच्चौजा यद्यममासायामपि मट घटनाया स्यात्
 तत्कोटोपा भवत ।

—ध्वया० पृ० ३१५

३ तच्चोक्त कात्यायनेन

वारस्य भुजदण्डाना वणने स्रग्धरा भवेत् ।

नायि ता-वणन काय वसानतिलवादिकम् ॥

—अभिमा० (मधुसूदनकृतापुवाद) भा० २ पृ० ११६६

४ चञ्चदभुजभ्रामत चण्डगदाभिघात

सञ्चूणिताह्युगलस्य सुयोधनस्य ।

सायानावनद्धघनशाणित शोणपाणि

रुत्तमयिष्यति कर्चास्तव दवि भीम ॥

—वेस० १ २१

हे ।^१ सङ्गीत-ग्रन्थो मे भी रागो के ध्यान के लिये उनके मूर्त रूप का प्रति-पादन किया गया है ।^२ रसो के वर्णों का परिगणन जैसे ध्यान की सुविधा के लिये हुआ है,^३ उसी प्रकार छन्दो के वर्ण का निर्वेश करने के पीछे देवता आदि के ध्यान का सौकर्य उद्देश्य रहा होगा ।

काव्य और सङ्गीत—इत छन्दा के द्वारा स्वरो के आरोह-अवरोह, लय आदि के रूप मे सङ्गीत की मूर्ति होती है । भरत ने ऋचा के प्रसङ्ग मे छन्दो का सम्बन्ध सङ्गीत से जोडा है ।^४ सङ्गीत वा वंसे काव्य के माय सम्बन्ध होने पर भी स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी है । वह स्वतन्त्र कला है । कान्ति-चन्द्र पाण्डेय न दोनो की समानता और परस्पर भिन्नता पर विचार करते हुए लिखा है कि यद्यपि दोनो समान रू मे ध्वनियो पर प्राथित है और चाक्षुष मनिर्कर्ष के बिना ही बणिन एव अभिव्यञ्जनीय भाव के साक्षात्करण मे समथ है तथापि दानो उम दृष्टि से पृथक् हैं कि काव्य मे कवि का बल अधिक कल्पना-शक्ति एव चिन्तन पर रहता है जब कि संगीत का उद्देश्य लय और तान का निर्वाह-साध है ।^५

एसा पाठण्ड न अनुसार भी काव्य अन्य कलाओ की अपेक्षा सङ्गीत के निकट होने पर भी तत्त्वन उगो पृथक् है । अन्य कलाओ मे उनकी इतनी ही समानता है कि वह भी मानव को चिन्ता और अवमादो से मुक्त कर देती है । अथवा उसका माध्यम शब्द हान मे वह उनमे सर्वथा पृथक् है । संगीत मे भी ध्वनिया या वर्णों का प्रयोग होने के कारण समानता होने मे भी अथ का कोई महत्व नहीं होता जब कि काव्य मे अथ पर भी ध्यान दिया जाता है । कलाकार का काय उन ध्वनियो और शब्दो को विशेष रूप देकर उनमे

१ श्वेत सारङ्गमत विजङ्ग कृष्णमेव च ।

नील च लोहित चैव सुवर्णमिव सप्तमम् ॥

अष्टम श्याम-गौर च वज्रु वे नकुल तथा । —ऋ०क०प्रा० १७, १४

श्वेत सङ्खदर्शं गायत्रम् । सारङ्ग द्विवर्णं कृष्णशुक्लम् श्रीर्णिहम् ।

—उत्तरभाग० ४१७

२ द्र०अ० ५, टि० ६६-१००

३ द्र०अ० ६, टि० ११७

४ नाशा० अ० ३२

५ West Aesth p 552

अनुभूति एव भाव भरना मात्र होता है। जनता क लिय उमका प्रभाव हा महन्व ग्वता है।^१

इस प्रकार सङ्गीत म सर्वथा पृथक् हान पर भी जब इसका काव्य क साम सम्बन्ध जुड जाता है ता सुवण म सुगन्ध हा हानी है। गानगाविन्द आदि संस्कृत क काव्य इसक प्रमाण हैं। काव्य म समाहित हान पर सङ्गीत भा काव्य विम्ब क निर्माण म उपयोगी हा जाता है।

काव्य विम्ब के निर्माण के त्रिय स्वरदि क अतिरिक्त विषय का भी महत्त्व हाता है। उमम मानस विम्ब के निर्माण म सहायता मिलती है। अछोरी साहब क अनुसार विम्ब म भी नाद की मृष्टि हानी है।^२ किन्तु यह अन्यान्याश्रयिता है। नाद के द्वारा तो विम्ब की मृष्टि होती ही है जा कि काव्य क लिय उपयोगी है। पर जब हम विम्ब द्वारा नाद को मृष्टि स्वीकार करते हैं तो यह श्रव्य विम्ब क द्वारा ही संभव हागी। उमम मङ्गीत का ही उपकार हागा। सङ्गीत यदि काव्य का अङ्ग हा तब ता नाद की मृष्टि काव्य क अनुगुण हागी और यदि सङ्गीत ही प्रधान होगा ता काव्य-विम्ब म उत्तम नाद काव्य का उपरानी न हागा।

जयदेव आदि गीतकाव्यकारा का प्रयत्न केवल सङ्गीत की दिशा म न था अपितु उसह द्वारा काव्य की प्रभावुकता के मवर्द्धन के निमित्त ही था। इसी कारण अपनी कृति का उन्होंने महाकाव्य की भांति सर्गों म विभक्त करक महाकाव्य का रूप दिया है।

गाविन्द एम० तेम्ब के मत का उल्लेख करत हुए अछोरी न निखा है कि मगान का स्वर भाव-विशेष का ध्वनि-विम्ब होना है। इसी कारण बादी-मवादी आदि स्वर म राग विशेष का रसात्मक प्रभाव निर्मित होना है।^३

इस प्रसङ्ग म अछोरी न भरत के मत को इस रूप म भी रखा है कि विभावानुभाव आदि क द्वारा अमृत भावा का रस रूप म मूर्तीकरण रगमन्त्र पर हाता है कवि-हृदय या प्रेक्षक के हृदय म नहीं।^४ वास्तव मे यह निष्कप भरत का नहीं, अछोरी साहब का अपना है। अथवा भरत ता स्पष्ट शब्दा म

१ Ezra Pound Selected Prose p

२ काव्यात्मक विम्ब पृ० १७०

३ वही पृ० १७४

४ वही, पृ० २०६

प्रेक्षक को रस का अनुभावक स्वीकार करता है।^१ रङ्गमञ्च रस की निर्णति का मादन-मात्र है। क्योंकि वहाँ उपयुक्त वानावरण की सृष्टि होती है। पर भावात्मक बन्तु होने से रस की प्रतिपत्ति तो किसी मनुष्य को ही होगी। कवि के हृदय में तो मूल में वह भाव स्मरण में रहता ही है।^२ यदि सामाजिक व हृदय में भी रस की निष्पत्ति न होगी तो क्या नट के हृदय में हागी? अथवा साधारणीकरण की उपयोगिता ही क्या रही?

अन्तु काव्य में छन्द का उपयोग उसे श्रेय्य बनाने के साथ-साथ स्वर के मादुय या ओज के द्वारा भाव-प्रकाशन के लिये होता है। इसके द्वारा कथन था आज से भाव आदि का बिम्ब बनता है। छन्द का प्रयोग करने वाला प्रत्येक चरण को पहचान विश्राम करता है। कभी-कभी विश्राम करने पर या तो छन्द टूट जाता है या अर्थ-ओज में बाध होता है। इससे पद्य में अश्रव्यता आ जाती है। यही अश्रव्यता दोष का कारण है।

इमीलिय मम्मट ने हृतवृत्त दोष के तीन कारण माने हैं^३—

१. वर्णयोजन शास्त्र के नियम के अनुसार होने पर भी उचित स्थान पर गण या मात्रा न होना या नियमानुसार यति न होना।
२. अन्त का लघु ऐसा हो कि जो गुरु न हो सकता हो।
३. रस के अनुकूल न होना।

ये तीनों ही कारण ऐसे हैं कि अश्रव्य होने के कारण विवक्षित पदार्थ व मूर्तीकरण में बाधा डालते हैं।

ध्रुवा के प्रसङ्ग में भरत का निर्देश है कि गाये जाते हुए छन्द के अर्थ के अनुसार ताल का पतन होता है। उन पात के अनुरूप भी छन्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे रथ की गति के अनुरूप द्रुत स्वर पर पात करना ही तो

१. तु० यथा हि नानाव्यञ्जन सङ्कलमन्न भुञ्जाना रसानाम्वाद्यन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादीशपाश्र्विगच्छन्ति तथा नाना-भावाभिनय-व्यञ्जितान् वागद्-गतस्वोपेतान्। स्वायिभावान्नास्वाद्यन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः, हर्षादीश्वान्निगच्छन्ति। —नाशा०, पृ० ६३

२. तु० कवेरन्तगत भाव भावयन भाव उच्यते।

—वही, ७, २

३. हत् लक्षणानुसारणेऽप्यथव्यम्, अप्राप्तगुरुभावान्तलघु गमाननुगुणं च वृत्तं यत्र तद्धतवृत्तम्। —का० प्र० का०, पृ० २६१

उसके अनुसार वर्ण आदि का प्रयोग होता है। करुण रस के अनुरूप वर्ण म पात होना ही तो उसके अनुकूल गुरु या प्लुत स्वर का प्रयोग हाता है।^१

इसका सार यह निकलना कि रश्म की गति का विम्बन करन के लिए द्रुत स्वर म छन्द का पाठ होता है। करुण रस के विम्बन के लिये दीर्घ या प्लुत स्वर का प्रयोग करना चाहिये। इसका जाशय यह निकला कि रस की द्रुतगति का सूचन करन के लिये ऐम छन्द का प्रयोग हो जिमम पाठ द्रुत गति में होता है। उदाहरण के लिये कानिदाम न रस की गति के प्रमङ्ग म कमल वमन्त-तिलका शिखरिणी, मानती और जादूनविशीरहित छन्द का प्रयोग किया है। इनम भी वमन्तिलका म घाग की गति दिखाए ह। छोडे दौलत हुए कभी तो समगति म चलत हैं तो कभी चावुक मारन पर कुलाच मारत हैं। कुर्नाच भग्न म उनक कदम पश्चाद भाग का समट कर अगला भाग जाग लम्बा करक लम्ब कदम रखत हैं। इसकी योजना वमन्तिलका छन्द म होती है—

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया

निष्कम्प-चामर शिखा निभृतोर्ध्वकर्णा ।

आत्मोद्धतरपि रजोभिरलङ्घनीया

धावन्त्यमीमृगजवक्षमयेव रथ्या ॥^२

इस पद्य म स्वभावोक्ति द्वारा ता घाग का स्वरूप चित्रित किया गया है। लगाम डीनी छानने की क्रिया की ध्वनि 'मुक्तेषु' पद म हुई है। 'रश्मिषु घाग के चाल बदलने म पूर्व के शक्ति अवकाश को विम्बित करता है। 'निरायतपूर्वकाया' यह पद कुर्नाच भरन के लिये अग्रभाग और पैरा को लम्बे करने का विम्ब प्रस्तुत करता है। हा-या इन दोनो दीर्घ स्वरा से वह क्रिया की पूर्ति विम्बित प्रतीत हाती है। शेषभाग चान वाजन का विम्बन करता है। गति बँध जान पर चाल सम हो जाती है और यान सम गति स सरपट चला करता है। इसका विम्बन शिखरिणी स किया गया है—

यदालोके सूक्ष्म व्रजति सहसा तद्विपुलता

यदद्वयं विच्छिन्न भवति कृतसन्धानमिव तत ।

१ ध्रुवास्तु तु रसाद्यनुगुणा यो गीयमानस्य वृत्तस्याथस्तनानुगुणा य पाता-
दीनामन्यतम । तदौचित्येनान्वेषणि प्रवतन्ते । यत्रा रथगत्यौचित्याद् द्रुतरूपे
पात तदनुमारिणा वणवर्णाट्गदय । करुणरसाचित्त वर्णाट्गे तदनुगुणा
गुरुप्लुतादिरूपेण पातादय । —अ०भि०भा० भाग० ४, पृ० २६२

प्रकृत्या यद् वक्र तदपि समरेख नयनयो-

र्न मे दूरे किञ्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रयजवात् ॥^१

इसमे बँधी चाल मे दौड़ते रय की गति का बिम्बन है। कवि नामक के मुख मे गति का वर्णन ही करा रहा है। फनस्वरूप यहाँ छन्द, भाव और पद-योजना तीनों का सामञ्जस्य है। 'ता' म लम्बी दिखार्दी देती वस्तु के आयाम का अनुकरण है।

इसी प्रकार मेघो के बीच से गुजरते रय के पहिया की फिमलन का बिम्बन मालिनी छन्द मे द्वारा किया गया है।

अयमरविबरेभ्यश्चातकंनिष्पतन्त्रि-

हंरिभिरन्विरभासा तेजसा चानुलिप्तं ।

गतमुपरि घनाना वारिगर्भोदराणा

पिशुनयति रयस्ते सोकरविलन्ननेमि ॥^२

क्षेत्रेन्द्र ने मालिनी छन्द मे पादान्त मे विमर्गों का होना आवश्यक बताया है और उनके बिना इसकी तुलना पूछ-कटी चमरो मे की है।^३ इसका कारण यह है कि विमर्गों के द्वारा भवानुवृत्ति के लिय जो बसाधान बहा होना चाहिये, वह नही होने पाता। यहाँ पहिया के जगो (Spokes) के बीच मे चातकी के निकलने का व्यञ्जन है। पहिया के बीच मे बहुत खाली स्थान नही होता। पुन दौड़ते पहिये के मध्य मे न निकलने न फँसने। भय भी रहता है। इसलिये निगी तग माग न निकलने पर प्राणी का जो मुख की सास मिलती है उसका अनुकरण 'मिम्' इस अक्षर मे जाना है। 'निष्पतद्' इतना पहिये के मध्य से शीघ्र निकलने के यत्न का बिम्बन करता है। 'अनु-लिप्तं' ये विमर्ग लेपन त्रिया की पूर्णता का ध्वनक करत है। इसी प्रकार 'विलन्ननेमि' म विमर्ग पहिये के बाहरी भाग के भीगने और नीक पर भीगे पहिये की फिमलन का अनुकरण करते है।

शार्ङ्गविनीडित से कवि आकाश-भाग से यात्रा करन पर भूतल के दृश्य को प्रस्तुत करता है।

१ शाकु०, १ ६

२ बही, -, ७

३ विमर्गहीनपयन्ता मालिनी न विराजते।

चमरी चिठन्न-मुच्छेद बत्तीवालून-पल्लवा ॥

—सुवृत्त० २, २३-२४

शलानामवरोहतीव शिखराद्भ्रमज्जता मेदिनी
 पर्णाम्यतर-लीनता विजहति स्कंधोदयात् पादपा ।
 सतानात् तनुभावनष्टसलिला व्यक्ति भजत्यापगा
 केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवन मत्पाश्वमानीयते ॥^१

रेन-यान स यात्रा करते हुए हम पाय बाहर की ओर देखा करते हैं कि नीचे की वस्तु ऊपर की ओर उठनी और ऊपर की नीचे जाती दिखाई देती है। छात्री नम्बी लगती है। इस छंद क दीघ स्वर उसी लम्बन क्रिया का अनुकरण करते हैं। स्वरों क आराह अवराह म विम्व का कल्पना हमारी ही नहीं है प्रमिद्ध पाश्चाय समीक्षक आइ० ए० रिचडस द्वारा किये गये विश्लेषण से मकी वचना करक देखें तो इसकी पुष्टि हो जाती है—

Arching high over
 A Cool green house

(here) the sudden transition to the long i sound gives an impression of height in the arch set off by the broader Vowels in e ther side The wh pering air is perfectly expressed by the repeated S s in Verse— h²

भरत न रसा क प्रमड ग म छंदो का मड कत तो नहीं किया है परंतु छ अलङ्कार गिनाकर बालन क प्रकार का निदश किया है। ये छ अलङ्कार उच्च दीप्त मद्र नीच द्रुत और विम्वित हैं। इनम उच्च तार स्वर हाता है निसका प्रयाग दूर स्थित व्यक्ति स वार्तानाप आश्चय उत्तर प्रयुत्तर दूर म किया को बुलाने या किसी को नयन क निमित्त बाज बजने म हाता है। उसका अनुकरण करने क लिए प्रथम्व छंद का प्रयाग किया जाना चाहिए। वाप्त तारतर या उगमे भी ऊँचा या नम्बा स्वर हाता है जो नदार्ई जगड वहस काध वीरता गीग मारना आदि जाशीने भावा की अभिव्यक्ति मे प्रयुक्त हाता ह। इसक लिए बहुत ऊची आवाज म बोलन की आवश्यकता रना है।

मद्र स्वर कुछ मध्यम हाता है जो ऊवन खटका चित्ता उमुक्ता दद रोग वंहाणा नशा आदि क व्यञ्जन क लिए प्रयुक्त होता है। नीच स्वर डूबी हुई आवाज होती है जा मद्र मे भी नाच हाता है यह स्वभाविक वातचान रागो का वातें माग को थकान घवराय नीच गिरे या बेहोश क बोल न प्रयुक्त

१ मुवत्त० ७११

होता है। ह्रस्वस्वर केवल कण्ठ में रहता है, यह धीघ्रता, लज्जा, कामाक्ष्य, डर, सर्दी लगना, बुखार में पीड़ित, घबराहट में भरे या अनुचित प्रतीत होने वाम नी करने या किसी प्रकार की व्यथा के अनुभव में प्रयुक्त होता है। विलम्बित स्वर कण्ठ तक सीमित, मध्यम स्वर होता है, इसका उपयोग शृङ्गार, मोचविचार, चिड, खीझ, बुडबुडाने, हंरानी लज्जा के भान या किसी की निंदा आदि में होता है। इसका अनुसार जिस छन्द के उच्चारण में इस प्रकार का स्वर ही इन भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्हीं छन्दों का प्रयोग उपयुक्त सिद्ध होगा। यह महाकवियों के प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है।^१

भरत ने यह निर्देश मुख्यतः नाट्य को दृष्टि में रखकर दिये हैं। परन्तु श्रव्य में भी यदि इन भावों के अनुरूप छन्दों का प्रयोग हो तो निस्सन्देह श्रोता को अभिव्यक्त भाव की प्रतीति होगी। स्वर में यदि कम्पन होगा तो भावबोध की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। नीर, रोद और अद्भुत में उदात्त और कम्प वाले वर्णों और करुण, वात्सर्य एवं भयानक में अनुदात्त, स्वरित और कम्प स्वरण वाले वर्णों में पाठ्य का विज्ञान इसी आधार पर है।^२ शृङ्गार एवं हास्य में कम्प नहीं बँटाया है परन्तु मान-भनौदल की अवस्था में जबकि विह्वलता में प्रणय-व्यञ्जना की जा रही हो, कम्प स्वाभाविक है।

भाववेश, उन्माह रूप आवेग, अक्षेप में स्रग्ग, पृथ्वी, शादल-विक्री टिन, वसन्ततिडका इनके लिए अधिक उपयुक्त है। नाटको में स्रग्ग का प्रयोग प्रायः किया गया है परन्तु काव्यों में यह कार्य छोटे छन्दा में लिया गया है। जैसे—

क्षुद्रा सत्रासमेते विजहत हरय क्षुण्णशत्रेभ-कुम्भा
पुष्पद-देहेष लज्जा दधति परमसो सायरा निष्पतन्त ।
सौमित्रे तिष्ठ पात्र त्वमसि नहि हषा नवः मेघनाद
किञ्चिद्-भ्रूभङ्ग ग-लोला-निधमित-जलाधि राममन्वेद्ययामि ॥^३

यह युद्धभूमि में मेघनाद की उर्ध्व-पूण उक्ति है। टमम उसका उन्माह भन्ती प्रकार अभिव्यक्त हुआ है।

१ ना० शा० अ० १७, पृ०, २८१-८२

२ ब्र० टि० १३

३ का० प० का० ४ (३०) ४१

इसी प्रकार—

महाप्रलयमारुतक्षुभित-पुष्करावर्तक—
प्रघण्डघन-गर्जित प्रतिरवानुकारी मृदु ।
रव श्रवणभंरव स्वगितरोदसीकन्दर
कृतोऽद्य समरोदधेरयभभूतपूर्व पुर ॥^१

पृथ्वी छन्द के इस प्रयाग में विस्मय और आज की अच्छी अभिव्यक्ति है ।
इसके विपरीत —

कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरुपातक
मनुजपशुभिर्निर्भयदि भवम्बिरदायुधं ।
नरक-रिपुणा सार्धं तेषा सभीमकिरीटिना
मयमहमसृङ्-मेदोमसि करोमि दिशा बलिम् ॥^२

काव्य-प्रकाशकार द्वारा रौद्र रस का उदाहरण का रूप में उद्धृत हिंग्णी
छन्द के इस पद्य में अथ रहन पर भी प्रवृत्त रस का अननुगुण वृत्त का प्रयाग
हान में अभीष्ट सिद्धि नहीं हो पाई है । जगन्नाथ न भा इसकी आलाचना की
है परन्तु छन्द की अनुपयुक्तता को इसका हेतु नहीं कहा है ।^३ इसी प्रकार—

दग्धु विश्व दहन किरणे नोदिता द्वादशार्वा
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्ना ।
छन्न मेघर्नं गगनतल पुष्करावर्तकाद्यं
पाप पापा कथयत कथ शौर्यराशे पितुर्मो ॥^४

अश्वत्थामा की इस त्राघपूण उक्ति में मन्दाज्ञाता छन्द के शैथिल्य के
कारण अपक्षिप्त आज नहीं आ पाया है । इस कारण बहुधा नियम बनाने वाले
आचार्यों का मत ठीक नहीं उतरता । जैसे नागण न किसी आचार्य के मत के
अनुसार लिखा है—

कवणे पुष्पिताग्रादीनामेवानुगुणत्वम्, पृथ्वी-स्वधरादीना ऋङ्गारादौ ।

१ वेम० ३, ४

२ वही ३ २४

३ काव्य-प्रकाशगत-रौद्ररसोदाहरणे तु "कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरु
पातकम् इति पद्ये रौद्र-रसव्यञ्जनक्षमा नास्ति वृत्ति, अतस्तत्त्ववेर-
शक्तिरव । रग०, पृ० ३७

४ वेम० ३ ३५

शिखरिणी-मन्दात्रान्तादीना वीरानुगुण्यम् । दोधनस्य प्रतिपद-विच्छेदित्वेन
हास्यानुगुणतेत्य ।^१

परन्तु प्रयोग को देखते हुए यह यथार्थ नहीं बैठता । पुष्पिताम्रा छन्द का प्रयोग शृङ्गार में ला देखा गया है^२ पर वरुण में नहीं । उसके लिए कालिदास आदि ने वेतालीय या वियागिती का ही प्रयोग किया है^३ जो कि अधिक सफल रहा है । श्रीहृष ने वंशस्थ छन्द में वरुण की अच्छी अभिव्यक्ति दी है ।^४ वीर रस के या रोद्र के लिए मन्दात्रान्ता की अनुपयुक्तता ऊपर उदाहृत की जा चुकी है । शिखरिणी में तरलता के आधिक्य के कारण शृङ्गार, भक्ति करण आदि में वह अधिक सफल रही है । जगन्नाथ की गङ्गालहरी और गङ्कराचाय की सौन्दयलहरी में भक्ति की तरलता के कारण यह छन्द भाव बिम्ब के लिये सफल सिद्ध हुआ है । इसी प्रकार मुद्राराक्षस में जीर्णानि ने वृक्षो वी दशा पर आसू बहाते और अतीत ने गौरवपूण दिना का स्मरण करते राक्षस की उक्ति में—

विषमस्त सौध कुलमिव महारम्भरचन
सर शुष्क साधो ह्यं दयमिव नाशेन सुहृदाम् ।
फल हीना वृक्षा विगुण-नृप-योगादिव नया
स्तूर्णश्रच्छना भूमिमतिरिव कुतोतेरविदुष ॥^५

यद्यपि पृथ्वी को शृङ्गार के अनुगुण बतलाया है तथापि पूर्वोदाहृत पद्य में वह उग्रता और ओज के ही उपयुक्त सिद्ध हुआ है । वही भक्ति के लिये भी उस का प्रयोग हुआ है परन्तु वहाँ भी माधुर्य नहीं आ पाया है । जैसे—

वरसिमत समुल्लसद्बदन काङ्तिपूराम्त
भवस्वल्पनभजिताननिशमूजयती वरान् ।
स्त्रिदेकमनचन्द्रिका-चयचमत्कृति तन्वती
तनोतु मन श तनो सपदि शन्तनोरड गना ॥

१ काव्य० २६५-६६

२ शिव० ७

३ कुस० ४, रव० ८

४ नैच० १ १३५-१४२

५ मुरा० ६, ११

६ गङ्गा, ४६

जगन्नाथ के इस पद्य मे पूर्वार्ध मे तो भाव के ओजस्वी होने के कारण पृथ्वी छन्द नादविम्ब उपस्थित करने मे सफल रहा है पर उत्तरार्ध मे नहीं । इसके विपरीत वसन्ततिलका मे भक्ति-भावना अच्छी प्रतिविम्बित हो सकती है । जैसे—

विद्या न काचिदपि पूर्णतया गृहीता
नो सेविता ननु नतेन कदापि वृद्धा ।
अल्पज्ञ एव बहु कामतया प्रवर्ते
हे श्रीनिवास परिपालय मा विमूढम् ॥^१

इस पद्य मे भक्त का दैन्य और समर्पण-भावना अच्छी अभिव्यक्त हुई है । इसके विपरीत—

मध्नामि कौरवशत समरे न कोपाद्
दुःशानस्य रुधिर न पित्राम्पूरस्त ।
सञ्चूर्णयामि गदया न सुपोषणोऽह
सधिं करोतु भवता नृपति पणेन^२ ॥

वीर और रौद्र के उदाहरण इस पद्य मे वाक्कु के कारण ही अनुकूल भावा-भिव्यक्ति हो पाई है जैसा विद्यान भरत ने किया है ।^३ अन्यथा वह ओज नहीं आने पाया है जो—

पीनाभ्या मद्भुजाभ्या भ्रमिन गुदगदाघात सञ्चूर्णितोरो —
क्रूरस्याऽऽघाय पाद तव शिरसि नृणा पश्यता श्व प्रभाते ।
स्वन्मुख-भ्रातृ-ध्वजोद्दलनगलदसूक्चन्दनेनानलाप्र
हत्यागेनाद्रौ चारुत स्वयमनुभविता भूषण भीममस्मि^४ ॥

इस पद्य मे मिनता है ।

वाग्मत्व मे भावावेश मे बहुधा वक्ता की वाणी सटखटान पगती है । रौद्र आदि मे उग्रता के कारण छन्द की उग्र आदि का उतना ध्यान नहीं रहता है । जैसे कि नाय मे गग हुआ मनुष्य जब लटने जाता है तो कोई थूङ्गार

१ मुदरेजा-श्रीनिवासशतकम् ४४

२ वेम० १, १५

३ द्विविधा वाक् । साकङ्क्षा निराकाङ्क्षाचेति । वाक्यम्य साकाङ्क्षनिरा-
काक्षत्वात् ।

—नाश० पृ० २८१

४ वेम० ५, ३५

करके नहीं जाता। रणसज्जा के लिये उपयुक्त मामग्री का चयन वीर में ही हाता है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्ति में समय होता है। वह शब्दावली और अनुकूल छन्द में प्रतियिम्बित हो जाता है। जैसे—

देश सोऽयमराति शोणित-जलैर्यास्मिन् ह्रवा पूरिता
क्षत्रादेव तथाविध परिभवस्तातस्य केशग्रह ।
तान्त्रेवाहित-शस्त्रघरमरगुह्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण ह्यन तदेव पुरुते द्रौणावनि क्रोधन ॥^१

इस उक्ति में पिना की मृत्यु का कारण हृदय में रोध होने पर भी शत्रुओं में प्रतिशाध लेने के लिए उत्साह है। पुन उक्ति अपने एक साथी के प्रति है शत्रु के प्रति नहीं। इसलिए यह छन्द उन्नता के वीरवप, उत्साह और मयत भावावेश को मूल कर रहा है। परन्तु जब भाव की उन्नता हो तो यह समय जाना रहता है। छन्द की लय या तानबद्धता का बक्तता को ध्यान नहीं रहता। किंवि इस अवसर के लिए ऐसा ही छन्द चुनता है। उदाहरण के लिए माननी को काली की भेट चढ़ाने के लिए उद्यत अघोरघण्ट के प्रति रोध के कारण उग्र गाधव के भावोदगार के प्रकाशन के लिए कवि ने—

प्रणयि-सस्त्रि-सलोल परिहास-रसाधिगतं—
ललित शिरोपपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।
वपुयि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपत
पततु शिरस्यकाण्ड-यमदण्ड इवैव भुज ॥^२

इस पद्य में भाव की उन्नता के अनुत्प नकटक छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार धीकृष्ण के विरुद्ध शिशुपाल का रोध प्रदर्शित करने के लिए कवि ने उदगार चुना है।

काव्यायतन का मत उद्धृत करते हुए अभिनव गुप्त के शीघ्र के वर्णन में स्वप्न का, गन्धशिखरवर्णन में बसन्त-लिनकादृश छन्दा का विधान तथा देश के पूर्वी भाग में शार्दूलविक्रीडित एवं दक्षिण में मन्दाश्रान्ता के प्रचार की चर्चा की है।^३ हैमचन्द्र ने 'अयानुत्प छन्दस्त्व क उदाहरण में शृङ्गार में द्रुत-विलम्बित आदि वीर में वसन्ततिलना आदि, करुण में वेतालीय आदि, रोद्र में स्वप्नरा आदि का और शार्दूलविक्रीडित आदि का सभी रसों में विधान किया है।

१ वेस०, ३, ३३

२ मामा०, ४, ३१ (इह खनु चननी भनजना गुरुनददकम) वाग्बलभ,
पृ० २३०

३ अभि भा० (मधुमूदन अनुवाद) भाग २, पृ० ११८६

आदि शब्द म औचियानुष्प अय छंद का प्रयोग करन के लिए कविया को छूट दे दी है ।^१ सग के अंत म छन्द-परिवर्तन का निर्देश भी प्रवधानुगुणता देख कर ही किया गया है ।^२

हमचंद्र न पाठय क अनुगुण छन्द प्रयाग म भाव क मूतन की म्बोक्ति स्पष्ट शब्दा म का है—

साक्षात्कार-कल्पत्वाद्यवसायमाचरीवयव च पाठयस्य प्रधानोऽश । तन यथा लान् कश्चिदयोपदशगानादिक्रमण वस्तुदुर्वाधन करण द्वारेण वा छन्ता नुप्रवेजितया वा कस्यचि मनन्यावजनातिशय विधत्त नत्यनपि गायनपि ।^३

इस प्रसंग म क्षमेद्र न विषयानुष्प छंदा का प्रयाग करन क सम्बन्ध म कुछ निर्देश दिय है । उनक अनुसार आन्वीय उपदश कथा-म्भ आदि क लिए अनुष्प उपयुक्त रहता है । आत्मगत वसंत एव उसक अंग का वणन उज्ज्वल म चन्द्रादय मूर्धोत्त अथि उदगीत विभावाक वणन रचाटना म राजनेतिन चचात्रशस्य म वीर और रौद्र क मान कथ का निवर्धन वसंतनिर्वा से सग का अंत द्रत गति मताल वाली मालिनी म आरंभ विषय का समाहार निखरिणा म रना चाहिए । इमा प्रार उदारता एव औचिय-पूण विचारा क प्रतिगादन म हरिणा का गानिया नात्र और फटकार क भाव म पश्चा छंद का क्या ऋतु एव विरहिणी क दुःख क वणन म मदानाता का राजाजा क पराक्रम अति क गन म शाहू लविनास्ति का बाधा लूफान आदि क वणन म मरुतरा का ना लटक नकुटक आदि छन्ता ता मुक्तता म प्रयाग उचित रहता है ।^४

मम्मट य दोषक का एव विश्रुताथ न तामरम छन्द का हास्यरम क उपयुक्त का है ।

१ कानुव० प० ४६०

२ अवमानज्जवत्तै ।

—साद० ६ ३००

३ कानुवि० प० ४४८

४ मुवन० ३ ६००

हा नप ल दृश । सास्थरमव्यञ्जकमेतद वृत्तम । का० प्र० का०

न्द दाघवत्तै तावानुगण तद्विराप्ति हास्यव्यञ्जक वात ।

—काप्र० पृ० २६७ ६६

६ अत्रि गयि भानिनि मा कुरु मानम । इद वृत्त हास्य रमस्यैवानुभूयम ।

(इहा तामरम न ज ज ग इम यमण तादा छंद है)—साद० प० २३८

हिन्दी साहित्य के विद्वान् डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि वीर रस-पूर्ण वाणी में चार धरण वाला भुजङ्ग प्रयास चार सगण वाले ताटन से बड़ी अधिक प्रभावशाली रहता है। क्योंकि दर्प-गुण वाणी दीर्घ या गुरुवर्णों के सम में अधिक प्रभाव-पुण होगी। लघु वर्णों की आवृत्ति विनय के प्रकाशन में ही शोभनीय लगती है अतः वीररस में नाद की प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भुजङ्गप्रयास ही वणकम अधिक उगयुक्त रहेगा।^१

यह कथन किसी अंश तक ठीक है। लघु में गुरु की जोर जान में आरोह ओज भी प्रतिध्वनि करता है जबकि अनेक लघु लगातार जान से शिथिलता या फिमलन का अनुभव होता है। किन्तु कुछ लघुआ के पश्चात् पुन महसा गुरुलघु का क्रम छानाग लगाकर चढ़ने का अनुभव कराता है। जैसे—

कथमपि न निविद्धो दुस्तिना भोरुणा वा
द्रुपद-स्तनघ-पाणिस्तेन पित्राममाद्य ।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वाम
शिरसि चरण एष न्यस्त्यते वारयेनम् ॥^२

यहाँ तृतीय चरण में 'भुजवन' के तुरन्त पश्चात् 'दर्पाध्मायमान' इन गुञ्जा का विंगाम आवेग से झपटने का और "शिरसिचरण" के बाद "न्यस्त्यते" में ध्वनियों उछल कर पाद-प्रहार का मूर्तन करती है।

इस विषय में क्षेमेन्द्र की यह टिप्पणी कि अनुपयुक्त विषय में प्रयुक्त छन्द उपहास का कारण बनती है, पिछले कुछ उदाहरणों को देखते हुए सङ्गत ही लगती है।^३ परन्तु इस प्रकार के बंधन जम्हासी कविता के लिए ही है। अन्यथा गिद्ध कवि विगी भी छन्द में अपना प्रतिभानपुण्य दिखत सक्ता है। गाल्मीकि रामायण और महाभारत में अनुष्टुप् में ही युद्ध और ऋतु आदि वणन अति-प्रभावपूर्ण रहे हैं। कालिदास ने उज्जाति छन्द में युद्ध के औजस्वी वणन किये हैं। रथोद्धता छन्द में शिवपावनी और अग्निमिथ के मन्त्रों शृङ्गार का

१ साहित्य शास्त्र, पृ० १२४

२ वेम०, ३, ४०

३ प्रबन्ध सतरा नास्ति यथास्थान विप्रेषक (रनिवेशित)।

निर्दोषे गुण मयुक्तं सुवृत्त मौक्तिकैरिव ॥

वृत्तरत्नावली कामादस्थान विनिवेशिता।

कथयत्यज्ञतामव मेखलैव गले कृता ॥

—सुवृत्त०, ३, १, ६

प्रवाहमय चित्रण किया है। रघुवश म द्रुतविलम्बित छन्द म ऋतु-वर्णन की सपनता देखकर ही माघ न भी इन विषय के लिए वही छन्द अपनाया।

यति विचार—वाक्य म अथवाघ की सुगमता के लिए विरामा की भाँति छन्द म भी यथास्थान यति जयवा विराम का प्रयोग अनिवार्य है। अयना पद्य भी श्रव्यता का ता हनन होता ही है तात्पर्य-वाघ म भी वाधा पन्ती है। इसलिए छन्द शास्त्र के आचार्य छन्द की परिभाषा दन हुए यति क स्थान का निर्देश अवश्य करत हैं। उदाहरण क लिए—

तच्चि गुरु स्याद यत्र चतुय पञ्चम षष्ठ चात्यमुपात्यम।

इन्द्रिय-वाणं यत्र विराम सा कथनीया चम्पकमाला।^१

न न म य य युतेय मानिनी भोगि लोके।

न स म र ल ला ग षडवेदेह्य हरिणी स्मृता ॥^२

इन तीनों छन्दा म इन्द्रिय (५) और वाण (५) स चम्पक माला म ५ ५ पर मालिना म भोगि (८) और लोक (७) पर हरिणी म ६ ४ (बद) और ७ (हय) से यति का सङ्केत है। इसके विपरीत यदि अय स्थान पर यति होगी तो निश्चित ही छन्द का नय मांगी जायेगी। इसीलिए गत न भा पाठ्य गुणो म अय की अभिव्यक्ति क लिए यथावसर १ ० ३ ४ जादि अक्षरो पर विराम को अपरिहाय निखा है।^४ कहा-कहा हाथ की चेष्टा म विराम करत हुए वाचिक अभिनय करना चाहिए। हाथ और दृष्टि स मुद्रा और विराम क द्वारा अभिप्रत आशय की सूचना मिलता है। अभिनव गुप्त न पादान्त म विराम की आवश्यकता दिखाइ है।^५

१ श्रुत० १८

२ वाग्भट्ट प० २१६

३ वही पृ० २०६

४ जयसमाप्ती काव्यशास्त्रच्छन्दोवाग्भाद दृश्यन्त हि एक द्वित्रिचतुरक्षरा विरामा। एव विराम प्रयत्नाऽनुष्ठेय। कस्मात्? विराम इहार्थानुदशका भवति। अपि च—

विरामेषु प्रयत्नास्तु निय काय प्रयाक्तभिः।

कस्मादभिन्तयो ह यथे अथपिस्ती यत म्यत ॥

यत्र व्यग्रावृथी हस्तौ तत्र दृष्टिसमन्वित।

वाचिकाभिन्तग कार्यो विगमरश्दशर्व ॥

—नाशा० १७, १२०-१२१

५ चतुर्भांग इति पादान्ते छन्द कतव्य। न तु ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूपायु

वाग्यन्त्रभकार ने यति-विषयक कुछ और भी निर्देश दिये हैं। जैसे मात्राच्छन्द में विराम की नियतता किन्तु वणच्छन्द में वैकल्पिकता, सन्धिगत स्वर में आग जाने की अपेक्षा सज्ञा शब्दों में अधिक हानि, समास में यतिभङ्ग की क्षम्यता आदि।^१ इसमें यह विदित होना है कि इन नियमों का प्रयोजन इतना ही है कि छन्द के पथायथ निर्वाह में काव्य की श्रम्यता सुरक्षित रहे और भाव के मूर्तीकरण में गहायता मिले।

गुरु-लघु विचार—इसी विचार में सयोगादि ह्रस्व वण, सानुस्वार या सविसर्ग वर्णों को गुरु मानने का विधान किया गया है।^२ क्योंकि सामने मयुक्त व्यञ्जन जाने पर पूर्ववर्ती ह्रस्व पर वनापात होगा। जैसे रका, युद्ध या दुःख आदि। वहाँ इस प्रकार का वलाघात न हो, वहाँ गुरु नहीं माना जाता। जैसे प्रह्लादि में पूर्व।^३ पादान्त में आवश्यकतानुसार लघु का गुरु माना जाता है। इसके लिए भी नियम है कि द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अन्त में लघु अवश्य ही गुरु हो जाती है। प्रथम और तृतीय के अन्त में लघु का गुरु उपजाति सद्गुण छन्दा में ही माना जाता है, मन्त्री में नहीं। क्योंकि वहाँ वाञ्छित प्रभाव नहीं पड़ता।^४ जैसे पुष्पिताम्रा छन्द में प्रथम चरण के अन्त में लघु को गुरु ब्रतान के

एला इति । प्रयोगी प्रतिपादनमङ्कुरीकृत्य पठन् मध्ये विश्राम्यति ।
(अ) विश्रान्तौ चार वृत्त भट्ठोऽभितेयस्याऽध्वयत्वाद् भट्टवणङ्करादि-
भिरपगतमतत् - 'क्वचिदुपान्त्यो वा' इति ।

—अभिधा० (मम् अनु) भा०, २, पृ० ११८६

- १ मात्रावृत्ते विशेषाद् दिततिरभिहिता वणवत्ते विभाषा
दनेऽप्याश्च शोभा हरति च नियत भट्ट गमाप्ता पुन सा ।
चेत्यात्मज्जातमि श्मस्वर्गदहिततनुर्वेव दुष्टस्वमत्र
सज्ञा-णव्दान्तस्या प्रभवति महती दुष्टताऽल्पा यमामे ॥

—वाग्यन्त्रभ पृ० ३७

- २ मयुक्ताद्य दीघ सानुस्वार विसर्ग-मम्मिश्रम् ।
विनेयमभर गुरु पादान्तस्य विकल्पेन ॥ श्रुत २
३ प्रह्लादिमयुक्ते वर्णो व्यञ्जने चायोगत् गुरु ।
यथा—तव ह्रियाऽपह्रियो मम ह्योग्भूच्छशिग्रह्यि द्रुत न धृता तत ।
वहृल-भामरमेववतामस मन प्रिय क्व समेष्यति तत् पुन ॥

—पाकवृ०, १, १८

- ४ यत् पादान्त लघार्षि गुरु-भाव उक्तस्तस्सवत्र द्वितीय-चतुर्थपादविषयम्
(१) प्रथमतृतीय पाद विषय तु चतुर्तितकारदेरेव । —साद०, पृ० २३८

यत्न म छन्दान्तर्ग माना गया है ।^१ जहाँ पादांत मे लघु वा गुरु मानने पर भी वाञ्छित प्रभाव न हो वहाँ पहले तीव्र प्रयत्न म उच्चारण की अपेक्षा की गई है ।^२ द्वितीय चरण को तृतीय मे सन्धि आदि मे जोड़ना भी दाप है । पहल चरण क अन म आवे वर्ण को अगले चरण क साथ सन्धि म जाने म भी छंद म ग्राघात पडना है ।^३

पहन कहा जा चुका है कि छंद का प्रयोग पाठय म थ प्रता लाने क लिए है । यदि श्रवणता न जाई ता उमका उददेश्य ही पूर्ण न हागा । इसलिए धीमे त्र ने छंद प्रयाग को मफन व भाव-विम्बन म ममथ बनाने क लिए कुछ मार्ग-प्रदर्शन किया है जिस पर ध्यान देने स वह छन्द-प्रयाग उददेश्य मिद्धि म वाञ्छित प्रभाव दिखाना है ।^४ इसक अनुमार छाने छन्दा म समाम मे एव प्रलम्ब छन्दा म विना समाम की पद रचना स अच्छा चमत्कार हाता है ।^५ उग्राति वा आरम्भ तधु जन्तर म हो ता कण-मुद्दणव सुबोध हाता है परन्तु गुर अक्षर म गाठ सी पन जाती है । दोषक तीन तीन अक्षर म विभक्त हो तो चमत्कारी हाता है नहीं ता साल नहीं पडती । शालनी पृथक् पृथक् पद-याजना म हो चमत्कारक हाती है । रयाद्धता म पाद क अन्त म विसर्ग आना चाहिए । मानिनी क जन म विसर्ग न जाय तो पूछ चटो चौरी की भाति नहीं मुहाती । आरम्भ म दोष अक्षर म और पाद क अन्त मे विसर्ग जान स शार्दूलपित्रीष्टि चमत्कारी बनता है ।^६

किन्तु आधुनिक युग म अन्य सामाजिक रूढ़िया क साथ-साथ काव्यगत रूढ़िया भी टूट रही हैं । अंग्रेजी साहित्य म जिस प्रकार स्वच्छंद छंद

१ अन (विक्रमित सटकार आरहारि) प्रशुदितसौरभ आगतो वसन्त । इति पाठो युक्त । —वही,

२ तु 'जन वस्त्राणि चे ति वन्यस्य प्रथमवधुनि । 'वस्त्राण्यपि' इति पाठेतु दादयम् इति तु न दोष । वही

३ तु० अर्थे समाम-संघी न । यथा—सुरासुर शिरोरत्न-स्फुटिकरणमञ्जरी-पिञ्जरीकृत पादा त-द्वन्द्व वन्दामहे शिवम् ॥ —काव्य०, पृ० १२

४ द्र० अ० टि०, ७३

५ समामेलधुवृत्तानामसमासं महीपसाम् ।

शोभा भवति भव्यानामुपयाग-वशत वा ॥ सुवृत्त०, २, ३

उपजाति विकल्पाना सिद्धो यद्यपि सङ्कर ।

तथापि प्रथम कुर्यात् पूनपादाक्षर लघु ॥

—वही, २, ६

६ सुवृत्त० २, ७-१० १३ २३, ३५

(Free Verses) का प्रचलन हुआ, उसके अनुकरण पर हिन्दी साहित्य में भी नई कविता के नाम पर छन्द-विहीन कविता का प्रवर्तन हो गया। छन्दोविहीन में तात्पर्य है कि शास्त्रोक्त छन्दों के नियम में अनावद्ध कविता। इसका तात्पर्य यह है कि छन्द का वास्तविक उद्देश्य नग्न और सगीत किसी न किसी रूप में उसमें भी रहता है। उसका प्रयोग मन्त्रापाठक पर निर्भर करता है। हिन्दी की देखा-देखी आधुनिक युग में मन्त्रों में भी इस प्रवृत्ति का मङ्गल प्रमाण हुआ है। किसी नियत छन्द में आवद्ध न जाने पर भी ऐसी कविता में निश्चित लय है और गति है जिसके द्वारा वह अपेक्षित प्रभाव का उत्पन्न करती हुई भाव का मनन करती है। उसका दृष्टि में रखते हुए नरत का यह कथन भी सङ्गीत हो जाता है कि बिना छन्द का शब्द ही नहीं जाना।^१ इस कारण गद्य में भी एक सङ्गीत जाना है। आचार्य ने गद्य के उ-कनिकाप्राय और वृत्त-गन्धि दो भेद जो क्रिमे व हम् गति और नय के आधार पर ही किए थे। गद्य के इन भेदों में सगीत की अवस्थिति पीछे दिये उदाहरणों में सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार की कविता छन्द बानी काव्य-रचना का एक आदर्श कृष्णशामनरदान-वृत्त गिञ्जकार्य है। उनमें मुक्तक गीत ही हैं। परन्तु उनमें सगीत की माना उतनी स्पष्ट नहीं है। उदाहरणार्थ निम्न पद्य कविता प्रस्तुत है—

मानिनि त्यज मानम्
 शीतलारचन्द्रकिरणा,
 मधुमासस्यागम,
 प्रफुल्लानि कुसुमानि ।
 मन्द उन्माक समीर ।
 एकेनापि द्विदे
 कामदाहो वद्विमान्प्रोति,
 किमुत परम्पण्या तेषाम् ।
 त्व च मान करोपि,
 मुग्धं, प्रसोद ।
 बालो याति,
 मान त्यज,
 एहि ।^२

१ छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्द शब्द-वर्जितम् । —नाशा०, १४, ४०

२ शिर०, १५

इन पञ्चकृतियां में यद्यपि स्पष्ट, गंभीर और अनुभूति के विम्व प्रस्तुत किये गये हैं परन्तु उनका बंध के सदृश हीत में कोई उपकार नहीं हो रहा है। वही प्रकार जीवन नाटकम् के अंतर्गत—

षट्त्रिंशो इष तद्गणाला मता मे
विभिन्न रूपाणि च जीवितानि
विभान्त्यत्र चित्राणि रूपकाणि
भवन्ति सर्वेऽभिनयाय एव
ते ते जना नाटय कथा प्रसद गे ।
कश्चिच्च भाग्येन राजा तथैव
भवत्येव रङ्कोऽप्ययो घनेन ।^१

इन पञ्चकृतियां में प्रतिदिन परिवर्तनशील और जनक घटनाओं में भरपूर जीवन चक्र का मूलन स्वरूप का कारण द्वारा किया गया है परन्तु विम्व घूमित है। हा, जस्त-व्यस्त जीवन के प्रस्तुत विम्व का हम विम्व द्वारा निर्दिष्ट खण्डविम्वों का श्रेणी में रख सकते हैं। उपयुक्त छंद में उमर वन नहा मिलता। इनकी तुलना में प्रस्तुत पञ्चकृतियां के लक्ष्य की निम्न निम्नलिखित रचना का दर्जों का स्पष्ट ही जाएगा कि यह छंद विम्वानुसृत मुक्तक कविता का किन्तु प्रकार भाव के प्रतिविम्वन में समर्थ है—

अवतारसि हि नाधुना ?
प्राथितो देवाऽभव कि केनचित्तहि साधुना ?
किं प्रतिज्ञा विस्मृता ?
धर्म-हानि सुजन-पीडा यदि भवति,
धृत विविप्र-तनुरात्म शकस्याऽह तु तेषा रक्षिता
सभवानि यगे युगे ।
स्थापयामि जने जने—
धमनखिल दुष्ट दमन शम-कृतीना शिक्षिता ।
किं न वेदो दूष्यते
सम्प्रति सुकर्मानुश्रयत
प्रुष्यते देव-द्विजाना मन्दिरम्
मध्यमान जीवनम्
सुष्ठयमान यौवनम् ।

हा हृत दुरितै सरभस धर्मरत्न सुन्दरम् ।

क शिव सन्

घृणा-कलुषित कालकूट लोक भद्र भावयति

आत्मनाऽऽचामन्

मोहय स्वै सुचरितै भूयो जगत ।

लोकमव वा दैत्य-चरितात हे प्रभो प्रहृ लादकम् ।

बलि-हृता धीरश्च भूमो विविषवाम

नित्यशो ब्रह्म स्व-हरण बलवताम्,

यो भवान्

एक नारी हरण हेतो

आत्मज्ञो रघु-वश केतो

ऋक्ष-दानर-बल-महायो भस्मसान् कृतवान्

कनक लड का भूत-कलड काम ।^१

इन पङ्क्ति-श्रवणों में विविध द्विन्द्व जो कि अतीत और वर्तमान जीवन में सम्बन्ध है क्रमशः आते हैं। कविता का मुख्य भाव विनय और उपालम्भ का है उसका उद्गमन लय में है।

गीतिकाव्य में भाव और सङ्गीत का परस्पर सम्बन्ध अधिक प्रसविष्णु और विस्मय-प्राप्ति होता है। प्राचीन कवियों ने इस प्रयोजन की सिद्धि का तो मन्दाक्रान्ता जादि छन्दों में की है अथवा राग-रागणियों में जाबद्ध गीतों में। पहले निखा जा चुका है कि भरत ने छन्दों का विभिन्न रागों में सम्बन्ध जोड़ा है।^१ जो नाट्य आदि में अपेक्षित भावाभिव्यक्ति में विशेष उपकारी नहीं हूँ, उन्हें उतारने छोड़ दिया है।^२ पश्चिमी आलोचकों ने श्रुत गारतिलक मेषदत्त

१ गिरधरप्रसाद भारद्वाज—गीतम् विन० ७, १, २ (१६६६-७०) पृ० ४५-४६

२ या-सङ्गीतं कलाशचैव गीतकरतयतानि तु ।

तानि च्छन्दोगतैश्च तै विभाव्यन्त ध्रुवास्तथा ॥ —नाशा०, ३२, १४

३ सत्पन्यान्वपि वृत्तानि पान्युक्तानोह पण्डितै ।

न च तानि मयोन्तानि न शोभा जनयन्ति हि ॥

या-यत परमत्र स्यु गीतवस्तानि योजयेत् ।

ध्रुवाविधाने व्याख्यास्ये तेषा चैव विकल्पनम् ॥ —वही, १५, १४७-४६

मदृश काव्या को गीतिकाव्य की श्रेणी में रखा है।^१ वह अवधारण नहीं है। गीतिकाव्य के दोना लक्षण भाव सरनता एव वाद्य के साथ गेयता इन काव्या में पाय जात हैं।

श्यामास्वड ग चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपात
 वनत्रच्छाया शशिनि शशिना वहंभारेषु केशान् ।
 उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी बीचिषु धू-विसारात्
 हन्तंकस्मिन् ववच्चिदपि ग ते चण्डि । सादृश्यमस्ति ॥^२

इसमें चाक्षुष एव दैन्य आदि अनुभूतियाँ के विम्ब छन्द के माध्यम से श्लो प्रचार सञ्चित रूप में उपस्थित हान हैं। गग-रागदियाँ के द्वारा विम्बन का कार्य मध्य युग में अनन्त काव्या द्वारा हुआ है परन्तु उनमें सर्वाधिक ख्याति जयदेव के गान्धि गोविन्द भा मित्री है। उसका एक गीत विविध एन्द्रिय विम्बा के साथ साथ त्रिरत्न-वदना की अनुभूति का भाव विम्ब मङ्गीत के द्वारा किस सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है यह द्रष्टव्य है—

स्तन विनिहितमपि हारमुदारम् ।
 सा मनुते कृशतनुरिव भारम् ।
 राधिका तव विरहे केशव ।
 सरस-मसृणमपि मलयज-पड कम
 परपति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥
 श्वसित-यवनमनुपम-परिणाहम्
 मदनवहनमिव वहति सदाहम् ।
 दिशि दिशि किरति सजलकणजालम्
 नयन-मलिनमिथ विगलित-नालम् ॥
 त्यजति न घाणितलेन कपोलम्
 बाल-शशिनमिव सायमलोलम् ॥^३

इन पंक्तियाँ में चाक्षुष स्पर्श और घ्राण विम्बों के साथ संगीत से श्रव्य विम्ब की उपस्थिति होती है और उन मय का मदन सन्ताप के भाव-विम्ब से सम्बन्ध है। इस प्रकार यह मशिल्ट विम्ब है।

१ Keith HSL p 199 कृष्णमाचारियर—History of Classical Literature p 358

२ मेदू०, २, ४३

३ गीगो०, ४, ६

ये गीत भी छन्द की विशिष्ट पात्रता से ही बनते हैं। जैसे उपयुक्त पङ्क्तिपाँ पादाङ्गनक नामक मात्राच्छन्द म^३ बनी है। यत्तमान लेखक ने भी इसी प्रकार छन्दों में गीत-निर्माण का नया प्रयोग किया है—

छविरतिहृदयहरेय राजति वासन्ती
परभूततरितरतिमधुर गायति वासन्ती ॥

वासन्ती लतिका विभाति परितरछन्ना प्रफुल्ल सुमं
चञ्चत्-सप सून-राजि रुचिका पीताम्बरा भाति भू ।
शुष्यतपर्णक-ममंरुचनिभूतो नृन्यति शावाभुजा
शिलब्ध लो मलयानिलेन सविधे नीता नदा चलररी ॥

दशं दशमदार मुग्धा माद्यन्ती
रतिरपि रणरणकेनोत्कूञ्जति वासन्ती ।
छविरतिहृदयहरेय राजति वासन्ती
परभूततरितरतिमधुर गायति वासन्ती ॥^२

यहाँ षाडू ब्रह्मीकवि का अन्तरा के रूप में रखकर आगे पीछे द्रुवपद रखकर गीत का रूप दिया गया है। सभी गीतों के मूल में कोई छन्द रहता ही है। केवल उसको स्वर पात्रता से नया रूप दे दिया जाता है। काव्य और गीत का समन्वय इनमें अत्यधिक प्रभविष्णुता ला देता है। वह प्रभविष्णुता और कुछ न होकर जपेक्षित भावादि का गुण ही है।

यह प्रभाव लाने के लिए कवि को छन्द आदि में पूरा अभ्यास और साधना करनी पड़ती है।^३

सारांश में यह कहा जा सकता है कि काव्य-रचना में शब्द और उच्च जिम प्रकार धुनमय कर एक न्यायी प्रभाव उत्पन्न करना है, अपनी सम्प्रेषणशक्ति से

१ अनियतगुहलघुरहितविपाद षोडशकला यदा प्रतिपादम् ।

फणिततिपिङ्गल-नणितविभेद पादाङ्गन-वृत्तमत्रेदम् ॥

—वाचस्पत्यन, पृ० ५७

२ अरागो० ३६

३ तु० नहि परिचयहान केधले काव्यकष्ट

नुकविरभिनिपिष्ट स्पष्टशब्दप्रविष्ट ।

विदुध-सदसि षुष्ट द्विष्टधीवेत्ति बन्नु

नन-नगरातगहूबरे कोऽप्यष्टुष्ट ॥

—क० कण्ठा०, (कापा०) १, १

श्राता और सामाजिक हृदय को प्रभावित करते हैं उसी प्रकार छन्द भी । उनका उददेश्य भी विवक्षित भाव का प्रत्यायन है । यह काव्य वह अपन मन् गीत, ताल और लय के द्वारा करता है । काता समित शब्द की मधुरता और मामय्य काव्य में उपयुक्त छन्द के चयन क द्वारा ही आती है । तभी उसकी वाणा राजशेखर क शब्द में सजन व्यापक बनती है ।^१

१ एकस्य पिच्छति कत्रेगु ह एव काव्यम
 कयस्य गच्छति सुहृद भवनानि यावत ।
 न्यस्या (स्य स्त) विदाघ-वदनेषु पदानि शश्वत
 कस्याऽपि सन्दरति विश्वकुतूहनीव ॥ —कामी०, १ ४ (पृ० १४)

निष्कर्ष

इस सम्पूर्ण विचार-मन्थन के अनुसार हम इसी निणय पर पहुँचते हैं कि भारतीय काव्य-शास्त्र, जैसे चतुर्ण कर जिसमें हिन्दी का काव्य शास्त्र उदभूत, पल्लवित एवं विकसित हुआ, काव्य का सार एकमात्र चमत्कार को मानता है। चमत्कार क्योंकि आनन्द, ज्ञान और प्रकाश तीनों धर्मों का आत्ममान किये है अतः उसका स्वरूप आधुनिक आलोचना-क्षेत्र में प्रसिद्ध काव्य-विश्व में अभिन्न है। काव्य कवि की अद्भुत मूर्ति होती है। कवि यागी की भाँति एवं प्रतिभा में अग्न श्म काव्य-मसार का मर्जन करता है। पढ़ते वह उग प्रतिभा-रूप अतद्गृष्टि में विद्य के सूक्ष्म एवं स्थूल रहस्या का साक्षात्कार करता है पुन वाणी के माध्यम से काव्य के रूप में उनका प्रतिरूप उपस्थित करता है। वह शिव है तो उसकी प्रतिभा या कल्पनाशक्ति उसकी अग्नि मङ्कशिणी शक्ति है। उसके इच्छाज्ञान, क्रियाओं के समन्वय-रूप स्पष्ट में काव्य की मूर्ति होती है।

अर्थ की साकारता—सम्पूर्ण दर्शनो का निणय है कि शब्द का उच्चारण करने के अनन्तर जो पदार्थ ज्ञान होता है, वह साकार होता है। उसके अनुसार बोद्धा की अतद्गृष्टि के समक्ष बोध्य पदार्थ का आकार उपस्थित हो जाता है, तभी उन अनुभाव होता है कि मैं इस वस्तु को जानता हूँ। इस सिद्धान्त के अनुसार काव्य को पढ़ने या सुनने के पश्चात् काव्य में वर्णित अर्थ की साकारता जब तक पाठक या श्रोता के समक्ष न उभरे जाय, तब तक उन काव्याय बोध्य हुआ नहीं समझा जायगा। इसी उद्देश्य में आचार्यों ने अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना एवं तात्पर्य इन चार शब्दशक्तियों का मायना दी। चारों में प्रथम वाच्य लक्ष्य व्यङ्ग्य एवं वाक्याय इन अर्थों का बोध्य माना। व्यङ्ग्य का माध्यम क्याकि शब्द है, अतः उसके स्वरूप का विचार करते हुए उसके लट, योगिक और योग शब्द इस प्रकार तीन भेद माने। इनमें भी वा अर्थ चमत्कार-पूर्ण हो और जो चमत्कार-जनन में समर्थ हो, वे व्यङ्ग्य और शब्द ही काव्य के घटक एवं मुख्य तत्त्व माने गए हैं।

चमत्कार के साधन

चमत्कार के साधनों में वक्रोक्ति, रस, ध्वनि, गुण, रीति, वृत्ति, पाक, शय्या एवं अलङ्कार सभी की गणना होती है। वक्रोक्ति व्यापक अर्थ लिये

पारिभाषिक शब्द है जो वाच्य, लक्ष्य एव व्यङ्ग्य तीनों अर्थों को आत्ममात् किये हुए है। वाच्य अयंगत वनोक्ति म सम्पूर्ण अलङ्कारवर्ग समा जाता है। वर्ण वियास-वक्रता म शब्दालङ्कार और उपचार-वक्रता आदि में अर्था लङ्कार, लक्षणा एव अभिधामूला व्यञ्जना म बोधित जर्न सभी समाहृत हा जाते हैं। इसलिये वनोक्ति काव्य का सर्वस्व है। क्या अलङ्कारवादी और क्या व्यञ्जनावादी आचार्य सभी उस वनोक्ति का काव्य म प्रधानता दत हैं। वह वनोक्ति भी चमत्कार ही उत्पन्न करती है।

ध्वनि—व्यञ्जनावोध्य अर्थे रस, वस्तु और अलङ्कार तीन प्रकार का माना गया है जिम ध्वनि नाम मे पुकारा जाता है। सर्वाधिक चमत्कारक हान से ध्वनि काव्यविम्व का निर्मायक प्रमुख तत्व है। पर पीछे उदाहरणा मे स्पष्ट हो चुका है कि नही यह काव्य विम्व स्वय व्यङ्ग्य म्न हाता है तो कही ध्वनि आगे काव्य विम्व क निर्माण मे सहायक हाता है।

ध्वनि का एक प्रकार रस-ध्वनि है जा कि मानस क्षेत्र की वस्तु है सूक्ष्म भाव जगत म सम्बन्ध रखती है। इसका स्थूल या एद्रिय विम्व सम्भव न होन स अनुभूत्यात्मक विम्व बनना है जिसम आनन्दन विभाव उद्दीपन सञ्चारी और मारा वानावरण मूत हा उठता है। काव्य क मून म कवि का भाव या रति बीज रूप म रहना है जिसका ब्राह्म आलम्बन जादि क माध्यम म मूर्तन होना है। सामाजिक या पाठक क भाव का उसके माथ साधारणीकरण हान म रस या भाव का साक्षात्कार या प्रत्यक्षीकरण सम्भव हाता है।

औचित्य दोष और गुण—काव्य की जात्मा रस है वह भी चमत्कार-प्राण है। इसीलिये काव्य का मुख्य अर्थ वही है। अत कवि क लिये आवश्यक हाता है कि अपनी सारी शक्ति उस रस की पुष्टि म लगा द। जिन कारणो म रस-प्रतीति म विघ्न होता है, उनका निराकरण कर। रस क विघात+ कारण ही दाप कहनात हैं जो कि औचित्य का पानन न करन मे जन्य होत है। औचित्य की रक्षा म दापो का निराकरण और गुणा का आधान हाता है। परन्तु अतीचिय दापा का आवाहन करता है और गुणा का विघात। मारे दाप चाह वे पद-वाक्यगत हा अथवा अर्थ या रसगत म्न नष्ट दिम्व के निर्माण म बाधक होन के कारण दाप होत हैं। कुछ प्रत्यक्ष रूप से सीधे विम्व पर प्रभाव डानते हैं तो कुछ परोक्ष रूप म। जा सर्वथा काव्य विम्व क घातक नही हान, वे अनित्य दोष मान जात हैं और परिस्थिति बदल जान पर दाप न हा कर कभी-कभी गुण भी बन जात हैं।

गुण, रीति, वृत्ति—गुणों का सम्बन्ध भी काव्य-बिम्ब के ही साथ है। आचार्यों ने माधुर्य आदि गुणों के लिये जो वर्ण निश्चित किये हैं एवं आनन्द-वधन न दीपसमाप्ता और असमाप्ता या मध्यम-समाप्ता मघटनाआ के साथ गुणा का सम्बन्ध जोटा, उमका तात्पर्य यही था कि भावानुत्पन्न वर्ण गाला और मसृण-बन्ध या कठिन बन्ध न विवक्षित का बिम्ब बने। वंदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली इन रीतियों का सम्बन्ध बध मे है तो कोमल या कठोर ध्वनियों का प्रयोग वृत्तियों का विषय है। भाव के अनुरूप ध्वनियों की योजना उप नागरिका, परया और कोमला इन वृत्तियों की मृष्टि करती है। पद्य या गद्य दोना म ही ये वृत्तियों काव्य बिम्बा के निर्माण में असाधारण रूप से सहायक होती है। यदि पद योजना भाव क दश प्रकार अनुरूप हो कि एक भी पद व्यर्थ न हो, न ही समानार्थक शब्द मे उमे बदला जा सके, ध्वनिया मुनन मे भी आशय की अभिव्यक्ति करती हो तो पाक बन जाता है एवं यदि ध्वनिया परस्पर समान होन से श्रुति-सुखद हो एवं शब्दकार उत्पन्न करन वाली हा तो गय्या बन जाती है। ये भी पद और यण-योजना की अनुकूनाता म काव्यबिम्ब का निर्माण करते है।

अलङ्कार—काव्य-बिम्ब का सबसे ममथ तत्व अलङ्कार है। बिम्ब नादात्मक और रूपात्मक दोनों प्रकार के हान है। शब्दालङ्कार पहले प्रकार के बिम्ब है और शेष दूसरे प्रकार क। अलङ्कार वष्य वस्तु के चित्र ही है। रीतिया के रूप मे जो रेखाएँ उकेरी जाती हैं, अलङ्कार उन आकृतियों का स्पष्टता देने है। पिछन अध्यायो मे हमने अलङ्कारों को पात्र भागों म विभक्त किया है—शब्दालङ्कार, साम्य सूसक, सादृश्यत्वभावमूतक, प्रतीकात्मक एवं वर्णनात्मक। इनमे पहले ध्वनिचित्र प्रस्तुत करन ह। एमने जीर तीसरे इन चित्रा के साथ भावना का स्पष्ट करन ह। जानकल क कलाकार जिम प्रकार व्यङ्ग्य चित्र और प्रतीकात्मक चित्र बनाते ह। उनके बीच उन कवियों का दृष्टि-कोण छिया होता है इसी प्रकार ये अलङ्कार दष्टि की विविधता प्रस्तुत करत है। वास्तव धर्मी के अलङ्कार आकृतिया बनाने है। आय अलङ्कार उनमे रङ्ग भरत ह। उनमे सर्वाधिक लटीता रग उपमा और रूपक का होता है। यही कारण है कि अलङ्कार दोपो म आचार्यों न उपमा और रूपक अलङ्कार के ही दोष प्रदानता से गिताम ह।

बिम्ब और सदेय—जिस प्रकार पाश्चात्य समीक्षक काव्य-बिम्बा न भावा-नुभूति का स्पष्ट आवश्यक मानते हैं, इसी प्रकार भारतीय आचार्य। विना भावना के स्पर्श के बने चित्रा को के कोरी अलङ्कारनीटा मानत है। एम

अलङ्कार निर्जीव खिलौने होत है। काव्य में प्रासङ्गिक वर्णन जीवन की विविधताओं की भूमिका होत है। इनके बिना काव्य पुरुष का व्यक्तित्व पूरा नहीं होता। रस भाव से इन काव्य-चित्रों में प्राण प्रतिष्ठा होती है। इसीलिये आनन्दबोधन न चेतन और अचेतनवस्तुवृत्तान्त का आलम्बन या उद्दीपन आदि के रूप में रसभाव में सम्बन्ध स्थापित किया था।

विम्ब भेदों का समाहार—पहले अध्याय में काव्य-विम्ब के जा भेद गिनाये थे सब इनमें समाहृत हो जाते हैं। शब्दालङ्कारों में बने विम्ब नाम विम्ब या ध्वनि चित्र हैं। स्वभावोक्ति भाविक आदि अलङ्कारों में मृत विम्ब प्रस्तुत किये जाते हैं। पूर्णोपमा समस्तवस्तुविषयक रूपक विम्ब प्रतिविम्ब-भाव पर आधारित अलङ्कार पूर्ण विम्ब प्रस्तुत करते हैं। एकदशविवर्ती रूपक कवलरूपक, उत्प्रेक्षा निदर्शना खण्ड विम्ब प्रस्तुत करते हैं। समसाक्ति, वाक्यार्थोपमा मानारूपक परम्परित रूपक आदि मशिनष्ट विम्ब प्रस्तुत करते हैं। परिकर सदृश अलङ्कार निष्पाय विम्ब हैं जो किसी वस्तु के भीतरी स्वरूप या किसी घटना को मूल करते हैं। तद्गुण आदि अलङ्कार चित्रों के वर्णन का स्पष्ट करते हैं तो उदात्त मिथिक विम्ब का ही रूप है। मिथ विम्ब भी इन्हीं अलङ्कारों में पीछे निम्न ढङ्ग में वर्णित है। इस प्रकार सारा काव्य शास्त्र इस विम्ब सिद्धान्त का समेटे हुए है। आनन्दबोधन भट्ट तौत, अभिनव गुप्त आदि रसवादी और भामह दण्डी सदृश अलङ्कारवादी आचार्यों इसके प्रवक्ता रहे हैं।

इन तथ्यों के रहने हुए भी भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-विम्ब की धारणा का अभाव मानना अज्ञान मात्र है।

सहायक-ग्रन्थ सूची (BIBLIOGRAPHY)

सस्कृत

- | | |
|-------------------------------------|--|
| १ अग्नि पुराण) शास्त्रीय भाग) | रामलाल वर्मा सम्पादित, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सडक, दिल्ली |
| २ अथर्ववेद-१ (भाग) सनातन माध्य महित | माधव पुस्तकालय, १०३, कमलानगर, दिल्ली, १९७५ |
| ३ अभिज्ञान शाकुन्तल - | कानिदास, ए० वी० गजद्वय गडकर द्वारा सम्पादित दि पापुलर बुक स्टोर टावर रोड, मूलत छटा सम्बरण |
| ४ अग्निव भारती भाग १, ४ | अग्निव गुप्त, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बडीदा द्वितीय सम्करण |
| ५ अग्निव भारती | अग्निव गुप्त मधुमुदनकृत अनुबाव महित, भाग २, टिडू विश्वविद्यालय, वाराणसी |
| ६ आतानवरागगोविन्दम् | शिव प्रसाद भारद्वाज, श्रीमती भगवान देवी भारद्वाज, ऊना राड हौसियारपुर, १९७९ |
| ७ अमरकाव | अमरमिह, निणय मागर प्रैस, बम्बई |
| ८ अमरुगतक | अमरुक, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद |
| ९ अलङ्कार चिंतामणि | अजित मेन, भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली |
| १० अलङ्कार-मणिहार | श्री कृष्ण ब्रह्ममन्त्र, श्रीब्रह्मतन्त्र स्वतन्त्र परकाल मठ, वेदान्त दैक्षिक निहार मभा, मंसूर |
| ११ अलङ्कार महोदधि— | नरेन्द्र पभसूरि, गायकवाड ओरियण्टल रिसेस इन्स्टीच्यूट बडीदा |
| १२ अलङ्कार-मीमामा | टा० राम चन्द्र द्विवेदी, मानीपाल बनारसीदास, दिल्ली |
| १३ अलङ्कार रत्नाकर | शोभाकर मिश्र आरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९४९ |

- १४ अड कारसवस्व
हययक [जयरथकृत विमर्शिनी एव रेवा प्रसाद द्विवेदा कृत हिन्दी व्याख्यासहित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
- १५ अड कारसवस्व
हययक, जयरथ कृत विमर्शिनी एव रेवा प्रसाद द्विवेदा कृत हिन्दी व्याख्या सहित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
- १६ अष्टाध्यायी
पाणिनि चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
- १७ उत्तररामचरित
भवभूति साहित्य भण्डार मुभाप बाजार मेरठ
- १८ अश्वद
श्रीपाद दामादर सातवतक सम्पादित मस्करण मलारा
- १९ अक्षयतिशास्त्र उल्लेख
भाष्य सहित उत्तर भाग
मन मन देव सम्पादित इण्डियन प्रेस इलाहाबाद
- २० अक्षुभहार
कानिदाम निणय सागर प्रेस बम्बई
- २१ एकाग्रता तरना-सहित
विद्याधर गवतमेठ संस्कृत वाग्नेरी बम्बई
- २२ एतन्नय उपनिषद—ईर्शाद
द्वय उपनिषद
शाङ्कर भाष्य सहित मोतीनाथ बनारस
दाम दिना १८६४
- २३ आनियविनाग्नर्त्त
क्षमद्र प्रभा टीका सहित चौखम्बा संस्कृत
सीरीज वाराणसी
- २४ अठार्षानपत्रादि
दशरूपिपद
शंकर भाष्य सहित मातालाल बनारसदास
वाराणसी १९६४
- २५ अविष्णुशरण
क्षमद्र काव्यमाना गच्छर पञ्चम निणय
सागर प्रेस बम्बई
- २६ अवि दान
भाना शंकर नाम चौखम्बा प्रकाशन
वाराणसी
- २७ अदम्बरा
वाण भण्ट मानु चन्द्र सिद्धचन्द्र कृत टाका
सहित निणय सागर प्रेस बम्बई १९३२
- २८ अष्टालाकार
भामह नामा वरुणेश्वर प्रेस बम्बई
- २९ अग्निज्ञानापा
भारवि निणय सागर प्रेस बम्बई
- ३० काव्यकल्पितावलि
जरिमिह व अमरचन्द्र यति चौखम्बा संस्कृत
सागर वाराणसी १९३० मस्करण
- ३१ काव्यप्रकाश
भम्मट आनन्दधर संस्कृत प्रकाशनालय पुना

- ३२ काव्य-प्रकाश उद्योत नरेश भट्ट, आनन्दाश्रम मम्कृत ग्रन्थमाला, पूना
- ३३ काव्य-प्रदीप गाविन्द ठक्कर, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थ-माला, पूना
- ३४ काव्य-मीमामा राजशेखर, केदारनाथ सारस्वत कृत अनुवाद सहित, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
- ३५ काव्य-मीमामा राजशेखर, नारायण शास्त्रि रिवस्ने कृत टीका सहित, चौधम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
- ३६ काव्यादाय आचार्य दण्डी, डा० धर्मेश कुमार गुप्तकृत व्याख्या सहित, मेहर चन्द नक्षत्र-दास, दरिद्रागज दिल्ली, १९७३
- ३७ काव्यानुशासन-त्रिवेक भा० १ आचार्य हेम चन्द्र, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
- ३८ काव्यातङ्कार द्रष्ट, डा० सत्यदेव चौधरी, द्वाग सम्पादिका, बासुदेव प्रकाशन, दिल्ली
- ३९ काव्यातङ्कार-सार उदमत डा० राममूर्तिवृत्त, व्याख्या सहित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९६६
- ४० काव्यातङ्कारसारसूत्र प्रतिहागिन्दु राज, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६
- ४१ काव्यातङ्कारसूत्र वामन त्रिपुरहरशाल, भट्टकृत कामधेनु सहित, चौधम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
- ४२ काव्यातङ्कारसूत्रवृत्ति त्रिपुरहर भट्ट भूपाल, कृत काम धेनु टीका सहित
- ४३ किरणावली कृष्ण बल्लभाचार्य नारायणस्वामी, छन्नूलाल ज्ञानचन्द पाठक, बचौड़ी गली, बनारस, १९४०
- ४४ कुमार सम्भव कालिदास, निणय सागर प्रेस, बम्बई, १९५५
- ४५ कुक्षेत्र महात्म्य छन्नुराम शास्त्री, स्वयं प्रकाशित, धन प्रेस, कमला नगर, दिल्ली, १९६१
- ४६ कुवलयानन्द अप्पयदीक्षित, निणय सागर प्रेस, बम्बई
- ४७ गङ्गा लहरी जगन्नाथ, पण्डितराज ग्रन्थमाला, मम्कृत अरादमी, उस्मानिया यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

५००	संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य-विम्ब-विवेचन
४८ गणपति-मम्मद्वम	प्रभुदत्त शास्त्री, अर्चना प्रकाशन, ७६, रामदास पेठ नागपुर १९६१
४९ गीतगोविन्द	जयदेव, राणा कुम्म कृत रसिक प्रिया सहित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई, १९३७
५० चन्द्रालोक	जयदेव पीयूषवर्ष, मातीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६०
५१ चमकार-चन्द्रिका	विश्वेश्वर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास दिल्ली
५२ चारुदत्त	भास भास नाटक चक्रम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
५३ चित्रमीमासा	अप्ययदीक्षित वाणी विहार, वाराणसी-१
५४ छांदाग्य उपनिषद् ईशादि दशोपनिषद्	शाकर भाष्य सहित मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९६४
५५ तक भाषा	कजव मिश्र बट्टीनाथ शुक्ल कृत टीका सहित मातीलाल बनारसीदास, वाराणसी
५६ तर्जनी	दुर्गादत्त शर्मा तथा शेष भूषण ननेटी, प्रागपुर, कागडा १९७०
५७ तर्कभाषा	माधवाकर गुप्त आरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बट्टीदा
५८ तर्क मग्रह	अन्नम्भट्ट दीपिका सहित, छन्नूदास ज्ञानचन्द कचौडी गली बनारस
५९ तक सट गृह दीपिका टीका	आनन्द झा, उत्तर प्रदेश हिन्दी अकादमी, लखनऊ १९४०
६० तुकाराम चरित	पण्डिता धमा राव हिन्द वितावज् लिमिटेड पन्निशम, बम्बई, १९५०
६१ तैत्तिरीय आरण्यक	आनंदाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, पूना
६२ तैत्तिरीय उपनिषद्-ईशादि दस उपनिषद्,	भातीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९६४
६३ दण्ड	हेमाद्रि कृत गधुवज् टीका, काशी प्रसा जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पटना-१, १९७३
६४ दशरूपक—धनञ्जय	भोनाशङ्कर व्यास कृत व्याख्या सहित, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली

- ६५ दशकुमार चरित दण्डी, चौखम्बा मस्कृत सीरीज, वाराणसी
- ६६ दिव्याञ्जना—ध्वन्यालोक गोम्वाभी दामोदर शास्त्री तथा महादेव शास्त्री, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी १९४०
- ६७ द्वेषी शतकम् पद्मनारायण त्रिपाठी, स्वयम् मुरादाबाद, १९६४
- ६८ धर्मसूत्र वीवायन, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- ६९ चतुर्भाषी मोतीलाल मेनारिया एव वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई
- ७० ऽय मालोक आनन्दबघन, चौखम्बा मस्कृत सीरीज, वाराणसी १९४०
- ७१ ध्वन्यालोक-लोचन अभिनव गुप्त, चौखम्बा मस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६०
- ७२ नञ्जराज यशोभूषण नृसिंह कवि, ओरियण्टल इस्टीब्लिश, बंगीदा
- ७३ नयद्यमणि मेघनाद सूरि, गवर्नमेट ओरियण्टल मे-डु-स्त्रिप्ट लाइब्रेरी सीरीज, मद्रास
- ७४ नागानन्द हर्षवदन, हाडा पब्लिशिंग कम्पनी, होशियारपुर
- ७५ नाट्य शास्त्र भरत, काव्यमाला संस्करण (मूत्र मान), निणय सागर प्रैस, बम्बई, १९४३
- ७६ निरुक्त यास्कमुनि, दुर्गाचार्यकृत भाष्य सहित, लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रैस बम्बई
- ७७ निरुक्त यास्क, िव नारायणशास्त्री कृत व्याख्यान-सहित, तारादेवी कोकिला, दिल्ली, १९७२
- ७८ नैपथीय चरित श्री हृष, नारायण भट्ट टीका सहित, भेमराज श्रीकृष्णदाम लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रैस, बम्बई, १९४३
- ७९ नराल साम्राज्योदय पशुपति झा, सीतादेवी, विश्वेश्वरानन्द विश्वब्रह्म सरपान पञ्जाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, १९८०

- ८० नाट्यशास्त्र
भरत अभिनव गुप्त कृत अभिनव भारती
सहित, भाग १-४ गायत्रवाड आरियण्टल
संस्कृत सोरीज, बडोदा
- ८१ परञ्जुराम दिग्विजय-
महाकाव्यम्
छञ्जुराम शास्त्री, विद्या सागर रति राम
शास्त्री माहित्य भण्डार, मेरठ १९५५
- ८२ पाणिनीय धातुपाठ-
सिद्धान्त कौमुदी बाल
मनारमा सहित
मातीनान बनारसीदास, लाहौर, १९३६
- ८३ पाणिनीय शिक्षा
चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
- ८४ पातञ्जल याग सूत्र
वाचस्पति मिश्र कृत टीका भारतीय विद्या
प्रकाशन, वाराणसी
- ८५ पुराणानां काव्यरूपाया
विवेचनम्
डॉ० राम प्रताप वेदालङ्कार जम्मू विश्व-
विद्यालय जम्मू १९७४
- ८६ प्रयभिज्ञाहृदय
क्षेमराज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
- ८७ प्रमत्त राघव
जयदव, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- ८८ बाल चरित भास
भान नाटक चरम् चौखम्बा संस्कृत
सोरीज वाराणसी
- ८९ विहागी सतमर्द
विहारी लाल, अगोक प्रकाशन, नई भन्व,
दिल्ली
- ९० बुद्ध चरित जग्गघाष
सूर्यनारायण चौधरी सम्पादित, संस्कृत
भवन, कठोतिया कोशी पूर्णिया, बिहार
- ९१ बृहत स्तोत्र रत्नाकर
शिवदत्त मिश्र सम्पादित, ठाकुर प्रसाद एण्ड
सन, वाराणसी
- ९२ बृहदारण्यक उक्तिपद
ईशाद्विदशोक्तिपद संस्करण, मोतीलाल
बनारसीदास, वाराणसी
- ९३ बोधिसत्त्व चरितम्
सयत्रतशास्त्री, मेहर चन्द लक्ष्मणदास,
दरियागञ्ज, दिल्ली
- ९४ ब्रह्म वैवर्त पुराण
श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, वरली
- ९५ भागवत पुराण
वेद व्यास, पण्डित ब्रदस, वाराणसी
- ९६ भामिनीविलास
जगन्नाथ, पण्डितराज श्री यमाना संस्कृत
अकादमी उस्मानिया विश्वविद्यालय
तैदराबाद

- ६७ भारत-मन्देश शिव प्रसाद भारद्वाज, विश्वेश्वरानन्द मस्थान, होशियारपुर, १९६३
- ६८ मधुमाधुरी श्याम देव पाराशर, स्वयं प्रकाशित, होशियारपुर
- ६९ मध्यान्त विभागशास्त्र वसुबन्धु, आचार्य मैत्रेयवृत्त कारिका सहित, रामचन्द्र पाण्डेय द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
- १०० मनुस्मृति कुलूक भट्ट सहित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई
- १०१ महावीर चरित भवभूति चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- १०२ महावीरचरितम् (काव्य) शिव प्रसाद भारद्वाज, आत्मानन्द जैन महा सभा, जम्वाला, १९६४
- १०३ माण्डूक्य कारिका गौड पाद ईशादि दस उपनिषद्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
- १०४ माननी-माधव भवभूति, यूनिवर्सिटी मैयुस्त्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास
- १०५ मातृविकाग्निभिन्न कालिदास, काट्यवेम कृत टीका सहित कुकनेलस पब्लिशिंग को०, बम्बई, १९५०
- १०६ भीमासा-विमश वाचस्पति उपाध्याय, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली
- १०७ मुद्रा राक्षस विशाख दत्त, देवधर तथा वेडेकर द्वारा सम्पादित, कशव भिकाजी ढावाणे, बम्बई, १९४८ न०
- १०८ मृच्छकटिक शूद्रक, चौखम्बा मसकृत सीरीज वाराणसी कालिदास, मल्लिनाथ कृत टीका सहित जी०जे० सोमयाजी बी० रामा स्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स, एस्प्लेनेड, मद्रास, १९५१
- १०९ मेघदूत अजमेर वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९५१
- ११० यजुर्वेद (गुटका) याज्ञवल्क्यस्मृति याज्ञवल्क्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- १११ रघुवश कालिदास, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई
- ११२ रत्नदर्पण रत्नेश्वर, मरस्वती कण्ठाभरण, निर्णयसागर प्रैस, बम्बई, १९३४

५०६	संस्कृत काव्यशास्त्र मे काव्य-विम्ब विवेचन
११४	रमगङ्गाधर पण्डितराज जगन्नाथ, नागेशकृत मर्म प्रकाशनी सहित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई, १८८८
११५	राग-विवोध सोमनाथ, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, १८१७ संस्करण
११६	राघव पाण्डवीय
११७	रामचरितम् उत्तरार्द्धं माधव भट्ट, चौखम्बा प्रकाशन पद्मनारायण त्रिपाठी, रमाकान्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रैस, वाराणसी, १९७१
११८	रामचरित-पूर्वाधं पद्मनारायण त्रिपाठी, रमाकान्त त्रिपाठी, काशी, १९६५
११९	रामरद्री टीका राम हद्राचार्य गोवर्धन रामनाथ साहू, वाराणसी (१९५२)
१२०	वक्रोक्ति जीवित-कुन्तन डा० के० कृष्णमूर्ति सम्पादित, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड, १९७७
१२१	वाक्यपदीय भर्तृहरि, के० सुब्रह्मण्यम् द्वारा सम्पादित, टैक्निकल कालेज, पूना
१२२	वाग्बल्लभ दुःखभञ्जन कवि, चौखम्बा विद्यानवन, वाराणसी
१२३	वाचस्पत्यम् तारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१२४	वाल्मीकि रामायण वाल्मीकि, पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी, १९५७
१२५	वासवदत्ता
१२६	विक्रमार्धक्षीयम् सुबन्धु, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी जालिदास, सुरेन्द्रनाथ शास्त्री कृत टीका- सहित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई १९४२
१२७	विज्ञान-भारतम् वी० आर० शास्त्री जमर भारती सीरीज, दैन्यवाद, १९६४
१२८	विक्रमिभास्त्रिसिद्धि
१२९	विवरण प्रमेय-मङ्ग्रह
१३०	वृत्तिवातिक
१३१	वेणी-सहार बसुबन्धु, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी माधवाचार्य, आनन्दाश्रम ग्रन्थमाला, पूना अण्णय दीक्षित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई भट्ट नारायण, चौखम्बा सम्स्कृत सीरीज, वाराणसी

- १३२ वेदात्परिभाषा धमराजाध्वरोन्द्र, लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रैस, बम्बई
- १३३ वैयाकरणभूषणसार कोण्ड भट्ट, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला पूना
- १३४ वैयाकरणलघुमञ्जूषा नागेश भट्ट, सभापति ग्राम कृत-टीका सहित चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
- १३५ वैयाकरण-सिद्धान्त मञ्जूषा नागेश भट्ट, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
- १३६ व्यक्ति-विवेक महिम भट्ट, मधुसूदनी विवृति-सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९३६
- १३७ शब्द-रूपापरि-विचार मम्मट, निणय सागर प्रैस, बम्बई
- १३८ शारिङ्ग-चरितम् पद्मनागायण त्रिपाठी, रमाकांत त्रिपाठी, वाराणसी, १९७१
- १३९ शिञ्जारव कृष्णलाल नादान वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ संस्करण
- १४० शिवराज-विजय जम्बिकादल व्यास व्यास पुस्तकालय, वाराणसी
- १४१ शिवमहिता अज्ञात कृत क, लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रैस बम्बई
- १४२ शिशुपालवध माधकवि, निणय सागर प्रैस, बम्बई
- १४३ शृङ्गारप्रकाश-भाग १-२ भोन इन्टरनेशनल अकादमी आव भरहल गिमन, मैसूर
- १४४ शृङ्गारनिलय कानिदाम निणय सागर प्रैस, बम्बई
- १४५ शृङ्गाराणव चन्द्रिका विजयवर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
- १४६ श्रीनिवास-शतकम् विठ्ठल देवुनि सुन्दर शर्मा, स्वय प्रवाशित, संस्कृत अकादमी, उस्मानिया विश्व-विद्यालय हैदराबाद
- १४७ श्री नहर्ष चरितम् ब्रह्मानन्दशुक्ल शारदा-सदन, खुरजा
- १४८ श्युन-बोर्ज कालिदास, निणय सागर प्रैस, बम्बई
- १४९ राङ्गीत-रूपण दामोदर मिश्र, सुरेन्द्रनाथ टैगोर, पथुरिया घाट, कलकत्ता
- १५० समराङ्गण सूत्रघोष भाव, गायकवाड आरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बडोदा

५०८

१५१ सरस्वती कण्ठाभरण

१५२ सबदशन-मरु ग्रह

१५३ साध्य-कारिका

१५४ साहित्यदपण

१५५ साहित्यसुधामिन्धु

१५६ सिद्धान्त कौमुदी

१५७ सिद्धान्तमुक्तावली

१५८ सिद्धान्तशेखर

१५९ सवृत्त तिलक

१६० सोन्दरनन्द

१६१ स्वप्नवासवदत्त

१६२ म्वर-भड गला सस्कृत

श्रैमासिक

१६३ म्वराज्य विजय

१६४ हठयोगप्रदीपिका

१६५ हृषिकेश

सस्कृत नाट्यशास्त्र म काव्य विम्व विवेचन

भोज रत्नश्वरकृत रत्नदपण सहित, निर्णय सागर प्रैस, बम्बई १९३४

आचार्य माधव, निर्णय सागर प्रैस बम्बई ईश्वरकृष्ण बालकृष्ण त्रिपाठी भदनी वाराणसी

विश्वनाथ शालग्रामशास्त्रिकृत विम्वरा सहित मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, १८२६

विश्वनाथ दब डा० रामप्रताप सम्पादित भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली

भट्टोजिदीक्षित वासुदेव याज्ञिक कृत बालमनारमा सहित भाग १-२, मोतीलाल बनारसीदास सैदमिटठा बाजार लाहौर १९३६

विश्वनाथ तक-पञ्चानन ज्वालाप्रसाद गौड कृत टीका सरजू देवी डी० ३४/८५ गणेश महान वाराणसी

उभयवेदान्ति विश्वनाथ व० सीताराम सोमयाजी मैसूर

क्षेमद्र निर्णय सागर प्रैस बम्बई अश्वधोष आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस लंदन

भास भासनाटक चक्र चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

सस्कृत अष्टादमी (राजस्थान) अजमेर, माच १९६७

द्विजेन्द्र नाथ शर्मा शास्त्री गार्गी शर्मा भारती प्रतिष्ठान मेरठ १९७१

तत्त्वविवेचक मुद्रालय तुकाराम तात्या बम्बई

बाण भट्ट, जीवनानन्द विद्यासागर कृत टीका सहित, कलकत्ता प्रैस, कलकत्ता १९१८

मराठी

१६६ अगोका से कानिदास अ० ज० करन्दीकर, ६०७, मद्रासिध पठ, पूना

हिन्दी

१६७ अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन कपिल देव द्विवेदी हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

१६८ आलोचना की फिमलन डा० आमप्रकाश ज्वन्धी, पुस्तक सस्थान, १०७/५० ए, नेहरू नगर, वानपुर

१६९ काव्य विम्ब डा० नयन्द्र, नेरानन पब्लिशिंग हाउस, देहली-६ (१९६७)

१७० काव्य-ममीक्षा डा० विक्रमादित्य राय, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६७

१७१ काव्यात्मक विम्ब अखीरी ब्रजनन्दन प्रसाद मिश्र, ज्ञानालोक पटना, १९६४

१७२ छायावादोत्तर काव्य म विम्ब विधान डा० उमा जण्डवण, आय बुक डिप्ट, कगेन बाग, नई दिल्ली

१७३ नगद साधना के आयाम डा० कुमार विमल, राधाकृष्ण प्रकाशन, २, अन्तानी राड, दरियागज नई दिल्ली, (१९७०)

१७४ परिवेश, मन और साहित्य त्रिलोक चन्द तुनसी, प्रतिभा प्रकाशन, होगियारपुर

१७५ मेघदूत एक अध्ययन वामुदेव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

१७६ मेघदूत एक अनुचितन रजत मूर्ति देव विहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना १९६०

१७७ रस-मीमासा रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी मभा, काशी, १९६१ मस्करण

१७८ रामचरितमगनस गोस्वामी तुनसीदाम, गीता प्रेस गाण्डपुर १९१८

१७९ रीतिकालीन अलड कार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन ओमप्रकाश शारजी, हिन्दी साहित्य समार, दिल्ली, १९६५

५१०		संस्कृत काव्यशास्त्र मे काव्य-विश्व विवचन
१८०	रीतिकालीन काव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र , नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई सडक, दिल्ली, १९६१ संस्करण
१८१	शेखर एक जीवनी	हीरानन्द, सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
१ २	साहित्य शास्त्र	डा० रामकुमार वर्मा, भारतीय विद्या भवन, कानपुर
१८३	साहित्यशास्त्र	डा० चन्द्र भानु सीताराम सोनवणे शारदा प्रकाशन, नांदेड
१८४	साहित्य सिद्धान्त	राम अवध द्विवेदी, विहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, १९६३
१८५	साहित्य शास्त्र और काव्य भाषा	डा० सियाराम तिवारी, विष्णु प्रकाशन, साहित्यवादा
१८६	साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
१८७	हृषिकेश एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० वामुदेव शरण अग्रवाल विहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना
१८८	हिन्दी शब्द सागर	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन
	अंग्रेजी	
189	A Critical Study of Paumacasiyam	Dr K R Chandar, Research Institute of Prakrit, Jainology and Ahimsa, Vaishali (1970)
190	Aristotle	Translated by Dr P S Shastry, Kitab Mahal, Delhi, 1963
191	Aristotle Art of Poetry	Tr Ingram By water, Pb Oxford, at Clarendon Press
192	Bhoja's Srngara-prakash	V Raghavan, Punarvasu Prakashan, Madras
193	Britanica World Language Dictionary Pt I	
194	Concept of Poetry An Indian Approach	Dr Kalpad Giri, Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta
195	English-Sanskrit Dictionary	Monier Williams, Subsidized edn
196	Ezra Pound Selected Prose	William Cookson (1909 65) 1st ed, Faber & Faber, London (1973)

- 197 History of Classical Sanskrit Literature
Krishnamachariar, Motilal Banarsidas, Delhi
- 198 History of Sanskrit Literature
A B Keith, Oxford Press London
- 199 History of Sanskrit Poetics
P V Kane, Motilal Banarsidas Varanasi
- 200 How to Read Ezra Pound (1929) Polite Essays in Literary Criticism
Ashort Histor William K Wimsatt, JR & Clearth Books, Yale University, Indian edn 1964
- 201 Imagery in Poetry An Indian Approach
Dr Ramaranjan Mukharji, Sanskrit Pustak Bhandar Calcutta-3 1972
- 202 Imagery in Mahabharata
Sudhi Sankar Bhattacharya Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta, 1971
- 203 Imagery of Kalidasa
L S Bhandare Popular Prakashan, Bombay
- 204 Indian Aesthetics
Dr K C Pandev Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi
- 205 Number of Rasas
Raghavan, Adyar Library, Madras
- 206 The Oxford English Dictionary Vol 5
- 207 Pictorial Potery
M M Bhattacharjee, Research Bullat in (Arts) Serial No XIV 11 (1954) Panjab University, Hoshiarpur
- 208 Practical Criticism
I A Richards London Routledge & Keagan Paul Ltd, 1960
- 209 Principles of Literary Criticism
I A Richards Routledge and Kegan Paul, London and Henley, 1976
- 210 Principles of Literary Criticism
Dr R C Dwivedi, Motilal Banarsidas, Delhi
- 211 Some Concepts of Alankarashastra
V Raghavan, Adyar Library, Madras

212 The Poetic Image

C D Lewis, Jonathan Cape, Paper Back, Thirty Bedford Square, London, 1966

213 The Poetry of Valmiki

M V Masti, Venkatesh Iyenger, Mysore 1940

214 The Skylark

P B Shellay

215 Twentieth Century Literary Criticism

Edited David Lodge, Longman, London, (1972)

216 Western Aesthetics

Dr K C Pandey, Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi

शोध पत्रिकाएँ

२१७ कालिदास विशेषांक

यूनिवर्सिटी ऑफ़ जम्मू, जम्मू यूनिवर्सिटी, जम्मू
तवा, १९७२,

218 Indological Studies

Journal of the Department of Sanskrit, University of Delhi, Vol 2, No 1, December, 1972

२१९ विश्वसंस्कृत—

संस्कृत त्रैमासिक, विश्वेश्वरानन्द वैदिक
शोध संस्थान होशियारपुर
फरवरी १९६६, नवम्बर १९६७-६८,
मई १९६८, फरवरी, मई, अगस्त १९७५,
मार्च १९८१

220 Vedic Path

Gurukul Kangri Vishvavidyalaya, Haridwar, 1980

221 Vishveshvaranand Indological Journal

Vishveshvaranand Vishva Bandhu Institute of Sanskrit & Indological Studies, Punjab University, Hoshiarpur, Vishva Bandhu Volume, XIII (1975), December, 1980

२२२ शोध भारती

मुद्रकृत कागडी विश्वविद्यालय शोध पत्रिका, हरिद्वार, १९७४

२२३ स्वर मंड गदा

संस्कृत त्रैमासिक राजस्थान संस्कृत अकादमी, अजमेर मार्च, १९७६